नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग 23



आगम १८

"जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं वृत्तिः [१]

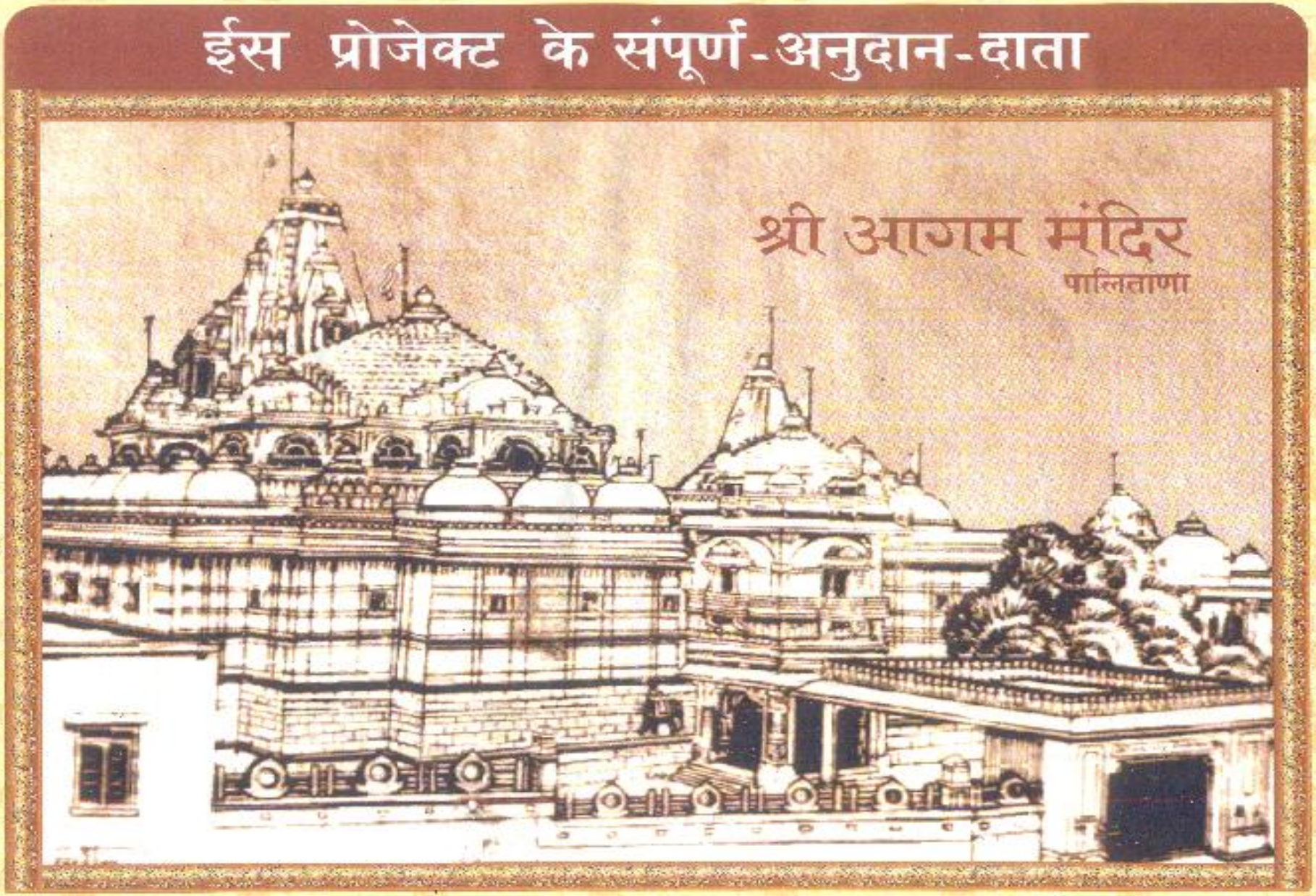
मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

'वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था' पालिताणा

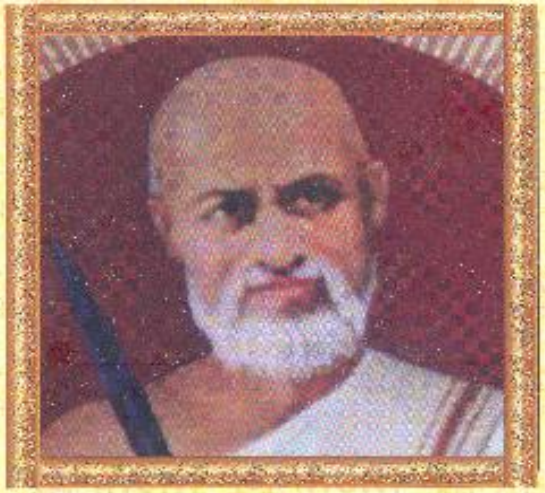
ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता



नमो नमो निम्मलदंसणस्स

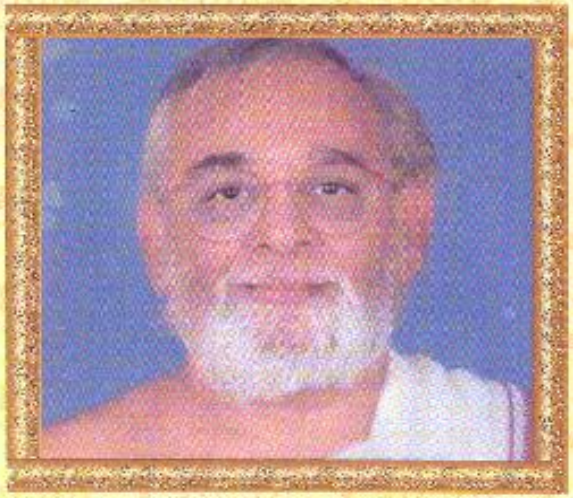
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275



आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नमः

"जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति" मूलं एवं वृत्तिः

[मूलं एवं शांतिचंद्र विहिता वृत्तिः]

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुनः संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-१८

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त 'आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट'

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ८७० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... *.....मुनि दीपरत्नसागर...*

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण*" इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना |

*** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ| *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य, शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

**** मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रज]पूना, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

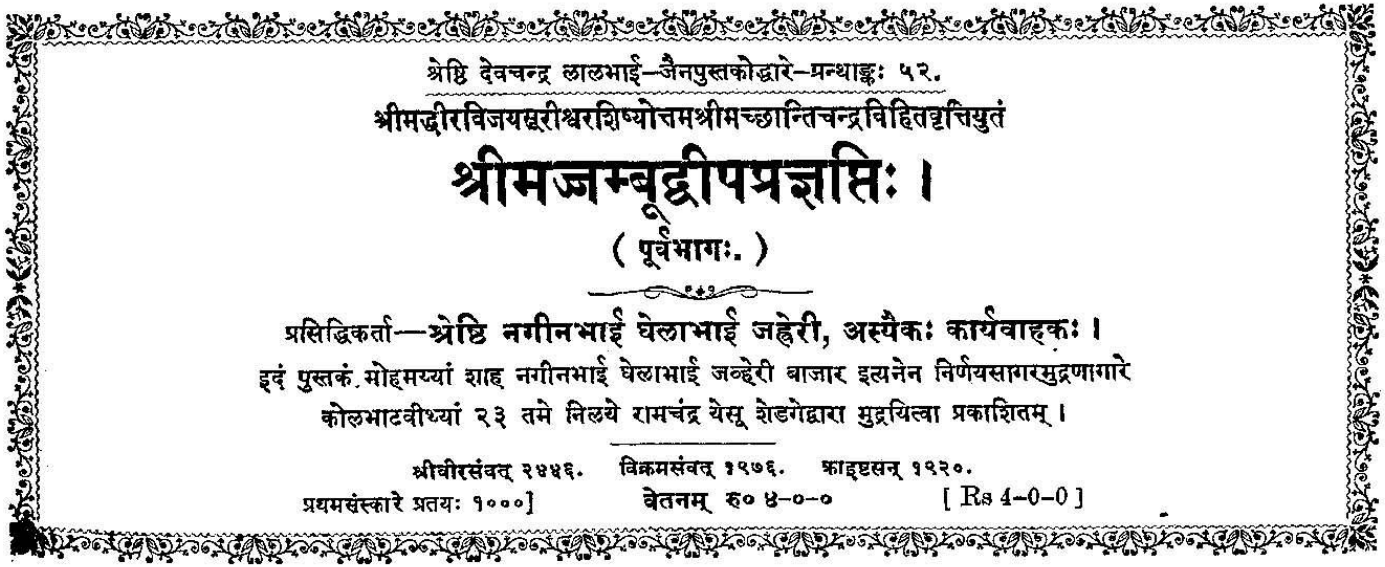
(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:



श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभाई–जैनपुस्तकोद्धारे–ग्रन्थाङ्कः ५२.

श्रीमद्वीरविजयसूरीश्वरशिष्योत्तमश्रीमच्छान्तिचन्द्रविहितवृत्तियुतं

श्रीमज्जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः ।

(पूर्वभागः.)

प्रसिद्धिकर्ता—श्रेष्ठि नगीनभाई घेलाभाई जव्हेरी, अस्यैकः कार्यवाहकः ।

इदं पुस्तकं मोहमय्यां शाह नगीनभाई घेलाभाई जव्हेरी बाजार इत्यनेन निर्णयसागरमुद्रणागारे कोलभाटवीथ्यां २३ तमे निलये रामचंद्र येसू शेडगेद्वारा मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

श्रीवीरसंवत् २४४६. विक्रमसंवत् १९७६. फाइटसन् १९२०.

प्रथमसंस्कारे प्रतयः १०००] वेतनम् रु० ४-०-० [Rs 4-0-0]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति (उपांग)सूत्रस्य मूल “टाइटल पेज”

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
००१	वक्षस्कार: १	०१२	०५४	वक्षस्कार: ३		२१२	वक्षस्कार: ५	
	जंबूद्वीपस्य प्रमाण, संस्थान,			भरतनाम्नस्य हेतु, विनीतानगरी			जिनजन्माभिषेकस्य वर्णनं,	
	स्वरुप, जगति, गवाक्ष.			भरतचक्रवर्ती-वक्तव्यता,			दिक्कुमार्याणां वक्तव्यता,	
	पद्मवरवेदिका, वनखंड,			चक्ररत्नस्य उत्पत्ति,षटखंडयात्रा			इन्द्राणां आगमनम्, पण्डकवनं	
	विजयद्वार एवं राजधानी,			मागध-प्रभास-वरदानानां कथनं			-एवं अभिषेकशीला, सुघोषाघंटा	
	भरतक्षेत्रस्य स्थान, प्रमाण,			चतुर्दश-रत्नानि, रत्नानाम् कार्य				
	विभाग, दक्षिणार्धभरत			-एवं उत्पतिस्थानानि			वक्षस्कार: ६	
	वैताढ्यपर्वत,			भरतचक्रवर्त्या: निधय:, देवा:		२४५	जम्बूद्वीपगता पदार्था:,	
	सिद्धायतनवर्णन			राजान:, सेना:, ग्रामाद्य: --			जम्बूद्वीपे स्थिता: वर्षक्षेत्रा:, -	
	उत्तरार्धभरत.			इत्यादि वर्णनं			-पर्वता:, कूटा:, तीर्थानि, गुफ़ा:,	
							द्रहा:, नद्य: आदि वक्तव्यता	
	.....			.....				
०२२	वक्षस्कार: २	१८९	१२७	वक्षस्कार: ४			वक्षस्कार: ७	
	काल- अवसर्पिणि, उत्सर्पिणि,			चुल्लहिमवंत-वर्षधरपर्वत-वर्णनं,		२५०-	जम्बूद्वीपे अवस्थित चन्द्र -	
	औपमिककाल- पल्योपम, ...			पद्मद्रहवर्णनं, पद्मस्य कथनं,		-३६५	-सूर्य-नक्षत्र-तारादि वक्तव्यता,	
	सागरोपम, कल्पवृक्षवर्णन.			गंगा-सिंधु आदि नद्यानां वर्णनं,			सूर्यमंडल एवं तस्य आयामं,	
	कालस्य षड्विधत्व व तस्मिन्			सिद्धायतन-आदि कूटा:,			विष्कंभ:, परिधि:, अंतर आदि.	
	तस्मिन्काले वास्तव्या मनुष्या			हेमवन्त-हरिवर्ष-महाविदेह-कुरु-			चंद्रमंडल एवं तस्य आयामादि	
	कुलकर वक्तव्यता,			-रम्यक आदि क्षेत्राणां वर्णनं,			-वर्णनं, नक्षत्रमंडल-वक्तव्यता,	
	रुषभदेवस्य वर्णन,			निषध-नीलवंत-रुक्मि-हिमवंतादि			संवत्सराणां भेदा:,	
	नन्दीश्वरद्वीपे अष्टाह्निका-			-पर्वतानां वक्तव्यता,			तिर्थंकरआदि उत्तम पुरुषाणाम्	
	-महोत्सव, पंचभेदे मेघवर्षा			मेरुपर्वतस्य वर्णनं.			वक्तव्यता	

['जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति' - मूलं एवं वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति सूत्रम्" के नामसे सन १९२० (विक्रम संवत १९७६) में 'देवचन्द्र-लालभाइ-जैनपुस्तकोद्धार' द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

इसी प्रत को फिर से दुसरे पूज्यश्रीओने अपने-अपने नामसे भी छपवाई , जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया , मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, अपना एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. जिसमे किसीने पूज्यपाद् सागरानंदसूरिजी के नाम को आगे रखा , और अपनी वफादारी दिखाई, तो किसीने स्वयं को ही इस पुरे कार्य का कर्ता बता दिया और श्रीमद्सागरानंदसूरिजी तथा प्रकाशक का नाम ही मिटा दिया |

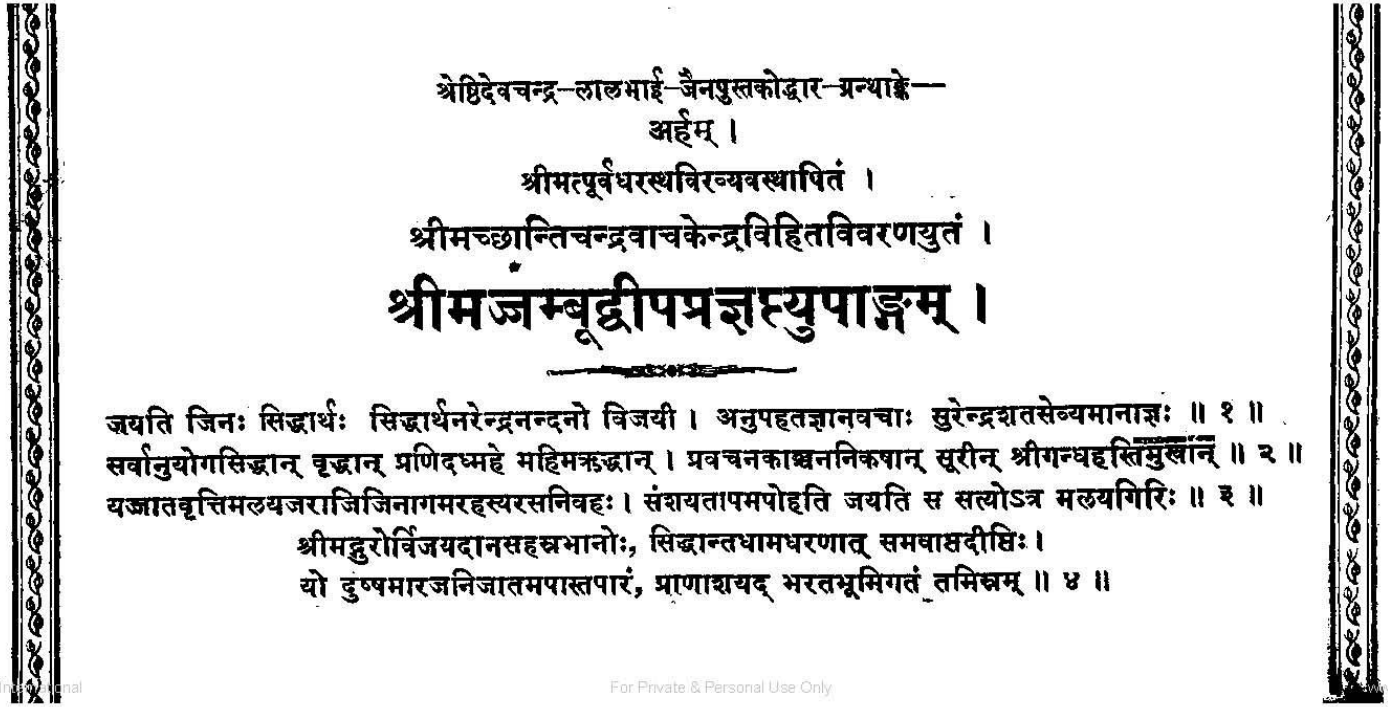
✣ हमारा ये प्रयास क्यों? ✣ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले , ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया , जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी , ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम , फिर वक्षस्कार और मूलसूत्र के क्रमांक लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा वक्षस्कार एवं मूलसूत्र चल रहे है उसका सरलता से ज्ञान हो शके , बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है , उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है , इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची है या फिर गाथा शब्द लिख दिया है |

हमने एक अनुक्रमणिका भी बनायी है , जिसमे प्रत्येक वक्षस्कार और मूलसूत्र लिख दिये है और साथमें इस सम्पादन के पृष्ठांक भी दे दिए है , जिससे अभ्यासक व्यक्ति अपने चहिते विषय तक आसानी से पहुँच शकता है | अनेक पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट भी लिखी है , जिसमे उस पृष्ठ पर चल रहे ख़ास विषयवस्तु की, मूल प्रतमें रही हुई कोई-कोई मुद्रण-भूल की या क्रमांकन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-२३ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.....मुनि दीपरत्नसागर.

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः
	वृत्तिकार-रचिता मंगलिक-गाथा:



श्रेष्ठिदेवचन्द्र–लालभाई–जैनपुस्तकोद्धार–ग्रन्थाङ्के—

अर्हम् ।

श्रीमत्पूर्वधरस्थविरव्यवस्थापितं ।

श्रीमच्छान्तिचन्द्रवाचकेन्द्रविहितविवरणयुतं ।

श्रीमज्जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्युपाङ्गम् ।

जयति जिनः सिद्धार्थः सिद्धार्थनरेन्द्रनन्दनो विजयी । अनुपहतज्ञानवचाः सुरेन्द्रशतसेव्यमानाङ्घ्रिः ॥ १ ॥
सर्वानुयोगसिद्धान् वृद्धान् प्रणिदध्महे महिमऋद्धान् । प्रवचनकाञ्चननिकषान् सूरीन् श्रीगन्धहस्तिमुख्यान् ॥ २ ॥
यज्जातवृत्तिमलयजराजिजिनागमरहस्यरसनिवहः । संशयतापमपोहति जयति स सत्योऽत्र मलयगिरिः ॥ ३ ॥
श्रीमद्गुरोर्विजयदानसहस्रभानोः, सिद्धान्तधामधरणात् समवाप्तदीप्तिः ।
यो दुष्षमारजनिजातमपास्तपारं, प्राणाशयद् भरतभूमिगतं तमिस्रम् ॥ ४ ॥

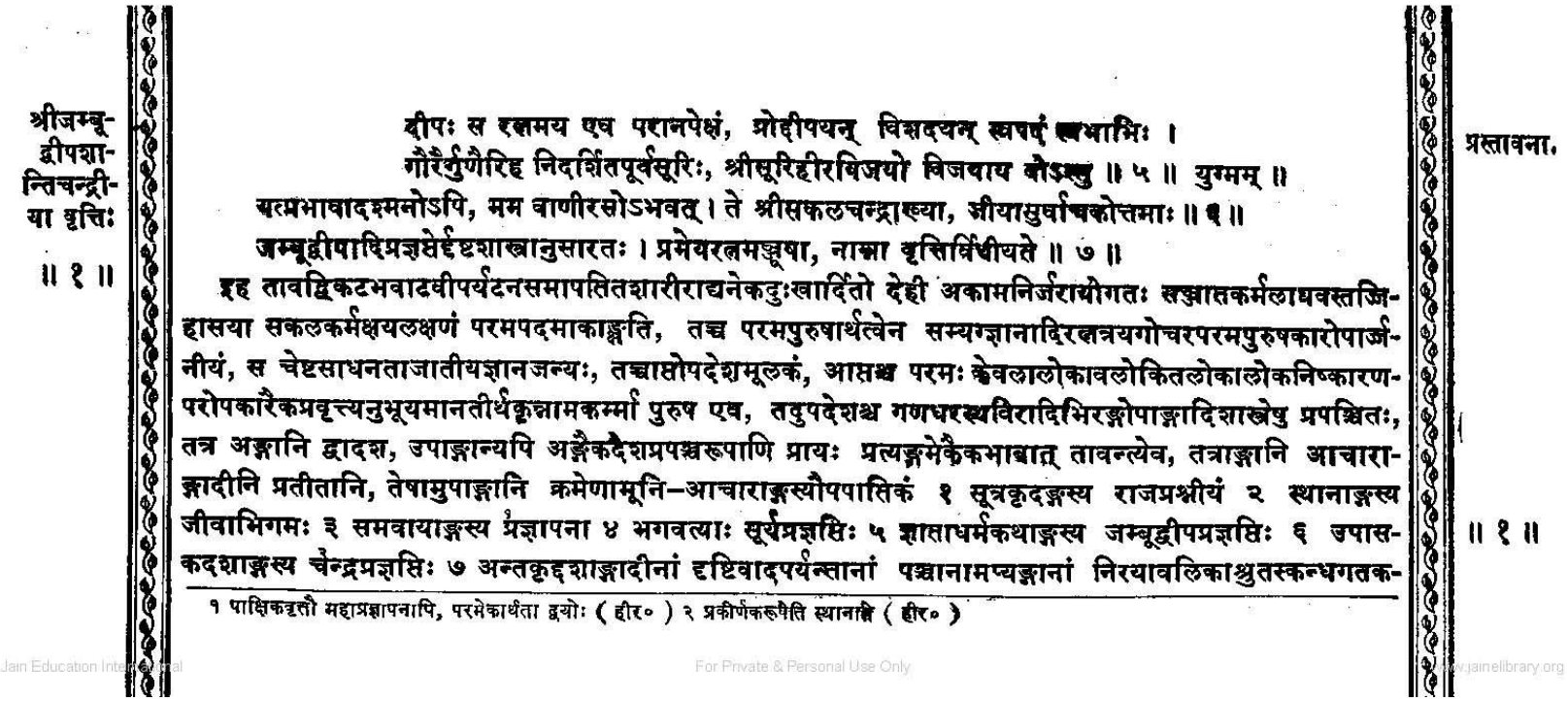
श्रीजम्बू. १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]



श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ १ ॥

दीपः स रत्नमय एव परानपेक्षं, प्रोद्दीपयन् विश्रदयन् स्वपदं स्वभाभिः ।
गौरैर्गुणैरिह निदर्शितपूर्वसूरिः, श्रीसूरिहीरविजयो विजयाय भोऽस्तु ॥ ५ ॥ युग्मम् ॥
यत्प्रभावादहमनोऽपि, मम वाणीरसोऽभवत् । ते श्रीसकलचन्द्राख्या, जीयासुर्वाचकोत्तमाः ॥ ६ ॥
जम्बूद्वीपादिप्रज्ञप्तेर्दृष्टशास्त्रानुसारतः । प्रमेयरत्नमञ्जूषा, नाम्ना वृत्तिर्विधीयते ॥ ७ ॥

इह तावद्विकटभवाटवीपर्यटनसमापतितशारीराद्यनेकदुःखार्दितो देही अकामनिर्जरायोगतः स्वज्ञातकर्मलाघवस्तज्जिहासया सकलकर्मक्षयलक्षणं परमपदमाकाङ्क्षति, तच्च परमपुरुषार्थत्वेन सम्यग्ज्ञानादिरत्नत्रयगोचरपरमपुरुषकारोपार्जनीयं, स चेष्टसाधनताजातीयज्ञानजन्यः, तच्चाप्तोपदेशमूलकं, आप्तश्च परमः केवलालोकावलोकितलोकालोकनिष्कारणपरोपकारैकप्रवृत्त्यनुभूयमानतीर्थकृन्नामकर्म्मा पुरुष एव, तदुपदेशश्च गणधरस्थविरादिभिरङ्गोपाङ्गादिशास्त्रेषु प्रपञ्चितः, तत्र अङ्गानि द्वादश, उपाङ्गान्यपि अङ्गैकदेशप्रपञ्चरूपाणि प्रायः प्रत्यङ्गमेकैकभावात् तावन्त्येव, तत्राङ्गानि आचाराङ्गादीनि प्रतीतानि, तेषामुपाङ्गानि क्रमेणामूनि–आचाराङ्गस्यौपपातिकं १ सूत्रकृदङ्गस्य राजप्रश्नीयं २ स्थानाङ्गस्य जीवाभिगमः ३ समवायाङ्गस्य प्रज्ञापना ४ भगवत्याः सूर्यप्रज्ञप्तिः ५ ज्ञाताधर्मकथाङ्गस्य जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः ६ उपासकदशाङ्गस्य चन्द्रप्रज्ञप्तिः ७ अन्तकृद्दशाङ्गादीनां दृष्टिवादपर्यन्तानां पञ्चानामप्यङ्गानां निरयावलिकाश्रुतस्कन्धगतक-

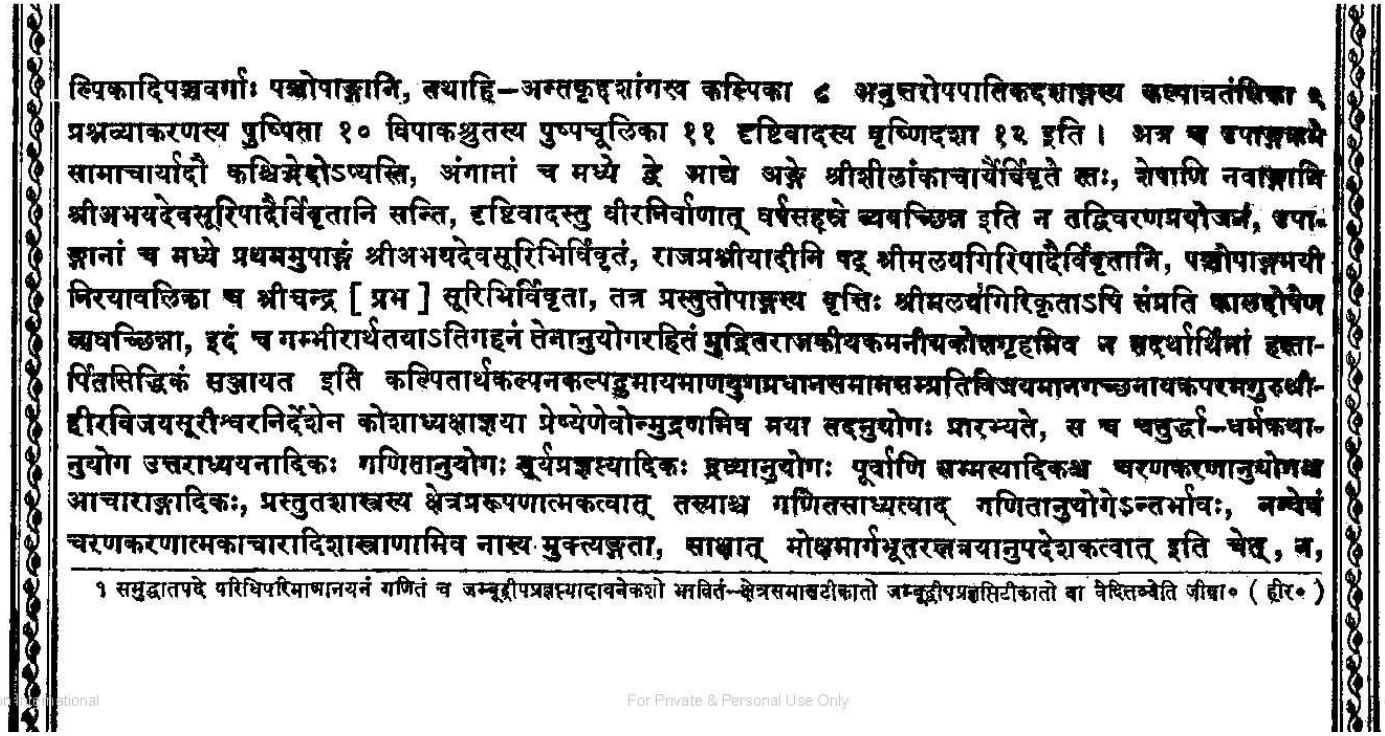
१ पाक्षिकवृत्तौ महाप्रज्ञापनापि, परमेकार्थता द्वयोः (हीर०) २ प्रकीर्णकरूपेति स्थानाङ्गे (हीर०)

प्रस्तावना. ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्तिकार-रचिता मंगलिक-गाथाः, ‘आचार’ अंगसूत्रादेः उपांगसूत्रस्य नाम-कथनं

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः



लिपिकादिपञ्चवर्गाः पञ्चोपाङ्गानि, तथाहि—अन्तकृद्दशांगस्य कल्पिका ८ अनुत्तरोपपातिकदशाङ्गस्य कल्पावतंसिका ९ प्रश्नव्याकरणस्य पुष्पिता १० विपाकश्रुतस्य पुष्पचूलिका ११ दृष्टिवादस्य वृष्णिदशा १२ इति । अत्र च उपाङ्गत्वे सामाचार्यादौ कश्चिन्भेदोऽप्यस्ति, अंगानां च मध्ये द्वे आद्ये अङ्गे श्रीशीलांकाचार्यैर्विवृते स्तः, शेषाणि नवाङ्गानि श्रीअभयदेवसूरिपादैर्विवृतानि सन्ति, दृष्टिवादस्तु वीरनिर्वाणात् वर्षसहस्रे व्यवच्छिन्न इति न तद्विवरणप्रयोजनं, उपाङ्गानां च मध्ये प्रथममुपाङ्गं श्रीअभयदेवसूरिभिर्विवृतं, राजप्रश्नीयादीनि पट् श्रीमलयगिरिपादैर्विवृतानि, पञ्चोपाङ्गमयी निरयावलिका च श्रीचन्द्र [प्रभ] सूरिभिर्विवृता, तत्र प्रस्तुतोपाङ्गस्य वृत्तिः श्रीमलयगिरिकृताऽपि संप्रति कालदोषेण व्यवच्छिन्ना, इदं च गम्भीरार्थतयाऽतिगहनं तेनानुयोगरहितं मुद्रितराजकीयकमनीयकोशगृहमिव न सदर्थार्थिनां हस्तार्पितसिद्धिकं सञ्जायत इति कल्पितार्थकल्पनकल्पद्रुमायमाणयुगप्रधानसमानसम्प्रतिविजयमानगच्छनायकपरमगुरुश्रीहीरविजयसूरीश्वरनिर्देशेन कोशाध्यक्षाज्ञया प्रेष्येणेवोन्मुद्रणमिव मया तदनुयोगः प्रारभ्यते, स च चतुर्द्धा—धर्मकथानुयोग उत्तराध्ययनादिकः गणितानुयोगः सूर्यप्रज्ञप्त्यादिकः द्रव्यानुयोगः पूर्वाणि सम्मत्यादिकश्च चरणकरणानुयोगश्च आचाराङ्गादिकः, प्रस्तुतशास्त्रस्य क्षेत्रप्ररूपणात्मकत्वात् तस्याश्च गणितसाध्यत्वाद् गणितानुयोगेऽन्तर्भावः, नन्वेवं चरणकरणात्मकाचारादिशास्त्राणामिव नास्य मुक्त्यङ्गता, साक्षात् मोक्षमार्गभूतरत्नत्रयानुपदेशकत्वात् इति चेत्, न,

१ समुद्घातपदे परिधिपरिमाणानयनं गणितं च जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यादावनेकशो भावितं—क्षेत्रसमासटीकातो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिटीकातो वा वेदितव्येति जीवा० (हीर०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	वृत्तिकारस्य मतानुसार ‘आचार’ अंगसूत्रादेः उपांगसूत्रस्य नाम-कथनं एवं एतत्कथनस्य सामाचारी-भेदोल्लेखः, अंग-उपांगस्य वृत्तिकारस्य नाम-कथनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ २ ॥

साक्षादुपदेशकत्वाभावेऽपि तदुपकारितया शेषाणामपि त्रयाणामनुयोगानां मुक्त्यङ्गत्वाविरोधात्, तथा चोक्तम्–"चर-णपडिवत्तिहेऊ धम्मकहा कालि दिक्खमादीया । दविए दंसणसोही दंसणसुद्धस्स चरणं तु ॥ १ ॥" अत्र व्याख्या–अत्र वृत्तावतिदेशोक्तसम्मत्युक्तग्रन्थयोर्दुर्गपदव्याख्याने आपरिसमाप्ति अत्र व्याख्या इति संकेतो बोध्यः । चरणप्रति-पत्तिहेतुर्धर्मकथानुयोगः काले–गणितानुयोगे दीक्षादीनि व्रतानि, कोऽर्थः ?–शुद्धगणितसिद्धे प्रशस्ते काले गृहीतानि प्रश-स्तफलानि स्युः, कालश्च ज्योतिश्चाराधीनः, स च जम्बूद्वीपादिक्षेत्राधीनव्यवस्थस्तेनायं कालापरपर्यायो गणितानुयोग इति, द्रव्ये–द्रव्यानुयोगे शुद्धे दर्शनशुद्धिर्भवति, कोऽर्थः?–धर्मास्तिकायादिद्रव्याणां द्रव्यानुयोगतः सिद्धौ सत्यां तदा-स्तिक्ये प्रतिपन्ने दर्शनशुद्धिर्भवतीति, दर्शनशुद्धस्य चरणानुयोगो भवतीति । इह यद्यपि श्रीमलयगिरिपादानां क्व च परकृताक्षेपपरिहारप्रभविष्णुवचनरचनाचातुर्यं क्व च तथाविधसम्प्रदायसाचिव्यं क्व च तत्तन्निबन्धबन्धुरतानैपुण्यं क्व कुशाग्रसमः प्रतिभाविभवश्च क्व च मे तत्तत्पूर्वपक्षोत्तरपक्षरचनास्वकुशलत्वं, क्व च तादृक्संप्रदायराहित्यं क्व च कठोरग्रन्थग्रथनकर्मठत्वं क्व च मुशलाग्रमतित्वमिति महति हेति (तु) संहतिविभेदेऽपि प्रवृत्तिरपि राभसिकी प्रवृत्तिरहो महती धृष्टतावृत्तिः कटरिकठिनः कुण्ठजनहठग्रह इत्युपहासपात्रतामात्रफलतया चन्द्रार्कर्षकमृगेन्द्रानुयायिनः शृगाल-स्येव ममानौचितीमञ्चति, तथापि लोहशालाविकीर्णानां लोहसारकणानां चुम्बकाश्मप्रयोगेणैव महता प्रयत्नेन प्रायस्त-त्प्राचीनजीवाभिगमादिवृत्तिषु दृष्टानामेव व्याख्यालवानामेकत्र मीलनमनुविचिन्त्य अन्वाख्यानरूपमेवेदं व्याख्यानं

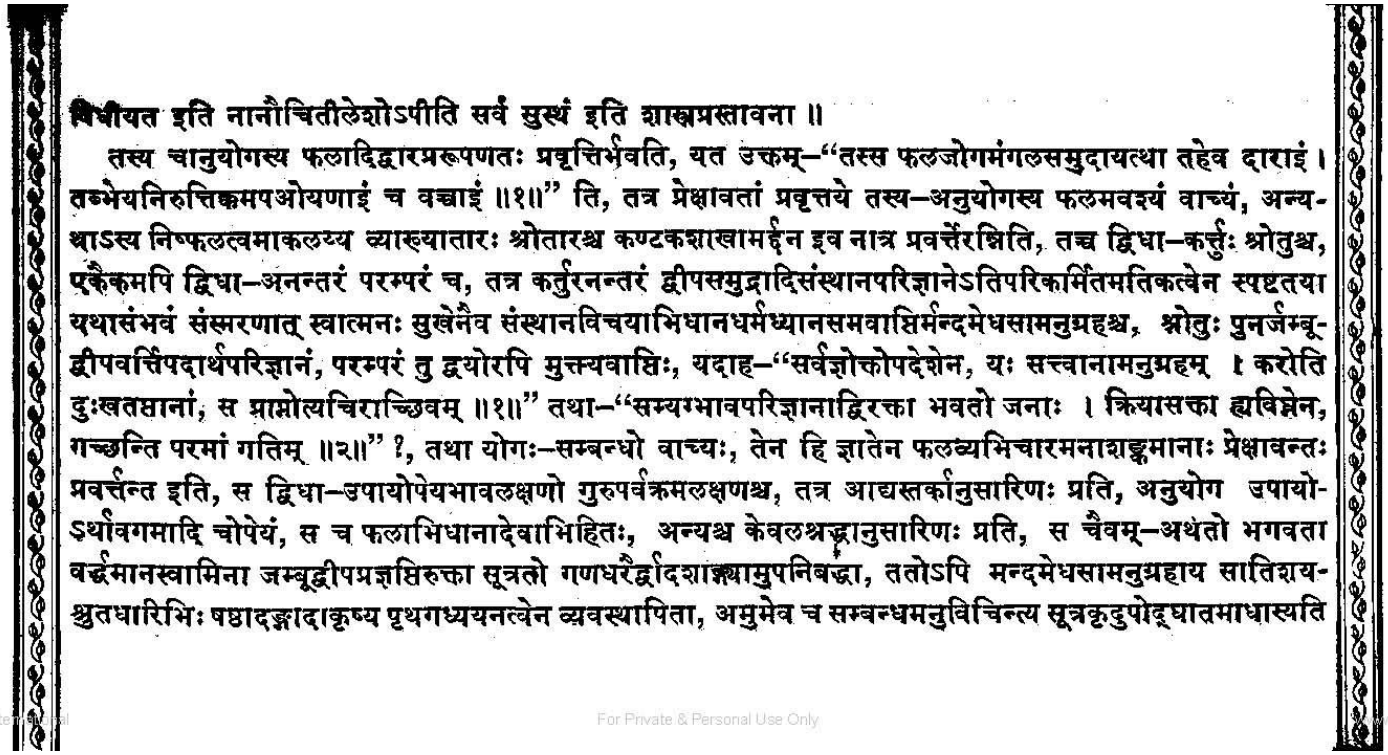
प्रस्तावना.

॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रास्ताविक-कथनं

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः



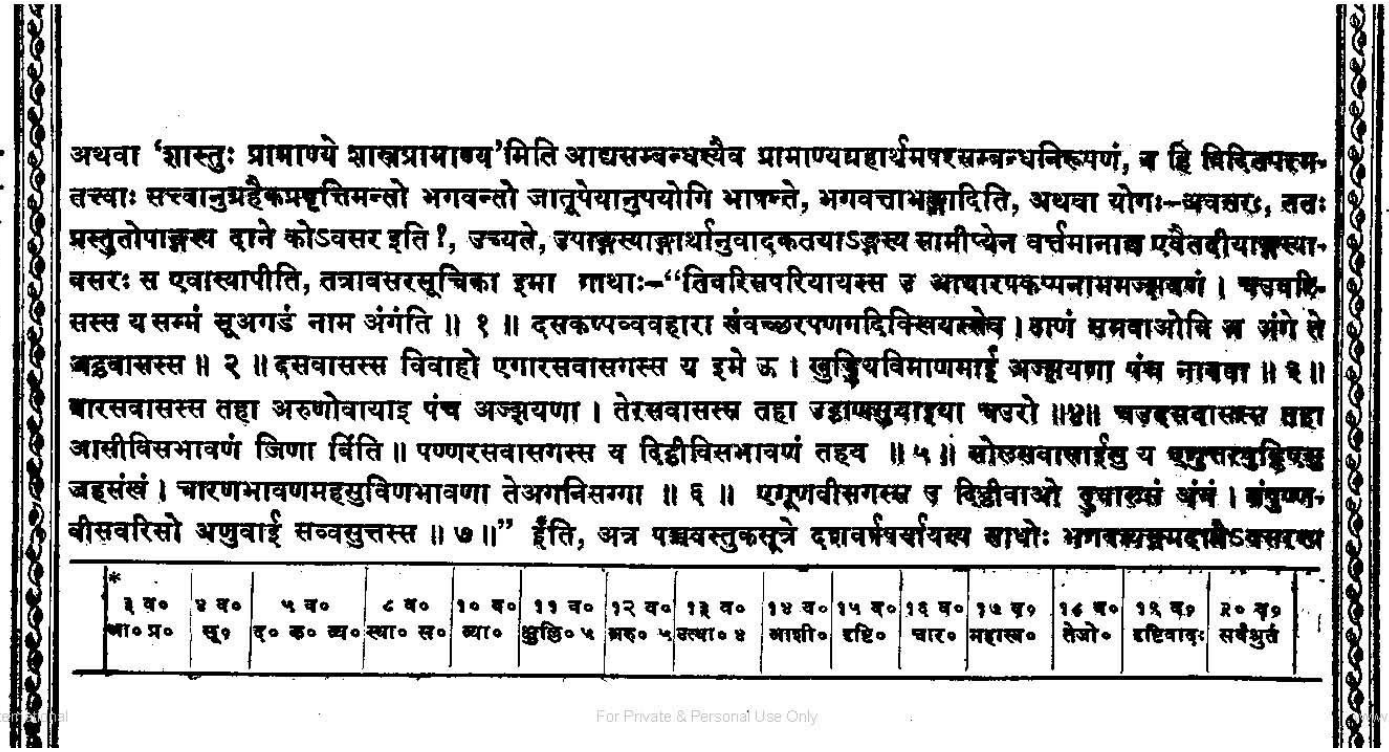
विधीयत इति नानौचितीलेशोऽपीति सर्वं सुस्थं इति शास्त्रप्रस्तावना ॥

तस्य चानुयोगस्य फलादिद्वारप्ररूपणतः प्रवृत्तिर्भवति, यत उक्तम्–“तस्स फलजोगमंगलसमुदायत्था तहेव दाराइं । तब्भेयनिरुत्तिक्कमपओयणाइं च वच्चाइं ॥१॥” ति, तत्र प्रेक्षावतां प्रवृत्तये तस्य–अनुयोगस्य फलमवश्यं वाच्यं, अन्यथाऽस्य निष्फलत्वमाकलय्य व्याख्यातारः श्रोतारश्च कण्टकशाखामर्दन इव नात्र प्रवर्त्तेरन्निति, तच्च द्विधा–कर्त्तुः श्रोतुश्च, एकैकमपि द्विधा–अनन्तरं परम्परं च, तत्र कर्तुरनन्तरं द्वीपसमुद्रादिसंस्थानपरिज्ञानेऽतिपरिकर्मितमतित्वेन स्पष्टतया यथासंभवं संस्मरणात् स्वात्मनः सुखेनैव संस्थानविचयाभिधानधर्मध्यानसमवाप्तिर्मन्दमेधसामनुग्रहश्च, श्रोतुः पुनर्जम्बूद्वीपवर्त्तिपदार्थपरिज्ञानं, परम्परं तु द्वयोरपि मुक्त्यवाप्तिः, यदाह–“सर्वज्ञोक्तोपदेशेन, यः सत्त्वानामनुग्रहम् । करोति दुःखतप्तानां, स प्राप्नोत्यचिराच्छिवम् ॥१॥” तथा–“सम्यग्भावपरिज्ञानाद्विरक्ता भवतो जनाः । क्रियासक्ता ह्यविघ्नेन, गच्छन्ति परमां गतिम् ॥२॥” ?, तथा योगः–सम्बन्धो वाच्यः, तेन हि ज्ञातेन फलव्यभिचारमनाशङ्कमानाः प्रेक्षावन्तः प्रवर्त्तन्त इति, स द्विधा–उपायोपेयभावलक्षणो गुरुपर्वक्रमलक्षणश्च, तत्र आद्यस्तर्कानुसारिणः प्रति, अनुयोग उपायोऽर्थावगमादि चोपेयं, स च फलाभिधानादेवाभिहितः, अन्यश्च केवलश्रद्धानुसारिणः प्रति, स चैवम्–अर्थतो भगवता वर्द्धमानस्वामिना जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिरुक्ता सूत्रतो गणधरैर्द्वादशाङ्ग्यामुपनिबद्धा, ततोऽपि मन्दमेधसामनुग्रहाय सातिशयश्रुतधारिभिः षष्ठादङ्गादाकृष्य पृथगध्ययनत्वेन व्यवस्थापिता, अमुमेव च सम्बन्धमनुविचिन्त्य सूत्रकृदुपोद्घातमाधास्यति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	प्रास्ताविक-कथनं

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः



श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥ ३ ॥

अथवा 'शास्तुः प्रामाण्ये शास्त्रप्रामाण्य'मिति आद्यसम्बन्धस्यैव प्रामाण्यग्रहार्थमपरसम्बन्धनिरूपणं, न हि निर्दिष्टपरम-तस्याः सत्त्वानुग्रहैकप्रवृत्तिमन्तो भगवन्तो जातूपेयानुपयोगि भाषन्ते, भगवत्ताभङ्गादिति, अथवा योगः–अवसरः, ततः प्रस्तुतोपाङ्गस्य दाने कोऽवसर इति ?, उच्यते, उपाङ्गस्याङ्गार्थानुवादकतयाऽङ्गस्य सामीप्येन वर्त्तमानात् एवैतदीयाङ्गस्या-वसरः स एवास्यापीति, तत्रावसरसूचिका इमा गाथाः–"तिवरिसपरियायस्स उ आयारपकप्पनामअज्झयणं । चउवरि-सस्स य सम्मं सूअगडं नाम अंगंति ॥ १ ॥ दसकप्पव्ववहारा संवच्छरपण्णगदिक्खियस्सेव । ठाणं समवाओवि य अंगे से अट्ठवासस्स ॥ २ ॥ दसवासस्स विवाहो एगारसवासगस्स य इमे ऊ । खुड्डियविमाणमाई अज्झयणा पंच नायव्वा ॥ ३ ॥ बारसवासस्स तहा अरुणोवायाइ पंच अज्झयणा । तेरसवासस्स तहा उट्ठाणसुयाइया चउरो ॥४॥ चउदसवासस्स तहा आसीविसभावणं जिणा बिंति ॥ पण्णरसवासगस्स य दिट्ठीविसभावणं तहय ॥ ५ ॥ सोलसवासाईसु य चउसरचुद्दिपुव्व जहसंखं । चारणभावणमहसुविणभावणा तेअगनिसग्गा ॥ ६ ॥ एगूणवीसगस्स उ दिट्ठीवाओ दुवालसं अंगं । संपुण्ण-वीसवरिसो अणुवाई सव्वसुत्तस्स ॥ ७ ॥" इति, अत्र पञ्चवस्तुकसूत्रे दशवर्षपर्यायस्य साधोः भगवत्यङ्गप्रदानेऽवसरस्य

३ व० आ० प्र०	४ व० सू०	५ व० द० क० व्य०	८ व० स्था० स०	१० व० व्या०	११ व० क्षुल्लि० ५	१२ व० अरु० ५	१३ व० उत्था० ४	१४ व० आशी०	१५ व० दृष्टि०	१६ व० चार०	१७ व० महास्व०	१८ व० तेजो०	१९ व० दृष्टिवादः	२० व० सर्वश्रुतं

अनुयोग-फलादि॰

॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	प्रास्ताविक-कथनं, आगम-अनुज्ञा एवं दीक्षा-पर्याय

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रतिपादनात् षष्ठाङ्गतया ज्ञाताधर्मकथाङ्गस्य प्रदाने तदनन्तरमवसरः, कारणविशेषे गुर्वाज्ञावशाद्वाऽगवि, अवस्तदुपाङ्गत्वादस्य तदनन्तरमवसर इति संभाव्यते, योगविधानसामान्याभ्यामपि अङ्गयोगोद्वहनानन्तरमेवोपाङ्गयोगोद्वहनस्य विधिप्राप्तत्वादिति २। तथेदमुपाङ्गमपि प्रायः सकलजम्बूद्वीपवर्त्तिपदार्थानुशासनाच्छास्त्रं, तच्च सम्यग्ज्ञानद्वारा परमपदप्रापकत्वेन श्रेयोभूतता, अतो मा भूदत्र विघ्न इति तदपोहाय मङ्गलमुपदर्शनीयं, यतः–“बहुविग्घाइं सेयाइं तेण कयमंगलोवयारेहिं। घेत्तव्वो सो सुमहानिहिव जह वा महाविज्जा ॥ १ ॥” इति, तच्च त्रिविधं–आदिमध्यावसानभेदात्, तत्र आदिमङ्गलं ‘णमो अरिहंताणं’ मित्यविघ्नतया शास्त्रस्य परिसमाप्त्यर्थं, मध्यमङ्गलं ‘जया णं एगमेगे भगवंतो तित्थगरा समुप्पज्जंति’त्ति तस्यैव स्थैर्याय, अस्य च द्वितीयाधिकारादिसूत्रस्य त्रिभुवनोद्भूतजिनजन्मकल्याणकसूचकत्वेन परममङ्गलत्वात्, अन्त्यमङ्गलं तु ‘समणे भगवं महावीरे मिहिलाए णगरीए’ इत्यादिनिगमनसूत्रे श्रीमन्महावीरनामग्रहणमिति, तस्यैव शिष्यप्रशिष्यादिपरम्परया अव्यवच्छेदार्थं, नन्विदं सम्यग्ज्ञानरूपत्वेन निर्जरार्थत्वात् अथवा “जो जं पसत्थमत्थं पुच्छइ तस्सत्थसंपत्ती” इति निमित्तशास्त्रे द्वीपसमुद्राभिधानग्रहणस्य परममङ्गलत्वेन निवेदनादस्य द्वीपप्ररूपणात्मकत्वात् स्वयमेव सर्वात्मना मङ्गलं (लता) किं मङ्गलान्तरोपन्यासेन?, अनवस्थाप्रसङ्गात्, मैवं, मङ्गलतया हि परिगृहीतं शास्त्रं मङ्गलमिति व्यवह्रियते फलदं च भवति, साधुवत्, अन्यथोपहासनमस्कारादेरपि

१ बहुविघ्नानि श्रेयांसि तेन कृतमङ्गलोपचारैः। ग्रहीतव्यः सः (अनुयोगः) सुमहानिधिरिव यथा वा महाविद्या ॥१॥ २ यो यं प्रशस्तमर्थं पृच्छति तस्यार्थसंपत्तिः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	प्रास्ताविक-कथनं, ‘मंगल’स्य निरूपणं

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ ४ ॥

मङ्गलत्वं स्यात्, न हि लोकेऽपि स्वरूपसता दधिदूर्वादीनां द्रव्यमङ्गलत्वं किन्तु मङ्गलाभिप्रायेण प्रयुक्तानाम्, अन्यथा तद्विषयकदर्शनस्पर्शनादीनां निर्मूलकतापातात्, इह अस्य शास्त्रस्य फलादि निरूपितं तदनुयोगस्य द्रष्टव्यं, तयोः कथञ्चिदभेदादिति ३। अथेदानीं समुदायार्थश्चिन्त्यते, तत्र समुदायः सामान्यतः शास्त्रसङ्ग्रहणीयः पिण्डस्तद्रूपोऽर्थो वक्तव्यः, किमुक्तं भवति?–अवयवविभागनिरपेक्षतया शास्त्रगतं प्रमेयं प्रकटनीयं, तच्च वर्द्धमानादिवत् यथार्थनामतो भवति, तत्रैव समुदायार्थपरिसमाप्तेः, न तु पलाशादिवदयथार्थनामतो डित्थादिवदर्थशून्यनामतश्च, प्रस्तुते च जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिरितिनाम्नः कः शब्दार्थ इति?, उच्यते, जम्ब्वा–सुदर्शनापरनाम्न्याऽनादृतदेवावासभूतयोपलक्षितो द्वीपो जम्बूद्वीपस्तस्य प्रकर्षेण–निःशेषकुतीर्थिकसार्थागम्ययथावस्थितस्वरूपनिरूपणलक्षणेन ज्ञप्तिः–ज्ञापनं यस्यां ग्रन्थपद्धतौ ज्ञप्तिर्ज्ञानं वा यस्याः सकाशात् सा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः, अथवा जम्बूद्वीपं प्राप्नुवन्ति–पूरयन्ति स्वस्थित्येति जम्बूद्वीपप्राः जगतीवर्षवर्षधराद्यास्तेषां ज्ञप्तिर्यस्याः सकाशात् सा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिरिति सान्वर्थशास्त्रनामप्रतिपादनेन जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्याः पिण्डार्थो दर्शितः, अत एवाभिधेयशून्यतामाकलयन्तस्सन्तोऽत्र प्रवृत्तौ मा मन्दायन्तामित्यभिधेयसूचापि कृतैव, नामनिक्षेपचिन्ता तु द्वितीयानुयोगयोजनायां करिष्यत इति समुदायार्थः ४। तथैवानुयोगद्वाराणि वाच्यानि, तथाहि–प्रस्तुताध्ययनस्य महापुरस्येव चत्वारि अनुयोगद्वाराणि भवन्ति–उपक्रमो निक्षेपोऽनुगमो नयश्च, तत्र अनुयोजनमनुयोगः–सूत्रस्यार्थेन सह सम्बन्धनं, अथवाऽनुरूपोऽनुकूलो वा योगो–व्यापारः सूत्रस्यार्थप्रतिपादनरूपोऽनुयोगः, आह

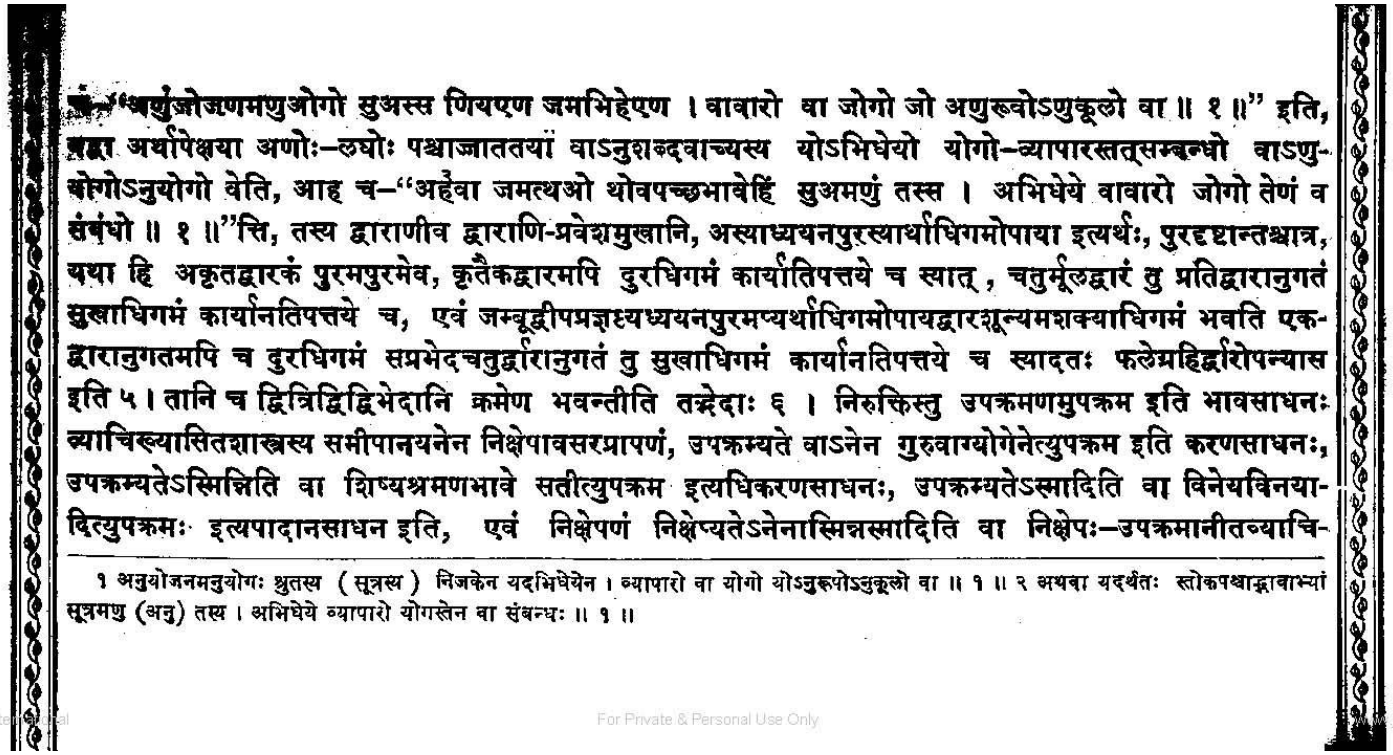
अनुयोग-फलादि.

॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	प्रास्ताविक-कथनं, ‘जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति’ शब्दस्य अर्थकथनं, अनुयोग-कथनं

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः



अनुयोजनमनुयोगः श्रुतस्य (सूत्रस्य) निजकेन यदभिधेयेन । व्यापारो वा योगो योऽनुरूपोऽनुकूलो वा ॥ १ ॥ २ अथवा यदर्थतः स्तोकपश्चाद्भावाभ्यां सूत्रमणु (अनु) तस्य । अभिधेये व्यापारो योगस्तेन वा संबन्धः ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अनुयोग-कथनं एवं फ़लादि, उपक्रम-‘निक्षेप’-‘अनुगम’ आदि शब्दस्य विविध-अर्थाः, भेदाः इत्यादिः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

श्रीजम्बू-द्वीपज्ञा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ ५ ॥

ख्यासितशास्त्रस्य नामादिभिर्न्यसनमित्यर्थः निक्षेपो न्यासः स्थापनेति पर्यायाः, एवमनुगमनमनुगम्यतेऽनेनास्मिन्नस्मा-दिति वाऽनुगमः–निक्षिप्तसूत्रस्यानुकूलः परिच्छेदोऽर्थकथनमितियावत् , एवं नयनं नीयतेऽनेनास्मिन्नस्मादिति वा नयः– अनन्तधर्मात्मकस्य वस्तुन एकांशपरिच्छेदः, एकेनैव धर्मेण पुरस्कृतेन वस्त्वङ्गीकार इत्यर्थः ७ । उपक्रमादिद्वारसमाप्ति-स्त्यन्यासे किं प्रयोजनमिति ?, उच्यते, न ह्यनुपक्रान्तसमीपीभूतं निक्षिप्यते न चानिक्षिप्तं नामादिभिरर्थतोऽनुगम्यते, न चार्थतोऽननुगतं नयैर्विचार्यते इतीदमेव क्रमप्रयोजनं, उक्तं च–“दारक्कमोऽयमेव उ निक्खिप्पइ जेण नासमीवत्थं । अणुगम्मइ नाणत्थं नाणुगमो नयमयविहूणो ॥ १ ॥”त्ति ८ । तदेवं फलादीन्युक्तानि, साम्प्रतमनुयोगद्वारभेदभावन-पुरस्सरमिदमेवाध्ययनमनुर्विचिन्त्यते, तत्रोपक्रमो द्विधा–लौकिकः शास्त्रीयश्च, तत्र आद्यः षोढा–नामस्थापनाद्रव्यक्षे-त्रकालभावभेदात् , नामस्थापने सुप्रतीते, द्रव्योपक्रमो द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, आगमत उपक्रमशब्दार्थस्य ज्ञाता, तत्र चानुपयुक्तः ‘अनुपयोगो द्रव्य’मिति वचनात् , नोआगमतस्त्रिविधो-ज्ञशरीरभव्यशरीरतद्व्यतिरिक्तभेदात् , तत्र यदुपक्रमशब्दार्थज्ञस्य शरीरं जीवविप्रमुक्तं सिद्धशिलातलादिगतं तद्भूतभावत्वात् ज्ञशरीरद्रव्योपक्रमो, वस्तु बाल-को नेदानीमुपक्रमशब्दार्थमवबुध्यते अथ चावश्यमावस्यां भोत्स्यते स भाविभावनिबन्धनत्वात् भव्यशरीरद्रव्योपक्रमः, ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तस्त्रिविधः–सचित्ताचित्तमिश्रभेदात् , तत्र सचित्तद्रव्योपक्रमो द्विपदचतुष्पदापद्रोपाधिभे-दभिन्नस्त्रिविधः, पुनरेकैको द्विविधः–परिकर्मणि वस्तुविनाशे च, तत्रावस्थितस्यैव द्रव्यस्य गुणविशेषापादनं परिकर्म

उपक्रमा-दीनि.

॥ ५ ॥

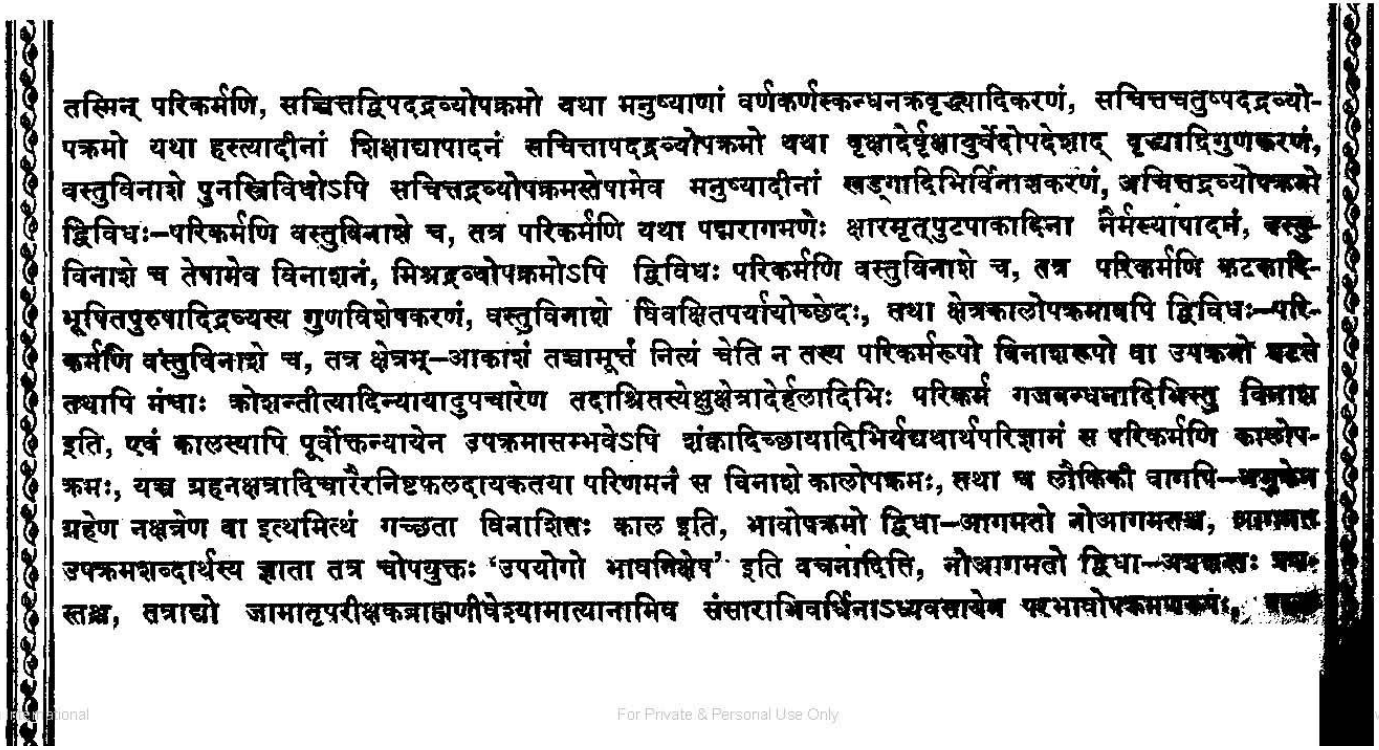
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपक्रम-‘निक्षेप’-‘अनुगम’ आदि शब्दस्य विविध-अर्थाः, भेदा: इत्यादि:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]



तस्मिन् परिकर्मणि, सचित्तद्विपदद्रव्योपक्रमो यथा मनुष्याणां वर्णकर्णस्कन्धनकवृद्ध्यादिकरणं, सचित्तचतुष्पदद्रव्योपक्रमो यथा हस्त्यादीनां शिक्षाद्यापादनं सचित्तापदद्रव्योपक्रमो यथा वृक्षादेर्वृक्षायुर्वेदोपदेशाद् वृद्ध्यादिगुणकरणं, वस्तुविनाशे पुनस्त्रिविधोऽपि सचित्तद्रव्योपक्रमस्तेषामेव मनुष्यादीनां खड्गादिभिर्विनाशकरणं, अचित्तद्रव्योपक्रमो द्विविधः–परिकर्मणि वस्तुविनाशे च, तत्र परिकर्मणि यथा पद्मरागमणेः क्षारमृत्पुटपाकादिना नैर्मल्यापादनं, वस्तुविनाशे च तेषामेव विनाशनं, मिश्रद्रव्योपक्रमोऽपि द्विविधः परिकर्मणि वस्तुविनाशे च, तत्र परिकर्मणि कटकादिभूषितपुरुषादिद्रव्यस्य गुणविशेषकरणं, वस्तुविनाशे विवक्षितपर्यायोच्छेदः, तथा क्षेत्रकालोपक्रमावपि द्विविधः–परिकर्मणि वस्तुविनाशे च, तत्र क्षेत्रम्–आकाशं तच्चामूर्त्तं नित्यं चेति न तस्य परिकर्मरूपो विनाशरूपो वा उपक्रमो घटते तथापि मंचाः क्रोशन्तीत्यादिन्यायादुपचारेण तदाश्रितस्येक्षुक्षेत्रादेर्हलादिभिः परिकर्म गजबन्धनादिभिस्तु विनाश इति, एवं कालस्यापि पूर्वोक्तन्यायेन उपक्रमासम्भवेऽपि शंकादिच्छायादिभिर्यथार्थपरिज्ञानं स परिकर्मणि कालोपक्रमः, यच्च ग्रहनक्षत्रादिचारैरनिष्टफलदायकतया परिणमनं स विनाशे कालोपक्रमः, तथा च लौकिकी वागपि–अमुकेन ग्रहेण नक्षत्रेण वा इत्थमित्थं गच्छता विनाशितः काल इति, भावोपक्रमो द्विधा–आगमतश्च नोआगमतश्च, आगमतः उपक्रमशब्दार्थस्य ज्ञाता तत्र चोपयुक्तः ‘उपयोगो भावनिक्षेप’ इति वचनादिति, नोआगमतो द्विधा–अयमुक्तः अयमुक्तश्च, तत्राद्यो जामातृपरीक्षकब्राह्मणीवेद्यामात्यानामिव संसाराभिवर्धनाऽध्यवसायेन परभावोपक्रमणकर्मः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपक्रम-‘निक्षेप’-‘अनुगम’ आदि शब्दस्य विविध-अर्थाः, भेदाः इत्यादिः

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

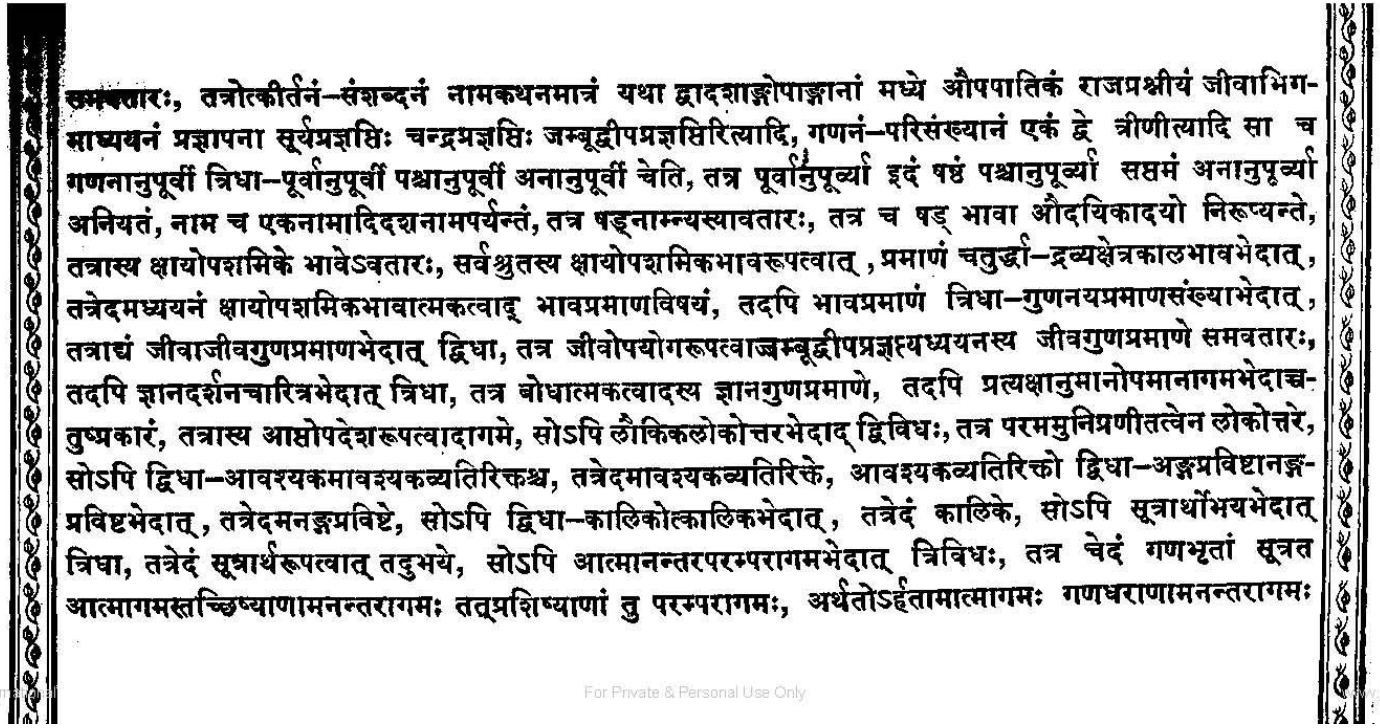
श्रुतादिनिमित्तमाचार्यभावावधारणरूपः, अनेनेहाधिकारः, अथानुयोगाङ्गप्रतिपादनाधिकारे गुरुभावोपक्रमाभिधानमनर्थकम्, अतदङ्गत्वात्, तदसम्यक्, तस्याप्यनुयोगाङ्गत्वाद्, यद्भाष्यकारः–"गुरुचित्तायत्ताइं वक्खाणंगाइं जेण सवाइं। तेण जह सुप्पसन्नं होइ तयं तं तहा कज्जं ॥ १ ॥" आह–यद्येवं तर्हि गुरुभावोपक्रम एव दर्शनीयः न शेषाः, निष्प्रयोजक (न) त्वादिति, न, गुरुचित्तप्रसादनार्थं तेषामप्युपयोगित्वात्, तथाहि–बालग्लानादिसाधून् पथ्यान्नपानादिना प्रतिजाग्रति वैयावृत्त्यनियुक्ते साधौ द्रव्योपक्रमात् गुर्वासनशयनाद्युपभोगिभूतलप्रमार्जनादिना संस्कुर्वति क्षेत्रोपक्रमात् भव्यस्य छायालग्नादिना दीक्षादिसमयं सम्यक् साधयति कालोपक्रमाच्च गुरुः प्रसीदति, नामस्थापनोपक्रमौ तु प्रस्तुतेऽनुपयोगिनाविति, अथवा उपक्रमसाम्यात् ये केचन संभविन उपक्रमभेदास्ते सर्वेऽपि दर्शनीयाः, यतोऽनुपयोगिनिरासेनोपयोगिनि निष्प्रतिपक्षा प्रतिपत्तिरुपजायते, तथा चाप्रस्तुतार्थापाकरणं प्रस्तुतार्थव्याकरणं च नामादिन्यासव्याख्यायाः फलमुपवर्णयन्ति महाधियः। उक्तः लौकिक उपक्रमः, अथ शास्त्रीय उच्यते–सोऽपि षोढैव, आनुपूर्वीनामप्रमाणवक्तव्यतार्थाधिकारसमवतारभेदात्, एतच्चत्यर्थिना तु अनुयोगद्वारसूत्रं विलोक्यं, ग्रन्थविस्तरभयात्तु नेह तन्यते, केवलं आनुपूर्व्यादिषु पंचसूपक्रमभेदेषु षष्ठे समवतारभेदे विचार्यमाणे इदमध्ययनं समवतारयेत्, ततश्चानुपूर्व्यादिरुपक्रमः षड्विधोऽप्यभिहितो भवति, तथाहि–दशविधायामप्यानुपूर्व्यामस्याध्ययनस्योत्कीर्तनगणनानुपूर्व्योः

१ गुरुचित्तायत्तानि व्याख्याङ्गानि येन सर्वाणि। तेन यथा तस्तुप्रसन्नं भवति तत्तथा कार्यम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	उपक्रम-'निक्षेप'-'अनुगम' आदि शब्दस्य विविध-अर्थाः, भेदाः इत्यादिः

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः



समवतारः, तत्रोत्कीर्तनं–संशब्दनं नामकथनमात्रं यथा द्वादशाङ्गोपाङ्गानां मध्ये औपपातिकं राजप्रश्नीयं जीवाभिगमाध्ययनं प्रज्ञापना सूर्यप्रज्ञप्तिः चन्द्रप्रज्ञप्तिः जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिरित्यादि, गणनं–परिसंख्यानं एकं द्वे त्रीणीत्यादि सा च गणनानुपूर्वी त्रिधा–पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी चेति, तत्र पूर्वानुपूर्व्या इदं षष्ठं पश्चानुपूर्व्या सप्तमं अनानुपूर्व्या अनियतं, नाम च एकनामादिदशनामपर्यन्तं, तत्र षड्नाम्न्यस्यावतारः, तत्र च षड् भावा औदयिकादयो निरूप्यन्ते, तत्रास्य क्षायोपशमिके भावेऽवतारः, सर्वश्रुतस्य क्षायोपशमिकभावरूपत्वात्, प्रमाणं चतुर्द्धा–द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात्, तत्रेदमध्ययनं क्षायोपशमिकभावात्मकत्वाद् भावप्रमाणविषयं, तदपि भावप्रमाणं त्रिधा–गुणनयप्रमाणसंख्याभेदात्, तत्राद्यं जीवाजीवगुणप्रमाणभेदात् द्विधा, तत्र जीवोपयोगरूपत्वाज्जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यध्ययनस्य जीवगुणप्रमाणे समवतारः, तदपि ज्ञानदर्शनचारित्रभेदात् त्रिधा, तत्र बोधात्मकत्वादस्य ज्ञानगुणप्रमाणे, तदपि प्रत्यक्षानुमानोपमानागमभेदाच्चतुष्प्रकारं, तत्रास्य आप्तोपदेशरूपत्वादागमे, सोऽपि लौकिकलोकोत्तरभेदाद् द्विविधः, तत्र परममुनिप्रणीतत्वेन लोकोत्तरे, सोऽपि द्विधा–आवश्यकमावश्यकव्यतिरिक्तश्च, तत्रेदमावश्यकव्यतिरिक्ते, आवश्यकव्यतिरिक्तो द्विधा–अङ्गप्रविष्टानङ्गप्रविष्टभेदात्, तत्रेदमनङ्गप्रविष्टे, सोऽपि द्विधा–कालिकोत्कालिकभेदात्, तत्रेदं कालिके, सोऽपि सूत्रार्थोभयभेदात् त्रिधा, तत्रेदं सूत्रार्थरूपत्वात् तदुभये, सोऽपि आत्मानन्तरपरम्परागमभेदात् त्रिविधः, तत्र चेदं गणभृतां सूत्रत आत्मागमस्तच्छिष्याणामनन्तरागमः तत्प्रशिष्याणां तु परम्परागमः, अर्थतोऽर्हतामात्मागमः गणधराणामनन्तरागमः

श्रीजम्बू. २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	उपक्रम-‘निक्षेप’-‘अनुगम’ आदि शब्दस्य विविध-अर्थाः, भेदाः इत्यादिः, ‘प्रमाण’स्य भेद-प्रभेदस्य कथनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ ७ ॥

ततः परम्परागम इति त्रिष्वप्यागमेष्वस्याध्ययनस्यावतार इति, ननु अङ्गप्रविष्टसूत्रं गणधरप्रणीतमिति भवतु तेषामात्मागमः, इदं तूपाङ्गत्वेनानङ्गप्रविष्टत्वात् स्थविरकृतं, यदाह–"[1]गणधरकयमंगसुअं जं कथ थेरेहिं बाहिरं तं तु। नियमं अंगपविट्ठं अणियतसुय बाहिरं तं तु ॥ १॥" ततः कथं गणधराणामात्मागमत्वेन भाव्यते ?, उच्यते, गणधरैर्द्वादशाङ्गीविरचने परमार्थतस्तदेकदेशरूपोपाङ्गानामपि विरचनमाख्यातमिति तेषामपीदमुपाङ्गं सूत्रत आत्मागम इति न कश्चिद्विरोधः, व्यवहारतस्तु स्थविरकृतत्वेनेदमुपाङ्गं स्थविराणामेव सूत्रत आत्मागमः, "सुत्तं थेराण अत्तागमोत्ति" इति श्रीउत्तराध्ययनबृहद्वृत्तिवचनादिति, अयमेव शास्त्रप्रामाण्यसूचकोऽर्थः पूर्वं गुरुपर्वक्रमरूपसम्बन्धावसरे निरूपित इति। नयप्रमाणे तु नास्य सम्प्रत्यवतारो, मूढनयत्वात् आगमस्य, उक्तं च–"[2]मूढनइयं सुयं कालियं च (तु)" इत्यादि। संख्या नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालौपम्यपरिमाणभावभेदात् अष्टप्रकारा, तत्र चास्य परिमाणसंख्यायामवतारः, तत्रापि कालिकश्रुतपरिमाणसंख्यायां समवतारः, साऽपि द्विधा–सूत्रतोऽर्थतश्च, तत्र सूत्रतः परिमितपरिमाणं (अर्थतोऽनन्तार्थत्वात् सर्वेषां सूत्राणामपरिमाणं)। सम्प्रति वक्तव्यता, सा च त्रिधा–स्वपरोभयसमयवक्तव्यताभेदात्, तत्र स्वसमयवक्तव्यतायामस्यावतारः, तथाऽर्थाधिकारो वक्तव्यताविशेष एव, स चेह जम्बूद्वीपवक्तव्यतालक्षणः समुदायार्थकथनादेव उक्तः, उक्त उपक्रमः। अथ निक्षेपः, स च त्रिधा–ओघनामसूत्रालापकनिष्पन्नभेदात्, तत्रौघो यत् सामान्यमध्य-

१ गणधरकृतमङ्गश्रुतं यत् कृतं स्थविरैर्बाह्यं तत्तु। नियतमङ्गप्रविष्टमनियतश्रुतं बाह्यं तत् ॥ २ अविभागस्थनयं श्रुतं कालिकं ॥ १ ॥

प्रस्तावना.

॥ ७ ॥

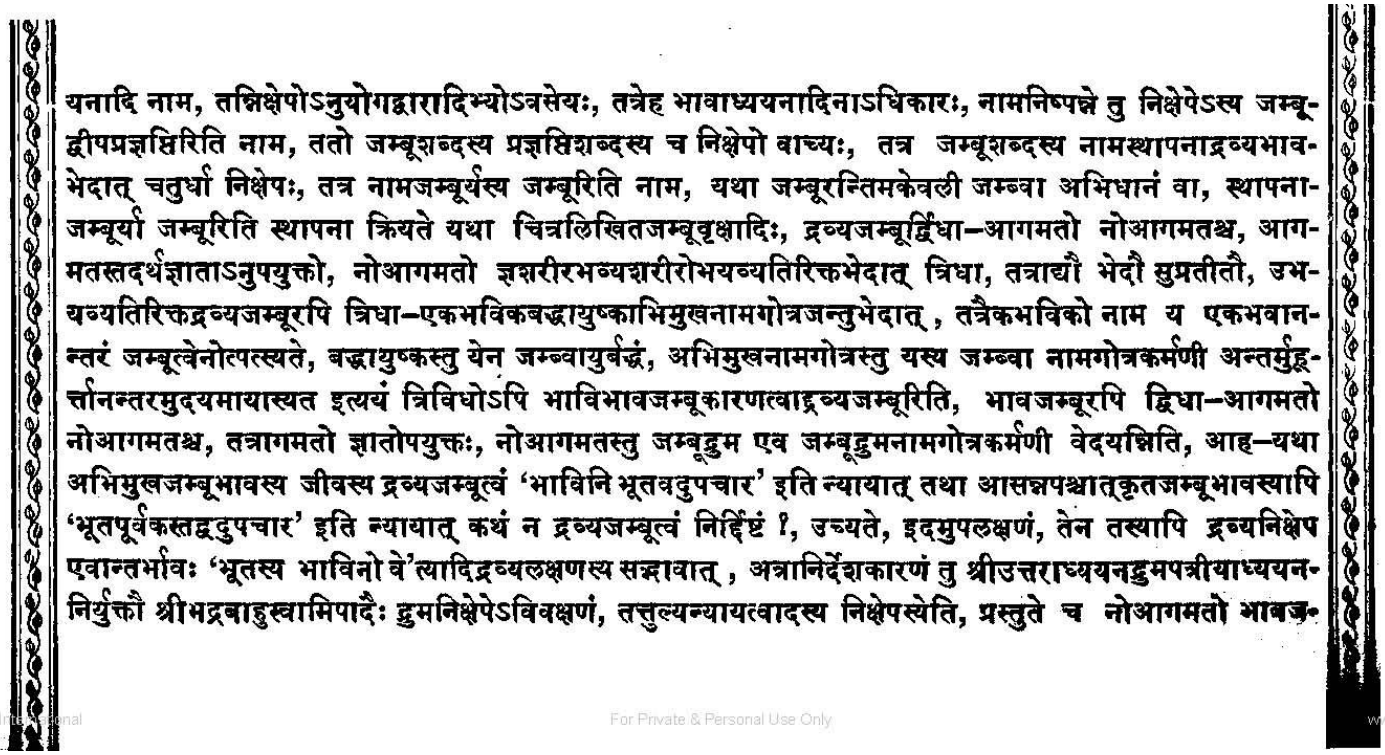
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	उपक्रम-'निक्षेप'-'अनुगम' आदि शब्दस्य विविध-अर्थाः, भेदाः इत्यादिः, 'प्रमाण'स्य भेद-प्रभेदस्य कथनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]



यनादि नाम, तन्निक्षेपोऽनुयोगद्वारादिभ्योऽवसेयः, तत्रेह भावाध्ययनादिनाऽधिकारः, नामनिष्पन्ने तु निक्षेपेऽस्य जम्बू-द्वीपप्रज्ञप्तिरिति नाम, ततो जम्बूशब्दस्य प्रज्ञप्तिशब्दस्य च निक्षेपो वाच्यः, तत्र जम्बूशब्दस्य नामस्थापनाद्रव्यभाव-भेदात् चतुर्धा निक्षेपः, तत्र नामजम्बूर्यस्य जम्बूरिति नाम, यथा जम्बूरन्तिमकेवली जम्ब्वा अभिधानं वा, स्थापना-जम्बूर्या जम्बूरिति स्थापना क्रियते यथा चित्रलिखितजम्बूवृक्षादिः, द्रव्यजम्बूर्द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, आग-मतस्तदर्थज्ञाताऽनुपयुक्तो, नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरोभयव्यतिरिक्तभेदात् त्रिधा, तत्राद्यौ भेदौ सुप्रतीतौ, उभ-यव्यतिरिक्तद्रव्यजम्बूरपि त्रिधा–एकभविकबद्धायुष्काभिमुखनामगोत्रजन्तुभेदात्, तत्रैकभविको नाम य एकभवान-न्तरं जम्बूत्वेनोत्पत्स्यते, बद्धायुष्कस्तु येन जम्ब्वायुर्बद्धं, अभिमुखनामगोत्रस्तु यस्य जम्ब्वा नामगोत्रकर्मणी अन्तर्मुहू-र्त्तानन्तरमुदयमायास्यत इत्ययं त्रिविधोऽपि भाविभावजम्बूकारणत्वाद्द्रव्यजम्बूरिति, भावजम्बूरपि द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो ज्ञातोपयुक्तः, नोआगमतस्तु जम्बूद्रुम एव जम्बूद्रुमनामगोत्रकर्मणी वेदयन्निति, आह–यथा अभिमुखजम्बूभावस्य जीवस्य द्रव्यजम्बूत्वं ‘भाविनि भूतवदुपचार’ इति न्यायात् तथा आसन्नपश्चात्कृतजम्बूभावस्यापि ‘भूतपूर्वकस्तद्वदुपचार’ इति न्यायात् कथं न द्रव्यजम्बूत्वं निर्दिष्टं ?, उच्यते, इदमुपलक्षणं, तेन तस्यापि द्रव्यनिक्षेप एवान्तर्भावः ‘भूतस्य भाविनो वे’त्यादिद्रव्यलक्षणस्य सद्भावात्, अत्रानिर्देशकारणं तु श्रीउत्तराध्ययनद्रुमपत्रीयाध्ययन-निर्युक्तौ श्रीभद्रबाहुस्वामिपादैः द्रुमनिक्षेपेऽविवक्षणं, तत्तुल्यन्यायत्वादस्य निक्षेपस्येति, प्रस्तुते च नोआगमतो भावज-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

‘जम्बू, द्वीप, प्रज्ञप्ति’ इति त्रयाणाम-शब्दानाम् निक्षेप-आदेः कथनं

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

म्ब्वा अधिकारः। द्वीपोऽपि पूर्ववच्चतुर्द्धा, तत्र नामद्वीपो यस्य द्वीप इति नाम, स्थापनाद्वीपो या द्वीपस्य स्थापना, यथा चित्रलिखितजम्बूद्वीपादिः, द्रव्यद्वीपो द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, तत्र आगमतस्तदर्थज्ञाताऽनुपयुक्तः, नोआगमतस्तु ज्ञशरीरभव्यशरीरद्रव्यद्वीपौ सुबोधौ, तद्व्यतिरिक्तद्रव्यद्वीपो द्विधा–सन्दीनोऽसन्दीनश्च, तत्र यो हि संदीयते-जलप्लावनात् पक्षमासादावुदकेन प्लाव्यते स सन्दीनो विपरीतस्त्वसन्दीनः सिंहलद्वीपादिः, भावद्वीपोऽपि द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतस्तदर्थज्ञानोपयुक्तः, नोआगमतस्तु साधुः, कथमित्याह–यथा हि नदीसमुद्रबहुमध्यप्रदेशे सांयात्रिका द्रव्यद्वीपमवाप्याऽऽश्वसन्ति तथा पारातीतसंसारपारावारान्तरचारखेदमेदस्विनो देहिनः परमपरोपकारैकप्रवृत्तं साधुं समवाप्याऽऽश्वसन्ति अतो भावतः-परमार्थतो द्वीपो भावद्वीप उच्यते, सोऽपि सन्दीनासन्दीनभेदाद् द्विधा, तत्र परीषहोपसर्गाद्यैः क्षोभ्यः सन्दीनः तदितरस्त्वसन्दीनः, अथवा भावद्वीपः सम्यक्त्वं, तच्च प्रतिपातित्वादौपशमिकं क्षायोपशमिकं च सन्दीनो भावद्वीपः, क्षायिकं चासन्दीन इति। ननु क्वचित्तत्पर्यायापन्नं वस्तु भावनिक्षेपे निक्षिप्यते यथाऽत्रैव जम्बूपर्यायमनुभवन् भावजम्बूत्वेन निक्षिप्तः, क्वचित्तदन्यपर्यायापन्नं वस्तु भावनिक्षेपे निक्षिप्यते, यथाऽत्रैव भावद्वीपपर्यायमनुभवन् साधुः सम्यक्त्वं चेति परस्परमुदाहरणवैषम्यं कथं युक्तिमदिति ?, अत्रोच्यते, वस्तुगत्या तत्पर्यायाधारतया भवनं भाव इतिकृत्वा तत्पर्यायधार्यैव वस्तु भावनिक्षेपे निक्षिप्यते, यत्तु तदन्यद्वस्तु भावनिक्षेपे निक्षिप्यते तत्तद्गत[भावगत] गुणारोपादौपचारिकमिति न दोषः, विवक्षाया विचित्रत्वादिति, प्रस्तुते च द्विधा गता लवणोदस्य आपो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	‘जम्बू, द्वीप, प्रज्ञप्ति’ इति त्रयाणाम-शब्दानाम् निक्षेप-आदेः कथनं

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

यनादि नाम, तन्निक्षेपोऽनुयोगद्वारादिभ्योऽवसेयः, तत्रेह भावाध्ययनादिनाऽधिकारः, नामनिष्पन्ने तु निक्षेपेऽस्य जम्बू-द्वीपप्रज्ञप्तिरिति नाम, ततो जम्बूशब्दस्य प्रज्ञप्तिशब्दस्य च निक्षेपो वाच्यः, तत्र जम्बूशब्दस्य नामस्थापनाद्रव्यभाव-भेदात् चतुर्धा निक्षेपः, तत्र नामजम्बूर्यस्य जम्बूरिति नाम, यथा जम्बूरन्तिमकेवली जम्ब्वा अभिधानं वा, स्थापना-जम्बूर्या जम्बूरिति स्थापना क्रियते यथा चित्रलिखितजम्बूवृक्षादिः, द्रव्यजम्बूर्द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, आग-मतस्तदर्थज्ञाताऽनुपयुक्तो, नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरोभयव्यतिरिक्तभेदात् त्रिधा, तत्राद्यौ भेदौ सुप्रतीतौ, उभ-यव्यतिरिक्तद्रव्यजम्बूरपि त्रिधा–एकभविकबद्धायुष्काभिमुखनामगोत्रजन्तुभेदात् , तत्रैकभविको नाम य एकभवान-न्तरं जम्बूत्वेनोत्पत्स्यते, बद्धायुष्कस्तु येन जम्ब्वायुर्बद्धं, अभिमुखनामगोत्रस्तु यस्य जम्ब्वा नामगोत्रकर्मणी अन्तर्मुहू-र्त्तानन्तरमुदयमायास्यत इत्ययं त्रिविधोऽपि भाविभावजम्बूकारणत्वाद्द्रव्यजम्बूरिति, भावजम्बूरपि द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो ज्ञातोपयुक्तः, नोआगमतस्तु जम्बूद्रुम एव जम्बूद्रुमनामगोत्रकर्मणी वेदयन्निति, आह–यथा अभिमुखजम्बूभावस्य जीवस्य द्रव्यजम्बूत्वं ‘भाविनि भूतवदुपचार’ इति न्यायात् तथा आसन्नपश्चात्कृतजम्बूभावस्यापि ‘भूतपूर्वकस्तद्वदुपचार’ इति न्यायात् कथं न द्रव्यजम्बूत्वं निर्दिष्टं ?, उच्यते, इदमुपलक्षणं, तेन तस्यापि द्रव्यनिक्षेप एवान्तर्भावः ‘भूतस्य भाविनो वे’त्यादिद्रव्यलक्षणस्य सद्भावात् , अत्रानिर्देशकारणं तु श्रीउत्तराध्ययनद्रुमपत्रीयाध्ययन-निर्युक्तौ श्रीभद्रबाहुस्वामिपादैः द्रुमनिक्षेपेऽविवक्षणं, तत्तुल्यन्यायत्वादस्य निक्षेपस्येति, प्रस्तुते च नोआगमतो भावज-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	‘जम्बू, द्वीप, प्रज्ञप्ति’ इति त्रयाणाम-शब्दानाम् निक्षेप-आदेः कथनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [१]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ १ ॥

धा–प्रशस्ताप्रशस्तभावप्रज्ञप्तिभेदात्, तत्राप्रशस्तभावप्रज्ञप्तिर्यथा ब्राह्मण्याः स्वसुताः प्रति जामातृभावनिवेदनं, प्रशस्त-भावप्रज्ञप्तिरियमेव अर्थतोऽर्हतां गणधरान् सूत्रतो गणधराणां स्वशिष्यान् प्रति, उक्तावोघनामनिष्पन्नौ निक्षेपौ, सम्प्रति सूत्रालापकनिष्पन्नः, स चावसरप्राप्तोऽपि न निक्षिप्यते, तस्य सूत्रपदाविनाभावित्वात्, सूत्रं च सूत्रानुगमे समयप्राप्तं भवति, ततो लाघवार्थं सूत्रानुगमसमय एव निक्षेप्स्यते, निक्षेपसाम्यमात्रत्वाच्चोपदर्शनं, अथानुगमो व्याख्यानरूपः, स च द्विधा–निर्युक्त्यनुगमः सूत्रानुगमश्च, तत्र आद्यस्त्रिधा–निक्षेपनिर्युक्तिउपोद्घातनिर्युक्तिसूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमभेदात्, तत्र निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमो जम्ब्वादिशब्दानां निक्षेपप्रतिपादनादनुगत एव, उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमस्तु 'उद्देसे निद्देसे अ' इत्यादिगाथाद्वयादवसेयः, सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमस्तु संहितादौ षड्विधे व्याख्यालक्षणे पदार्थपदविग्रहचालनाप्रत्यव-स्थानलक्षणव्याख्यानभेदचतुष्टयस्वरूपः, स च सूत्रानुगमे संहितापदलक्षणव्याख्यानभेदद्वयलक्षणे सति भवतीत्य-तः सूत्रानुगम एवोच्यते, तत्र चाल्पग्रन्थं महार्थं द्वात्रिंशद्दोषविरहितमष्टगुणोपेतं स्खलितादिदोषवर्जितं सूत्रमुच्चार-णीयं, तच्चेदम्,–

प्रस्तावना.

ॐ नमः ॥ णमो अरिहंताणं । ते णं कालेणं ते णं समए णं मिहिला णामं णयरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा वण्णओ, तीसे णं मिहिलाए णयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं माणिभद्दे णामं चेइए होत्था, वण्णओ । जियसत्तु राया, धारिणी देवी, वण्णओ । ते णं काले णं ते णं समए णं सामी समोसढो, परिसा णिग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया (सू० १)

॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जम्बू, द्वीप, प्रज्ञप्ति' इति त्रयाणाम-शब्दानाम् निक्षेप-आदेः कथनं

अत्र प्रथम-वक्षस्कारः आरभ्यते

'णमो अरिहंताण'मित्यादि, अस्य च व्याख्या संहितादिक्रमेण, तत्रास्खलितसूत्रपाठः संहिता, सूत्रे चास्खलितादिगुणोपेते उच्चारिते केचिदर्था अवगताः प्राज्ञानां भवन्त्यतः संहिता व्याख्याभेदो भवति, अनधिगतार्थाधिगमाय च पदादयो व्याख्याभेदाः प्रवर्त्तन्त इति, तत्र पदानि नमः अर्हद्भ्यः इति, एवं पदकरणे सूत्रालापकनिष्पन्ननिक्षेपाधसरः, तत्र नमस्कारस्य नामादिभिश्चतुर्द्धा निक्षेपः, तत्र नामनमस्कारो नम इत्यभिधानं, स्थापनानमस्कारो नमस्कारकरणप्रवृत्तस्य संकोचितकरचरणस्य काष्ठपुस्तचित्रादिगतः साध्वादेराकारः, द्रव्यनमस्कार आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतस्तदर्थज्ञाताऽनुपयुक्तः, नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरनमस्कारौ प्रतीतौ, ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यनमस्कारो निह्नवादीनां, तेषां मिथ्यादृष्टित्वेनाप्रधानत्वात्, सम्यग्दृष्टेरप्यनुपयुक्ततया नमस्कुर्वतो द्रव्यनमस्कारः, राजादेर्द्रव्यार्थं वा नमस्करणं तस्यैव वा भयादिना द्रमकादेर्नमस्करणं बलवन्नरपुरुषाक्रान्तस्य धनुरादेर्नम्रीभावो वा द्रव्यनमस्कारः, भावनमस्कारोऽपि आगमतो नोआगमतश्च, तत्र आगमतस्तदर्थज्ञातोपयुक्तो, यदा तु मनसोपयुक्तो वचनेन नमोऽर्हद्भ्य इति ब्रुवाणः कायेन तु सङ्कोचितकरचरणो नमस्कारं करोति तदा नोआगमतो भावनमस्कारः, अनेन चात्राधिकारः, अथ अर्हन्–जिनः सोऽपि नामादिभेदैश्चतुर्द्धा, ते च नामादयो भेदाः–"[1]नामजिणा जिणनामा ठवणजिणा पुण जिणिंदपडिमाओ । दव्वजिणा जिणजीवा भावजिणा समवसरणत्था ॥ १ ॥" अनया गाथया अवगन्तव्याः, अत्र प्रकारान्तरे-

१ नामजिना जिननामानि स्थापनाजिना जिनेन्द्रप्रतिमाः पुनः । द्रव्यजिना जिनजीवा भावजिनाः समवसरणस्थाः ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'नमो' एवं 'अरहंत' शब्दस्य नामादि निक्षेपा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [१]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ १० ॥

णापि निक्षेपः सम्भवति परं स विस्तरभयान्नोपदर्श्यते, एवमन्येष्वपि सूत्रालापकेषु स्वधिया यथासम्भवं निक्षेपः कार्य इति। उक्तः सूत्रालापकनिष्पन्ननिक्षेपः, पदार्थः पुनरेवं–नम इति नैपातिकं पदं द्रव्यभावसंकोचार्थं, आह च–'नेवाइयं पयं दवभावसंकोयण पयत्थो" नमः–करचरणमस्तकसुप्रणिधानरूपो नमस्कारो भवत्वित्यर्थः, केभ्य इत्याह–'अर्हद्भ्यः' अमरवरविनिर्मिताशोकाद्यष्टमहाप्रातिहार्यरूपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तस्तेभ्यः, इह च चतुर्थ्यर्थे षष्ठी प्राकृतशैलीवशात्, अत्र द्रव्यसङ्कोचनं करशिरःपादादिसङ्कोचः, भावसङ्कोचनं तु विशुद्धस्य मनसोऽर्हदादिगुणेषु निवेशः, तत्र च भङ्गचतुष्कं–द्रव्यसङ्कोचो न भावसङ्कोचो यथा पालकादीनाम् १ भावसङ्कोचो न द्रव्यसङ्कोचो यथाऽनुत्तरसुरादीनां २ द्रव्यसङ्कोचो भावसङ्कोचश्च यथा शाम्बस्य ३ न द्रव्यसङ्कोचो न भावसङ्कोच इति भङ्गः शून्यः ४, इह च तृतीयभङ्गस्योपयोगः, भाव-सङ्कोचप्रधानद्रव्यसङ्कोचरूपत्वात् प्रस्तुतनमस्कारस्य, अनेन च मङ्गलान्तरस्य फलव्यभिचारित्वेनानैकान्तिकत्वात्तदप-हाय तदन्यस्वरूपतयाऽवश्यं भावेनाभिलषितार्थसाधनसमर्थत्वादत्यन्तोपादेयं परमेष्ठिनमस्कारलक्षणं भावमङ्गलमुपात्तं, सत्स्वपि तपःप्रभृतिष्वन्यभावमङ्गलेषु यदस्योपादानं तत् शास्त्रादावस्यैव व्यवहारप्राप्तत्वमिति ज्ञापनार्थं, अत्र च बहु-वचनं व्याख्यार्थं, तेन सकलनिक्षेपगतजिनपरिग्रहः। अथ पदविग्रहः, स च समस्तपदे सति सम्भवतीत्यत्र नोक्तः। अथ चालनाप्रत्यवस्थाने–नन्वर्हतां परममङ्गलत्वेन नमस्काराभिधानतोऽप्यादौ तदुपादानमुचितमिति, सत्यं, स्वयं मङ्ग-

१ नैपातिकं पदं। द्रव्यभावसंकोचः पदार्थः।

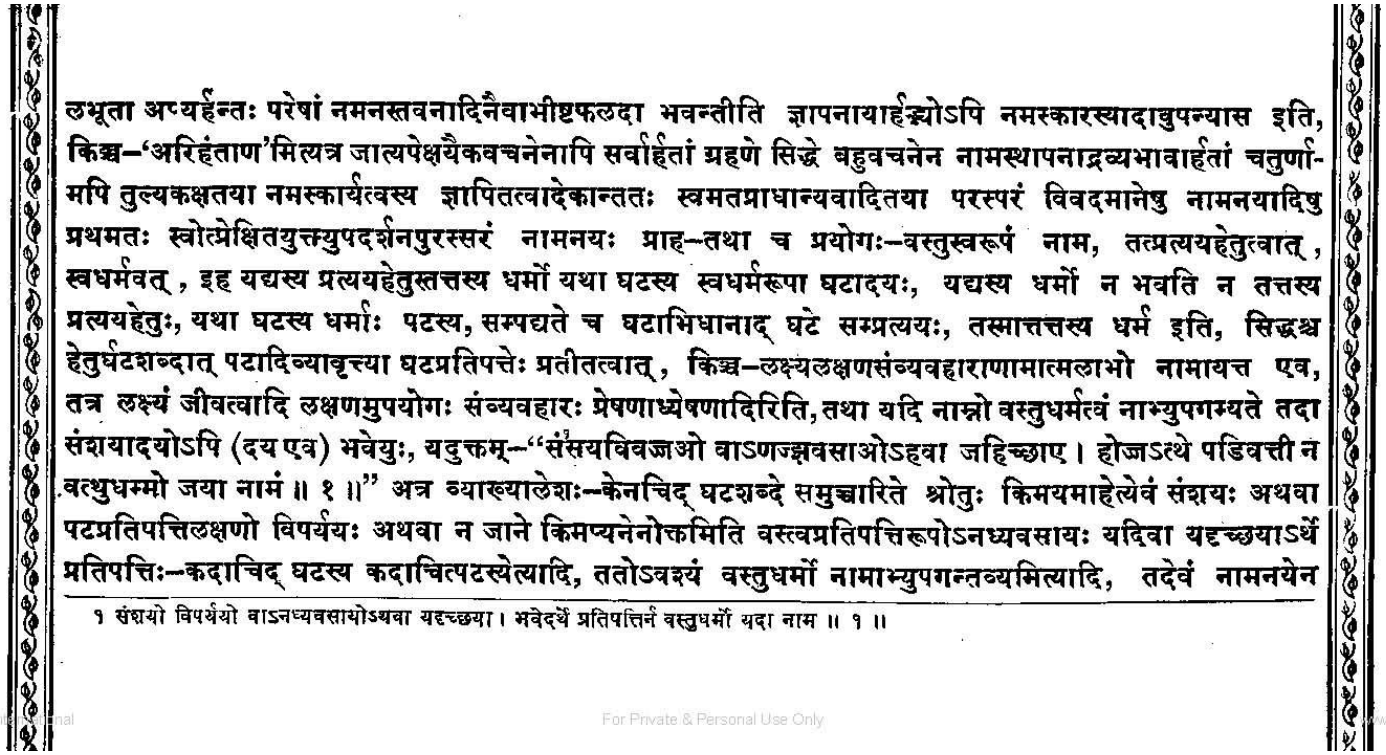
नमस्कार-निक्षेपाः

॥ १० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'नमो' एवं 'अरहंत' शब्दस्य नामादि निक्षेपाः, नयाः

प्रत सूत्रांक [१] दीप अनुक्रम [१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः



लभूता अप्यर्हन्तः परेषां नमनस्तवनादिनैवाभीष्टफलदा भवन्तीति ज्ञापनायार्हच्छोऽपि नमस्कारस्यादावुपन्यास इति, किञ्च–‘अरिहंताण’मित्यत्र जात्यपेक्षयैकवचनेनापि सर्वार्हतां ग्रहणे सिद्धे बहुवचनेन नामस्थापनाद्रव्यभावार्हतां चतुर्णामपि तुल्यकक्षतया नमस्कार्यत्वस्य ज्ञापितत्वादेकान्ततः स्वमतप्राधान्यवादितया परस्परं विवदमानेषु नामनयादिषु प्रथमतः स्वोत्प्रेक्षितयुक्त्युपदर्शनपुरस्सरं नामनयः प्राह–तथा च प्रयोगः–वस्तुस्वरूपं नाम, तत्प्रत्ययहेतुत्वात्, स्वधर्मवत्, इह यद्यस्य प्रत्ययहेतुस्तत्तस्य धर्मो यथा घटस्य स्वधर्मरूपा घटादयः, यद्यस्य धर्मो न भवति न तत्तस्य प्रत्ययहेतुः, यथा घटस्य धर्माः पटस्य, सम्पद्यते च घटाभिधानाद् घटे सम्प्रत्ययः, तस्मात्तत्तस्य धर्म इति, सिद्धश्च हेतुर्घटशब्दात् पटादिव्यावृत्त्या घटप्रतिपत्तेः प्रतीतत्वात्, किञ्च–लक्ष्यलक्षणसंव्यवहाराणामात्मलाभो नामायत्त एव, तत्र लक्ष्यं जीवत्वादि लक्षणमुपयोगः संव्यवहारः प्रेषणाध्येषणादिरिति, तथा यदि नाम्नो वस्तुधर्मत्वं नाभ्युपगम्यते तदा संशयादयोऽपि (दय एव) भवेयुः, यदुक्तम्–“संसयविवज्जओ वाऽणज्झवसाओऽहवा जहिच्छाए। होज्जऽत्थे पडिवत्ती न वत्थुधम्मो जया नामं ॥ १ ॥”[1] अत्र व्याख्यालेशः–केनचिद् घटशब्दे समुच्चारिते श्रोतुः किमयमाहेत्येवं संशयः अथवा पटप्रतिपत्तिलक्षणो विपर्ययः अथवा न जाने किमप्यनेनोक्तमिति वस्त्वप्रतिपत्तिरूपोऽनध्यवसायः यदिवा यदृच्छयाऽर्थे प्रतिपत्तिः–कदाचिद् घटस्य कदाचित्पटस्येत्यादि, ततोऽवश्यं वस्तुधर्मो नामाभ्युपगन्तव्यमित्यादि, तदेवं नामनयेन

१ संशयो विपर्ययो वाऽनध्यवसायोऽथवा यदृच्छया। भवेदर्थे प्रतिपत्तिर्न वस्तुधर्मो यदा नाम ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	‘नमो’ एवं ‘अरहंत’ शब्दस्य नामादि निक्षेपाः, नयाः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [१]

॥ ११ ॥

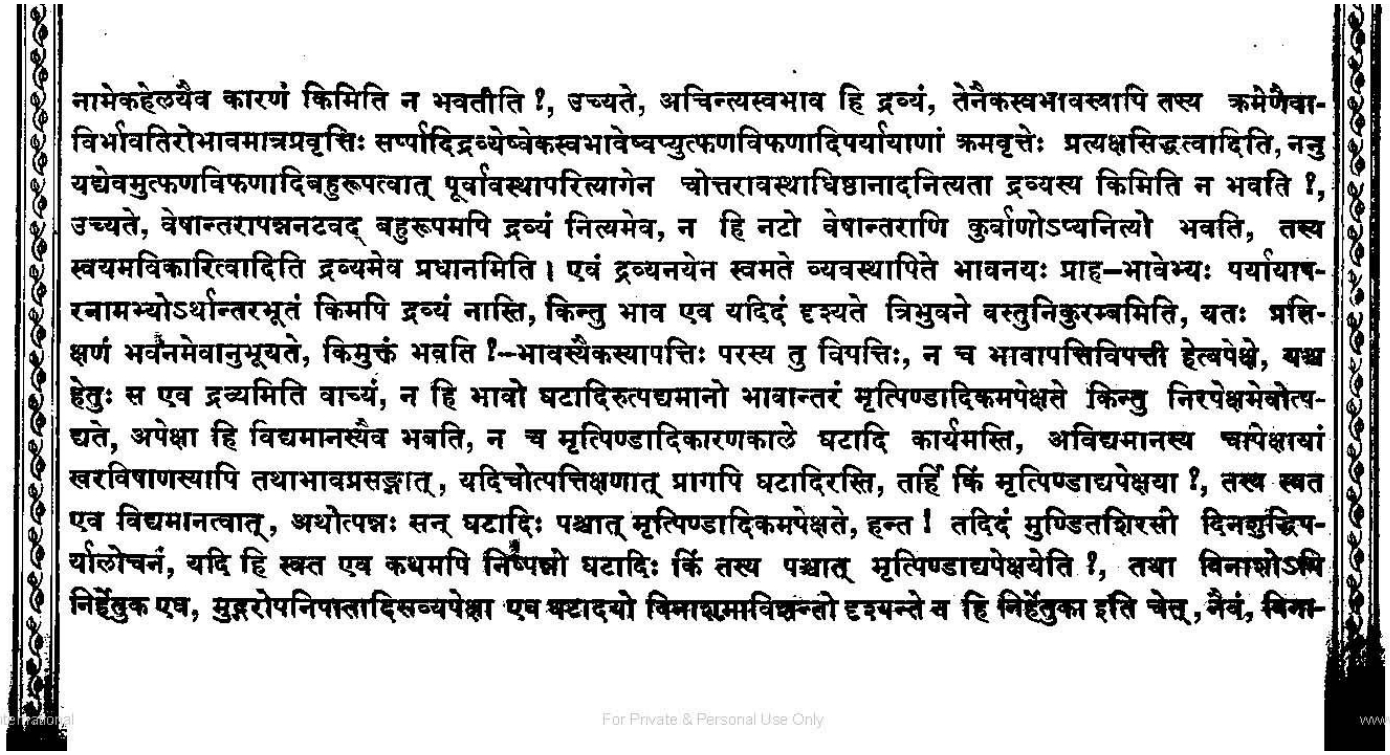
स्वमते व्यवस्थापिते स्थापनानयः प्राह–नाम्नो वस्तुसंज्ञामात्ररूपस्य वाच्यवाचकभावसम्बन्धमात्रेणैव स्थितत्वाद्वस्तुनोऽति-दूरत्वं स्थापनायास्तु वस्तुसंस्थानरूपायास्तादात्म्यसम्बन्धेनावस्थितत्वाद्भावप्रत्यासन्नत्वं, किञ्च-देशान्तरकालान्तरविप्रकृ-ष्टमपि वस्तु स्थाप्यप्रतिमादौ सन्निदधाति अन्यथा मन्त्रागमे सन्निधापन्यादिमुद्राप्ररूपणानां नैष्फल्यप्रसङ्गः, यथा च स्थापनेन्द्रः शचीकुलिशादिसाचिव्येन निर्विलम्बं तदेकतानानां भावधियं जनयति न तथा नामेन्द्रः, तस्यानाकारत्वात्, तस्मात् स्थापनैव प्रधानाऽस्तु, स्थापनानयेनैवमुक्ते द्रव्यनयः स्वाशयमाविर्भावयति–को हि नाम स्थापनानयस्याकार-ग्रहो ? यस्मादनादिमदुत्प्रेक्षितपर्यायश्रृङ्खलाधारस्य मृदादिद्रव्यस्य पूर्वपर्यायमात्रतिरोभावेऽग्रेतनपर्यायमात्राविर्भावल-क्षणपरिणामव्यतिरेकेण नान्यत् किमप्याकारदर्शनं, किन्तूत्पादव्ययरहितं उत्फणविफणकुण्डलिताकारसमन्वितसर्प्प-द्रव्यवन्निर्विकारं द्रव्यमेवास्ति, न ह्यत्र किमप्यपूर्वमुत्पद्यमानं वा विनश्यति (वा) येन विकारः स्यात्, ननु कथमुत्पादा-दिरहितं द्रव्यं ?, यावता सर्प्पादिके द्रव्ये उत्फणविफणादयः पर्याया उत्पद्यमाना निवर्त्तमानाश्च साक्षादेव दृश्यन्ते इति चेत्, न, आविर्भावतिरोभावमात्रपरिणामस्य कारणं द्रव्यं, यथा सर्प्प उत्फणविफणावस्थयोरिति, न ह्यत्रापूर्वं किञ्चिदुत्पद्यते, किं तर्हि ?, छन्नरूपतया विद्यमानमेवाविर्भवति, नाप्याविर्भूतं सद् विनश्यति, किन्तु छन्नरूपतया तिरो-भावमात्रमेवासादयति, एवञ्च सत्याविर्भावतिरोभावमात्र एव कार्योपचारात्कारण(त्व)मस्यौपचारिकमेव, तस्मादुत्पादा-दिरहितं द्रव्यमुच्यत इति, ननु यद्येकस्वभावं निर्विकारं द्रव्यं तर्ह्यनन्तकालभाविनामनन्तानामप्याविर्भावतिरोभावा-

॥ ११ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

‘नमो’ एवं ‘अरहंत’ शब्दस्य नामादि निक्षेपा:, नया:

प्रत सूत्रांक [१] दीप अनुक्रम [१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः



नामेकहेलयैव कारणं किमिति न भवतीति ?, उच्यते, अचिन्त्यस्वभाव हि द्रव्यं, तेनैकस्वभावस्यापि तस्य क्रमेणैवाविर्भावतिरोभावमात्रप्रवृत्तिः सर्प्पादिद्रव्येष्वेकस्वभावेष्वप्युत्फणविफणादिपर्यायाणां क्रमवृत्तेः प्रत्यक्षसिद्धत्वादिति, ननु यद्येवमुत्फणविफणादिबहुरूपत्वात् पूर्वावस्थापरित्यागेन चोत्तरावस्थाधिष्ठानादनित्यता द्रव्यस्य किमिति न भवति ?, उच्यते, वेषान्तरापन्ननटवद् बहुरूपमपि द्रव्यं नित्यमेव, न हि नटो वेषान्तराणि कुर्वाणोऽप्यनित्यो भवति, तस्य स्वयमविकारित्वादिति द्रव्यमेव प्रधानमिति। एवं द्रव्यनयेन स्वमते व्यवस्थापिते भावनयः प्राह–भावेभ्यः पर्यायाख्यनामभ्योऽर्थान्तरभूतं किमपि द्रव्यं नास्ति, किन्तु भाव एव यदिदं दृश्यते त्रिभुवने वस्तुनिकुरम्बमिति, यतः प्रतिक्षणं भवनमेवानुभूयते, किमुक्तं भवति ?–भावस्यैकस्यापत्तिः परस्य तु विपत्तिः, न च भावापत्तिविपत्ती हेत्वपेक्षे, यश्च हेतुः स एव द्रव्यमिति वाच्यं, न हि भावो घटादिरुत्पद्यमानो भावान्तरं मृत्पिण्डादिकमपेक्षते किन्तु निरपेक्षमेवोत्पद्यते, अपेक्षा हि विद्यमानस्यैव भवति, न च मृत्पिण्डादिकारणकाले घटादि कार्यमस्ति, अविद्यमानस्य चापेक्षायां खरविषाणस्यापि तथाभावप्रसङ्गात्, यदिचोत्पत्तिक्षणात् प्रागपि घटादिरस्ति, तर्हि किं मृत्पिण्डाद्यपेक्षया ?, तस्य स्वत एव विद्यमानत्वात्, अथोत्पन्नः सन् घटादिः पश्चात् मृत्पिण्डादिकमपेक्षते, हन्त ! तदिदं मुण्डितशिरसो दिनशुद्धिपर्यालोचनं, यदि हि स्वत एव कथमपि निष्पन्नो घटादिः किं तस्य पश्चात् मृत्पिण्डाद्यपेक्षयेति ?, तथा विनाशोऽपि निर्हेतुक एव, मुद्गरोपनिपातादिसव्यपेक्षा एव घटादयो विनाशमाविश्चन्तो दृश्यन्ते न हि निर्हेतुका इति चेत्, नैवं, विना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	‘नमो’ एवं ‘अरहंत’ शब्दस्य नामादि निक्षेपाः, नयाः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ १२ ॥

शहेतोरयोगात्, तथाहि—मुद्गरादिना विनाशकाले किं घटादिरेव क्रियते आहोश्वित्कपालादय उत तुच्छरूपोऽभाव इति त्रयी गतिः ?, तत्र न तावद् घटादिस्तस्य स्वहेतुभूतकुलालादिसामग्रीत एवोत्पत्तेः, नापि कपालादयस्तत्करणे घटादेस्तदवस्थत्वप्रसङ्गात्, न ह्यन्यकरणे अन्यस्य निवृत्तिर्युक्तिमती, एकनिवृत्तौ शेषभुवनत्रयस्यापि निवृत्तिप्रसङ्गात्, नापि तुच्छरूपोऽभावः, खरशृङ्गस्येव नीरूपस्य तस्य कर्तुमशक्यत्वात्, करणे वा घटादेस्तदवस्थताप्रसङ्गाद्, अन्यकरणेऽन्यनिवृत्त्यसम्भवादिति विनाशे मुद्गरादिकं सहकारिकारणमेव न तु तज्जनकं, घटादिस्तु क्षणिकत्वेन निर्हेतुकः स्वयमेव निवर्त्तते, तस्माज्जन्मविनाशयोर्न किञ्चित्केनचिदपेक्ष्यते, अपेक्षणीयाभावाच्च न किञ्चित्कस्यचित्कारणं, तथा च सति न किञ्चिद्द्रव्यं, किन्तु पूर्वापरीभूताः परापरक्षणरूपाः पर्याया एव सन्तीति । अत्र नामादिनयाधिकारे बहु वक्तव्यं तत्तु विशेषावश्यकादवसेयमिति, एवमसम्पूर्णार्थग्राहित्वाद् गजगात्रभिन्नदेशसंस्पर्शने बहुविधविवादमुखरजात्यन्धवृन्दवद्विवदमाने नयवृन्दे मिथ्यादृष्टित्वमुद्भाव्य तत्तिरस्करणाय सर्वनयसमूहात्मकस्याद्वादसुधारसास्वादरसिकतामनुभवतामयमुद्गारः, तथाहि—लोके यत्किमपि घटपटादिकं वस्त्वस्ति तत् सर्वमन्योऽन्यसापेक्षनामादिचतुष्टयात्मकं, न पुनः केवलनाममयं वा केवलाकाररूपं वा केवलद्रव्यताश्लिष्टं वा केवलभावात्मकं वा, यतः एकस्मिन्नपि शचीपत्यादौ इन्द्र इति नाम तदाकारस्तु स्थापना उत्तरावस्थाकारणत्वं तु द्रव्यत्वं दिव्यरूपसम्पत्तिकुलिशधारणपरमैश्वर्यादिसम्पन्नत्वं तु भाव इति नामादिचतुष्टयमपि प्रतीयते, एतदर्थसंवादका उत्तराध्ययनबृहद्वृत्त्युक्ताः श्लोका अपि

निक्षेप-चतुष्कं

॥ १२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	‘नमो’ एवं ‘अरहंत’ शब्दस्य नामादि निक्षेपा:, नया:

यथा–"संविन्निष्ठैव सर्वापि, विषयाणां व्यवस्थितिः । संवेदनञ्च नामादिविकलं नानुभूयते ॥ १ ॥ तथाहि–घटोऽयमिति नामैतत्, पृथुबुध्नादि चाकृतिः। मृद्द्रव्यं भवनं भावो, घटे दृष्टं चतुष्टयम् ॥२॥ तत्रापि नाम नाकारमाकारो नाम नो विना। तौ विना नाम नान्योऽन्यमुत्तरावपि संस्थितौ ॥ ३ ॥ मयूराण्डरसे यद्वद्वर्णा नीलादयः स्थिताः । सर्वेऽप्यन्योऽन्यमुन्मिश्रास्तद्वन्नामादयो घटे ॥ ४ ॥" इति, तदेवं सर्वं वस्तु नामादिचतुष्टयात्मकमेव, तेनात्र नामस्थापनाद्रव्यभावार्हन्तश्चत्वारोऽपि नमस्कार्या एवेत्यागतमिति । अत्र कश्चिदग्राह्यनामधेयो भक्षितलशुनपिशुनभूतमुद्गिरति–भवतु नाम वाच्यवाचकभावसम्बन्धेन भावसन्निहितत्वान्नाम्नो नमस्कार्यत्वं, स्थापनायास्तु भावविप्रकृष्टत्वेन तत्कथमिति चेत्, उच्यते, तस्या अपि जिनबुद्ध्युत्पादकत्वादिभिर्हेतुभिः सुतरां भावासन्नत्वान्नमस्कार्यत्वमुपपन्नमिति मा मुग्ध मुधाऽनन्ततीर्थकृदनुज्ञातस्थापनाऽपलापपापपङ्किलतां कलय, कलयसि न किं स्थापनाद्रोणाचार्यसम्यग्विनयोपनतां जगदतिशायिनीमर्जुनसन्तर्जनीं धनुर्वेदसिद्धिं, तथा च प्रतिक्रमणादौ वन्दनकप्रदाने रजोहरणादिकं गुरुचरणतया व्यपदिशसि स्थापनानिक्षेपं चापलपसि अहो वदद्व्याघातस्तव, अपिच–चित्रार्पितनिजजनकवदनमुपानद्भ्यां प्रहरते नराय कुप्यसि चित्रन्यस्तकुम्भस्तनीं निध्यायन् दृप्यसि मिथ्यावादं कुर्वंस्तथापि न तृप्यसि, किमपराद्धं तव पुरुषधुरन्धरस्थापनया ?, तथा वदामि सुहृद्भावेन–भावकारणतया द्रव्यमपि स्वीकुरु नमस्कार्यतया, अन्यथा पद्मनाभादीन् द्रव्यजिनान् नमस्कुर्वतः द्रव्यनृपं च भावी राजेतिबुद्ध्या उपचरतश्च तवार्द्धनारीश्वरवेषविडम्बना समापतिता, तेन त्यज टिट्टिभमानं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'नमो' एवं 'अरहंत' शब्दस्य नामादि निक्षेपाः, नयाः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [१]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ १३ ॥

भज श्रीजिनाज्ञा सबहुमानं, ततस्तवापि युक्तियुक्तं सर्वेषामर्हन्निक्षेपाणां नमस्कार्यत्वमित्यलं प्रसङ्गेन, अथ प्रकृतं प्रस्तु-मः, उक्तः सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमः, तदेवं मङ्गलसूत्रमधिकृत्य सूत्रानुगमसूत्रालापकनिक्षेपसूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम-नया उपदर्शिताः, एवं प्रतिसूत्रं स्वयमनुसरणीयं। अथ यस्यां नगर्यां यस्मिन्नुद्याने यथा भगवान् गौतमस्वामी भग-वतः श्रीमन्महावीरस्यान्ते पृष्टवान् यथा च तस्मै भगवान् व्यागृणाति स्म तथोपोद्घातमुपदिदर्शयिषुरिदमाह–'तेणं' ति, अस्य व्याख्या–ते इति प्राकृतशैलीवशात्तस्मिन्निति द्रष्टव्यं, अस्यायमर्थो–यदा भगवान् विहरति स्म तस्मिन्निति 'काले' वर्त्तमानावसर्पिणीचतुर्थारकविभागरूपे, उभयत्रापि णमिति वाक्यालङ्कारे, अथवा सप्तम्यर्थे तृतीया आर्षत्वात्, यदाहुः श्रीहेमसूरिपादाः, स्वप्राकृतलक्षणे–"आर्षे तृतीयापि दृश्यते–तेणं कालेणं तेणं समएणं, तस्मिन् काले तस्मिन् समये इत्यर्थः, (सि० ८–३–१३७)" 'तेणं समएणं'ति समयोऽवसरवाची, तथा च लोके वक्तारो–नाद्याप्येतस्य समयो वर्त्तते, नास्त्यस्यावसर इत्यर्थः, तस्मिन्निति यस्मिन् समये भगवान् प्रस्तुतां जम्बूद्वीपवक्तव्यतामचकथत् तस्मिन् समये मिथिला नाम नगरी अभवत्, नन्विदानीमपि सा नगरी वर्त्तते ततः कथमुक्तमभवदिति?, उच्यते, वक्ष्यमा-णवर्णकग्रन्थोक्तविभूतिसमेता तदैवाभवत्, नतु विवक्षितप्रकरणकर्त्तुः प्रकरणविधानकाले, एतदपि कथमवसेयमिति चेत्, उच्यते, अयं चावसर्पिणीकालः, अस्यां च प्रतिक्षणं शुभा भावा हानिमुपगच्छन्ति, एतच्च सुप्रतीतं जिनप्रवचनवे-दिनामतोऽभवदित्युच्यमानं न विरोधभाक्, सम्प्रति अस्या नगर्या वर्णकमाह–'रिद्धत्थिमियसमिद्ध'त्ति व्याख्या–भवनैः

प्रस्तावना.

॥ १३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१] दीप अनुक्रम [१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

पौरजनैश्चातीव वृद्धिमुपागता, 'ऋधुच् वृद्धा'वितिवचनात्, स्तिमिता–स्वचक्रपरचक्रादिसमुत्थभयकल्लोलमालावर्जिता, समृद्धा–धनधान्यादिविभूतियुक्ता, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः, 'वण्णओ'त्ति ऋद्धस्तिमितसमृद्धा इत्यादि औपपातिकोपाङ्गप्रसिद्धः समस्तोऽपि वर्णको द्रष्टव्यः, (उ० सू० १) अत्रालिखनं तु ग्रन्थगौरवभयादिति। तस्याः णमिति पूर्ववत्, मिथिलाया नगर्य्या बहिस्तात् उत्तरपौरस्त्ये–उत्तरापूर्वान्तरालरूपे दिग्भाग ईशानकोण इत्यर्थः, अत्र एकारो मागधभाषानुरोधतः प्रथमैकवचनप्रभवः, यथा–'कयरे आगच्छइ दित्तरूवे' (उत्त० १२–६) इत्यादौ, 'अत्र' अस्मिन्नुत्तरपौरस्त्ये दिग्विभागे माणिभद्रं नाम चैत्यमभवत्, चितेः–लेप्यादिचयनस्य भावः कर्म वा चैत्यं, तच्च संज्ञाशब्दत्वादेवताप्रतिबिम्बे प्रसिद्धं, ततस्तदाश्रयभूतं यद्देवताया गृहं तदप्युपचाराच्चैत्यमुच्यते, तच्चेह व्यन्तरायतनं द्रष्टव्यं, न तु भगवतामर्हतामायतनं, तस्य च चिरातीतमित्यादिर्वर्णकस्तत्परिक्षेपिवनखण्डवर्णकसहित औपपातिकतोऽवसेयः, (उ० सू० २) तस्यां मिथिलायां नगर्यां जितशत्रुर्नाम राजा, तस्य सकलस्त्रीगुणधारिणी धारिणी नामा देवी, कृताभिषेका पट्टराज्ञी इत्यर्थः, उभयत्राप्यभवदिति शेषः, 'वण्णओ'त्ति अत्र राज्ञो 'महयाहिमवन्तमहन्ते'त्यादिको राज्ञ्याश्च 'सुकुमालपाणिपाये'त्यादिको वर्णकः प्रथमोपाङ्गप्रसिद्धोऽभिधातव्यः (उ० सू० ६–७)। अथात्र यज्जातं तदाह–'तेणं कालेणं तेणं समएणं'ति पूर्ववत्, स्वामीति समर्थविशेषणं विशेष्यमाक्षिपति तेनात्र श्रीमन्महावीरः समवसृत इत्यर्थः, आत्यन्तिकं स्वामित्वं तस्यैव त्रिभुवनविभोरिति, अत्र च यथा निष्प्रतिमप्रातिहार्यादिसमृद्ध्या समन्वितो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

यथा च श्रमणादिपरिवारेण परिवृतः समवसृतः यथा च समवसरणवर्णकं तथौपपातिकग्रन्थादवसेयं (उ० सू० १० यावत् २६)। पर्षन्निर्गता–मिथिलाया नगर्या वास्तव्यो जनः समस्तोऽपि भगवन्तमागतं श्रुत्वा विवन्दिषया स्वस्मात् स्वस्मात् आश्रयाद्विनिर्गत इत्यर्थः, 'तए णं मिहिलाए णयरीए सिंघाडगे'त्यादिकं 'जाव पंजलिउडा पज्जुवासंती'ति पर्यन्तमौपपातिकगतमवगन्तव्यं (उ० सू० २७)। तस्याः पर्षदः पुरतो निःशेषजनभाषापरिणामिन्याऽर्द्धमागधभाषया धर्मः कथितः, स चैवं–"अत्थि लोए अत्थि अलोए अत्थि जीवा अत्थि अजीवा"इत्यादि, तथा–"जह जीवा बज्झंती मुच्चंती जहय संकिलिस्संति। जह दुक्खाणं अंतं करेंति केई अपडिबद्धा ॥ १ ॥ अट्टदुहट्टियचित्ता जह जीवा दुक्खसागरमुविंति। जह वेरग्गमुवगया कम्मसमुग्गं विहाडेंति ॥ २ ॥ जह रागेण कडाणं कम्माणं पावओ फलविवागो। जह य परिहीणकम्मा सिद्धा सिद्धालयमुविंति ॥ ३ ॥ तहा आइक्खति"त्ति (उ० सू० ३४)। पर्षत् प्रतिगता–स्वस्थानं गता, प्रतिगमनसूत्रमपि 'तए णं सा महइमहल्लिया परिसा' इत्यादि 'तामेव दिसं पडिगया' इति पर्यन्तं तत एवोपाङ्गादवगन्तव्यमिति (उ० सू० ३५–३६–३७)। अथ पर्षत्प्रतिगमनानन्तरं यज्जातं तदाह—

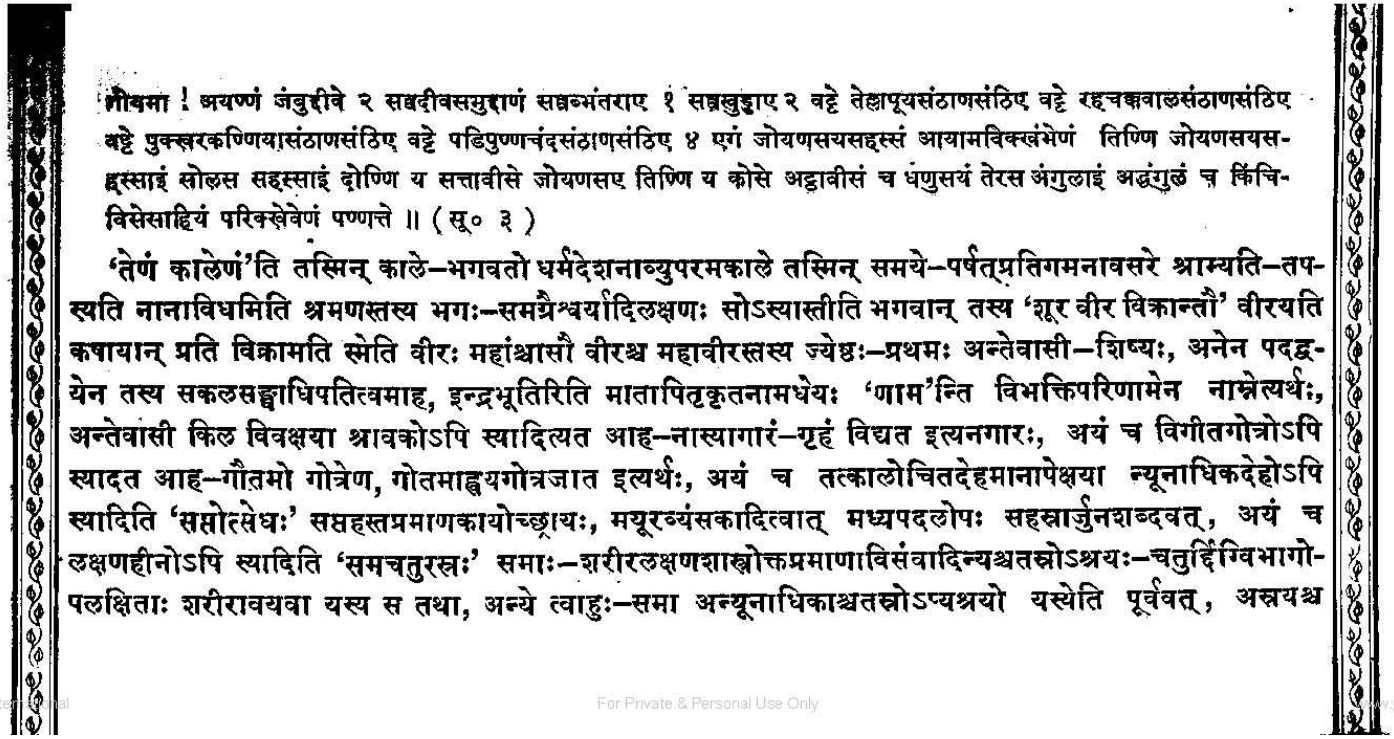
तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे गोअमगोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणे जाव [तिखुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता] एवं वयासी (सू० २) कहि णं भंते ! जंबुदीवे ! केमहालए णं भंते ! जंबुदीवे ! २ किंसंठिए णं भंते ! जंबुदीवे ३ किमायारभावपडोयारे णं भंते ! जंबुदीवे ४ पण्णत्ते ?,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२,३]

दीप अनुक्रम [२,३]



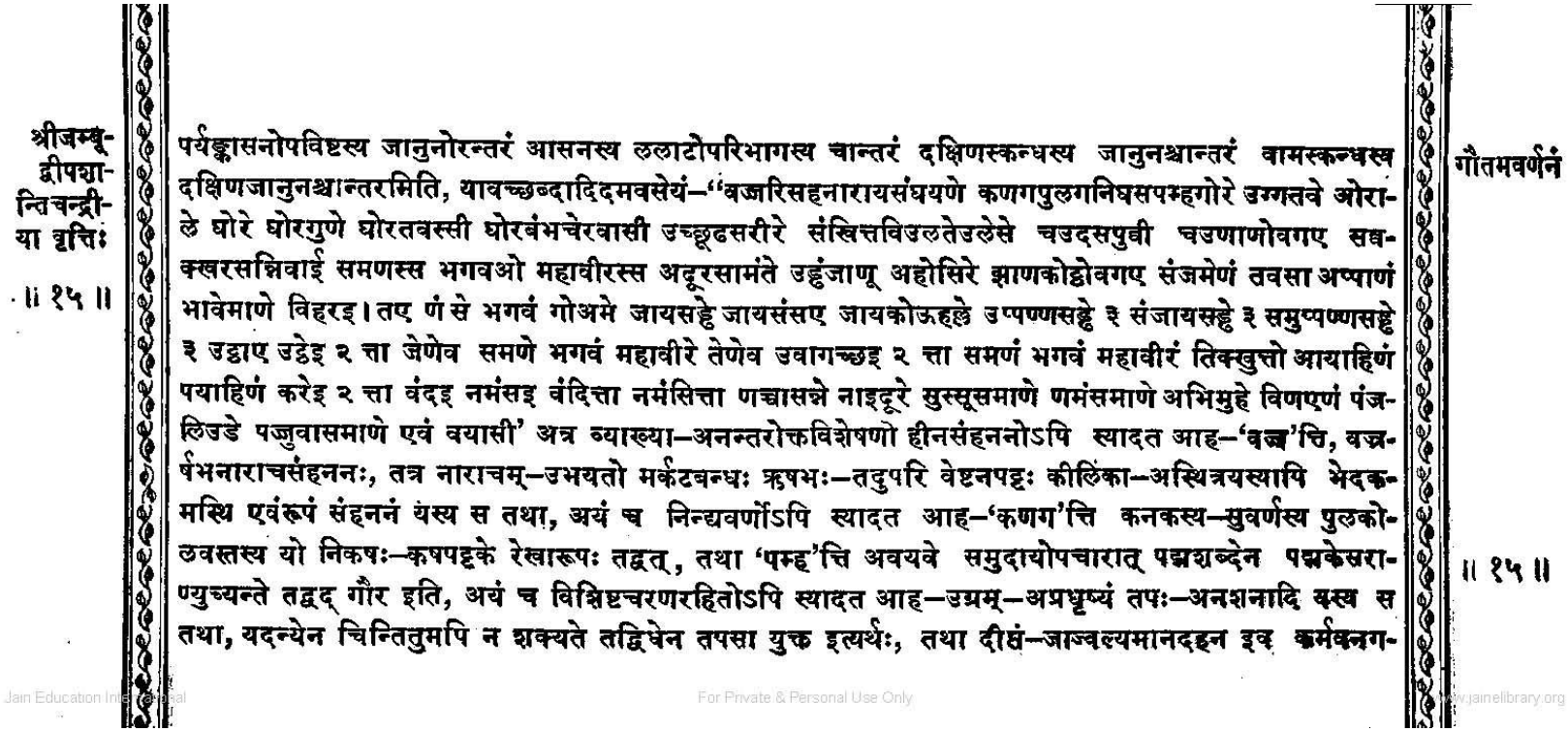
गोयमा ! अयण्णं जंबुद्दीवे २ सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए १ सव्वखुड्डाए २ वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिए वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए ४ एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ॥ (सू० ३)

'तेणं कालेणं'ति तस्मिन् काले–भगवतो धर्मदेशनाव्युपरमकाले तस्मिन् समये–पर्षत्प्रतिगमनावसरे श्राम्यति–तपस्यति नानाविधमिति श्रमणस्तस्य भगः–समग्रैश्वर्यादिलक्षणः सोऽस्यास्तीति भगवान् तस्य 'शूर वीर विक्रान्तौ' वीरयति कषायान् प्रति विक्रामति स्मेति वीरः महांश्चासौ वीरश्च महावीरस्तस्य ज्येष्ठः–प्रथमः अन्तेवासी–शिष्यः, अनेन पदद्वयेन तस्य सकलसङ्घाधिपतित्वमाह, इन्द्रभूतिरिति मातापितृकृतनामधेयः 'णाम'न्ति विभक्तिपरिणामेन नाम्नेत्यर्थः, अन्तेवासी किल विवक्षया श्रावकोऽपि स्यादित्यत आह–नास्यागारं–गृहं विद्यत इत्यनगारः, अयं च विगीतगोत्रोऽपि स्यादत आह–गौतमो गोत्रेण, गोतमाह्वयगोत्रजात इत्यर्थः, अयं च तत्कालोचितदेहमानापेक्षया न्यूनाधिकदेहोऽपि स्यादिति 'सप्तोत्सेधः' सप्तहस्तप्रमाणकायोच्छ्रायः, मयूरव्यंसकादित्वात् मध्यपदलोपः सहस्रार्जुनशब्दवत्, अयं च लक्षणहीनोऽपि स्यादिति 'समचतुरस्रः' समाः–शरीरलक्षणशास्त्रोक्तप्रमाणाविसंवादिन्यश्चतस्रोऽश्रयः–चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवा यस्य स तथा, अन्ये त्वाहुः–समा अन्यूनाधिकाश्चतस्रोऽप्यश्रयो यस्येति पूर्ववत्, अस्रयश्च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण, भगवन्, महावीर, अनगार आदि शब्दस्य अर्थाः

प्रत सूत्रांक [२,३] दीप अनुक्रम [२,३]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः



श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ १५ ॥

पर्यङ्कासनोपविष्टस्य जानुनोरन्तरं आसनस्य ललाटोपरिभागस्य चान्तरं दक्षिणस्कन्धस्य जानुनश्चान्तरं वामस्कन्धस्य दक्षिणजानुनश्चान्तरमिति, यावच्छब्दादिदमवसेयं–"वज्जरिसहनारायसंघयणे कणगपुलगनिघसपम्हगोरे उग्गतवे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेउलेसे चउदसपुवी चउणाणोवगए सव्वक्खरसन्निवाई समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं से भगवं गोअमे जायसड्ढे जायसंसए जायकोऊहल्ले उप्पण्णसड्ढे ३ संजायसड्ढे ३ समुप्पण्णसड्ढे ३ उट्ठाए उट्ठेइ २ त्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता णच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासमाणे एवं वयासी' अत्र व्याख्या–अनन्तरोक्तविशेषणो हीनसंहननोऽपि स्यादत आह–'वज्ज'त्ति, वज्रर्षभनाराचसंहननः, तत्र नाराचम्–उभयतो मर्कटबन्धः ऋषभः–तदुपरि वेष्टनपट्टः कीलिका–अस्थित्रयस्यापि भेदकमस्थि एवंरूपं संहननं यस्य स तथा, अयं च निन्द्यवर्णोऽपि स्यादत आह–'कणग'त्ति कनकस्य–सुवर्णस्य पुलकोऽवस्तस्य यो निकषः–कषपट्टके रेखारूपः तद्वत्, तथा 'पम्ह'त्ति अवयवे समुदायोपचारात् पद्मशब्देन पद्मकेसराण्युच्यन्ते तद्वद् गौर इति, अयं च विशिष्टचरणरहितोऽपि स्यादत आह–उग्रम्–अप्रधृष्यं तपः–अनशनादि यस्य स तथा, यदन्येन चिन्तितुमपि न शक्यते तद्विधेन तपसा युक्त इत्यर्थः, तथा दीप्तं–जाज्वल्यमानदहन इव कर्मवनग-

गौतमवर्णनं

॥ १५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	इन्द्रभूति गौतमस्य वर्णनं- मूलं एवं परिभाषा सहितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२,३]

दीप अनुक्रम [२,३]

हनदहनसमर्थतया ज्वलितं तपो–धर्मध्यानादि यस्य स तथा, तथा तप्तं तपो येन स तथा, एवं हि तेन तप्तं तपो येन सर्वाण्यशुभानि कर्माणि भस्मसात्कृतानीति, तथा महत्–प्रशस्तमाश्रंसादिदोषरहितत्वात् तपो यस्य स तथा, तथा उदारः–प्रधानः, अथवा 'औरालो' भीष्मः, उग्रादिविशेषणविशिष्टतपःकरणतः पार्श्वस्थानामल्पसत्त्वानां भयानक इत्यर्थः, तथा घोरो–निर्घृणः, परीषहेन्द्रियादिरिपुगणविनाशनमाश्रित्य निर्दय इत्यर्थः, अन्ये तु आत्मनिरपेक्षं घोरमाहुः, तथा घोरा–इतरैर्दुरनुचरा गुणाः–मूलगुणादयो यस्य स तथा, तथा घोरैस्तपोभिस्तप्स्वी, तथा घोरं–दारुणमल्पसत्त्वैर्दुरनुचरत्वात् यद् ब्रह्मचर्यं तत्र वस्तुं शीलं यस्य स तथा, उच्छूढं–उज्झितं संस्कारपरित्यागात् शरीरं येन स तथा, सङ्क्षिप्ता–शरीरान्तर्गतत्वेन ह्रस्वतां गता विपुला–विस्तीर्णा अनेकयोजनप्रमाणक्षेत्राश्रितवस्तुदहनसमर्थत्वात् तेजोलेश्या–विशिष्टतपोजन्यलब्धिविशेषप्रभवा तेजोज्वाला यस्य स तथा, चतुर्दश पूर्वाणि विद्यन्ते यस्य स तथा, तेन तेषां रचितत्वात्, अनेन तस्य श्रुतकेवलितामाह, स चावधिज्ञानादिविकलोऽपि स्यादत आह–'चतुर्ज्ञानोपगतः' मतिश्रुतावधिमनःपर्यायरूपज्ञानचतुष्कसमन्वित इत्यर्थः, उक्तविशेषणद्वयकलितोऽपि कश्चिन्न समग्रश्रुतविषयव्यापिज्ञानो भवति, चतुर्दशपूर्वविदां षट्स्थानपतितत्वेन श्रवणात्, अत आह–सर्वे च ते अक्षरसन्निपाताश्च–अक्षरसंयोगास्ते ज्ञेयतया सन्ति यस्य स तथा, किमुक्तं भवति ?–या काचिज्जगति पदानुपूर्वी वाक्यानुपूर्वी वा सम्भवति ताः सर्वा अपि जानाति, अथवा श्रव्याणि–श्रुतिसुखकारीणि अक्षराणि साङ्गत्येन नितरां वदितुं शीलमस्येति स तथा, एवंगुणविशिष्टो भगवान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रभूति गौतमस्य वर्णनं- मूलं एवं परिभाषा सहितं

विनयराशिरिव साक्षादितिकृत्वा शिष्याचारत्वाच्च श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अदूरसामन्तेन विहरतीति योगः, तत्र दूरं–विप्रकृष्टं सामन्तं–संनिकृष्टं तत्प्रतिषेधाद् अदूरसामन्तं तत्र, नातिदूरे नातिनिकटे इत्यर्थः, किंविधः सन् तत्र विहरतीति ?–ऊर्ध्वं जानुनी यस्य स तथा, शुद्धपृथिव्यासनवर्जनादौपग्रहिकनिषद्याया अभावाच्चोत्कटुकासन इत्यर्थः, अधःशिरा–नोर्द्धं तिर्यग्वा विक्षिप्तदृष्टिः, किन्तु नियतभूभागनियमितदृष्टिरित्यर्थः, ध्यानं धर्म्मं शुक्लं वा तदेव कोष्ठः–कुशूलो ध्यानकोष्ठस्तमुपागतः, यथा हि कोष्ठके धान्यं निक्षिप्तमविप्रसृतं भवति एवं भगवानपि ध्यानतोऽविप्रकीर्णेन्द्रियान्तःकरणवृत्तिरित्यर्थः, संयमेन–पञ्चाश्रवनिरोधादिलक्षणेन तपसा–अनशनादिना चशब्दोऽत्र समुच्चयार्थो लुप्तो द्रष्टव्यः, संयमतपसोर्ग्रहणं चानयोः प्रधानमोक्षाङ्गत्वख्यापनार्थं, प्राधान्यं च संयमस्य नवकर्मानुपादानहेतुत्वेन तपसश्च पुराणकर्मनिर्जराहेतुत्वेन, भवति चाभिनवकर्मानुपादानात् पुराणकर्मक्षपणाच्च सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्ष इति, आत्मानं 'भावयन्' वासयन् 'विहरती'ति तिष्ठतीत्यर्थः, ततो ध्यानकोष्ठोपगततया विहरणादनन्तरं, 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे, 'से' इति प्रस्तुतपरामर्शार्थः, अनेन गतार्थत्वे यत्पुनर्भगवान् गौतम इत्युपादानं तत्पुनः पुनरुपात्तं पापापनोदकं भगवतो गौतमस्य नामेति सुगृहीतनामधेयत्वमाह, 'जायसड्ढे' इत्यादि, जातश्रद्धादिविशेषणः सन्नुत्तिष्ठतीति योगः, तत्र जाता–प्रवृत्ता श्रद्धा–इच्छा वक्ष्यमाणार्थतत्त्वज्ञानं प्रति यस्य स तथा, तथा जातः संशयो यस्य स तथा, संशयो नामानवधारितार्थं ज्ञानं, स चैवं–तीर्थान्तरीयैर्जम्बूद्वीपवक्तव्यताऽन्यथाऽन्यथोपदिश्यते ततः किं तत्त्वमिति संशयः, तथा

॥ १६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रभूति गौतमस्य वर्णनं- मूलं एवं परिभाषा सहितं

प्रत सूत्रांक [२,३] दीप अनुक्रम [२,३]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

जातं कुतूहलं यस्य स तथा, जातौत्सुक्य इत्यर्थः, कथमेनां जम्बूद्वीपवक्तव्यतां सर्वज्ञो भगवान् प्रज्ञापयिष्यतीति, तथा उत्पन्ना–प्रागभूता सती भूता श्रद्धा यस्यासौ, अथ जातश्रद्ध इत्येतावदेवास्तु किमर्थमुत्पन्नश्रद्ध इत्यभिधीयते ?, प्रवृत्तश्रद्धत्वेनैवोत्पन्नश्रद्धत्वस्य लब्धत्वात्, न ह्यनुत्पन्ना श्रद्धा प्रवर्त्तते इति, अत्रोच्यते, हेतुत्वप्रदर्शनार्थं, हेतुत्वप्रदर्शनं च उचितमेव, वाक्यालङ्कारत्वात्तस्य, यथाहुः–"प्रवृत्तदीपामप्रवृत्तभास्करां, प्रकाशचन्द्रां बुबुधे विभावरीम्।" इह यद्यपि प्रवृत्तदीपत्वादेवाप्रवृत्तभास्करत्वमवगतं तथाप्यप्रवृत्तभास्करत्वं प्रवृत्तदीपत्वादेर्हेतुतयोपन्यस्तमिति सम्यक्, तथा 'उप्पण्णसंसये उप्पण्णकोउहल्ले' इति प्राग्वत्, तथा 'संजायसड्ढे'इत्यादिपदषट्कं प्राग्वत्, नवरमिह संशब्दः प्रकर्षादिवचनो वेदितव्यः, अन्ये त्वाहुः–जातश्रद्धत्वाद्यपेक्षयोत्पन्नश्रद्धत्वादयः समानार्था विवक्षितार्थस्य प्रकर्षप्रतिपादनाय स्तुतिमुखेन ग्रन्थकृतोक्ताः, न चैवं पुनरुक्तदोषः, यदाह–"वक्ता हर्षभयादिभिराक्षिप्तमनाः स्तुवंस्तथा निन्दन्। यत्पदमसकृद् ब्रूते तत्पुनरुक्तं न दोषाय ॥१॥"इति, उत्थानमुत्था–ऊर्ध्वं वर्त्तनं तथा उत्तिष्ठति–ऊर्ध्वो भवति, ऊर्ध्वेति पाठान्तरम्, इह 'उट्ठेई'त्युक्ते क्रियारम्भमात्रमपि प्रतीयते यथा वक्तुमुत्तिष्ठत इति ततस्तद्व्यवच्छेदार्थमुक्तमुत्थयेति, उपागच्छतीत्युत्तरक्रियापेक्षया उत्थानक्रियायाः पूर्वकालताभिधानायोत्थायेति क्त्वाप्रत्ययेन निर्दिशति, यद्यपि द्वयोः क्रिययोः पूर्वोत्तरनिर्देशाभ्यां पूर्वकाल आक्षेपलभ्य एव तथापि भुञ्जानो व्रजति इत्यादौ द्वयोः क्रिययोर्यौगपद्यदर्शनादानन्तर्यसूचनार्थमित्थमुपन्यासः, उत्थानक्रियासव्यपेक्षत्वादुपागमनक्रियाया इति, तथा प्राकृतशैलीवशादव्ययत्वाद्वा 'येने'ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	इन्द्रभूति गौतमस्य वर्णनं- मूलं एवं परिभाषा सहितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२,३]

दीप अनुक्रम [२,३]

॥ १७ ॥

यस्मिन्नित्यर्थे द्रष्टव्यं, यस्मिन्नेव दिग्भागे श्रमणो भगवान् महावीरो वर्त्तते 'तेणेवे'ति तस्मिन्नेव दिग्भागे उपागच्छति, इह वर्त्तमानकालनिर्देशस्तत्कालापेक्षया उपागमनक्रियाया वर्त्तमानत्वात्, परमार्थतस्तूपागतवानिति द्रष्टव्यं, उपागम्य च श्रमणं भगवन्तं महावीरं कर्मताऽऽपन्नं त्रिकृत्वः–त्रीन् वारान् 'आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति' आदक्षिणाद्–दक्षिणहस्तादारभ्य प्रदक्षिणः–परितो भ्राम्यतो दक्षिण एव आदक्षिणप्रदक्षिणस्तं करोति, कृत्वा वन्दते–वाचा स्तौति नमस्यति-कायेन प्रणमति, वन्दित्वा नमस्थित्वा च नैवात्यासन्नः–अतिनिकटोऽवग्रहपरिहारात्, अथवा नात्यासन्ने स्थाने वर्त्तमान इति गम्यं, तथा नैवातिदूरे–अतिविप्रकृष्टेऽनौचित्यपरिहारात्, अथवा नातिदूरे स्थाने वर्त्तत इति गम्यं, 'शुश्रूषन्' भगवद्वचनानि श्रोतुमिच्छन् अभि-भगवन्तं लक्षीकृत्य मुखमस्येत्यभिमुखः विनयेन प्रकृष्टः–प्रधानो ललाटतटघटितत्वेनाञ्जलिः–संयुतहस्तमुद्राविशेषः कृतो–विहितो येन स प्राञ्जलिकृतः, आहिताद्यादेराकृतिगणतया कृतशब्दस्य परनिपातः, 'पर्युपासीनः' सेवमानः, अनेन विशेषणकदम्बकेन च श्रवणविधिर्दर्शितः, यदाह–"निंदाविगहापरिवज्जिएहिं गुत्तेहिं पंजलिउडेहिं। भत्तिबहुमाणपुव्वं उवउत्तेहिं सुणेयव्वं ॥ १ ॥" 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारेणावादीत्–जम्बूद्वीपवक्तव्यताविषयं प्रश्नमुक्तवान्, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमातृकारूपचतुःप्रश्नीं हृदयाभिसंहितां भगवत्पुरतो वाग्योगेन प्रकटीचकारेत्याशयः। ननु गौतमोऽपि चतुर्दशपूर्वधारी सर्वाक्षरसन्निपाती सम्भिन्नश्रोताः सकलप्रज्ञापनीयभावपरिज्ञानकुशलः सूत्र-

१ परिवर्जितनिद्राविकथैर्गुप्तैः कृतप्राञ्जलिपुटैः। भक्तिबहुमानपूर्वमुपयुक्तैः श्रोतव्यम् ॥ १ ॥

॥ १७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रभूति गौतमस्य वर्णनं- मूलं एवं परिभाषा सहितं

तश्च प्रवचनस्य प्रणेता सर्वज्ञदेशीय एव, उक्तं च–"संखाईएवि भवे साहइ जं वा परो उ पुच्छिज्जा । न य णं अणाइसेसी वियाणई एस छउमत्थो ॥ १ ॥" इति कथं तस्य संशयसम्भवः ? तदभावाच्च कथं पृच्छतीति ?, उच्यते, यद्यपि भगवान् गौतमो यथोक्तगुणविशिष्टस्तथापि तस्याद्यापि छद्मस्थत्वात् कदाचिदनाभोगोऽपि जायते, यत उक्तम्–"न हि नामानाभोगश्छद्मस्थस्येह कस्यचिन्नास्ति । ज्ञानावरणीयं हि ज्ञानावरणप्रकृति कर्म ॥ १ ॥" ततोऽनाभोगसम्भवादुपपद्यते भगवतो गौतमस्यापि संशयः, न चैतदनार्षं, यदुक्तमुपासकदशासु आनन्दश्रमणोपासकावधिनिर्णयविषये–"तेणं भंते ! किं आणंदेणं समणोवासएणं तस्स ठाणस्स आलोइयवं जाव पडिक्कमियवं उदाहु मए ?, तओ णं गोअमाइ समणे भगवं महावीरे एवं वयासी–गोअमा तुमं चेव णं तस्स ठाणस्स आलोयाहि जाव पडिक्कमाहि, आणंदं च समणोवासयं एयमट्ठं खामेहि, तए णं समणे भगवं गोअमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एअमट्ठं विणएणं पडिसुणइ २ त्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव पडिक्कमइ, आणंदं च समणोवासयं एअमट्ठं खामेइ'त्ति, अथवा भगवानपगतसंशयोऽपि स्वकीयबोधसंवादार्थमज्ञलोकबोधनार्थं शिष्याणां वा स्ववचसि प्रत्ययोत्पादनार्थं पृच्छति, अथवा इत्थमेव सूत्ररचनाकल्प इति न कश्चिद्विरोधः । किमुक्तवानित्याह–'कहिं णं' इति क्व–कस्मिन् देशे, 'भंते'त्ति गुरोरामन्त्रणं, अत्र एकारो मागधभाषाप्रभवः ततश्च हे भदन्त ! हे सुखकल्याणस्वरूप ! 'भवुङ् सुखकल्याणयो'रिति वचनात् प्राकृतशैल्या वा भव-

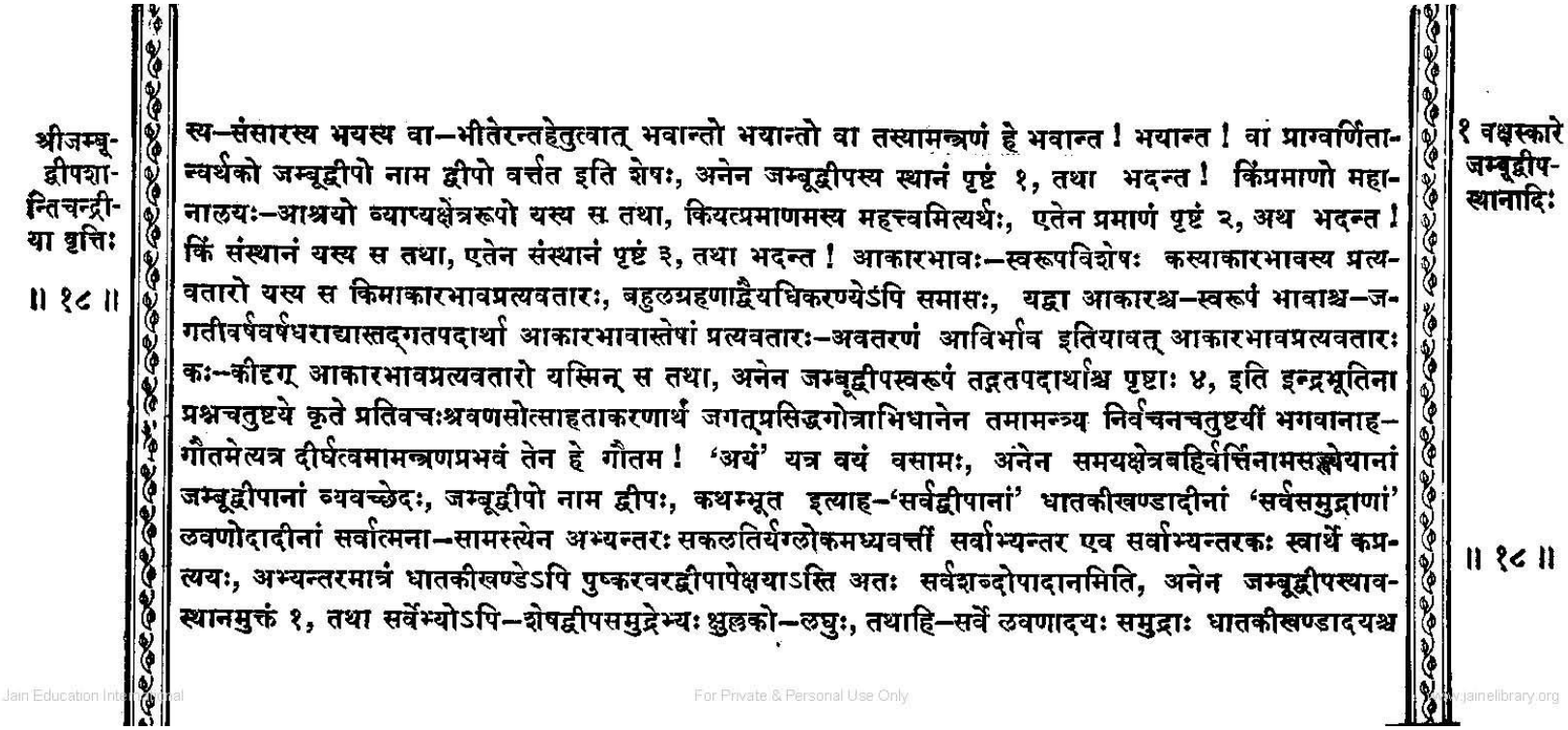
१ संख्यातीतानपि भवान् कथयति यद्वा परस्तु पृच्छेत् । न चानतिशयी विजानीयात् एष छद्मस्थः ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२,३]

दीप अनुक्रम [२,३]



श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ १८ ॥

स्य–संसारस्य भयस्य वा–भीतेरन्तहेतुत्वात् भवान्तो भयान्तो वा तस्यामन्त्रणं हे भवान्त ! भयान्त ! वा प्राग्वर्णिता-न्वर्थको जम्बूद्वीपो नाम द्वीपो वर्त्तत इति शेषः, अनेन जम्बूद्वीपस्य स्थानं पृष्टं १, तथा भदन्त ! किंप्रमाणो महा-नालयः–आश्रयो व्याप्यक्षेत्ररूपो यस्य स तथा, कियत्प्रमाणमस्य महत्त्वमित्यर्थः, एतेन प्रमाणं पृष्टं २, अथ भदन्त ! किं संस्थानं यस्य स तथा, एतेन संस्थानं पृष्टं ३, तथा भदन्त ! आकारभावः–स्वरूपविशेषः कस्याकारभावस्य प्रत्य-वतारो यस्य स किमाकारभावप्रत्यवतारः, बहुलग्रहणाद्वैयधिकरण्येऽपि समासः, यद्वा आकारश्च–स्वरूपं भावाश्च–ज-गतीवर्षवर्षधराद्यास्तद्गतपदार्था आकारभावास्तेषां प्रत्यवतारः–अवतरणं आविर्भाव इतियावत् आकारभावप्रत्यवतारः कः–कीदृग् आकारभावप्रत्यवतारो यस्मिन् स तथा, अनेन जम्बूद्वीपस्वरूपं तद्गतपदार्थाश्च पृष्टाः ४, इति इन्द्रभूतिना प्रश्नचतुष्टये कृते प्रतिवचःश्रवणसोत्साहताकरणार्थं जगत्प्रसिद्धगोत्राभिधानेन तमामन्त्र्य निर्वचनचतुष्टयीं भगवानाह–गौतमेत्यत्र दीर्घत्वमामन्त्रणप्रभवं तेन हे गौतम ! 'अयं' यत्र वयं वसामः, अनेन समयक्षेत्रबहिर्वर्त्तिनामसङ्ख्येयानां जम्बूद्वीपानां व्यवच्छेदः, जम्बूद्वीपो नाम द्वीपः, कथम्भूत इत्याह–'सर्वद्वीपानां' धातकीखण्डादीनां 'सर्वसमुद्राणां' लवणोदादीनां सर्वात्मना–सामस्त्येन अभ्यन्तरः सकलतिर्यग्लोकमध्यवर्त्ती सर्वाभ्यन्तर एव सर्वाभ्यन्तरकः स्वार्थे कप्र-त्ययः, अभ्यन्तरमात्रं धातकीखण्डेऽपि पुष्करवरद्वीपापेक्षयाऽस्ति अतः सर्वशब्दोपादानमिति, अनेन जम्बूद्वीपस्याव-स्थानमुक्तं १, तथा सर्वेभ्योऽपि–शेषद्वीपसमुद्रेभ्यः क्षुल्लको–लघुः, तथाहि–सर्वे लवणादयः समुद्राः धातकीखण्डादयश्च

१ वक्षस्कारे जम्बूद्वीप-स्थानादिः

॥ १८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीपस्य स्थानादिः

प्रत सूत्रांक [२,३]

दीप अनुक्रम [२,३]

द्वीपा जम्बूद्वीपादारभ्य द्विगुण२विष्कम्भायामपरिधयः, ततः शेषद्वीपसमुद्रापेक्षयाऽयं लघुरिति, दीर्घत्वं प्राकृतत्वात्, अनेन सामान्यतः प्रमाणमभिहितं, विशेषतस्त्वायामादिगतं प्रमाणमग्रे वक्ष्यति, अत्र विशेषप्रमाणमवसरप्राप्तमपि यन्नोक्तं तत्सूत्रकाराणां विचित्रा प्रवृत्तिरिति, तथा वृत्तः, स च शुषिरवृत्तोऽपि स्याद् अत आह–'तैलापूपसंस्थानसंस्थितः' तैलेन पक्वोऽपूपस्तैलापूपः, तैलेन हि पक्वोऽपूपः प्रायः परिपूर्णवृत्तो भवति न घृतपक्व इति तैलविशेषणं, तस्येव यत्संस्थानं तेन संस्थितः, अत्र तैलादित्वाल्लकारस्य द्वित्वं, तथा वृत्तो रथचक्रवालसंस्थानसंस्थितः, रथस्य–अवयवे समुदायोपचारात् रथाङ्गस्य चक्रस्य चक्रवालं–मण्डलं तस्येव संस्थानेन संस्थितः, अथवा चक्रवालं–मण्डलं मण्डलत्वधर्मयोगाच्च रथचक्रमपि रथचक्रवालं शेषं प्राग्वत्, एवं वृत्तः 'पुष्करकर्णिकासंस्थानसंस्थितः' पुष्करकर्णिका–पद्मबीजकोशः कमलमध्यभाग इतियावत्, वृत्तः परिपूर्णचन्द्रसंस्थानसंस्थितः प्राग्वत् पदद्वयं भावनीयं, एकेनैव चरितार्थकत्वेऽपि नानादेशजविनेयानां क्षयोपशमवैचित्र्यात् कस्यचित् किञ्चिद्बोधकमित्युपमापदनानात्वं, अत एव प्रत्युपमापदं योज्यमानत्वात् वृत्तपदस्य न पौनरुक्त्यशङ्काऽपि, एतेन संस्थानमुक्तं ३ । अथ सामान्यतः प्रागुक्तं प्रमाणं विशेषतो निर्वक्तुमाह–एकं योजनशतसहस्रं, प्रमाणाङ्गुलनिष्पन्नं योजनलक्षमित्यर्थः 'आयामविष्कम्भेन' अत्र च समाहारद्वन्द्वस्तेन क्लीबे एकवद्भावः, आयामविष्कम्भाभ्यामित्यर्थः, अत्राह परः–जम्बूद्वीपस्य योजनलक्षं प्रमाणमुक्तं तच्च पूर्वपश्चिमयोर्जगतीमूलविष्कम्भसत्कद्वादशद्वादशयोजनक्षेपे चतुर्विंशत्यधिकं भवति, तथा(च) यथोक्तं मानं विरुध्यत इति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीपस्य स्थानादिः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२,३]

दीप अनुक्रम [२,३]

॥ १९ ॥

म, जम्बूद्वीपजगतीविष्कम्भेन सहैव लक्षं पूरणीयं, लवणसमुद्रजगतीविष्कम्भेन लवणसमुद्रलक्षद्वयं, एवमन्येष्वपि द्वीपसमुद्रेषु, अन्यथा समुद्रमानाज्जगतीमानस्य पृथग्भणने मनुष्यक्षेत्रपरिधिरतिरिक्तः स्यात्, स हि पञ्चचत्वारिंशल्लक्षप्रमाणक्षेत्रापेक्षयाऽभिधीयते, अयमेवाशयः श्रीअभयदेवसूरिभिः चतुर्थाङ्गवृत्तौ पञ्चपञ्चाशत्तमे समवाये प्रादुष्कृतोऽस्तीति, तथा त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडश सहस्राणि द्वे योजनशते सप्तविंशे–सप्तविंशत्यधिके त्रयः क्रोशा अष्टाविंशं–अष्टाविंशत्यधिकं धनुःशतं त्रयोदशाङ्गुलानि अर्द्धाङ्गुलञ्च किञ्चिद्विशेषाधिकमित्येतावान् परिक्षेपेण–परिधिना प्रज्ञप्तः । अत्र सप्तविंशमष्टाविंशमित्यादिकाः शब्दाः 'अधिकं तत्संख्यमस्मिन् शतसहस्रे शतिशदृशान्ताद्या ड' इति सूत्रेण डप्रत्यये (श्रीसिद्ध० ७–१–१५४) सप्तविंशत्यधिकमष्टाविंशत्यधिकमित्यर्थः । परिध्यानयनोपायस्त्वयं चूर्णिकारोक्तः–"विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होइ। विक्खंभपायगुणिओ परिरओ तस्स गणियपयं ॥ १ ॥" अत्र व्याख्या—जम्बूद्वीपस्य विष्कम्भो–व्यासः, स्थापना यथा १०००००, तद्वर्गः क्रियते 'तद्गुणो वर्ग' इति वचनाल्लक्षं लक्षेण गुण्यते, जातं १०००००००००००, स च दशगुणः क्रियते, शून्यानि ११, तदनु 'करणी'ति वर्गमूलमानीयते, तथाहि–'विषमात्पदतस्त्यक्त्वा वर्गं स्थानच्युतेन मूलेन । द्विगुणेन भजेच्छेषं लब्धं विनिवेशयेत् पङ्क्त्याम् ॥ १ ॥ तद्वर्गं संशोध्य द्विगुणीकुर्वीत पूर्ववल्लब्धम् । उत्सार्य ततो विभजेच्छेषं द्विगुणीकृतं दलयेत् ॥ २ ॥" इत्यनेन करणेनानीते वर्गमूले जातोऽधस्तनच्छेदराशिः ६३२४४७, अत्र सप्तकरूपोऽन्त्योऽङ्को न द्विगुणीकृत इति तद्वर्जं शेषं सर्वमप्यधोधिक-

॥ १९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीपस्य स्थानादि:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२,३]

दीप अनुक्रम [२,३]

यते, लब्धं योजनानि ३१६२२७, छेदराशिश्च सप्तकेऽपि द्विगुणीकृते जातः ६३२४५४, उपरि शेषांशाः ४८४४७१, एते च योजनस्थानीया इति क्रोशानयनार्थं चतुर्भिर्गुणिताः जाताः १९३७८८४, छेदराशिना भागे लब्धं क्रोशाः ३, शेषं ४०५२२, धनुरानयनाय द्विसहस्रगुणं, जातं ८१०४४०००, छेदराशिना भागे लब्धानि धनूंषि १२८, शेषं ८९८८८, षण्णवत्यङ्गुलमानत्वाद्धनुषोऽङ्गुलानयनार्थं षण्णवतिगुणं, जातं ८६२९२४८, छेदेन भागे लब्धं अङ्गुलानि १३, शेषं ४०७३४६, अत्र 'व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति'रिति न्यायात् यवादिकमप्यानीयते, तथाहि–ते ह्यङ्गुलांशा 'अष्टभिर्यवैरङ्गुल'मिति अष्टभिर्गुण्यन्ते, जाताः ३२५८७६८ छेदः स एव लब्धाः यवाः ५, ततोऽप्यष्टगुणमे यूकादयः स्युः, तत्र यूका १, एतत्सर्वमप्यर्द्धाङ्गुलस्य किञ्चिद्विशेषाधिकत्वकथनेन सूत्रकारेणापि सामान्यतः संगृहीतमिति बोध्यं, गणितपदं तत्करणं च सोदाहरणमग्रे भावयिष्यत इति । अथाकारभावप्रत्यवतारविषयकं प्रश्नं निर्वक्तुमाह—

से णं एगाए वइराभईए जगईए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, सा णं जगई अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं मूले बारस जोअणाइं विक्खंभेणं मज्झे अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं उवरिं चत्तारि जोअणाइं विक्खंभेणं मूले विच्छिन्ना मज्झे संक्खित्ता उवरिं तणुया गोपुच्छसंठाणसंठिया सव्ववइरामई अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया पासादीया दरिसणिजा अभिरूवा पडिरूवा, सा णं जगई एगेणं महंतगवक्खकडएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, से णं गवक्खकडए अद्धजोअणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं सव्वरयणामए अच्छे जाव पडिरूवे, तीसे णं जगईए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीपस्य स्थानादिः, आकार-जगति आदेः वर्णनं

प्रत सूत्रांक [४]

दीप अनुक्रम [४]

उप्पिं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महई एगा पउमवरवेइया पण्णत्ता, अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं जगईसमिया परिक्खेवेणं सव्वरयणामई अच्छा जाव पडिरूवा । तीसे णं पउमवरवेइयाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–वइरामया णेमा एवं जहा जीवाभिगमे जाव अट्ठो जाव धुवा णियया सासया जाव णिच्चा॥ (सूत्रं ४)

'से ण'मिति, सोऽनन्तरोदितायामविष्कम्भपरिक्षेपपरिमाणो जम्बूद्वीपः, णमिति पूर्ववत्, 'एकया' एकसंख्यया अद्वितीयया (वा) 'वज्रमय्या' वज्ररत्नात्मिकया 'जगत्या' जम्बूद्वीपप्राकाररूपया द्वीपसमुद्रसीमाकारिण्या महानगरप्राकारकल्पया सर्वतो दिक्षु समन्ताद्विदिक्षु सम्परिक्षिप्तः–सम्यग्वेष्टितः, प्राकृतत्वादीर्घत्वं वज्रशब्दस्य, सा जगती अष्ट योजनान्यूर्द्ध्वोच्चत्वेन, वस्तुनो ह्यनेकधोच्चत्वं ऊर्द्ध्वस्थितस्यैकं अपरं तिर्यक्स्थितस्य अन्यद् गुणोन्नतिरूपं, तत्रेतरापोहेनोर्द्ध्वस्थितस्य यदुच्चत्वं तदूर्द्ध्वोच्चत्वमित्यागमे रूढमिति, अत्रानुस्वारः प्राकृतत्वात्, मूले द्वादश योजनानि विष्कम्भेन मध्येऽष्टौ उपरि चत्वारि, अत एव मूले विष्कम्भमधिकृत्य विस्तीर्णा मध्ये सङ्ख्या त्रिभागोनत्वात् उपरि तनुका मूलापेक्षया त्रिभागमात्रविस्तारभावात्, एतदेवोपमया प्रकटयति–गोपुच्छस्येव संस्थानं तेन संस्थिता, ऊर्द्ध्वीकृतगोपुच्छाकारेति भावः, सर्वात्मना–सामस्त्येन वज्रमयी–वज्ररत्नात्मिका, दीर्घत्वं च प्राकृतशैलीप्रभवं, 'अच्छा' आकाशस्फटिकवदतिस्वच्छा 'सण्हा' श्लक्ष्णा श्लक्ष्णपुद्गलस्कन्धनिष्पन्ना श्लक्ष्णदलनिष्पन्नपटवत्, 'लण्हा' मसृणा घुंटितपटवत्, 'घट्ठा' घृष्टा इव घृष्टा खरशाणया पाषाणप्रतिमावत्, तथा मृष्टा इव मृष्टा सुकुमारशाणया पाषाणप्रतिमावत्,

॥ २० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकार-जगति आदेः वर्णनं

तथा 'नीरजाः' सहजरजोरहिता, तथा 'निर्मला' आगन्तुकमलरहिता, तथा 'निष्पङ्का' कलङ्कविकला कर्दमरहिता वा, तथा निष्कङ्कटा–निष्कवचा निरावरणा छाया–दीप्तिर्यस्याः सा तथा, सप्रभा–स्वरूपतः प्रभावती अथवा स्वेन–आत्मना प्रभाति–शोभते प्रकाशते वेति स्वप्रभा, तथा समरीचिका–सकिरणा वस्तुस्तोमप्रकाशकरी इत्यर्थः, तथा प्रसादाय–मनःप्रसत्तये हिता तत्कारित्वात् प्रासादीया मनःप्रह्लादकारिणीति भावः, तथा 'दर्शनीया' दर्शनयोग्या यां पश्यतश्चक्षुषी श्रमं न गच्छत इति, तथा 'अभिरूवा' अभि–सर्वेषां द्रष्टृणां मनःप्रसादानुकूलतया अभिमुखं रूपं यस्याः सा, अत्यन्तकमनीया इति भावः, अत एव प्रतिविशिष्टम्–असाधारणं रूपं यस्याः सा प्रतिरूपा, अथवा प्रतिक्षणं नवं नवमिव रूपं यस्याः सा तथा, अथ अत्र सूत्रेऽनुक्तोऽपि वाचयितृणामधिकार्थजिज्ञापयिषया जगत्या इष्टस्थाने विस्तारानयनोपायः प्रदर्श्यते, तत्र मूले मध्ये उपरि च विष्कम्भपरिमाणं साक्षादेव सूत्रे लभ्यते, अपान्तराले उपरिष्टादधोगमनेऽयमुपायः–जगतीशिखरादधो यावदुत्तीर्णं तस्मिन्नेकेन भक्ते सति यल्लब्धं तच्चतुर्भिर्युतमिष्टस्थाने विस्तारः, तथाहि—उपरितनभागाद्योजनमेकं गव्यूताधिकमवतीर्णं ततोऽस्य राशेः एकेन भागे हृते लब्धमेकं योजनं गव्यूताधिकं, तच्च योजनचतुष्कयुतं क्रियते, जातानि पञ्च योजनानि गव्यूताधिकानि, एतावांस्तत्र प्रदेशे विष्कम्भः, एवं सर्वत्र भाव्यं, सम्प्रति मूलादूर्ध्वगमने विस्तारानयनोपायः–मूलादूर्ध्वगमने यावदूर्ध्वं गतं तस्यैकेन भागे हृते यल्लब्धं तस्मिन्मूलविस्ताराच्छोधिते यच्छेषं स तत्र योजनादावतिक्रान्ते विस्तारः, तद्यथा–मूलादुत्पत्य योजनमेकं गव्यूतद्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	आकार-जगति आदेः वर्णनं

प्रत सूत्रांक [४] दीप अनुक्रम [४]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

याधिकं गतस्ततो योजनस्य गव्यूतद्वयाधिकस्यैकेन भागे हृते यल्लब्धं योजनं गव्यूतद्वयाधिकं, एतन्मूलसम्बन्धिनो द्वादशयोजनप्रमाणविस्तारादपनीयते, स्थितानि दश योजनानि गव्यूतद्वयाधिकानि, एतावत्प्रमाणः सार्द्धयोजनातिक्रमे विस्तारः, एवं सर्वत्रापि भाव्यं, एवं ऋषभकूटजम्बूशाल्मलीवृक्षवनगतकूटानामिष्टस्थाने विस्तारानयनार्थमिदमेव करणं भाव्यं, अथास्यां गवाक्षकटकवर्णनायाह–'सा' अनन्तरोदितस्वरूपा 'जगती ण'मिति प्राग्वत् जगती एकेन महागवाक्षकटकेन–बृहज्जालकसमूहेन सर्वतः सर्वासु दिक्षु समन्तात् सामस्त्येन संपरिक्षिप्ता व्याप्तेत्यर्थः, स गवाक्षकटक ऊर्द्धोच्चत्वेनार्द्धयोजनं द्वे गव्यूते विष्कम्भेन पञ्च धनुःशतानि, सर्वात्मना रजतमयः, तथा अच्छः, अत्र यावत्करणात् प्राग्व्यावर्णितं विशेषणपदं ग्राह्यं, इयञ्च गवाक्षश्रेणिर्लवणोदपार्श्वे जगतीभित्तिबहुमध्यभागगताऽवगन्तव्या, रिरंसुदेवविद्याधरवृन्दरमणस्थानं । अथ जगत्युपरिभागवर्णनायाह–'तस्या' यथोक्तस्वरूपाया जगत्या 'उपरि' उपरितने तले यो बहुमध्यदेशलक्षणो भागः, भागश्च प्रदेशलक्षणोऽपि स्यात् तत्र च पद्मवरवेदिकाया अवस्थानासम्भवः अतो देशग्रहणेन महान् भाग इत्यर्थः, स च चतुर्योजनात्मकजगत्युपरितनतलस्य मध्ये पञ्चधनुःशतात्मक इति, सूत्रे एकारान्तता मागधभाषालक्षणानुरोधात्, 'अत्र' एतस्मिन् बहुमध्यदेशभागे णमिति प्राग्वत् महती एका पद्मवरवेदिका–देवभोगभूमिः प्रज्ञप्ता मया शेषैश्च तीर्थकरैः, सा च ऊर्द्धोच्चत्वेनार्द्धयोजनं पञ्च धनुःशतानि विष्कम्भेन जगत्याः समा–समाना जगतीसमा सैव जगतीसमिका परिक्षेपेण–परिरयेण, कोऽर्थः ?–जम्बूद्वीपस्य सर्वतो वलयाकारेण व्यव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	आकार-जगति आदेः वर्णनं

स्थिताया जगत्या यावदुपरितनं तलं चतुर्योजनविस्तारात्मकं तस्माल्लवणदिशि देशोनयोजनद्वये त्यक्ते अर्वाक् यावान् जगतीपरिरयस्तावानस्या अपीति, सर्वरत्नमयी–सामस्त्येन रत्नखचिता, 'अच्छा सण्हा' इत्यादिविशेषणकदम्बकं पाठसिद्धोऽर्थतश्च प्राग्वत् ॥ अथास्या अतिदेशगर्भवर्णकसूत्रमाह–

तस्याः पद्मवरवेदिकाया 'अथ'मिति वक्ष्यमाणतया प्रत्यक्षः स चोच्यमानो न्यूनाधिकोऽपि स्यादिति एतद्रूपः–एतदेव रूपं–स्वरूपं यस्य स तथा 'वर्णावासो' वर्णः–श्लाघा यथावस्थितस्वरूपकीर्त्तनं तस्यावासो–निवासो ग्रन्थपद्धतिरूपो वर्णकनिवेश इत्यर्थः, अथवा वर्णव्यासो–वर्णकग्रन्थविस्तरः प्रज्ञप्तः, तद्यथेत्युपदर्शने, 'वइरामये'त्यादि, 'वइरामया नेमा' इत्यादिक 'एव' मिति अनेन प्रकारेण यथा जीवाभिगमे पद्मवरवेदिकावर्णकविस्तर उक्तः (जीवा. ३ प्र. उ. १ सू. १२६) तथा बोध्य इति शेषः, स च कियत्पर्यन्त इत्याह–'जाव अट्ठो' इति, यावदर्थः पद्मवरवेदिकाशब्दस्यार्थनिर्वचनं, ततोऽपि कियत्पर्यन्त इत्याह–'जाव धुवा णिच्चया सासया' इति, पुनस्ततोऽपि कियत्पर्यन्त इत्याह–'जाव णिच्चा' इति, स च समग्रपाठोऽर्थ–'वइरामया णेमा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलियामया खंभा सुवण्णमया फलगा लोहियक्खमईओ सूईओ वइरामई संधी णाणामणिमया कलेवरा णाणामणिमया कलेवरसंघाडा णाणामणिमया रूवा णाणामणिमया रूवसंघाडा अंकामया पक्खा पक्खबाहाओ य जोइरसामया वंसा वंसकवेल्लुया य रययामईओ पट्टियाओ जायरूवमईओ ओहाडणीओ वइरामईओ उवरिं पुंछणीओ सव्वसेए रययामए छायणे, सा णं पउमवरवेइया एगमेगेणं हेमजालेणं एगमेगेणं कयगव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४]

दीप अनुक्रम [४]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ २२ ॥

१ वक्षस्कारे वेदिकाव-र्णनं सू. ४

आ. के. का ओका

॥ २२ ॥

क्खजालेणं एगमेगेणं खिंखिणीजालेणं एगमेगेणं घण्टाजालेणं एगमेगेणं मुत्ताजालेणं एगमेगेणं मणिजालेणं एगमेगेणं कणगजालेणं एगमेगेणं रयणजालेणं एगमेगेणं पउमजालेणं सव्वरयणामएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, ते णं जाला तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया णाणामणिरयणहारद्धहारउवसोभियसमुदया ईसिमण्णमण्णमसंपत्ता पुव्वावरदाहिणुत्तरागएहिं वाएहिं मंदायं मंदायं एइज्जमाणा एइज्जमाणा पलंबमाणा पलंबमाणा पझंझमाणा पझंझमाणा ओरालेणं मणुण्णेणं मणहरेणं कण्णमणनिव्वुइकरेणं सद्देणं ते पएसे सव्वओ समंता आपूरेमाणा सिरीए अईव २ उवसोभेमाणा २ चिट्ठंति । तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे हयसंघाडा गयसंघाडा णरसंघाडा किंनरसंघाडा किंपुरिससंघाडा महोरगसंघाडा गंधव्वसंघाडा वसहसंघाडा सव्वरयणामया जाव पडिरूवा, एवं पंतीओवि विहीओवि मिहुणगाइवि ८। तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहुईओ पउमलयाओ नागलयाओ असोगलयाओ चंपगलयाओ वणलयाओ वासंतीलयाओ अइमुत्तलयाओ कुंदलयाओ सामलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ णिच्चं मउलियाओ णिच्चं लवइयाओ णिच्चं थवइयाओ णिच्चं गुलइयाओ णिच्चं गुच्छिआओ णिच्चं जमलियाओ णिच्चं जुअलियाओ णिच्चं विणमियाओ णिच्चं पणमियाओ णिच्चं सुविभत्तपडि (पिंड) मंजरिवडिंसगधरीओ णिच्चं कुसुमियमउलियलवइयथवइयगुलइयगुच्छियजमलिअजुअलियविणमियपणमियसुविभत्तपडि (पिंड) मंजरीवडिंसगधरीओ सव्वरयणामईओ अच्छा जाव पडिरूवा, तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहवे अक्खयसोत्थिया पण्णत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, से केणत्थेणं भंते! एवं वुच्चइ–पउमवरवेइया (२) ?, गोयमा ! पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं वेइयासु वेइयाबाहासु वेइयापुडंतरेसु खंभेसु खंभबाहासु खंभसीसेसु खंभपुडंतरेसु सूईसु सूइमुहेसु सूईफलएसु सूईपुडंतरेसु पक्खेसु पक्खबाहासु बहूइं उप्पलाइं पउमाइं कुमुयाइं सुभगाइं सोगंधियाइं पोंडरीयाइं (महापोंडरीयाइं) सयवत्ताइं सहस्सवत्ताइं सबरयणामयाइं अच्छाइं जाव पडिरूवाइं महावासिकछत्तसमाणाइं पण्णत्ताइं समणाउसो!, से एएणट्ठेणं गोअमा! एवं वुच्चइ–पउमवरवेइया २, अदुत्तरं च णं गोअमा! पउमवरवेइया सासए णामधेज्जे पण्णत्ते। पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया असासया ?, गोअमा! सिअ सासया सिअ असासया, (से केणट्ठेणं० ?,) गोअमा दव्वट्ठयाए सासया वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ–सिय सासया सिय असासया। पउमवरवेइया णं भंते! कालओ केवचिरं होइ?, गोअमा! ण कयाइ णासी ण कयाइ ण भवइ ण कयाइ ण भविस्सइ भुविं च भवई य भविस्सइ य धुवा णियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिआ णिच्चा" इति, अत्र व्याख्या–अनन्तरोक्तायाः पद्मवरवेदिकायाः वज्रमया–वज्ररत्नमया नेमाः, नेमा नाम भूमिभागादूर्ध्वं निष्क्रामन्तः प्रदेशाः, वज्रशब्दस्य दीर्घत्वं प्राकृतत्वात्, एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यं, तथा रिष्टरत्नमयानि प्रतिष्ठानानि–मूलपादाः, तथा वैडूर्यरत्नमयाः स्तम्भाः, सुवर्णरूप्यमयानि फलकानि–पद्मवरवेदिकाङ्गभूतानि, लोहिताक्षरत्नमय्यः सूचयः–फलकद्वयस्थिरसम्बन्धकारिपादुकास्थानीयाः, वज्रमयाः सन्धयः–सन्धिमेलाः फलकानां, किमुक्तं भव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ति !–वज्ररत्नापूरिताः फलकानां सन्धयः, नानामणिमयानि कलेवराणि–मनुष्यशरीराणि, तथा नानामणिमयाः कले-बरसङ्घाटाः–मनुष्यशरीरयुग्मानि, सङ्घाटशब्दो युग्मवाची यथा साधुसङ्घाट इति, नानामणिमयानि रूपाणि–हस्त्या-दीनां रूपकाणि, रूपसङ्घाटा अपि तथैव, तानि च कानिचिच्छोभार्थं कानिचिद्विनोदार्थं कानिचिच्च दृग्दोषनिवारणार्थं यथा राजद्वारादिषु हस्त्यादिरूपाणि कम्यमानलम्बकूर्चकपृङ्गरूपाणि च क्रियन्ते, तथाऽत्र फलकेषु रत्नमयानि सन्ती-त्यर्थः, अङ्को–रत्नविशेषस्तन्मयाः पक्षाः–तदेकदेशाः पक्षबाहवोऽपि तदेकदेशभूता एवाङ्कमध्यः, ज्योतीरसं नाम रत्नं तन्मया वंशाः–महान्तः, पृष्ठवंशा मध्यवलका इत्यर्थः, महतां पृष्ठवंशानामुभयतस्तिर्यक् स्थाप्यमाना वंशाः कवेलुकानि प्रतीतानि, अत्र द्वितीयवंशशब्दाद्विभक्तिलोपः प्राकृतत्वात्, अक्रमप्राप्तामामपि कवेलुकानां पृष्ठवंशैर्वंशैश्च सह यदेकत्र विशेषणे योजनं तत्र ज्योतीरसरत्नमयत्वं हेतुरिति, रजतमय्यः पट्टिकाः–वंशानामुपरि कम्बास्थानीयाः, जातरूपं–सुवर्णविशेषस्तन्मय्यः अवघाटिन्यः–आच्छादनहेतुकम्बोपरिस्थाप्यमानमहाप्रमाणकिलिञ्जस्थानीयाः, वज्रमय्यः अवघाटिनीनामुपरि पुञ्छन्यो–निविडतराच्छादनहेतुश्लक्ष्णतरतृणविशेषस्थानीयाः, सर्वश्वेतं रजतमयं पुञ्छमीनामु-परि कवेलुकानामध आच्छादनं, सा पद्मवरवेदिका एकैकेन किङ्किणीजालेन किङ्किण्यः–क्षुद्रघण्टिकाः एकैकेन घण्टा-जालेन–किङ्किण्यपेक्षया किञ्चिन्महत्यो घण्टाः एकैकेन मुक्ताजालेन–मुक्ताफलमयेन दामसमूहेन एकैकेन मणिजालेन–मणिमयेन दामसमूहेन एकैकेन 'कनकजालेन' कनकं–पीतरूपः सुवर्णविशेषस्तन्मयेन दामसमूहेन एकैकेन रजता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेन–रत्नमयदामसमूहेन, अत्र स्थलजाता मणयो जलजानि रत्नानीति रत्नमण्योर्भेदः, एकैकेन सर्वरत्नमयप्रधानात्मकेन दामसमूहेन, सर्वतः समन्तादिति प्राग्वत्, संपरिक्षिप्ता, एतानि च दामरूपाणि हेमजालादीनि जालानि लम्बमानानि वेदितव्यानि, तथा च आह–'ते णं जाला' इति, अत्र पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्तेन तानि जालानि सपनीयम्–आरक्तं सुवर्णं तन्मयो लम्बूसगो–दाम्नामग्रिमभागे मण्डनविशेषो येषां तानि तथा, पार्श्वतः सामस्त्येन सुवर्णस्य प्रतरकेण–पत्रेण मण्डितानि, अन्तरा अन्तरा लम्बमानहेमपत्रकालङ्कृतानि, तथा नानारूपाणां–जातिभेदेनानेकप्रकाराणां मणीनां रत्नानां च ये विचित्रवर्णा हारा–अष्टादशसरिका अर्द्धहारा–नवसरिकास्तैरुपशोभितः समुदायो येषां तानि तथा, ईषत्–मवाक् अन्योऽन्यं–परस्परमसम्प्राप्तानि–असंलग्नानि पूर्वापरदक्षिणोत्तरागतैर्वातैर्मन्दार्थं मन्दार्थमिति–मन्दं मन्दं एज्यमानानि–कम्प्यमानानि "मृशाभीक्ष्ण्याविच्छेदे द्विः प्राक्तमबादे" (श्रीसि० ७–४–७१) स्तिथविच्छेदे द्विर्वचनं यथा पचति पचतीत्यत्र, एवमुत्तरत्रापि, ईषत्कम्पनवशात् प्रकर्षत इतस्ततो मनाक्चलनेन लम्बमानानि २, ततः परस्परं सम्पर्कवशतः 'पक्षंझमाणा पक्षंझमाणा' इति शब्दायमानानि २, उदारेण–स्फारेण शब्देनेति योगः, स च स्फारशब्दो मनःप्रतिकूलोऽपि भवति तत आह–'मनोज्ञेन' मनोऽनुकूलेन, तच्च मनोऽनुकूलत्वं लेशतोऽपि स्यादत आह–'मनोहरेण' मनांसि श्रोतृणां हरति–आत्मवशं नयतीति मनोहरो, लिहादेराकृतिगणत्वादच्प्रत्ययः तेन, तदपि मनोहरत्वं कुत इत्याह–'कर्णमनोनिर्वृतिकरेण' 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मिति वचनात् हेतौ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीया, ततोऽयमर्थः–प्रतिश्रोतृ कर्णयोर्मनसश्च निर्वृतिकरः–सुखोत्पादकस्ततो मनोहरस्तेन इत्थंभूतेन शब्देन तान् प्रत्यासन्नान् प्रदेशान् सर्वतः समन्तात् आपूरयन्ति २ शतृप्रत्ययान्तस्य शावादं रूपम् अत एव 'श्रिया' शोभया अतीव २ उपशोभमानानि २ तिष्ठन्ति । पुनरस्यां यदस्ति तदुपदर्शयति–'तस्याः' पद्मवरवेदिकायाः 'तत्र तत्र देशे तहिं तहिं' इति तस्यैव देशस्य तत्र तत्र एकदेशे, एतावता किमुक्तं भवति ?–यत्र देशे एकस्तत्रान्येऽपि विद्यन्त इति, बहवो हयसङ्घाटा अपि वाच्याः, एते च सर्वे सर्वात्मना रत्नमयाः अच्छा यावत् प्रतिरूपा इत्यादि सर्वं प्राग्वत्, एते च सर्वेऽपि हयसङ्घाटादयः सङ्घाटाः पुष्पावकीर्णका उक्ताः, सम्प्रत्येषामेव हयादीनां पङ्क्त्यादिप्रतिपादनार्थमाह–'एव'मिति, यथाऽमीषां हयादीनामष्टानां सङ्घाटा उक्तास्तथा पङ्क्तयोऽपि वीथ्योऽपि मिथुनकानि च वाच्यानि, तानि चैवम्–'तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहूआओ हयपंतीओ गयपंतीओ' इत्यादि, नवरमेकस्यां दिशि या श्रेणिः सा पङ्क्तिरभिधीयते, उभयोरपि पार्श्वयोरेकैकश्रेणिभावेन यत् श्रेणिद्वयं सा वीथी, एते च वीथीपङ्क्तिसङ्घाटा हयादीनां पुरुषाणामुक्ताः, साम्प्रतमेतेषामेव हयादीनां स्त्रीपुरुषयुग्मप्रतिपादनार्थं 'मिहुणाइं' इत्युक्तं, उक्तेनैव प्रकारेण हयादीनां मिथुनकानि–स्त्रीपुरुषयुग्मरूपाणि वाच्यानि, यथा 'तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहूइं हयमिहुणाइं' इत्यादि । 'तीसे ण' मित्यादि, तस्याः–पद्मवरवेदिकायाः 'तत्र तत्र देशे तहिं तहिं' इति तस्यैव देशस्य तत्र तत्र एकदेशे अत्रापि 'तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं' इति वदता यत्रैका लता तत्रान्या अपि बह्व्यो लताः सन्तीति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्रात् पद्मवरवेदिकाया: वर्णनं आरभ्यते

प्रतिपादितं द्रष्टव्यं, बह्व्यः पद्मलताः–पद्मिन्यः नागलताः–नागा द्रुमविशेषास्त एव लतास्तिर्यक्शाखाप्रसराभावात् नागलताः, एवमशोकलताः चम्पकलताः 'वणलता' वणा–तरुविशेषा वासन्तिकालताः अतिमुक्तलताः कुन्दलताः श्यामलताः, कथंभूता एता इत्याह–'नित्यं' सर्वकालं षट्स्वपि ऋतुष्वित्यर्थः 'कुसुमिताः' कुसुमानि सञ्जातान्यास्विति कुसुमिताः, तारकादिदर्शनादितप्रत्ययः, एवं नित्यं मुकुलिताः मुकुलानि नाम–कुड्मलानि कलिका इत्यर्थः, तथा नित्यं लवकिताः लव एव लवकः स्वार्थे कः प्रत्ययः स सञ्जात आस्विति लवकिताः, सञ्जातपल्लवलवा इत्यर्थः, तथा नित्यं स्तबकिताः–सञ्जातपुष्पस्तबकाः, तथा नित्यं गुल्मिताः–सञ्जातगुल्मकाः, गुल्मकं च लतासमूहः, तथा नित्यं गुच्छिताः–सञ्जातगुच्छाः, गुच्छश्च पत्रसमूहः, यद्यपि च पुष्पस्तबकयोरभेदो नामकोशेऽधीतस्तथाऽप्यत्र पुष्पपत्रकृतो विशेषो ज्ञेयः, नित्यं यमलिताः, यमलं नाम समानजातीययोर्लतयोर्युग्मं तत्सञ्जातमास्विति यमलिताः, नित्यं युगलिताः, युगलं–सजातीयविजातीययोर्लतयोर्द्वन्द्वं, तथा नित्यं विनमिता नित्यं फलपुष्पादिभारेण विशेषेण नमिता–नीचैर्भावं प्रापिताः, तथा नित्यं प्रणमिताः–तेनैव नमयितुमारब्धाः, प्रशब्दस्यादिकर्मार्थत्वात्, अन्यथा पूर्वविशेषणादभेदः स्यात्, नित्यं सुविभक्तेत्यादि, सुविभक्तः–सुविच्छित्तिकः प्रतिविशिष्टो मञ्जरीरूपो योऽवतंसकस्तद्धराः–तद्धारिण्यः औपपातिकादौ तु 'सुविभत्तपडि (पिंड) मंजरीवडिंसगधराओ' इति पाठस्तत्र सुविभक्ता–अतिविविक्ताः सुनिष्पन्नतया पिण्ड्यो–लुम्ब्यो मञ्जर्यश्च प्रतीताः, शेषं तथैव, एषः सर्वोऽपि कुसुमि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४]

दीप अनुक्रम [४]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्रीया वृत्तिः

॥ २५ ॥

तत्वादिको धर्म एकैकस्याः २ लताया उक्तः, साम्प्रतं कासाञ्चिल्लतानां सकलकुसुमितत्वादिधर्मप्रतिपादनार्थमाह–'णिच्चं कुसुमिय'त्ति (इत्यादि) नित्यं कुसुमितमुकुलितलवकितस्तवकितगुल्मितगुच्छितयमलितयुगलितविनमित-प्रणमितसुविभक्तप्रतिमञ्जर्यवतंसकधर्य इति, अर्थस्तु प्राग्वत्, एताश्च सर्वा अपि लताः किंरूपा इत्याह–सर्वात्मना रत्न-मय्यः, 'अच्छा सण्हा'इत्यादिविशेषणानि प्राग्वत् । अत्र तीसे णमित्यादि अक्खयसोत्थियासूत्रं दृश्यते, परं वृत्तिकारेण न व्याख्यातमिति न व्याख्यायते । अधुना पद्मवरवेदिकाशब्दप्रवृत्तिनिमित्तं जिज्ञासुः पृच्छति–सेसद्दोऽथशब्दार्थः अथ 'केनार्थेन' केन कारणेन भदन्त ! एवमुच्यते–पद्मवरवेदिका पद्मवरवेदिकेति, किमुक्तं भवति ?–पद्मवरवेदिके-त्येवंरूपस्य शब्दस्य तत्र प्रवृत्तौ किं निमित्तमिति एवमुक्ते भगवानाह–गौतम ! पद्मवरवेदिकायां तत्र तत्र देशे तस्यैव देशस्य तत्र तत्र एकदेशे वेदिकासु–उपवेशनयोग्यमत्तवारणरूपासु वेदिकाबाहासु–वेदिकापार्श्वेषु वेद्यापुडंतरेसु इति–द्वे वेदिके वेदिकापुटं तेषामन्तराणि तेषु, स्तम्भेषु सामान्यतः, स्तम्भबाहासु–स्तम्भपार्श्वेषु, स्तम्भशीर्षेषु (स्तम्भाग्रभागेषु स्तम्भपुटान्तरेषु)–द्वौ स्तम्भौ स्तम्भपुटं तेषामन्तराणि तेषु, सूचीषु फलकसम्बन्धविघटनाभावहेतुपादुकास्थानीयासु तासामुपरि इति तात्पर्यार्थः, सूचीमुखेषु–यत्र प्रदेशे सूची फलकं भित्त्वा मध्ये प्रविशति तत्प्रत्यासन्नो देशः सूचीमुखं तेषु, तथा सूचीफलकेषु–सूचीभिः सम्बन्धिता ये फलकप्रदेशास्तेऽप्युपचारात् सूचीफलकानि तेषु सूचीनामध उपरि

१ अत्र जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रादर्शेषु २ वृत्तिकारेण-श्रीमज्जीवाभिगमसूत्रवृत्तिकारेण पूज्यश्रीमलयगिरिणा (जगतीव्याख्यानावसरे) (जीवा सू० १२४-१२५-१२६).

१ वक्षस्कारे जगत्यधि-कारे पद्मव-रवेदिका०

॥ २५ ॥

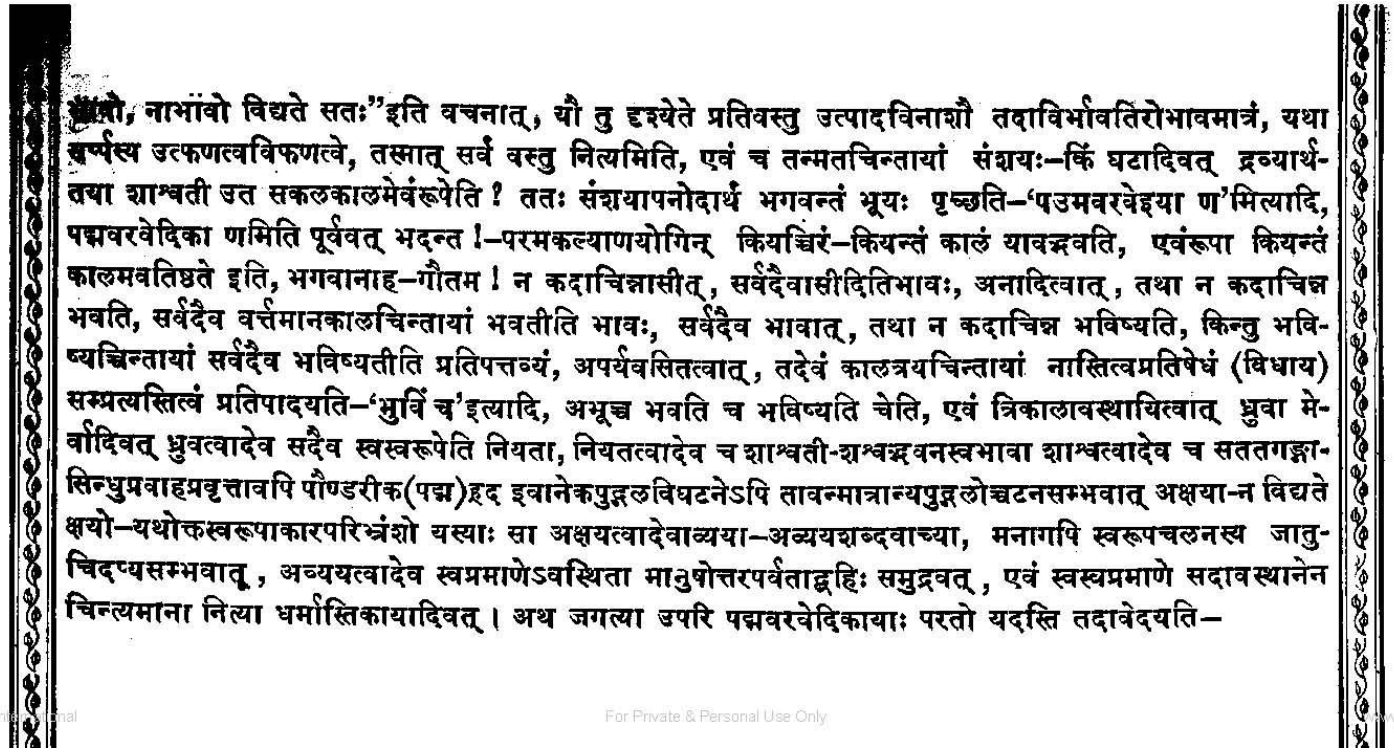
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च वर्त्तमानेषु, तथा सूचीपुटान्तरेषु द्वे सूच्यौ सूचीपुटं तेषामन्तरेषु, पक्षाः पक्षवाहा वेदिकैकदेशविशेषाः तेषु बहूनि उत्पलानि–गर्दभकानि ईषन्नीलानि वा पद्मानि–सूर्यविकासीनि ईषत्श्वेतानि वा, नलिनानि-ईषद्रक्तानि कुमुदानि–चन्द्रविकासीनि सुभगानि–पद्मविशेषाः, सौगन्धिकानि–कल्हाराणि पुण्डरीकाणि–श्वेतपद्मानि तान्येव महान्ति महापुण्डरीकाणि शतपत्राणि–दलशतकलितानि सहस्रपत्राणि–सहस्रदलकलितानि एतौ च पद्मविशेषौ पत्रसङ्ख्याविशेषात् पृथगुपात्तौ, सर्वरत्नमयानि चैतानि, अच्छा इत्यादिविशेषणानि प्राग्वत्, महान्ति–महाप्रमाणानि वार्षिकाणि–वर्षाकाले पानीयरक्षणार्थं यानि कृतानि तानि वार्षिकाणि तानि च तानि छत्राणि च २ तत्समानानि प्रज्ञप्तानि, हे श्रमण !–तपःप्रवृत्त ! हे आयुष्मन् !–प्रशस्तजीवित !, 'से एएणट्ठेण'मित्यादि, तदेतेनार्थेन–अन्वर्थेन गौतम ! एवमुच्यते–पद्मवरवेदिका पद्मवरवेदिकेति, तेषु तेषु यथोक्तरूपेषु यथोक्तरूपाणि पद्मानि पद्मवरवेदिकाशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमिति भावः, व्युत्पत्तिश्चैवं–पद्मवरा–पद्मप्रधाना वेदिका पद्मवरवेदिकेति, अथापरञ्च प्रवृत्तिनिमित्तं, किन्तदित्याह–पद्मवरवेदिकायाः शाश्वतं नामधेयं प्रज्ञप्तमिति, अयमभिप्रायः–प्रस्तुतपुद्गलप्रचयविशेषे पद्मवरवेदिकेतिशब्दस्य निरुक्तिनिरपेक्षाऽनादिकालीना रूढिः प्रवृत्तिनिमित्तमिति। 'पउमवरवेइया णं भंते'त्ति पद्मवरवेदिका शाश्वती उताशाश्वती ?, "प्रत्यये ङीर्न वा" (श्रीसि०८-३-३१) इत्यनेन प्राकृतसूत्रेण ङीप्रत्ययस्य वैकल्पिकत्वेन आबन्ततया सूत्रे निर्देशः, किं नित्या उत अनित्येतिभावः, भगवानाह–गौतम ! स्याच्छाश्वती स्यादशाश्वती, कथञ्चिद् नित्या कथञ्चिदनित्येत्यर्थः, स्याच्छब्दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निपातः कथञ्चिदित्येतदर्थवाची, एतदेव सविशेषं जिज्ञासुः पृच्छति–'से केणट्ठेण'मित्यादि, सेशब्दोऽथशब्दार्थः स च प्रश्ने, केनार्थेन–केन कारणेन भदन्त! एवमुच्यते–यथा स्याच्छाश्वती स्यादशाश्वतीति, भगवानाह–गौतम! द्रव्यार्थतया शाश्वती, तत्र द्रव्यं सर्वत्रान्वयि सामान्यमुच्यते द्रवति–गच्छति तान् तान् पर्यायान् विशेषानिति वा द्रव्यमिति व्युत्पत्तेः, द्रव्यमेवार्थः–तात्त्विकः पदार्थः प्रतिज्ञायां यस्य न तु पर्यायाः स द्रव्यार्थः–द्रव्यमात्रास्तित्वप्रतिपादको नयविशेषः तद्भावो द्रव्यार्थता तया—द्रव्यमात्रास्तित्वप्रतिपादकनयाभिप्रायेणेतियावत् शाश्वती, द्रव्यार्थिकनयमत-पर्यालोचनायामुक्तरूपस्य पद्मवरवेदिकाया आकारस्य सदाभावात्, तथा वर्णपर्यायैः–कृष्णादिभिः गन्धपर्यायैः–सुरभ्यादिभिः रसपर्यायैः–तिक्तादिभिः स्पर्शपर्यायैः–कठिनत्वादिभिः अशाश्वती–अनित्या, तेषां वर्णादीनां प्रतिक्षणं कियत्कालानन्तरं वाऽन्यथा अन्यथा भवनात्, अतादवस्थ्यस्य चानित्यत्वात्, न चैवमपि भिन्नाधिकरणे नित्यत्वा-नित्यत्वे, द्रव्यपर्याययोर्भेदाभेदोपगमात्, अन्यथोभयोरप्यसत्त्वापत्तेः, तथाहि–शक्यते वक्तुं परपरिकल्पितं द्रव्यमसत्, पर्यायव्यतिरिक्तत्वात्, बालत्वादिपर्यायशून्यवन्ध्यासुतवत्, तथा परपरिकल्पिताः पर्याया असन्तो, द्रव्यव्यतिरिक्त-त्वात्, वन्ध्यासुतगतबालत्वादिपर्यायवत्, उक्तं च–"द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्याया द्रव्यवर्जिताः। क्व कदा केन किं-रूपा, दृष्टा मानेन केन वा ? ॥ १॥" इति कृतं प्रसङ्गेन, 'से एएणट्ठेण'मित्याद्युपसंहारवाक्यं सुगमं, इह द्रव्यास्ति-कनयवादी स्वमतप्रतिष्ठापनार्थमेवमाह–"नात्यन्तासत उत्पादो नापि सतो विद्यते विनाशो वा।" "नासतो विद्यते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



शाश्वतो, नाभावो विद्यते सतः"इति वचनात्, यौ तु दृश्येते प्रतिवस्तु उत्पादविनाशौ तदाविर्भावतिरोभावमात्रं, यथा सर्पस्य उत्फणत्वविफणत्वे, तस्मात् सर्वं वस्तु नित्यमिति, एवं च तन्मतचिन्तायां संशयः–किं घटादिवत् द्रव्यार्थतया शाश्वती उत सकलकालमेवंरूपेति ? ततः संशयापनोदार्थं भगवन्तं भूयः पृच्छति–'पउमवरवेइया ण'मित्यादि, पद्मवरवेदिका णमिति पूर्ववत् भदन्त !–परमकल्याणयोगिन् कियच्चिरं–कियन्तं कालं यावद्भवति, एवंरूपा कियन्तं कालमवतिष्ठते इति, भगवानाह–गौतम ! न कदाचिन्नासीत्, सर्वदैवासीदितिभावः, अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भवति, सर्वदैव वर्त्तमानकालचिन्तायां भवतीति भावः, सर्वदैव भावात्, तथा न कदाचिन्न भविष्यति, किन्तु भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति प्रतिपत्तव्यं, अपर्यवसितत्वात्, तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं (विधाय) सम्प्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति–'भुविं च'इत्यादि, अभूच्च भवति च भविष्यति चेति, एवं त्रिकालावस्थायित्वात् ध्रुवा मेर्वादिवत् ध्रुवत्वादेव सदैव स्वस्वरूपेति नियता, नियतत्वादेव च शाश्वती-शश्वद्भवनस्वभावा शाश्वत्वादेव च सततगङ्गासिन्धुप्रवाहप्रवृत्तावपि पौण्डरीक(पद्म)ह्रद इवानेकपुद्गलविघटनेऽपि तावन्मात्रान्यपुद्गलोच्चटनसम्भवात् अक्षया-न विद्यते क्षयो–यथोक्तस्वरूपाकारपरिभ्रंशो यस्याः सा अक्षयत्वादेवाव्यया–अव्ययशब्दवाच्या, मनागपि स्वरूपचलनस्य जातुचिदप्यसम्भवात्, अव्ययत्वादेव स्वप्रमाणेऽवस्थिता मानुषोत्तरपर्वताद्बहिः समुद्रवत्, एवं स्वस्वप्रमाणे सदावस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या धर्मास्तिकायादिवत्। अथ जगत्या उपरि पद्मवरवेदिकायाः परतो यदस्ति तदावेदयति–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [५]

दीप अनुक्रम [५]

तीसे णं जगईए उप्पिं बाहिं पउमवरवेइयाए एत्थ णं महं एगे वणसंडे पण्णत्ते, देसूणाइं दो जोअणाइं विक्खंभेणं जगईसमए परिक्खेवेणं वणसंडवण्णओ णेयव्वो (सूत्रं ५)

'तीसे ण'मिति प्राग्वत्, जगत्या उपरि पद्मवरवेदिकायाः बहिः परतो यः प्रदेशस्तत्र, एतस्मिन् णमिति पूर्ववत्, महानेको वनखण्डः प्रज्ञप्तः, अनेकजातीयानामुत्तमानां महीरुहाणां समूहो वनखण्डः, यदुक्तम्–"एगजाइएहिं रुक्खेहिं वणं, अणेगजाइएहिं उत्तमेहिं रुक्खेहिं वणसंडे"इति, स च वनखण्डो देशोने किञ्चिदूने द्वे योजने विष्कम्भतो–विस्ततः, देशश्चात्र सार्द्धधनुःशतद्वयरूपोऽवगन्तव्यः, तथाहि–चतुर्योजनविस्तृतशिरस्काया जगत्या बहुमध्यभागे पञ्चधनुःशतव्यासा पद्मवरवेदिका, तस्याश्च बहिर्भागे एको वनखण्डोऽपरश्चान्तर्भागे, अतो जगतीमस्तकविस्तारो वेदिकाविस्तारधनुःशतपञ्चकोनोऽर्धीक्रियते, ततो यथोक्तं मानं लभ्यत इति, तथा जगतीसम एव जगतीसमकः–जगतीतुल्यः परिक्षेपेण–परिरयेण, वनखण्डवर्णकः सर्वोऽप्यत्र प्रथमोपाङ्गगतो नेतव्यः–स्मृतिपथं प्रापणीयः, स चायं "किण्हे किण्होभासे नीले नीलोभासे हरिए हरिओभासे सीए सीओभासे णिद्धे णिद्धोभासे तिव्वे तिव्वोभासे किण्हे किण्हच्छाए नीले नीलच्छाए हरिए हरियच्छाए सीए सीअच्छाए णिद्धे णिद्धच्छाए तिव्वे तिव्वच्छाए घणकडियच्छाए रम्मे महामेहणिकुरंबभूए, ते णं पायवा मूलमंतो कंदमंतो खंधमंतो तयामंतो सालमंतो पवालमंतो पत्तमंतो पुप्फमंतो फलमंतो बीअमंतो अणुपुव्विसुजायरुइलवट्टभावपरिणया एगखंधी अणेगसाहप्पसाहविडिमा अणेगणरवामसुप्पसारियागेज्झघणविउलवट्टखंधा

॥ २७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्रात् वनखण्डस्य वर्णनं आरभ्यते

अच्छिद्दपत्ता अविरलपत्ता अवाईणपत्ता अणईईपत्ता णिद्धूयजरढपंडुरपत्ता णवहरिअभिसंतपत्तभारंधयारगंभीरदरिसणिज्जा उवविणिग्गयनवतरुणपत्तपल्लवकोमलुज्जलचलंतकिसलयसुकुमालपवालसोभियवरंकुरग्गसिहरा णिच्चं कुसुमिया णिच्चं मउलिआ णिच्चं लवइया णिच्चं थवइया णिच्चं गुलइया णिच्चं गुच्छिया णिच्चं जमलिया णिच्चं जुअलिया णिच्चं विणमिया णिच्चं पणमिया णिच्चं कुसुमिअमउलिअलवइअथवइअगुलइअगोच्छिअजमलिअजुअलिअविणमियपणमियसुविभत्तपडिमंजरिवडिंसयधरा सुअबरहिणमयणसलागकोइलकोरगभिंगारगकोंडलकजीवंजीवगणंदीमुहकविलपिंगलक्खगकारंडवचक्कवायकलहंससारसअणेगसउणगणविरइअसद्दुन्नइअमहुरसरणाइआ सुरम्मा संपिंडिअदरियभमरमहुअरिपहकरपरिलिंतमत्तछप्पयकुसुमासवलोलमहुरगुमगुमेंतगुंजंतदेसभागा अब्भिंतरपुप्फफला बाहिरपत्तछन्ना पुप्फेहिं फलेहि य उच्छन्नपलिच्छन्ना णीरोअया अकंटया साउफला णाणाविहगुच्छगुम्ममंडवगसोहिया विचित्तसुहकेउभूया वाविपुक्खरिणीदीहियासुनिवेसियरम्मजालघरगा पिंडिमनीहारिमसुगंधिसुहसुरभिमणहरं च महया गंधद्धणिं मुअंता सुहसेउके-उबहुला अणेगरहजाणजुग्गसिबिअसंदमाणिआपविमोअणा पासादीया जाव पडिरूवा"इति (उ०सू० ३) अत्र व्याख्या–इह प्रायो मध्यमे वयसि वर्त्तमानानि पत्राणि कृष्णानि भवन्ति, ततस्तद्योगाद्वनखण्डोऽपि कृष्णः, न चोपचारमात्रतः कृष्ण इति व्यपदिश्यते, किन्तु तथाप्रतिभासनात्, तथा चाह–कृष्णावभासः, यावति भागे कृष्णानि पत्राणि सन्ति तावति भागे स वनखण्डोऽतीव कृष्णोऽवभासते–प्रतिभाति द्रष्टृजनलोचनपथ इति कृष्णोऽवभासो यस्य स कृष्णावभासः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा प्रदेशान्तरे नीलपत्रयोगाद्वनखण्डोऽपि नीलः, एवं नीलावभासः, तथा प्रदेशान्तरे हरितो हरितावभासश्च, तत्र नीलो मयूरकण्ठवत् हरितस्तु शुकपिच्छवत् हरितालाभ इति वृद्धाः, तथा प्रायो दिनकरकराणामप्रवेशाद्वृक्षाणां पत्राणि शीतानि भवन्ति तद्योगात् वनखण्डोऽपि शीतः, न चासावुपचारमात्रत इत्यत आह–शीतावभास इति, अधोवर्त्तिव्यन्तरदेवदेवीनां तद्योगशीतवातस्पर्शतः शीतो वनखण्डोऽवभासते, तथा एते कृष्णनीलहरितवर्णा यथास्वं स्वस्मिन् २ स्वरूपेऽत्यर्थमुत्कटाः स्निग्धाः भण्यन्ते तीव्राश्च ततस्तद्योगाद्वनखण्डोऽपि स्निग्धस्तीव्रश्चोक्तः, न चैतदुपचारमात्रं किन्तु प्रतिभासोऽपि, तत उक्तं–स्निग्धावभासस्तीव्रावभास इति, इह चावभासो भ्रान्तोऽपि स्याद्यथा मरुमरीचिकासु जलावभासस्ततो नावभासमात्रोपदर्श्यते (शैनेन) यथावस्थितं वस्तुस्वरूपमुपवर्णितं भवति किन्तु तथास्वरूपप्रतिपादनेन ततः कृष्णत्वादीनां तथास्वरूपप्रतिपादनार्थमनुवादपुरस्सरं विशेषणान्तरमाह–'किण्हे'इत्यादि, कृष्णो वनखण्डः, कुत इत्याह–कृष्णच्छायः, 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मिति वचनात् हेतौ प्रथमा, ततोऽयमर्थः–यस्मात् कृष्णा छाया–आकारः सर्वाविसंवादितया तस्यास्ति तस्मात् कृष्णः, एतदुक्तं भवति–सर्वाविसंवादितया तत्र कृष्ण आकार उपलभ्यते, न च भ्रान्तावभाससम्पादितसत्ताकः सर्वाविसंवादी भवति, ततस्तत्त्ववृत्त्या स कृष्णो न भ्रान्तावभासमात्रव्यवस्थापित इति, एवं नीलो नीलच्छाय इत्याद्यपि भावनीयं, नवरं शीतः शीतच्छाय इत्यत्र छायाशब्द आतपप्रतिपक्षवस्तुवाची द्रष्टव्यः, 'घण'त्ति इह शरीरस्य मध्यभागे कटिस्ततोऽन्यस्यापि मध्यभागः कटिरिव कटिरित्युच्यते, कटिस्तटमिव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कटितटं घनौ–अन्योऽन्यशाखाप्रशाखानुप्रवेशतो निबिडा कटितटे-मध्यभागे छाया यस्य(स)घनकटितटच्छायः, मध्यभागे निबिडतरच्छाय इत्यर्थः, वाचनान्तरे 'घणकडिअकडच्छाए'त्ति पाठे तु कटः सञ्जातोऽस्येति कटितः कटान्तरेणोपर्यावृत इत्यर्थः कटितश्चासौ कटश्च कटितकटः, घना निबिडा कटितकटस्येवाधोभूमौ छाया यस्य स घनकटितकटच्छायः, अत एव रम्यो–रमणीयः, तथा महान्–जलभारावनतः प्रावृट्कालभावी यो मेघनिकुरम्बो–मेघसमूहस्तं भूतो–गुणैः प्राप्तो महामेघवृन्दोपम इत्यर्थः, 'ते णं पायव'त्ति यत्सम्बन्धी वनखण्डस्ते पादपाः 'मूलमन्त'इत्यादीनि दश पदानि, तत्र मूलानि प्रभूतानि दूरावगाढानि च सन्त्येषामिति मूलवन्तः, यानि कन्दस्याधः तानि मूलानि तेषामुपरिवर्त्तिनः कन्दाः स्कन्धः–स्थुडं यतो मूलशाखाः प्रभवन्ति त्वक्–छल्ली शाला–शाखा प्रवालः–पल्लवाङ्कुरः, पत्रपुष्पफलबीजानि प्रसिद्धानि, सर्वत्रातिशायने क्वचिद् भूम्नि वा मतुपू प्रत्ययः, 'अणुपुव्वि'त्ति आनुपूर्व्या–मूलादिपरिपाट्या सुष्ठु जाता आनुपूर्वीसुजाताः रुचिराः–स्निग्धतया दीप्यमानच्छविमन्तः तथा वृत्तभावेन परिणता वृत्तभावपरिणताः, किमुक्तं भवति ?–एवं नाम सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च शाखादिभिः प्रसृता यथा वर्त्तुलाकृतयो जाता इति, ततः पदत्रयस्य कर्म्मधारयः, तथा ते पादपाः प्रत्येकमेकस्कन्धाः, प्राकृते चास्य स्त्रीत्वमिति एगक्खंधी इति सूत्रपाठः, अनेकाभिः शाखाभिः प्रशाखाभिश्च मध्यभागे विटपो–विस्तारो येषां ते तथा, तथा तिर्यग्बाहुद्वयप्रसारणप्रमाणो व्यामः अनेकैः नरव्यामैः–पुरुषव्यामैः सुप्रसारितैरग्राह्यः–अमेयो घनो–निबिडो विपुलो–विस्तीर्णः स्कन्धो येषां ते तथा, अच्छिद्राणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

पत्राणि येषां तेऽच्छिद्रपत्राः, किमुक्तं भवति ?–न तेषां पत्रेषु वातदोषतः कालदोषतो वा गड्डुरिकादिरीतिरूपजायते येन तेषु छिद्राण्यभविष्यन्नित्यच्छिद्रपत्राः, अथवा एवं नामान्योऽन्यं शाखाप्रशाखानुप्रवेशात् पत्राणि पत्राणामुपरि जातानि येन मनागप्यन्तरालरूपं छिद्रं नोपलक्ष्यत इति, अच्छिद्रपत्राः कुत इत्याह–'अविरलपत्ता'इति, अत्र हेतौ प्रथमा, ततोऽयमर्थः–यतोऽविरलपत्रा अतः अच्छिद्रपत्राः, अविरलपत्रा अपि कुत इत्याह–'अवाईण'त्ति वातीनानि–वातोपहतानि वातेन पातितानीत्यर्थः, न वातीनानि अवातीनानि पत्राणि येषां ते तथा, किमुक्तं भवति ?–न तत्र प्रबलो वातः खरपरुषो वाति येन पत्राणि त्रुटित्वा भूमौ पतन्ति, ततोऽवातीनपत्रत्वादविरलपत्रा इति, अच्छिद्रपत्रा इत्यत्र प्रथमव्याख्यापक्षे हेतुमाह–'अणीइपत्ता'इति न विद्यते ईतिः–गड्डुरिकादिरूपा येषु तान्यनीतीनि अनीतीनि पत्राणि येषां ते तथा, अनीतिपत्रत्वाच्चाच्छिद्रपत्राः, तथा निर्द्धूतानि-अपनीतानि जरठानि-पुराणत्वात् कर्कशानि तत एव पाण्डुराणि पत्राणि येषां ते तथा, अयमाशयः–यानि वृक्षस्थानि उक्तस्वरूपाणि पत्राणि तानि वातेन निर्द्धूय २ भूमौ पात्यन्ते ततोऽपि च प्रायो निर्द्धूय निर्द्धूयान्यत्रापसार्यन्त इति, तथा नवेन–सद्यस्केन हरितेन–शुकपिच्छाभेन 'भिसन्त'त्ति भासमानेन स्निग्धत्वच्चा दीप्यमानेन पत्रभारेण–दलसञ्चयेन यो जातोऽन्धकारस्तेन गम्भीरा–अलब्धमध्यभागाः सन्तो दर्शनीयाः नवहरितभासमानपत्रभारान्धकारगम्भीरदर्शनीयाः, तथा उपविनिर्गतैः–निरन्तरविनिर्गतैर्नवतरुणपत्रपल्लवैस्तथा कोमलैः-मनोज्ञैरुज्ज्वलैः शुद्धैश्चलद्भिः-ईषत्कम्पमानैः किशलयैः–अवस्थाविशेषोपेतैः पल्लवविशेषैस्तथा सुकुमारैः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवालैः-पल्लवाङ्कुरैः शोभितानि वराङ्कुराणि-वराङ्कुरोपेतानि अग्रशिखराणि येषां ते तथा, इह चाङ्कुरप्रवालयोः कालकृतावस्थाविशेषाद्विशेषो भावनीय इति, 'णिच्चं कुसुमिया'इत्यादिकं 'वडेंसयधरा'इत्यन्तं सूत्रं पूर्ववद् व्याख्येयं, तथा शुकबर्हिणमदनशलाकाकोकिलकोरकभृङ्गारककोण्डलकजीवंजीवकनन्दीमुखकपिलपिङ्गलाक्षकादण्डचक्रवाककलहंससारसाख्यानामनेकेषां शकुनिगणानां–पक्षिकुलानां मिथुनैः–स्त्रीपुंसयुग्मैर्विरचितं शब्दोन्नतिकं च–उन्नतशब्दकं मधुरस्वरं च नादितं–लपितं येषु ते तथा, अत एव सुरम्या–अतिमनोज्ञाः, अत्र शुकाः-कीराः बर्हिणा-मयूराः मदनशलाकाः-सारिकाः कोकिलचक्रवाककलहंससारसाः प्रतीताः, शेषास्तु जीवविशेषाः लोकतोऽवसेयाः, संपिंडिता-एकत्र पिण्डीभूता हृसा–मदोन्मत्ततया दर्प्पाध्माता भ्रमरमधुकरीणां पहकराः–संघाताः यत्र ते तथा, तथा परिलीयमाना–अन्यत आगत्यागत्याश्रयन्तो मत्ताः षट्पदाः कुसुमासवलोलाः–किंजल्कपानलम्पटा मधुरं गुमगुमायमाना गुञ्जन्तश्च–शब्दविशेषं विदधाना देशभागेषु येषां ते तथा, गमकत्वादेवमपि समासः, ततो भूयः पूर्वपदेन सह विशेषणसमासः, तथा अभ्यन्तराणि–अन्तर्वर्त्तीनि पुष्पफलानि येषां ते तथा तथा बहिः पत्रैः छन्ना–व्याप्ताः, तथा पत्रैश्च पुष्पैश्च छन्नपरिच्छन्ना–एकार्थिकशब्दद्वयोपादानात् अत्यन्तमाच्छादिताः, तथा नीरोगका–रोगवर्जिता वृक्षचिकित्साशास्त्रेषु येषां प्रतिक्रिया तैः रोगैः स्वत एव विरहिता इत्यर्थः, तथाऽकण्टकाः न तेषु मध्ये बदर्यादयः सन्तीतिभावः, तथा स्वादूनि फलानि येषां ते स्वादुफलाः, स्निग्धफला इत्यपि क्वचित्, नानाविधैर्गुच्छैः–वृन्ताकीप्रभृतिभिर्गुल्मैः-नवमालिकादिभि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मण्डपकैः-द्राक्षामण्डपकैः शोभिताः उक्तरूपैर्गुच्छादिभिस्तं संश्रिता इत्यर्थः, तथा 'विचित्तसुहकेउभूया'इति विचित्रान् शुभान् केतून्–ध्वजान् प्राप्ताः 'विचित्तसुहकेउबहुला' इतिपाठान्तरं, तत्र विचित्रैः शुभैः–मङ्गलभूतैः केतुभिः-ध्वजैर्बहुला-व्याप्ताः, तथा वाप्यश्चतुरस्राकारास्ता एव वृत्ताः-पुष्करिण्यः दीर्घिका—ऋजुसारिण्यः, तासु सुष्ठु निवेशितानि रम्याणि जालगृहकाणि यत्र ते तथा, अयमर्थः-यत्र ते वृक्षा आसन् तत्र वाप्यादिषु गवाक्षवन्ति गृहाणि व्यन्तरमिथुनानां जलकेलिकृते बहूनि सन्तीति, पिंडिमनिर्हारिमा-पुद्गलसमूहरूपां दूरदेशगामिनीं च सुगन्धि-सद्गन्धिकां शुभसुरभिभ्यो गन्धान्तरेभ्यः सकाशान्मनोहरा या सा तथा तां च महता–मोचनप्रकारेण प्राकृतत्वाद्वा द्वितीयार्थे तृतीया महतीमित्यर्थः गन्धघ्राणिं–यावद्भिर्गन्धपुद्गलैर्घ्राणेन्द्रियस्य तृप्तिरुपजायते तावती पुद्गलसंहतिरुपचाराद् गन्धघ्राणिरित्युच्यते तां निरन्तरं मुञ्चन्त इत्यर्थः, तथा शुभाः–प्रधानाः सेतवो–मार्गाः आलवालपाल्यो वा केतवो-ध्वजा बहुला-अनेकरूपा येषां ते तथा, रथाः-क्रीडारथादयः यानानि-उक्तवक्ष्यमाणातिरिक्तानि शकटादीनि-वाहनानि युग्यानि-गोल्लविषयप्रसिद्धानि द्विहस्तप्रमाणानि चतुरस्रवेदिकायुतानि जम्पानानि शिबिकाः-कूटाकारेणाच्छादिताः जम्पानविशेषाः स्यन्दमानिकाः-पुरुषप्रमाणजम्पानविशेषाः, अनेकेषां रथादीनामधोऽतिविस्तीर्णत्वात् प्रविमोचनं येषु ते तथा, 'पासादीया'इत्यादि प्राग्वत् । अथ वनखण्डस्य भूमिभागवर्णनमाह–

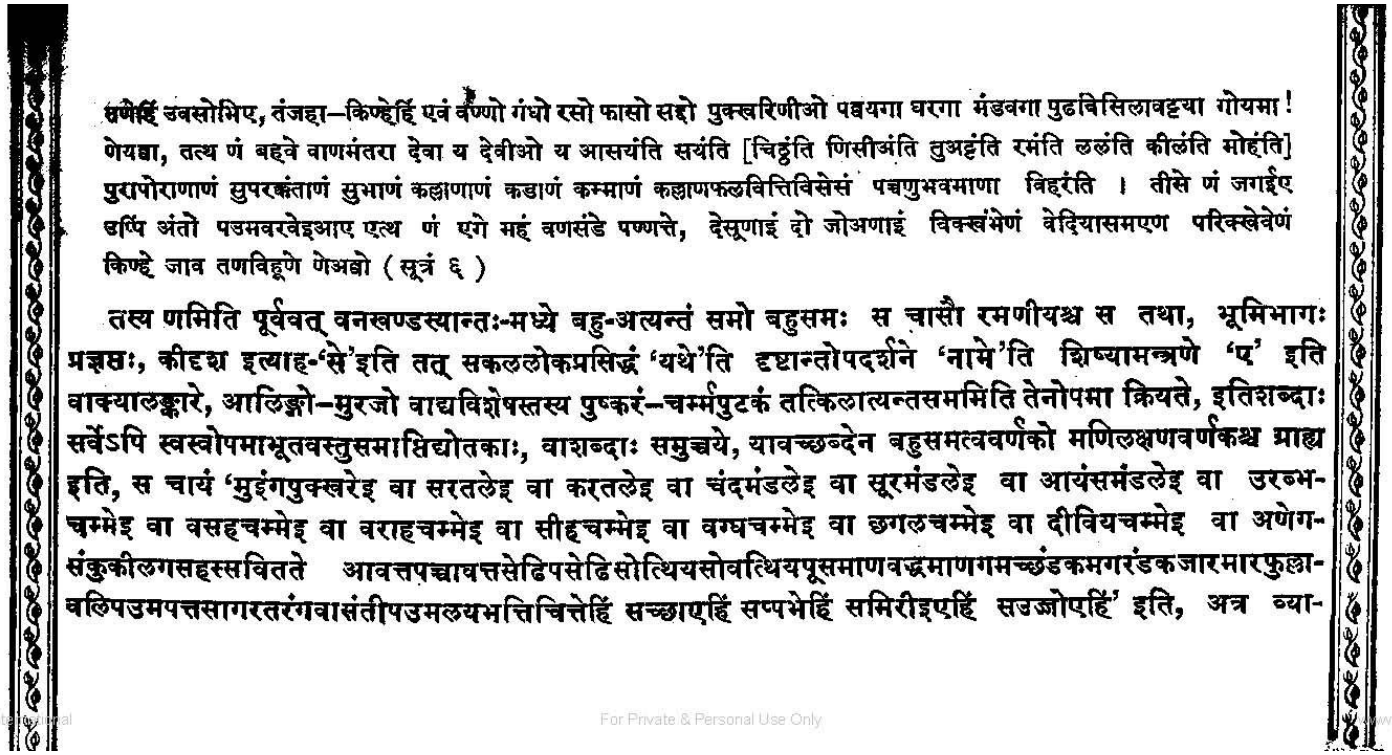
तस्स णं वणसंडस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६]

दीप अनुक्रम [६]



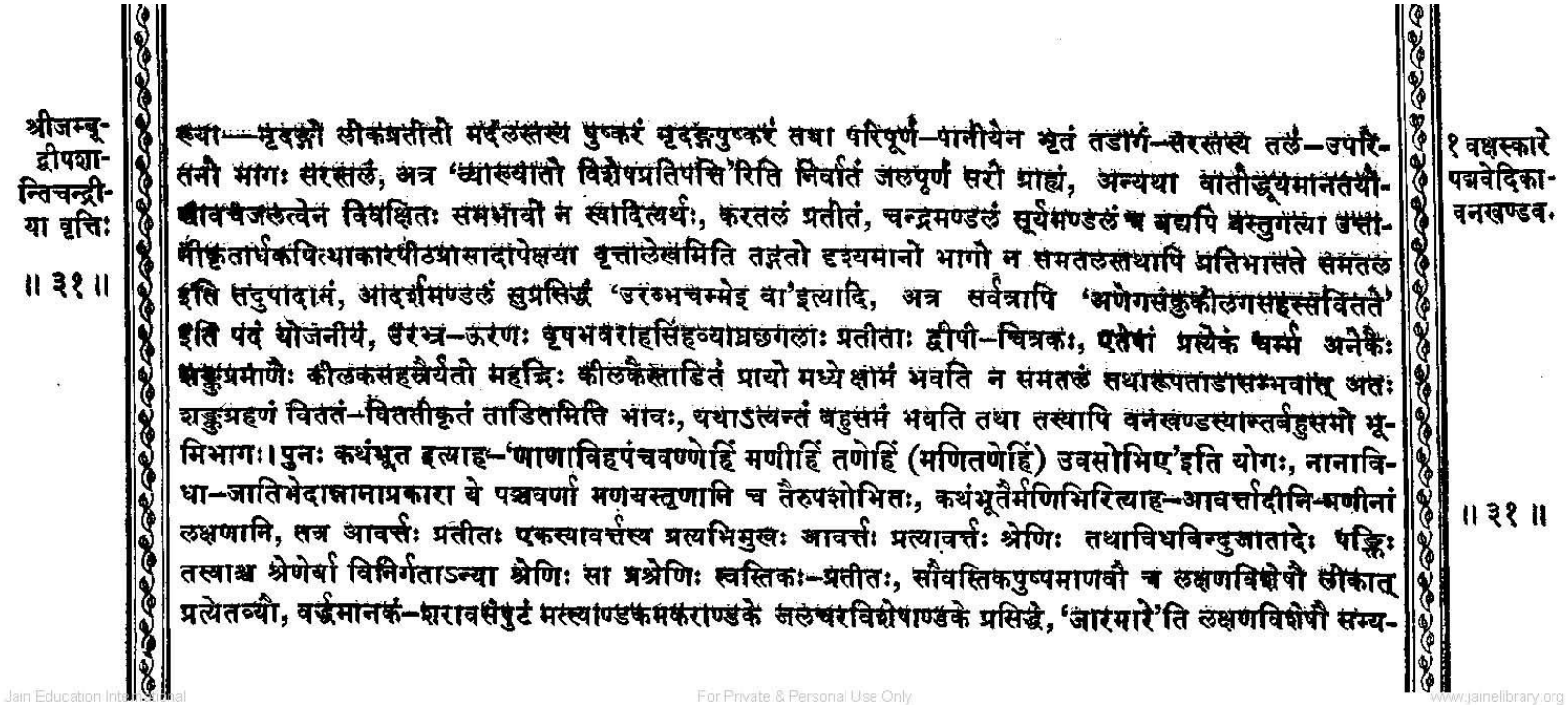
सणेहिं उवसोभिए, तंजहा–किण्हेहिं एवं वण्णो गंधो रसो फासो सद्दो पुक्खरिणीओ पवयगा घरगा मंडवगा पुढविसिलावट्टया गोयमा! णेयव्वा, तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति सयंति [चिट्ठंति णिसीअंति तुअट्टंति रमंति ललंति कीलंति मोहंति] पुरापोराणाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणफलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरंति । तीसे णं जगईए उप्पिं अंतो पउमवरवेइआए एत्थ णं एगे महं वणसंडे पण्णत्ते, देसूणाइं दो जोअणाइं विक्खंभेणं वेदियासमएण परिक्खेवेणं किण्हे जाव तणविहूणे णेअव्वो (सूत्रं ६)

तस्य णमिति पूर्ववत् वनखण्डस्यान्तः-मध्ये बहु-अत्यन्तं समो बहुसमः स चासौ रमणीयश्च स तथा, भूमिभागः प्रज्ञप्तः, कीदृश इत्याह-'से'इति तत् सकललोकप्रसिद्धं 'यथे'ति दृष्टान्तोपदर्शने 'नामे'ति शिष्यामन्त्रणे 'ए' इति वाक्यालङ्कारे, आलिङ्गो–मुरजो वाद्यविशेषस्तस्य पुष्करं–चर्म्मपुटकं तत्किलात्यन्तसममिति तेनोपमा क्रियते, इतिशब्दाः सर्वेऽपि स्वस्वोपमाभूतवस्तुसमाप्तिद्योतकाः, वाशब्दाः समुच्चये, यावच्छब्देन बहुसमत्ववर्णको मणिलक्षणवर्णकश्च ग्राह्य इति, स चायं 'मुइंगपुक्खरेइ वा सरतलेइ वा करतलेइ वा चंदमंडलेइ वा सूरमंडलेइ वा आयंसमंडलेइ वा उरब्भचम्मेइ वा वसहचम्मेइ वा वराहचम्मेइ वा सीहचम्मेइ वा वग्घचम्मेइ वा छगलचम्मेइ वा दीवियचम्मेइ वा अणेगसंकुकीलगसहस्सवितते आवत्तपच्चावत्तसेढिपसेढिसोत्थियसोवत्थियपूसमाणवद्धमाणगमच्छंडकमगरंडकजारमारफुल्लावलिपउमपत्तसागरतरंगवासंतीपउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं सप्पभेहिं समिरीइएहिं सउज्जोएहिं' इति, अत्र व्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ वनखण्ड-भूमिभागस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [६] दीप अनुक्रम [६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः



श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ ३१ ॥

स्था—मृदङ्गो लोकप्रतीतो मर्दलस्तस्य पुष्करं मृदङ्गपुष्करं तथा परिपूर्णः—पानीयेन भृतं तडागं—सरस्तस्य तलं—उपरि-तनो भागः सरस्तलं, अत्र 'व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति'रिति निर्वातं जलपूर्णं सरो ग्राह्यं, अन्यथा वातोद्धूयमानतयो-र्भावैजल्यत्वेन विवक्षितः समभावो न स्यादित्यर्थः, करतलं प्रतीतं, चन्द्रमण्डलं सूर्यमण्डलं च यद्यपि वस्तुगत्या उत्ता-नीकृतार्धकपित्थाकारपीठप्रासादापेक्षया वृत्तालेखमिति तद्गतो दृश्यमानो भागो न समतलस्तथापि प्रतिभासते समतल इति तदुपादानं, आदर्शमण्डलं सुप्रसिद्धं 'उरब्भचम्मेइ वा'इत्यादि, अत्र सर्वत्रापि 'अणेगसंकुकीलगसहस्सवितते' इति पदं योजनीयं, उरभ्र—ऊरणः वृषभवराहसिंहव्याघ्रछगलाः प्रतीताः द्वीपी—चित्रकः, एतेषां प्रत्येकं चर्म्म अनेकैः शङ्कुप्रमाणैः कीलकसहस्रैर्यतो महद्भिः कीलकैस्ताडितं प्रायो मध्ये क्षामं भवति न समतलं तथारूपताडासम्भवात् अतः शङ्कुग्रहणं विततं—वितनीकृतं ताडितमिति भावः, यथाऽत्यन्तं बहुसमं भवति तथा तस्यापि वनखण्डस्याभ्यन्तरबहुसमो भू-मिभागः। पुनः कथंभूत इत्याह—'णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं तणेहिं (मणितणेहिं) उवसोभिए'इति योगः, नानावि-धा—जातिभेदान्नानाप्रकारा ये पञ्चवर्णा मणयस्तृणानि च तैरुपशोभितः, कथंभूतैर्मणिभिरित्याह—आवर्त्तादीनि-मणीनां लक्षणानि, तत्र आवर्त्तः प्रतीतः एकस्यावर्त्तस्य प्रत्यभिमुखः आवर्त्तः प्रत्यावर्त्तः श्रेणिः तथाविधबिन्दुजातादेः पङ्क्तिः तस्याश्च श्रेणेर्या विनिर्गताऽन्या श्रेणिः सा प्रश्रेणिः स्वस्तिकः—प्रतीतः, सौवस्तिकपुष्पमाणवौ च लक्षणविशेषौ लोकात् प्रत्येतव्यौ, वर्द्धमानकं—शरावसंपुटं मत्स्याण्डकमकराण्डके जलचरविशेषाण्डके प्रसिद्धे, 'जारमारे'ति लक्षणविशेषौ सम्य-

१ वक्षस्कारे पद्मवेदिका-वनखण्डव.

॥ ३१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ वक्षस्कारे पद्मवरवेदिका एवं वनखण्डस्य वर्णनं क्रियते

मणिलक्षणवेदिनो लोकादुद्देतव्यौ, पुष्पावलिपद्मपत्रसागरतरङ्गवासन्तीलतापद्मलताः प्रतीताः, तासां भक्त्या–विच्छित्त्या चित्रं–आलेखो येषु ते तथा, किमुक्तं भवति ?–आवर्त्तादिलक्षणोपेतैः तथा सती–शोभना छाया–शोभा येषां ते तथा तैः, 'सप्पभेहिं' इत्यादि विशेषणत्रयं प्राग्वत्, एवंभूतैः नानाविधैः पञ्चवर्णैः मणिभिस्तृणैश्चोपशोभितः, तद्यथेत्युपदर्शने, कृष्णैः–कृष्णवर्णोपेतैः एवं 'वण्णओ'त्ति 'एवं' अमुना प्रकारेण शेषोऽपि नीलादिको वर्णो मणितृणविशेषणतया योजनीयो यथा नीलवर्णैर्लोहितवर्णैः हारिद्रवर्णैः शुक्लवर्णैश्चेति, तथा तेषां मणितृणानां गन्धः स्पर्शः शब्दश्च नेतव्यः, तथा तस्य वनखण्डस्य भूमिभागे पुष्करिण्यः पर्वतका गृहकाणि मण्डपकाः पृथिवीशिलापट्टकाश्च नेतव्याः–बुद्धिपथं प्रापणीयाः, भवन्ति हि सूत्रकाराणां गतैवैचित्र्यादीदृशानि लाघवार्थकानि एवं जाव तहेव इच्चाइं वण्णओ सेसं जहा' इत्याद्यनेकप्रकारकपदाभिव्यञ्जकानि अतिदेशरूपाणि सूत्राणि, यदाह–"कत्थइ देसग्गहणं कत्थइ भण्णंति निरवसेसाइं । उक्कमकमजुत्ताइं कारणवसओ निरुत्ताइं ॥१॥" इति, अत्रैतत्सूत्राभिप्रायाभिव्यक्तये जीवाभिगमादिग्रन्थोक्तः कियान् पाठो लिख्यते, 'तत्थ णं जे ते किण्हा मणी तणा य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं०–से जहानामए जीमूतेइ वा अंजणेइ वा खंजणेइ वा कज्जलेइ वा मसीइ वा मसीगुलियाइ वा गवलेइ वा गवलगुलियाइ वा भमरेइ वा भमरावलीइ वा भमरपत्तंसारेइ वा जंबूफलेइ वा अहारिट्ठेइ वा परपुट्ठेइ वा गएइ वा गयकलभेइ वा किण्ह-

१ कुत्रचिद्देशग्रहणं कुत्रचित् भण्यन्ते निरवशेषाणि । उत्क्रमक्रमयुक्तानि कारणवशतः सूत्राणि ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्पेइ वा किण्हकेसरेइ वा आगासथिग्गलेइ वा किण्हासोएइ वा किण्हकणवीरेइ वा किण्हबंधुजीवेइ वा, भवे एयारूवे ?, गोअमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ते णं कण्हा मणी तणा य इत्तो इट्ठतरिया चेव कंततराए चेव मणुण्णतराए चेव मणामतराए चेव वण्णेणं पण्णत्ता"इति, अत्र व्याख्या–'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र–तेषां पञ्चवर्णानां मणीनां तृणानां च मध्ये णमिति प्राग्वत्, ये ते कृष्णा मणयस्तृणानि च, ये इत्येव सिद्धे ये ते इति वचनं भाषाक्रमार्थं, 'तेसि णमित्यादि से जहाणामए' इत्यन्तं च सूत्रं पूर्ववत्, जीमूतो–मेघः, स चेह प्रावृट्प्रारम्भसमये जलपूर्णो वेदितव्यः, तस्यैव प्रायोऽतिकालिमसम्भवात्, इतिशब्द उपमाभूतवस्तुनामपरिसमाप्तिद्योतकः वाशब्द उपमानान्तरापेक्षया समुच्चये, एवं सर्वत्र इतिवाशब्दौ द्रष्टव्यौ, अञ्जनं–सौवीराञ्जनं रत्नविशेषो वा खञ्जनं-दीपकमल्लिकामलः स्नेहाभ्यक्तशकटाक्षघर्षणोद्भवमित्यपरे कज्जलं–दीपशिखापतितं मषी-तदेव कज्जलं ताम्रभाजनादिषु सामग्रीविशेषेण घोलितं मषीगुलिका–घोलितकज्जलगुटिका गवलं–माहिषं शृङ्गं तदपि चापसारितोपरितनत्वग्भागं ग्राह्यं, तत्रैव विशिष्टस्य कालिम्नः सम्भवात्, तथा तस्यैव माहिषशृङ्गस्य निबिडतरसारनिर्वर्त्तिता गुटिका गवलगुटिका भ्रमरः–प्रतीतः भ्रमरावली–भ्रमरपङ्क्तिः तथा भ्रमरपत्रसारः–भ्रमरस्य पत्रं–पक्षस्तस्य सारः–तदन्तर्गतो विशिष्टश्यामतोपचितः प्रदेशः जम्बूफलं–प्रतीतं आर्द्रारिष्टः–कोमलकाकः परपुष्टः–कोकिलः गजो गजकलभश्च प्रसिद्धः कृष्णसर्पः–कृष्णवर्णः सर्पजातिविशेषः कृष्णकेसरः–कृष्णबकुलः 'आकाशथिग्गलं' शरदि मेघमुक्तमाकाशखण्डं, तद्धि कृष्णमतीव प्रतिभातीति तदुपादानं, कृष्णाशोककृष्णकणवीरकृष्णबन्धु-

॥ ३२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवाः अशोककणवीरबन्धुजीववृक्षभेदाः, अशोकादयो हि पञ्चवर्णा भवन्ति ततः शेषव्युदासार्थं कृष्णग्रहणं, एतावत्युक्ते भगवन्तं गौतमः पृच्छति–'भवे एयारूवे' इति भवेत् मणीनां तृणानां च कृष्णो वर्ण एतद्रूपो–जीमूतादिरूपः, काकुपाठाच्चास्य प्रश्नसूत्रता वेदितव्या, भगवानाह–गौतम ! नायमर्थः समर्थः–नायमर्थ उपपन्नो, यदुत–एवंभूतः कृष्णो वर्णो मणीनां तृणानां च, किन्तु ते कृष्णा मणयस्तृणानि च इतो–जीमूतादेः सकाशादिष्टतरका एव–कृष्णेन वर्णेन ईप्सिततरका एव, तत्र किञ्चिदकान्तमपि केषाञ्चिदिष्टतरं भवति ततोऽकान्तताव्यवच्छित्यर्थमाह–कान्ततरका एव–अतिस्निग्धमनोहारिकालिमोपचितया जीमूतादेः कमनीयतरका एव, अत एव मनोज्ञतरका–मनसा ज्ञायन्ते अनुकूलतया स्वप्रवृत्तिविषयीक्रियन्ते इति मनोज्ञा–मनोऽनुकूलाः ततः प्रकर्षविवक्षायां तरप्प्रत्ययः, तत्र मनोज्ञमपि किञ्चिन्मध्यमं भवति ततः सर्वोत्कर्षप्रतिपादनार्थमाह–मनआपतरका एव–द्रष्टॄणां मनांसि आप्नुवन्ति–आत्मवशतां नयन्तीति मनआपाः ततः प्रकर्षविवक्षायां तरप्प्रत्ययः, प्राकृतत्वात् पकारस्य मकारे मणामतरा इति भवति, अथवा कोऽपि शब्दः कस्यापि प्रसिद्धो भवतीति नानादेशजविनेयानुग्रहार्थं एकार्थिका एवैते शब्दा इति । 'तत्थ णं जे ते नीलगा मणी तणा य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते तंजहा–से जहा णामए भिंगेइ वा भिंगपत्तेइ वा चासेइ वा चासपिच्छेइ वा सुएइ वा सुअपिच्छेइ वा णीलीइ वा णीलीभेएइ वा नीलीगुलियाइ वा सामाएइ वा उच्चंतएइ वा वणराईइ वा हलधरवसणेइ वा मोरगीवाइ वा पारेवयगी वाइ वा अयसिकुसुमेइ वा बाणकुसुमेइ वा अंजणकेसियाकुसु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

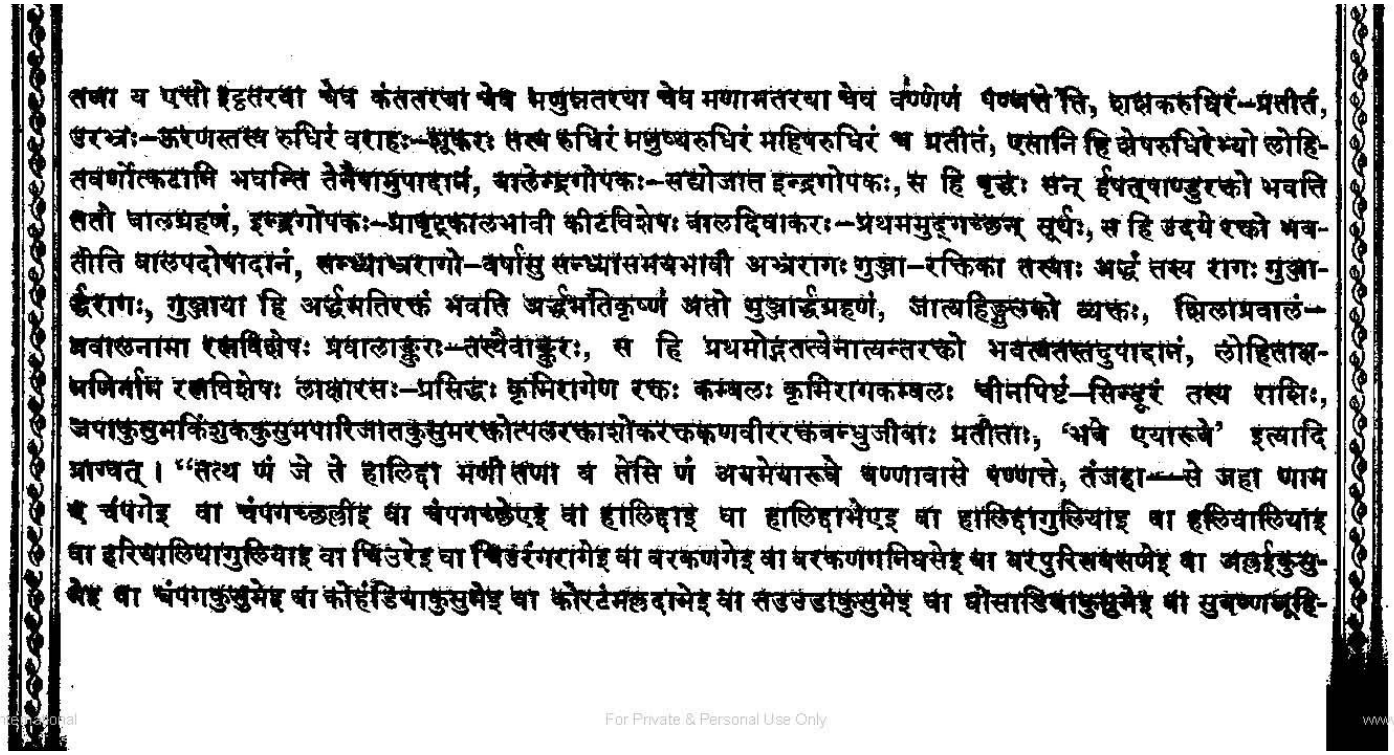
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६]

दीप अनुक्रम [६]

भेइ वा णीलुप्पलेइ वा णीलासोएइ वा णीलकणवीरेइ वा णीलबंधुजीवेइ वा, भवे एयारूवे ?, गोअमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ते णं णीला मणी तत्तो य इट्ठतरया चेव कंततरया चेव मणुण्णतरया चेव मणामतरया चेव वण्णेणं पण्णत्ते'त्ति, पद्मगोअमा प्राग्वत्, भृङ्गः–कीटविशेषः पक्ष्मलः भृङ्गपत्रं–तस्यैव कीटविशेषस्य पक्ष्म शुकः–कीरः शुकपिच्छं–शुकस्य पक्षं प्रसिद्धं चाषः–पक्षिविशेषः चाषपिच्छं-तस्यैव पिच्छं नीली–प्रसिद्धा नीलीभेदो–नीलीच्छेदः नीलीगुलिका–नीलीगुटिका श्यामाको–धान्यविशेषः, प्रज्ञापनायां तु 'सामा'इति पाठः, तत्र श्यामा–प्रियङ्गुः, उच्चंतगो–दन्तरागः वनराजी–प्रतीता, हलधरो–बलभद्रः तस्य वसनं, तच्च किल नीलं भवति, सर्वदैव बलो गौरशरीरत्वाच्छोभाकारीति नीलमेव वस्त्रं परिधत्ते, मयूरग्रीवापारापतग्रीवाअलसीकुसुमवाणकुसुमानि प्रतीतानि, अञ्जनकेशिका–वनस्पतिविशेषः तस्याः कुसुमं नीलोत्पलं–कुवलयं नीलाशोकनीलकणवीरनीलबन्धुजीवा अशोकादिवृक्षविशेषाः, 'भवे एयारूवे' इत्यादि प्राग्वत् व्याख्येयं । 'तत्थ णं जे ते लोहिअगा मणी तणा य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते तं०–से जहा णामए ए ससगरुहिरेइ वा उरब्भरुहिरेइ वा वराहरुहिरेइ वा मणुस्सरुहिरेइ वा महिसरुहिरेइ वा बालिंदगोवेइ वा बालदिवायरेइ वा संझब्भरागेइ वा गुंजद्धरागेइ वा जायहिंगुलएइ वा सिलप्पवालेइवा पवालंकुरेइ वा लोहिअक्खमणीइ वा लक्खारसेइ वा किमिरागकंबलेइ वा चीणपिट्ठरासीइ वा जासुअणकुसुमेइ वा किंसुअकुसुमेइ वा पालियायकुसुमेइ वा रत्तुप्पलेइ वा रत्तासोएइ वा रत्तकणवीरेइ वा रत्तबंधुजीवेइ वा, भवे एयारूवे ?, गोअमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ते णं लोहिअगा मणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



तथा य एतौ इष्टतरौ चेव कंततरौ चेव मनुज्ञतरौ चेव मणामतरौ चेव वर्णेन पण्णत्ते इति, शशकरुधिरं–प्रतीतं, उरभ्रः–ऊरणस्तस्य रुधिरं वराहः–शूकरः तस्य रुधिरं मनुष्यरुधिरं महिषरुधिरं च प्रतीतं, एतानि हि शेषरुधिरेभ्यो लोहितवर्णोत्कटानि भवन्ति तेनैषामुपादानं, बालेन्द्रगोपकः–सद्योजात इन्द्रगोपकः, स हि वृद्धः सन् ईषत्पाण्डुरको भवति ततो बालग्रहणं, इन्द्रगोपकः–प्रावृट्कालभावी कीटविशेषः बालदिवाकरः–प्रथममुद्गच्छन् सूर्यः, स हि उदये रक्तो भवतीति बालपदोपादानं, सन्ध्याभरागो–वर्षासु सन्ध्यासमयभावी अभ्रारागः गुञ्जा–रक्तिका तस्याः अर्द्धं तस्य रागः गुञ्जार्द्धरागः, गुञ्जाया हि अर्द्धमतिरक्तं भवति अर्द्धमतिकृष्णं अतो गुञ्जार्द्धग्रहणं, जात्यहिङ्गुलको व्यक्तः, शिलाप्रवालं–प्रवालनामा रत्नविशेषः प्रवालाङ्कुरः–तस्यैवाङ्कुरः, स हि प्रथमोद्गतत्वेनात्यन्तरक्तो भवतीतस्तदुपादानं, लोहिताक्षमणिर्नाम रत्नविशेषः लाक्षारसः–प्रसिद्धः कृमिरागेण रक्तः कम्बलः कृमिरागकम्बलः चीनपिष्टं–सिन्दूरं तस्य राशिः, जपाकुसुमकिंशुककुसुमपारिजातकुसुमरक्तोत्पलरक्ताशोकरक्तकणवीररक्तबन्धुजीवाः प्रतीताः, 'भवे एयारूवे' इत्यादि प्राग्वत्। "तत्थ णं जे ते हालिद्दा मणी तणा य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–से जहा णामए चंपगेइ वा चंपगच्छल्लीइ वा चंपगच्छेएइ वा हालिद्दाइ वा हालिद्दाभेएइ वा हालिद्दागुलियाइ वा हलियालियाइ वा हरियालियागुलियाइ वा चिउरेइ वा चिउरंगरागेइ वा वरकणगेइ वा वरकणगनिघसेइ वा वरपुरिसवसणेइ वा अल्लईकुसुमेइ वा चंपगकुसुमेइ वा कोहंडियाकुसुमेइ वा कोरंटमल्लदामेइ वा तडउडाकुसुमेइ वा घोसाडियाकुसुमेइ वा सुवण्णजूहि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

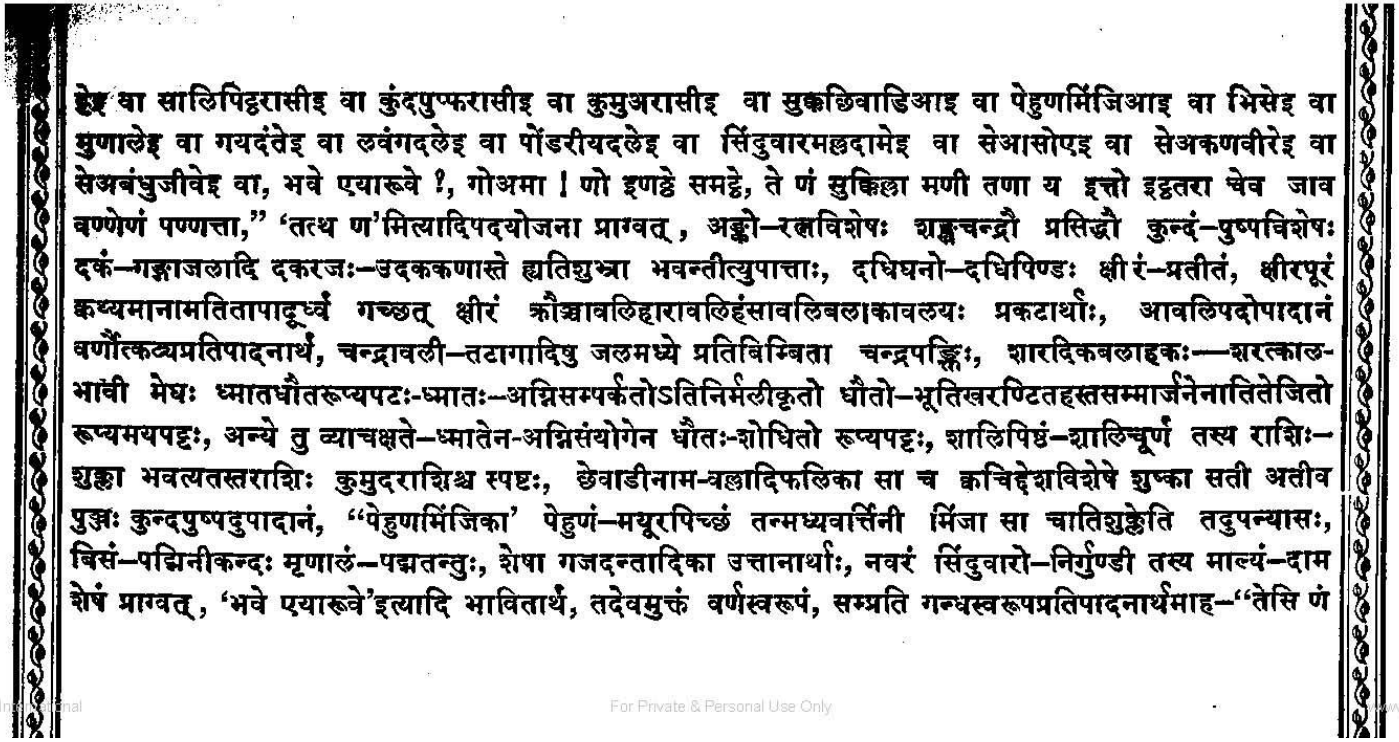
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६]

दीप अनुक्रम [६]

याकुसुमेइ वा सुहिरण्णियाकुसुमेइ वा बीअगकुसुमेइ वा पीयासोएइ वा पीतकणवीरेइ वा पीअबंधुजीवेइ वा, भवे एआरूवे ?, गोअमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ते णं हालिद्दा मणी तणा य एत्तो इट्ठतरा चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ता' 'तत्रे'त्यादि पदयोजना प्राग्वत्, चम्पकः–सामान्यतः सुवर्णचम्पको वृक्षः, चम्पकच्छल्ली–सुवर्णचंपकत्वक् चम्पकभेदः–सुवर्णचम्पकच्छेदः हरिद्रा व्यक्ता, हरिद्राभेदो-हरिद्राच्छेदः हरिद्रागुलिका–हरिद्रासारनिर्वर्त्तिता गुटिका हरितालिका–पृथिवीविकाररूपा प्रतीता हरितालिकाभेदो–हरितालिकाच्छेदः हरितालिकागुलिका–हरितालिकासारनिर्वर्त्तिता गुटिका चिकुरो-रागद्रव्यविशेषः, चिकुराङ्गरागः–चिकुरसंयोगनिमित्तो वस्त्रादौ रागः, वरं–प्रधानं यत् कनकं पीतसुवर्णमित्यर्थः वरकनकं तस्य निघर्षः निकषो वा–कषपट्टके रेखारूपः वरपुरुषो–वासुदेवस्तस्य वसनं–वस्त्रं, तद्धि किल पीतमेव भवतीति तदुपादानं, अल्लकीकुसुमं लोकतोऽवसेयं, चम्पककुसुमं सुवर्णचम्पककुसुमं कूष्माण्डिकाकुसुमं-पुंस्फलीपुष्पं, कोरण्टकमाल्यदाम–कोरण्टकः पुष्पजातिविशेषः स च कण्टासेलिआख्यः सम्भाव्यते तस्य मालायै हितानीति कृत्वा माल्यानि-पुष्पाणि तेषां दाम–माला, समुदाये हि वर्णौत्कव्यं भवतीति दामग्रहणं, तडवडा–आउली तस्याः कुसुमं तडवडाकुसुमं, तथा घोषातकीकुसुमं सुवर्णयूथिकाकुसुमं च प्रतीतं, सुहिरण्यिका–वनस्पतिविशेषः, बीअको वृक्षविशेषः प्रतीतस्तस्य कुसुमं, पीताशोकादयो व्यक्ताः, शेषं पूर्ववत् । "तत्थ णं जे ते सुक्किला मणी य तणा य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–से जहा णाम ए अंकेइ वा खीरेइ वा खीरपूरेइ वा कोंचावलीइ वा हारावलीइ वा बलायावलीइ वा सारइअबलाहएइ वा धंतधोअरुप्पप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



छेइ वा सालिपिट्ठरासीइ वा कुंदपुप्फरासीइ वा कुमुअरासीइ वा सुक्कछिवाडिआइ वा पेहुणमिंजिआइ वा भिसेइ वा मुणालेइ वा गयदंतेइ वा लवंगदलेइ वा पोंडरीयदलेइ वा सिंदुवारमल्लदामेइ वा सेआसोएइ वा सेअकणवीरेइ वा सेअबंधुजीवेइ वा, भवे एयारूवे ?, गोअमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ते णं सुक्किला मणी तणा य इत्तो इट्ठतरा चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ता," 'तत्थ ण'मित्यादिपदयोजना प्राग्वत्, अङ्को–रत्नविशेषः शङ्खचन्द्रौ प्रसिद्धौ कुन्दं–पुष्पविशेषः दकं–गङ्गाजलादि दकरजः–उदककणास्ते ह्यतिशुभ्रा भवन्तीत्युपात्ताः, दधिघनो–दधिपिण्डः क्षीरं–प्रतीतं, क्षीरपूरं क्थ्यमानामतितापादूर्ध्वं गच्छत् क्षीरं क्रौञ्चावलिहारावलिहंसावलिबलाकावलयः प्रकटार्थाः, आवलिपदोपादानं वर्णौत्कट्यप्रतिपादनार्थं, चन्द्रावली–तटागादिषु जलमध्ये प्रतिबिम्बिता चन्द्रपङ्क्तिः, शारदिकबलाहकः—शरत्काल-भावी मेघः ध्मातधौतरूप्यपटः-ध्मातः–अग्निसम्पर्कतोऽतिनिर्मलीकृतो धौतो–भूतिखरण्टितहस्तसम्मार्जनेनातितेजितो रूप्यमयपट्टः, अन्ये तु व्याचक्षते–ध्मातेन-अग्निसंयोगेन धौतः-शोधितो रूप्यपट्टः, शालिपिष्टं–शालिचूर्णं तस्य राशिः–शुक्ला भवत्यतस्तराशिः कुमुदराशिश्च स्पष्टः, छेवाडीनाम-वल्लादिफलिका सा च क्वचिद्देशविशेषे शुष्का सती अतीव पुञ्जः कुन्दपुष्पदुपादानं, "पेहुणमिंजिका' पेहुणं–मयूरपिच्छं तन्मध्यवर्त्तिनी मिंजा सा चातिशुक्लेति तदुपन्यासः, बिसं–पद्मिनीकन्दः मृणालं–पद्मतन्तुः, शेषा गजदन्तादिका उत्तानार्थाः, नवरं सिंदुवारो–निर्गुण्डी तस्य माल्यं–दाम शेषं प्राग्वत्, 'भवे एयारूवे'इत्यादि भावितार्थं, तदेवमुक्तं वर्णस्वरूपं, सम्प्रति गन्धस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह–"तेसि णं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंते ! मणीणं तणाण य केरिसए गंधे पण्णत्ते ?, से जहा० कोट्ठपुडाण वा तगरपुडाण वा एलापुडाण वा चीअपुडाण वा चंपगपुडाण वा दमणगपुडाण वा कुंकुमपुडाण वा चंदणपुडाण वा ओसीरपुडाण वा मरुअगपुडाण वा जाइपुडाण वा जूहिआपुडाण वा मल्लिआपुडाण वा णहाणमल्लिआपुडाण वा केअइपुडाण वा पाडलपुडाण वा णोमालिआपुडाण वा अग-गरपुडाण वा सलयंगपुडाण वा वासपुडाण वा कप्पूरपुडाण वा अणुवायंसि उब्भिज्जमाणाण वा णिब्भिज्जमाणाण वा कुट्टिज्जमाणाण वा रुंचिज्जमाणाण वा उक्किरिज्जमाणाण वा परिभुंजमाणाण वा भंडाओ भंडं साहरिज्जमाणाणं उरालो मणुण्णो मणोहरो घाणमणनिव्वुइकरो सव्वओ समंता गंधा अभिणिस्सवंति, भवे एयारूवे ?, गोअमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, तेसिं णं मणीण य तणाण य इत्तो इट्ठतरए चेव जाव मणामतरए चेव गंधे पण्णत्ते" तेषां जगतीपद्मवरवेदिका-वनखण्डस्थानां भदन्त ! मणीनां तृणानां च कीदृशो गन्धः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह–गौतम ! 'से जहा णाम ए' इत्यादि, प्राकृतत्वात् से इति बहुवचनार्थः, ते यथा नाम 'ए'इति वाक्यालङ्कारे गन्धा अभिमिःश्रवन्तीति सम्बन्धः, कोष्ठ–गन्धद्रव्यं तस्य पुटाः कोष्ठपुटाः तेषां, वाशब्दः सर्वत्र समुच्चयार्थः, इह एकस्य पुटस्य प्रायो न तादृशो गन्धः प्रसरति गन्धद्रव्यस्याल्पत्वात् ततो बहुवचनं, तगरमपि गन्धद्रव्यं एलाः—प्रतीताः चोअं–गन्धद्रव्यं चम्पकदमनककुङ्कुमचन्द्र-बोशीरमरुबकजातीयूथिकामल्लिकास्नानमल्लिकाकेतकीपाटलानवमालिकाअगुरुलवङ्गवासकर्पूराणि प्रतीतानि, वरसु-शीरं–वीरणं मूलं, अत्र क्वचित् 'हिरिवेरपुडाण वा' इति, तत्र हीबेरपुटानां–वालपुटानां स्नानमल्लिका–स्नानयोग्यो

॥ ३५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

भल्लिकाविशेषः एतेषामनुवाते–आघ्रायकविवक्षितपुरुषाणामनुकूलवाते वाति सति उल्लिख्यमानानां–उद्घाट्यमानानां निर्भिद्यमानानां–नितरां-अतिशयेन भिद्यमानानां 'कोट्टिज्जमाणाण वा' इति इह पुटैः परिमितानि यानि कोष्ठादिगन्धद्रव्याणि तान्यपि परिमेये परिमाणोपचारात् कोष्ठपुटादीनीत्युच्यन्ते तेषां कुट्टयमानानां-उदूखलादिषु कुट्टयमानानां रुंचिज्जमाणाण वा इति–श्लक्ष्णखण्डीक्रियमाणानां, एतच्च विशेषणद्वयं कोष्ठादिद्रव्याणामवसेयं, तेषां प्रायः कुट्टनश्लक्ष्णखण्डीकरणसम्भवात् , न तु यूथिकादीनां, तथा उत्कीर्यमाणानां–क्षुरिकादिभिः कोष्ठादिपुटानां कोष्ठादिद्रव्याणां वा उल्लिख्यमानानां, तथा विकीर्यमाणानां–इतस्ततो विप्रकीर्यमाणानां परिभुज्यमानानां–परिभोगायोपयुज्यमानानां कथित् 'परिभाएज्जमाणाण वा' इति पाठः, तत्र परिभाज्यमानानां–पार्श्ववर्त्तिभ्यो मनाक् मनाक् दीयमानानां, तथा भाण्डात्–स्थानादेकस्मादन्यद्भाण्डं–भाजनान्तरं संहियमाणानां, उदाराः–स्फारास्ते चामनोज्ञा अपि भवन्त्यत आह–मनोज्ञा–मनोऽनुकूलाः तच्च मनोज्ञत्वं कुत इत्याह–मनोहरा–मनो हरन्ति–आत्मवशतां नयन्तीति मनोहराः यतस्ततो मनोज्ञाः, तदपि मनोहरत्वं कुत इत्याह—घ्राणमनोनिर्वृतिकराः–नासासचिवचेतःसुखोत्पादकाः, एवम्भूताः सर्वतः–दिक्षु समन्ततः–सामस्त्येन गन्धा अभिनिःश्रवन्ति–जिघ्रतामभिमुखं निस्सरन्ति, एवमुक्ते शिष्यः पृच्छति–भवेदेतद्रूपः ?, भगवानाह–गौतम ! नायमर्थः समर्थः, तेषां मणीनां तृणानां च इत इष्टतरकश्चैव यावन्मनआपतरकश्चैव गन्धः प्रज्ञप्त इति। 'तेसि णं भंते ! मणीणं तणाण य केरिसए फासे पण्णत्ते, से जहा णाम ए आइणगेइ वा रूएइ वा बूरेइ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा णवणीएइ वा हंसगब्भतूलीइ वा सिरीसकुसुमनिचएइ वा बालकुमुदपत्तरासीइ वा, भवे एयारूवे ?, गोअमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, तेसि णं मणीणं तणाण य इत्तो इट्ठतरए चेव जाव फासेणं पण्णत्ते" तेषां भदन्त ! मणीनां तृणानां च कीदृशः स्पर्शः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह–गौतम ! 'से जहा णाम ए'इत्यादि, तद्यथा–अजिनकं–चर्म्ममयं वस्त्रं रूतं—कर्प्पासपक्ष्म बूरो–वनस्पतिविशेषः, नवनीतं—म्रक्षणं, हंसगर्भतूली शिरीषकुसुमनिचयश्च प्रकटः, बालानि—अचिरकालजातानि यानि कुमुदपत्राणि तेषां राशिः, क्वचिद्बालकुसुमपत्रराशिरिति पाठः, 'भवे एयारूवे'इत्यादि पूर्ववत्, 'तेसि णं भंते ! मणीणं तणाण य पुव्वावरदाहिणुत्तरागएहिं वाएहिं मंदायं मंदायं एइयाणं वेइयाणं कंपियाणं चालियाणं फंदियाणं घट्टियाणं खोभिआणं उदीरियाणं केरिसए सद्दे पण्णत्ते ?, गो० ! से जहा णाम ए, सिविआए वा संदमाणिआए वा रहस्स वा सच्छत्तस्स सज्झयस्स सघंटायस्स सपडायस्स सतोरणवरस्स सणंदिघोसस्स सखिंखिणीअद्धेमजालपेरंतपरिक्खित्तस्स हेमवयचित्ततिणिसकणगणिज्जुत्तदारुआगस्स सुपिणद्धारगमंडलधुरागस्स कालायससुकयणेमिजंतकम्मस्स आइण्णवरतुरगसुसंपउत्तस्स कुसलतरछेअसारहिसुसंपग्गहियस्स सरसयवत्तीसतोणपरिमंडियस्स सकंकडवयंसगस्स सचावसरपहरणावरणभरिअजोहजुज्झसज्जस्स रायंगणंसि वा अंतेउरंसि वा रम्मंसि वा मणिकुट्टिमतलंसि अभिघट्टिज्जमाणस्स जे उराला मणुण्णा कण्णमणणिव्वुईकरा सद्दा सव्वओ समंता अभिणिस्सरंति, भवे एयारूवे सिआ ?, णो इणट्ठे समट्ठे' अत्र व्याख्या–तेषां मणीनां तृणानां च भदन्त ! पूर्वापरदक्षिणोत्तरागतैर्वातैर्मन्दं मन्दमेजितानां–कम्पि-

॥ ३६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तानां तथा व्यंजितानां–विशेषतः कम्पितानां, एतदेव पर्यायशब्देन व्याचष्टे–कम्पितानामिति, तथा चालितानां–इतस्ततो विक्षिप्तानां, एतदेव पर्यायेणाह–स्पन्दितानामिति तथा घट्टितानां–परस्परं घर्षयुक्तानां, कथं घट्टिता इत्याह–क्षोभितानां–स्वस्थानाच्चालितानां, स्वस्थानाच्चालनमपि कुत इत्याह–उदीरितानां–उत्–प्राबल्येनेरितानां–प्रेरितानां, कीदृशः शब्दः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह–गौतम ! स यथानामकः शिबिकाया वा स्यन्दमानिकाया वा रथस्य वा, तत्र शिबिका–जम्पानविशेषरूपा उपरिच्छादिता कोष्ठाकारा, तथा दीर्घो जम्पानविशेषः पुरुषस्य स्वप्रमाणावकाशदायी स्यन्दमानिका, अनयोश्च शब्दः पुरुषोत्पाटितयोः क्षुद्रहेमघण्टिकादिचलनवशतो वेदितव्यः, रथश्चेह रणरथः प्रत्येतव्यः न क्रीडारथः, तस्याग्रेतनविशेषणानामसम्भवात्, तस्य च फलकवेदिका यस्मिन् काले ये पुरुषास्तदपेक्षया कटिप्रमाणावसेया, तस्य च रथस्य विशेषणान्यभिधत्ते–सच्छत्रस्य सध्वजस्य सघण्टाकस्य–उभयपार्श्वावलम्बिमहाप्रमाणघण्टोपेतस्य सपताकस्य–सलघुध्वजस्य, सतोरणवरस्य–प्रधानतोरणोपेतस्य सनन्दिघोषस्य–द्वादशविधतूर्यनिनादोपेतस्य, द्वादश तूर्याणि च "भंभा १ मकुन्द २ मद्दल ३ कडंब ४ झल्लरि ५ हुडुक्क ६ कंसाला ७ । काहल ८ तलिमा ९ वंसो १० संखो ११ पणवो १२ अ बारसमो ॥ १ ॥" तथा 'सकिङ्किणीकहेमजालपर्यन्तपरिक्षिप्तस्य' सह किङ्किणीभिः–क्षुद्रघण्टाभिर्वर्त्तन्त इति सकिङ्किणीकानि यानि हेमजालानि–हेममयदामसमूहास्तैः पर्यन्तेषु–बहिःप्रदेशेषु परिक्षिप्तो–व्याप्तः तस्य, तथा हैमवतं–हिमवत्पर्वतभावि चित्रं–विचित्रं मनोहारि तैनिशं–तिनिशद्रुमसम्बन्धि कनकनियु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कं–कनकविच्छुरितं कनकपट्टिकासंवलितमित्यर्थः (तत्) तथाविधं दारु–काष्ठं यस्य स तथा तस्य, प्रथमो बहुव्रीहौ कः द्वितीयः स्वार्थिकः, पूर्वस्य च दीर्घत्वं प्राकृतत्वात्, तथा सुष्ठु–अतिशयेन सम्यक् पिनद्धमरकमण्डलं धूर्ध्व यस्य स सुसंपिनद्धारकमण्डलधूर्ष्कस्तस्य, तथा कालायसेन–लोहेन सुष्ठु–अतिशयेन कृतं नेमेः–बाह्यपरिधेर्यस्य चारकोपरि फलकचक्रवालस्य कर्म यस्मिन् स कालायससुकृतनेमियन्त्रकर्मा तस्य, आकीर्णा–गुणैर्व्याप्ता ये वराः–प्रधानास्तुरगास्ते सुष्ठु–अतिशयेन सम्यक् प्रयुक्ता–योत्रिता यस्मिन् स तथा तस्य, बहुव्रीहावपि निष्ठान्तस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, तथा सारथिकर्मणि ये कुशलनरास्तेषां मध्ये अतिशयेन छेको–दक्षः सारथिस्तेन सुष्ठु–सम्यक्परिगृहीतस्य, तथा शराणां शतं प्रत्येकं येषु तानि शरशतानि तानि च द्वात्रिंशत्तूणानि च–बाणाश्रयाः शरशतद्वात्रिंशत्तूणानि तैर्मण्डितः, किमुकं भवति ?–एवं नाम तानि द्वात्रिंशत् शरशतानि तूणानि रथस्य सर्वतः पर्यन्तेष्ववलम्बितानि तस्य रणायोपकल्पितस्यातीव मण्डनाय भवन्तीति, तथा कङ्कटः–कवचं अवतंसः–शिरस्त्राणं ताभ्यां सह वर्त्तते यः स तथा तस्य, सह चापेन ये शरा यानि च कुन्तादीनि प्रहरणानि यानि च खेटकादीन्यावरणानि तैर्भृतः–पूर्णस्तथा योधानां युद्धं तन्निमित्तं सज्जः–प्रगुणीभूतो यः स योधयुद्धसज्जस्ततः पूर्वपदेन कर्म्मधारयः, तस्य इत्थंभूतस्य राजाङ्गणे वा अन्तःपुरे वा रम्ये वा मणिकुट्टिमतले–मणिबद्धभूमितले अभीक्ष्णं–मुहुर्मुहुर्मणिकोट्टिमतलप्रदेशैः राजाङ्गणादिप्रदेशैर्वा 'अभिघट्टिज्जमाणस्से'ति अभिघट्ट्यमानस्य–वेगेन गच्छतो ये उदारा–मनोज्ञाः कर्णमनोनिर्वृतिकराः सर्वतः समन्तात् शब्दाः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिनिस्सरन्ति–श्रोतृणामभिमुखं निस्सरन्ति, 'भवे एयारूवे सिआ ?' इति स्यात्–कथञ्चिद्भवेदेतद्रूपस्तेषां मणीना तृणानां च शब्दः ?, भगवानाह–गौतम ! नायमर्थः समर्थः, पुनरपि गौतमः प्राह–'से जहाणामए वेआलियाए वीणाए उत्तरमंदामुच्छिआए अंकेसुपइट्ठियाए कुसलणरणारिसुसंपग्गहियाए चंदणसारकोणपरिघट्टियाए पच्चूसकालसमयंसि मंदं मंदं एइयाए वेइयाए चालियाए घट्टियाए फंदियाए खोभियाए उराला मणुण्णा कण्णमणणिव्वुइकरा सव्वओ समंता सद्दा अभिणिस्सवंति, भवे एयारूवे सिया ?, णो इणट्ठे समट्ठे" अत्र व्याख्या–स यथानामकः प्रातः सन्ध्यायां देवतायाः पुरतो या वादनायोपस्थाप्यते सा किल मङ्गलपाठिका, तालाभावे च वाद्यते इति विताले–तालाभावे भवतीति वैतालिकी तस्या वैतालिक्या वीणाया 'उत्तरमंदामुच्छियाए' इति मूर्च्छनं मूर्च्छा सा सञ्जाता अस्यां इति मूर्च्छिता उत्तरमन्दया–उत्तरमन्दाभिधया गन्धारस्वरान्तर्गतया सप्तम्या मूर्च्छनया मूर्च्छिता तस्याः, अयमाशयः-गन्धारस्वरस्य सप्त मूर्च्छना भवन्ति, तथाहि—"नंदी य खुड्डिमा पूरिमा य चोत्थी य सुद्धगंधारा । उत्तरगंधारावि अ हवई सा पंचमी मुच्छा ॥ १ ॥ सुट्ठुत्तरमायामा छट्ठी सा नियमसो उ बोद्धव्वा । उत्तरमंदा य तहा हवई सा सत्तमी मुच्छा ॥ २ ॥" अथ किंस्वरूपा मूर्च्छना ?, उच्यते, गन्धारादिस्वरस्वरूपामोचनेन गायतोऽतिमधुरा अन्यान्यस्वरविशेषा यान् कुर्वन् आस्तां श्रोतॄन् मूर्च्छितान् करोति किन्तु स्वयमपि मूर्च्छित इव तान् करोति, यदिवा स्वयमपि साक्षान्मूर्च्छां करोति, यदुक्तम्–"अन्नन्नसरविसेसे उप्पायंतस्स मुच्छणा भणिया । कत्तावि मुच्छिओ इव कुणए मुच्छं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व सो वत्ति ॥ १ ॥" गन्धारस्वरान्तर्गतानां च मूर्च्छनानां मध्ये सप्तमी उत्तरमन्दा मूर्च्छना क्लिातिप्रकर्षप्राप्ता ततस्तदुपादानं, तथा च मुख्यवृत्त्या वादयिता मूर्च्छितो भवति परमभेदोपचाराद्वीणापि मूर्च्छितेत्युक्ता, साऽपि यद्यङ्के सुप्रतिष्ठिता न भवति ततो न मूर्च्छना प्रकर्षं विदधाति तत आह–अङ्के–उत्सङ्गे स्त्रियाः पुरुषस्य वा सुप्रतिष्ठितायाः तथा कुशलेन–वादननिपुणेन नरेण नार्या वा सुष्ठु–अतिशयेन सम्यक्प्रगृहीतायाः तथा चन्दनस्य सारो–गर्भस्तेन निर्मापितो यः कोणो–वादनदण्डः तेन परिघट्टितायाः–संघट्टितायाः प्रत्यूषकालसमये–प्रभातकालसमये, कालश्च वर्णोऽपि स्यादत आह–'समयेति' समयश्च सङ्केतोऽपि स्यादत आह–'काले'ति मंदं मंदं–शनैः शनैः एजितायाः–चन्दनसारकोणेन मनाक् कम्पितायाः तथा व्येजितायाः–विशेषतः कम्पितायाः, एतदेव पर्यायेण व्याचष्टे–चालितायाः तथा घट्टितायाः–ऊर्ध्वाधोगच्छता चन्दनसारकोणेन गाढतरं वीणादण्डेन सह तन्त्र्याः स्पृष्टाया इत्यर्थः, तथा स्पन्दितायाः नखाग्रेण स्वरविशेषोत्पादनार्थमीषच्चालिताया: क्षोभिताया–मूर्च्छां प्रापिताया ये उदारा मनोहरा मनोज्ञाः कर्णमनोनिर्वृतिकराः सर्वतः समन्ताच्छब्दा अभिनिस्सरन्ति, स्यात्–कथञ्चिद्भवेदेतद्रूपस्तेषां मणीनां तृणानां च शब्दः ?, भगवानाह–गौतम ! नायमर्थः समर्थः, पुनरपि गौतमः प्राह–'से जहाणामए किंनराण वा किंपुरिसाण वा महोरगाण वा गंधव्वाण वा भद्दसालवणगयाण वा णंदणवणगयाण वा सोमणसवणगयाण वा पंडगवणगयाण वा महाहिमवंतमलयमंदरगिरिगुहासमन्नागयाण वा एगओ सहियाणं संमुहागयाणं समुपविट्ठाणं सन्निविट्ठाणं पमुइयपक्कीलियाणं गीयरइ गं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धबहरिसिअमणाणं गेज्जं पज्जं कत्थं पयबद्धं पायबद्धं उक्खित्तायं पवत्तायं मंदायं रोइयावसाणं सत्तसरसमण्णागयं अट्ठरससंपउत्तं इक्कारसालंकारं छद्दोसविप्पमुक्कं अट्ठगुणोववेयं रत्तं तिट्ठाणकरणसुद्धं संकुहरगुंजंतवंसतंतीतलतालल्लय-ग्गहसुसंपउत्तं महुरं समं सुललिअं मणोहरमउयरिभियपयसंचारं सुरइं सुणइं वरचारुरूवं दिव्वं णट्टसज्जं गेयं पगीयाणं, भवे एयारूवे सिया ?, गो० ! एवंभूए सिआ," अत्र व्याख्या—स यथानामकः किन्नराणां वा किंपुरुषाणां वा महोरगाणां वा गन्धर्वाणां वा, वाशब्दाः सर्वेऽपि विकल्पार्थाः, एते किन्नरादयो रत्नप्रभायाः उपरितनयोजनसहस्रव-र्त्तिव्यन्तरनिकायाष्टकमध्यगतपञ्चमषष्ठसप्तमाष्टमनिकायरूपा व्यन्तरविशेषाः, तेषां कथम्भूतानामित्याह—भद्रशालवन-गतानां वा इत्यादि, तत्र मेरोः समन्ततो भूमौ भद्रशालवनं, तत्र प्रथममेखलायां नन्दनवनं, द्वितीयमेखलायां सोम-नसवनं, शिरसि चूलिकायाः पार्श्वेषु सर्वतः पण्डकवनं तत्र गतानां, महाहिमवान्—हेमवतक्षेत्रस्योत्तरतः सीमाकारी वर्षधरपर्वतस्तस्य, उपलक्षणं चैतत् शेषवर्षधरपर्वतानां मलयपर्वतस्य मन्दरगिरेश्च—मेरुगिरेर्गुहां समन्वागतानां—गुहा-प्राप्तानां, वाशब्दा विकल्पार्थाः, एतेषु स्थानेषु प्रायः किन्नरादयः प्रमुदिता भवन्ति, तत एतेषामुपादानं, एकतः—एकस्मिन् स्थाने सहितानां—समुदितानां तथा परस्परं सम्मुखागतानां—सम्मुखं स्थितानां नैकोऽपि कस्यापि पृष्ठं दत्त्वा स्थित इत्यर्थः, पृष्ठदाने हर्षविघातोत्पत्तेः, तथा सम्यक्—परस्परानाबाधया उपविष्टाः—समुपविष्टास्तेषां, तथा सन्निवि-ष्टानां—सम्यक्—स्वशरीरानाबाधया न तु विषमसंस्थानेन निविष्टास्तेषां, तथा 'प्रमुदितप्रक्रीडितानां' प्रमुदिताः—हर्षं गताः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रक्रीडिताः–क्रीडितुमारब्धवन्तस्ततो विशेषणसमासः तेषां, तथा गीते रतिर्येषां ते गीतरतयो गन्धर्वैः कृतं गान्धर्वं–नाट्यादि तत्र हर्षितमनसः गान्धर्वहर्षितमनसः, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासस्तेषां, 'रागगीत्यादिकं गीतं पदस्वरतालावधानात्मकं गान्धर्व'मिति भरतादिशास्त्रवचनात् गद्यादिभेदादष्टधा गेयं, तत्र गद्यं यत्र स्वरसञ्चारेण गद्यं गीयते यत्र तु पद्यं–वृत्तादि यद् गीयते तत्पद्यं यत्र कथिकादि गीयते तत् कथ्यं पदबद्धं यदेकाक्षरादि यथा ते ते इत्यादि पादबद्धं यद्वृत्तादिचतुर्भागमात्रे पादे बद्धं उत्क्षिप्तकं प्रथमतः समारभ्यमाणं, अत्र ककारात्पूर्वं दीर्घत्वं प्राकृतत्वात्, एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यं, प्रवृत्तकं–प्रथमसमारम्भादूर्ध्वमाक्षेपपूर्वकं प्रवर्त्तमानं, तथा मन्दाकं–मध्यभागे सकलमूर्च्छनादिगुणोपेतं मन्दं मन्दं सञ्चरन् अथवा मन्दमयते–गच्छति अतिपरिघोलनात्मकत्वात् मन्दायं रोचितावसानं–रोचितं अवसानं यस्य तत् रोचितावसानं, शनैः शनैः प्रक्षिप्यमाणस्वरं यस्य गेयस्यावसानं सद्रोचितावसानमित्यर्थः, इह हि पद्यं पादबद्धं चैक एव भेदः, उभयत्रापि वृत्तरूपतानतिक्रमात्, तेन गेयस्याष्टप्रकारताकथनं न विरुद्धमिति, तथा 'सप्तस्वरसमन्वागतं' सप्त स्वराः षड्जादयः, उक्तं च–"सज्जे रिसह गंधारे, मज्झिमे पंचमे सरे। धेवए चेव नेसाए, सरा सत्त विआहिआ ॥ १ ॥" ते च सप्त स्वराः पुरुषस्य स्त्रिया वा नाभीतः समुद्भवन्ति, 'सत्त सरा नाभीओ' इति पूर्वमहर्षिवचनात्, तथा अष्टभी रसैः–शृङ्गारादिभिः सम्यक्–प्रकर्षेण युक्तं, तथा एकादशालङ्काराः पूर्वान्तर्गते स्वरप्राभृते सम्यगभिहितास्तानि च पूर्वाणि सम्प्रति व्यवच्छिन्नानि तेन तेभ्यो लेशतो विनिर्गतानि यानि भरतविशाखिल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभृतीनि तेभ्यो वेदितव्याः, तथा 'षड्दोषविप्रमुक्तं' षड्भिर्दोषैर्विप्रमुक्तं, ते चामी षड्दोषाः–"भीअं १ दुअ २ मुप्पिच्छं ३ उत्तालं च कमसो मुणेयवं । काकस्सरमणुण्णासं ६ छद्दोसा हुंति गेयस्स ॥ १ ॥" अत्र व्याख्या–भीतं–उत्रस्तं, किमुक्तं भवति ?–यत् उत्रस्तेन मनसा गीयते तज्जीतपुरुषनिबन्धनत्वात् तद्धर्मानुवृत्तत्वाद्भीतमुच्यते, द्रुतं–यत् त्वरितं गीयते, त्वरितगाने हि रागतालादिषु स्थिरक्षरव्यक्तिश्च न भवति, 'उप्पिच्छं' श्वाससंयुक्तमिति, पाठान्तरेण 'रहस्सं'ति ह्रस्वस्वरं लघुशब्दमित्यर्थः, 'उत्तालं' उत्–प्राबल्येन अतितालं अस्थानतालं वा, तालस्तु कंसिकादिस्वरविशेषः, काकस्वरं–श्लक्ष्णाश्लक्ष्णस्वरं अनुनासं–नासिकाविनिर्गतस्वरानुगतमिति, तथा अष्टभिर्गुणैरुपेतं अष्टगुणोपेतं, ते चाष्टामी गुणाः–"पुण्णं रत्तं अलंकियं च वत्तं तहेव अविघुट्ठं । महुरं समं सुललिअं, अट्ठ गुणा हुंति गेयस्स ॥ १ ॥" तत्र यत् स्वरकलाभिः पूर्णं गीयते तत् पूर्णं १ गेयरागानुरक्तेन यत् गीयते तद्रक्तं २ अन्योऽन्यस्फुटशुभस्वरविशेषाणां करणादलङ्कृतं ३ अक्षरस्वरस्फुटकरणाद् व्यक्तं ४ विक्रोशनमिव यद्विस्वरं न भवति तदविघुष्टं ५ मधुरं–मधुरस्वरं कोकिलारुतवत् ६ तालवंशस्वरादिसमनुगतं समं ७ स्वरघोलनाप्रकारेण सुष्ठु–अतिशयेन ललतीव यत् सुललितं, यदिवा यत् श्रोत्रेन्द्रियस्य शब्दस्पर्शनमतीव सूक्ष्ममुत्पादयति सुकुमारमिव (च) प्रतिभासते तत् सुललितं ८, एते अष्टौ गुणा गेयस्य भवन्ति, एतद्विरहितं तु विडम्बनामात्रं तदिति, इदानीमेतेषामेवाष्टानां गुणानां मध्ये कियतो गुणान् अन्यच्च प्रतिपिपादयिषुराह–'रत्त'मित्यादि रक्तं–पूर्वोक्तस्वरूपं तथा 'त्रिस्थानकरणशुद्धं' त्रीणि स्थानानि–उरःप्रभृतीनि तेषु कर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेन–क्रियया शुद्धं त्रिस्थानकरणशुद्धं, तद्यथा–उरःशुद्धं कण्ठशुद्धं शिरोविशुद्धं च, तत्र यद्युरसि स्वरो विशालस्तर्ह्यु-रोविशुद्धं, स एव यदि कण्ठे वर्त्तितोऽस्फुटितश्च ततः कण्ठविशुद्धं, यदि पुनः शिरसि प्राप्तः सन्नानुनासिको भवति ततः शिरोविशुद्धं अथवा उरःकण्ठशिरस्सु श्लेष्मणा अव्याकुलेषु विशुद्धेषु प्रशस्तेषु यद् गीयते तदुरःकण्ठशिरोविशुद्ध-त्वात् त्रिस्थानकरणविशुद्धं, तथा सकुहरः–सच्छिद्रो गुञ्जन्–शब्दायमानो यो वंशो ये च तन्त्रीतलताललयग्रहास्तैः सह सुष्ठु–अतिशयेन सम्प्रयुक्तं–अविरुद्धतया प्रवर्त्तितं, किमुक्तं भवति ?–सकुहरे वंशे गुञ्जति तन्त्र्यां च वाद्यमानायां यद्वंशतन्त्रीस्वरेणाविरुद्धं तत् सकुहरगुञ्जद्वंशतन्त्रीसुसम्प्रयुक्तं, तथा परस्पराहतहस्ततालस्वरानुवर्त्ति यद् गीतं तत्तालसु-सम्प्रयुक्तं, यत् मुरजकंशिकादीनामातोद्यानामाहतानां यो ध्वनिर्यश्च नृत्यन्त्या नर्त्तक्याः पादोत्क्षेपस्तेन समं तत् ताल-सुसम्प्रयुक्तं, तथा शृङ्गदारुदन्तादिमयो योऽङ्गुलिकोशकस्तेनाहतायास्तन्त्र्याः स्वरप्रकारो लयस्तमनुसरद् गेयं लयसुसंप्र-युक्तं, तथा प्रथमतो वंशतन्त्र्यादिभिर्यः स्वरो गृहीतस्तत्समेन स्वरेण गीयमानं ग्रहसुसंप्रयुक्तं, तथा मधुरमित्यादि विशेषणत्रयं प्राग्वत्, अत एव मनोहरं, पुनः कथम्भूतमित्याह–मृदुकं–मृदुना स्वरेण युक्तं न निष्ठुरेण, तथा यत्र स्वरोऽक्षरेषु घोलनास्वरविशेषेषु च सञ्चरन् रागेऽतीव प्रतिभासते स पदसञ्चारो रिभितमुच्यते मृदुरिभितपदेषु–गेय-निबद्धेषु संचारो यत्र गेये तत् मृदुरिभितपदसंचारं, तथा सुष्ठु–शोभना रतिः श्रोतृणां यस्मिन् तत् सुरति, सुष्ठु–शोभना नतिः–अवनामोऽवसाने यस्मिन् तत् सुनति, पर्यन्ते मन्द्रस्वरस्य विधानात्, तथा वरं–प्रधानं विशिष्टचङ्गि-

॥ ४० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोपेतं रूपं–स्वरूपं यस्य तत्तथा, कुत इत्याह–दिव्यं–देवसम्बन्धि, यतः नाट्ये–नृत्यविधौ सज्जं नाट्यसज्जं गीतवाद्ये तथाविधे हि नाट्यविधिरपि सुमनोहरः स्यादिति, उक्तस्वरूपं गेयं प्रगीतानां–गातुमारब्धवतां यादृशः शब्दोऽतिमनोहरो भवति, स्यात्–कथञ्चिद्भवेदेतद्रूपस्तेषां मणीनां तृणानां च शब्दः ?, दृष्टान्तस्य सर्वसाम्याभावात् स्यादिति पदोपादानं, एवमुक्ते भगवानाह–गौतम ! स्यादेवंभूतः शब्द इति। अथ पुष्करिणीसूत्रं यथा–'तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहूइओ खुड्डाखुड्डियाओ वावीओ पुक्खरिणीओ दीहियाओ गुंजालियाओ सराओ सरपंतीओ सर २पंतीओ बिलपंतीओ अच्छाओ सण्हाओ रययामयकूलाओ समतीराओ वयरामयपासाणाओ तवणिज्जतलाओ सुवण्णसुब्भरययवालुयाओ वेरुलियमणिफालियपडलपच्चोअडाओ सुओयारसुहोत्ताराओ णाणामणितित्थसुबद्धाओ चाउक्कोणाओ अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयलजलाओ संछन्नपत्तभिसमुणालाओ बहुउप्पलकुमुयणलिणसुभगसोगंधियपुंडरीयमहापुंडरीयसयपत्तसहस्सपत्तफुल्लकेसरोवचियाओ छप्पयपरिभुज्जमाणकमलाओ अच्छविमलसलिलपुण्णाओ परिहत्थभमंतमच्छकच्छभअणेगसउणमिहुणपविअरियाओ पत्तेयं २ पउमवरवेइयापरिक्खित्ताओ पत्तेयं २ वणसंडपरिक्खित्ताओ अप्पेगइयाओ आसवोदगाओ अप्पेगइयाओ वारुणोदगाओ अप्पेगइयाओ खोदोदगाओ अप्पेगइयाओ अमयरससमरसोदगाओ अप्पेगइयाओ उदगरसेणं पण्णत्ताओ पासादीयाओ ४" अत्र व्याख्या–'तस्से'त्यादि प्राग्वत् बहव्यः क्षुद्राः–अखातसरस्यस्ता एव लघ्व्यः–क्षुल्लिका वाप्यः–चतुरस्राकाराः पुष्करिण्यो–वृत्ताकाराः दीर्घिकाः–सारण्यः ता एव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वक्रा गुञ्जालिकाः, बहूनि केवलकेवलानि पुष्पाधकीर्णकानि सरांसि, सूत्रे स्त्रीत्वं प्राकृतत्वात्, बहूनि सरांसि एकपङ्क्त्या व्यवस्थितानि सरःपङ्क्तिः ता बह्व्यः सरःपङ्क्त्यः, तथा येषु सरस्सु पङ्क्त्या व्यवस्थितेषु एकस्मात् सरसोऽन्यस्मिन् तस्मात्तदन्यत्रैवं संचारकपाटकेनोदकं संचरति सा सरःसरःपङ्क्तिस्ता बह्व्यः सरःसरःपङ्क्त्यः, बिलानि–कूपास्तेषां पङ्क्त्यो बिलपङ्क्त्यः, एताश्च सर्वा अपि कथम्भूता इत्याह–अच्छाः–स्फटिकवद् बहिर्निर्मलप्रदेशाः श्लक्ष्णाः–श्लक्ष्णपुद्गलनिष्पादितबहिःप्रदेशाः रजतमय्यः–रूप्यमय्यः कूलं यासां तास्तथा, समं न गर्त्तासद्भावतो विषमं तीरवर्त्तिजलापूरितं स्थानं यासां ताः समतीराः, तथा वज्रमयाः पाषाणाः यासां तास्तथा, तथा तपनीयं–हेमविशेषस्तन्मयं तलं यासां तास्तथा, तथा 'सुवण्णसुब्भरययवालुयाओ' इति सुवर्णं–पीतं हेम सुब्भं–रूप्यविशेषः रजतं–प्रतीतं तन्मय्यो वालुका यासु ताः सुवर्णसुब्भरजतवालुकाः, तथा 'वेरुलियमणिफलिहपडलपच्चोयडाओ' इति वैडूर्याणि–वैडूर्यमणिमयानि स्फाटिकपडलमयानि–स्फाटिकरत्नसम्बन्धिपटलमयानि प्रत्यवतटानि–तटसमीपवर्त्त्यभ्युन्नतप्रदेशा यासां तास्तथा, तथा सुखेनावतारो–जलमध्ये प्रवेशनं यासु ताः स्ववतारः तथा सुखेनोत्तारो–जलाद्बहिर्विनिर्गमनं यासु ताः सुखोत्तारः, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, तथा नानामणिभिः सुबद्धानि तीर्थानि यासां तास्तथा, अत्र बहुव्रीहावपि क्तान्तस्य परनिपातो भार्यादिदर्शनात् प्राकृतशैलीवशाद्वा, 'चाउक्कोणाओ' इति चत्वारः कोणा यासां ताः तथा, दीर्घत्वं च 'अतः समृद्ध्यादौ वा' (श्रीसि० ८–१–४४) इति सूत्रेण प्राकृतलक्षणवशात्, एतच्च विशेषणं वापीः कूपांश्च प्रति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रष्टव्यं, तेषामेव चतुष्कोणत्वसम्भवात् न शेषाणां, आनुपूर्व्येण–क्रमेण नीचैर्नीचैस्तरभावरूपेण सुष्ठु–अतिशयेन यो जातो वप्रः–केदारो जलस्थानं तत्र गम्भीरं–अलब्धस्ताघं शीतलं जलं यासु ताः आनुपूर्व्यसुजातवप्रगम्भीरशीतल-जलाः, तथा संछन्नानि–जलेनान्तरितानि पत्रबिशमृणालानि यासु ताः तथा, इह बिशमृणालसाहचर्यात् पत्राणि पद्मिनीपत्राणि द्रष्टव्यानि बिशानि–कन्दाः मृणालानि–पद्मनालानि, तथा बहूनामुत्पलकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपु-ण्डरीकमहापौण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्राणां फुल्लानां–विकस्वराणां केशरैः–किञ्जल्कैः उपचिता–भृताः, विशेषणस्याव्यव-स्थिततया निपातः प्राकृतत्वात्, तथा षट्पदैः–भ्रमरैः परिभुज्यमानानि कमलानि उपलक्षणमेतत् कुमुदादीनि यासु ताः तथा, अच्छेन–स्वरूपतः स्फटिकवत् शुद्धेन निर्मलेन–आगन्तुकमलरहितेन सलिलेन पूर्णाः तथा 'पडिहत्था' अतिरेकिताः अतिप्रभूता इत्यर्थः, देशीशब्दोऽयं 'पडिहत्थमुद्धुमायं अइरेइयं च जाण आउण्णं' इति वचनात्, उदाहरणं चात्र–'घणपडिहत्थं गयणं सराइं नवसलिलमुद्धुमायाइं । अइरेइयं मह उण चिंताए मणं तुहं विरहे ॥ १ ॥ इति, भ्रमन्तो मत्स्यकच्छपा यत्र ताः पडिहत्थभ्रमन्मत्स्यकच्छपाः, अनेकैः शकुनिमिथुनकैः प्रविचरिता–इत-स्ततो गमनेन सर्वतो व्याप्ताः, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, एता वाप्यादयः सरस्सरःपङ्क्तिपर्यवसानाः 'प्रत्येक'-मिति एकं एकं प्रति प्रत्येकं अत्राभिमुख्ये प्रतिशब्दो न वीप्साविवक्षायां पश्चात्प्रत्येकशब्दस्य द्विर्वचनमिति, पद्मवर-वेदिकया परिक्षिप्ताः प्रत्येकं २ वनखण्डपरिक्षिप्ताश्च, अपिर्बाढार्थे, बाढमेककाः काश्चन वाप्यादय आसवमिव–चन्द्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हासादिपरमासवमिव उदकं यासा ताः तथा, अप्येकिकाः वारुणस्येव–वारुणसमुद्रस्येव उदकं यासां ताः, अप्येकिकाः क्षीरमिवोदकं यासां ताः अप्येकिकाः घृतमिवोदकं यासां ताः अप्येकिकाः क्षोद इव–इक्षुरस इवोदकं यासां ताः अप्येकिकाः अमृतरससमरसं उदकं यासां ताः अमृतरससमरसोदकाः अप्येकिकाः उदकरसेन–स्वाभाविकेन प्रज्ञप्ताः 'पासाईया' इत्यादि प्राग्वत् । "तासि णं खुड्डाखुड्डियाणं वावीणं जाव बिलपंतीणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसि चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, तेसि णं तिसोवाणपडिरूवाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–वइरामया णेमा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलियामया खंभा सुवण्णरूप्पमया फलगा वइरामया संधी लोहिअक्खमईओ सूईओ णाणामणिमया अवलंबणबाहाओ पासाईया ४" इति, अत्र व्याख्या–तासां क्षुद्राणां क्षुद्रिकाणां यावद्बिलपङ्क्तीनां प्रत्येकं २ चतसृणां दिशां समाहारश्चतुर्दिक् तस्मिंश्चतुर्दिशि, चत्वारि एकैकस्यां दिशि एकैकभावात् त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि, तथा प्रतिविशिष्टं रूपं येषां तानि प्रतिरूपकाणि, त्रयाणां सोपानानां समाहारः त्रिसोपानं, त्रिसोपानानि च तानि प्रतिरूपकाणि चेति विशेषणसमासः, विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, तानि प्रज्ञप्तानि, तेषां च त्रिसोपानप्रतिरूपकाणामयं–वक्ष्यमाणः एतद्रूपो वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–वज्ररत्नमया नेमाः–भूमेरूर्ध्वं निष्क्रामन्तः प्रदेशाः रिष्टरत्नमयानि प्रतिष्ठानानि–त्रिसोपानमूलपादाः वैडूर्यमयाः स्तम्भाः सुवर्णरूप्यमयानि फलकानि–त्रिसोपानाङ्गभूतानि वज्ररत्नमयापूरिताः सन्धयः–फलकद्वयापान्तरालप्रदेशाः लोहिताक्षमय्यः सूचयः–फलकद्वयसम्बन्ध-

॥ ४२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विघटनाभावहेतुपादुकास्थानीयाः, नानामणिमया अवलम्ब्यन्ते इति अवलम्बना–अवतरतामुत्तरतामवलम्बनहेतुभूताः, अवलम्बनबाहातो विनिर्गताः केचिदवयवाः 'अवलम्बनबाहाओ' इति अवलम्बनबाहा अपि नानामणिमय्यः, अवलम्बनबाहा नाम उभयोः पार्श्वयोः अवलम्बनाश्रयभूता भित्तयः 'पासाईयाओ' ४ इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् । "तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेयं २ तोरणा पण्णत्ता" तेसि णं तोरणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, ते णं तोरणा णाणामणिमएसु खंभेसु उवनिविट्ठसंनिविट्ठा विविहमुत्तंतरोविया विविहतारारूवोविया ईहामिगउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिंनररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ता खंभुग्गयवरवइरवेइयापरिगयाभिरामा विज्जाहरजमलजुअलजंतजुत्ताविव अच्चीसहस्समालणीया रूवगसहस्सकलिया भिसमाणा भिब्भिसमाणा चक्खुल्लोअणलेसा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया ४" इति, अत्र व्याख्या–'तेसि ण' मित्यादि, तेषां त्रिसोपानप्रतिरूपकाणां पुरतः प्रत्येकं २ तोरणानि प्रज्ञप्तानि, तेषां तोरणानामयमेतद्रूपो वर्णावासो–वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–'ते णं तोरणा' इत्यादि, तानि तोरणानि नानामणिमयानि मणयः–चन्द्रकान्तादयः विविधमणिमयानि नानामणिमयेषु स्तम्भेषु उपनिविष्टानि–सामीप्येन स्थितानि, तानि च कदाचिच्चलानि अथवाऽपदपतितानि शङ्केरन्, तत आह–सम्यग्-निश्चलतयाऽपदपरिहारेण च निविष्टानि, ततो विशेषणसमासः, विविधा-नानाविधविच्छित्तिकलिता मुक्ता–मुक्ताफलानि अन्तराशब्दोऽगृहीतवीप्सोऽपि वीप्सां गमयति, अन्तरा अन्तरा 'ओविया' इति आरोपिता यत्र तानि तथा, विविधैस्ता-

श्रीजम्बू. ८ Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रौरूपैः–तारिकारूपैरुपचितानि, तोरणेषु हि शोभार्थं तारकानि बध्यन्ते इति प्रतीतं लोकेऽपि, ईहामृगा–वृकाः ऋष-भा-वृषभाः व्याला-सुजंगाः रुरवो-मृगविशेषाः शरभा-अष्टापदाः चमरा-आटव्यो गावः, वनलता-अशोकलताद्याः पद्मलताः-पद्मिन्यः, शेषाः प्रतीताः, घटासां भक्त्या–विच्छित्त्या चित्रं–आलेखो येषु तानि तथा, स्तम्भोद्गतया–स्तम्भो-परिवर्त्तिन्या वज्ररत्नमय्या वेदिकया परिगतानि–परिकरितानि सन्ति यानि अतिरमणीयानि तानि तथा, विद्याध-रयोः–विशिष्टशक्तिमत्पुरुषविशेषयोर्यमलं–समश्रेणीकं युगलं–द्वन्द्वं तेनैव यन्त्रेण संचरिष्णुपुरुषप्रतिमाद्वयरूपेण युक्ता-नि, आर्षत्वाच्चैवंविधः समासः, तथा अर्चिषां–मणिरत्नप्रभाणां सहस्रैर्मालनीयानि–परिवारणीयानि रूपकसहस्रकलि-तानि स्पष्टं 'भिसमाणा' इति दीप्यमानानि 'भिब्भिसमाणा' इति अत्यर्थं दीप्यमानानि, तथा चक्षुः कर्तृ लोचने–अवलोकने लिसतीव-दर्शनीयतातिशयतः श्लिष्यतीव यत्र तानि तथा, 'सुहफासा' इति शुभस्पर्शानि सश्रीकानि–सशोभाकानि रूपकाणि यत्र तानि सश्रीकरूपाणि, 'पासाईया' इत्यादि विशेषणचतुष्टयं प्राग्वत्, "तेसि णं तोरणाणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, सोत्थिय १ सिरिवच्छ २ णंदियावत्त ३ वद्धमाणग ४ भद्दासण ५ कलस ६ मच्छ ७-दप्पणा ८ सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा," अत्र व्याख्या–तेषां तोरणानामुपरि इत्यादि सुगमं, नवरं 'जाव पडिरूवा' इति यावत्करणात् घट्टा मट्ठा णीरया इत्यादिग्रहः, 'तेसि णं तोरणाणं उवरिं किण्हचामरज्झया णीलचामर-ज्झया लोहियचामरज्झया हालिद्दचामरज्झया सुक्किलचामरज्झया अच्छा सण्हा रुप्पपट्टा वइरदंडा जलयामलगंधिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरम्मा पासाईया ४" इति, तेषां तोरणानामुपरि बहवः कृष्णचामरयुक्ताः ध्वजाः कृष्णचामरध्वजाः एवं बहवो नील-लोहितहारिद्रशुक्लचामरयुक्ताः ध्वजा वाच्याः, कथम्भूता एते सर्वेऽपीत्याह–'अच्छा सण्हा' इति स्पष्टं रूप्यमयो वज्रमयस्य दण्डस्योपरि पट्टो येषां ते तथा, वज्रो–वज्रमयो दण्डो रूप्यपट्टमध्यवर्त्ती येषां ते तथा, जलजानामिव–पद्म-मानामिवामलो न तु कुद्रव्यगन्धसम्मिश्रो यो गन्धः स विद्यते येषां ते जलजामलगन्धिकाः, 'अतोऽनेकस्वरा'दितीक-प्रत्ययः [श्रीसि० ७-२-६] अत एव सुरम्याः 'पासादीया' इत्यादि प्राग्वत्, "तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे छत्ता-इछत्ता पडागाइपडागा घंटाजुअला चामरजुअला उप्पलहत्थगा पउमहत्थगा जाव सहस्सपत्तहत्थगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा" तेषां तोरणानामुपरि बहूनि छत्रातिच्छत्राणि–छत्रालोकप्रसिद्धादेकसंख्याकाद् अतिशायीनि द्विसंख्यानि त्रिसंख्यानि वा छत्राणि छत्रातिच्छत्राणि बह्व्यः पताकाभ्योऽतिशायिन्यो दीर्घत्वेन विस्तरेण च पताकाः पताकातिपताकाः बहूनि घण्टायुगलानि बहूनि चामरयुगलानि बहव उत्पलहस्तकाः–उत्पलाख्यजलजकुसुमसमूहविशेषाः, एवं पद्महस्तकाः बहवो नलिनहस्तकाः बहवः सुभगहस्तकाः बहवः सौगन्धिकहस्तकाः बहवः पुण्डरीकहस्तकाः बहवः शतपत्रहस्तकाः बहवः सहस्रपत्रहस्तकाः, उत्पलादीनां व्याख्यानं प्राग्वत्, एते च छत्रातिच्छत्रादयः सर्वेऽपि सर्वर-त्नमयाः, 'जाव पडिरूवा' इति यावत्करणात् 'अच्छा सण्हा लण्हा' इत्यादिविशेषणकदम्बकपरिग्रहः । अथ पर्वत-कसूत्रं यथा—"तासि णं खुड्डियाणं वावीणं जाव बिलपंतियाणं तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे उप्पायपव्वया नियइ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

पक्षया जगईपक्षया दारुपक्षयगा दगमंडवगा दगमंचगा दगमालगा दगपासाया उसडा खुड्डा अंदोलगा पक्खंदोलगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवगा" अत्र व्याख्या–तासां क्षुल्लिकानां वापीनां यावद्विलपङ्क्तीना अत्र यावत्करणात् पुष्करिण्यादिग्रहः, अपान्तरालेषु तत्र तत्र देशे 'तहिं तहिं' इति तस्यैव देशस्य तत्र तत्रैकदेशे बहव उत्पातपर्वताः–यत्रागत्य बहवो व्यन्तरदेवा देव्यश्च विचित्रक्रीडानिमित्तं वैक्रियशरीरमारचयन्ति नियत्या–नैयत्येन पर्वताः, क्वचिन्नियतपक्षया इति पाठः, तत्र नियताः–सदा भोग्यत्वेनावस्थिताः पर्वताः यत्र व्यन्तरा देवदेव्यो भवधारणीयेन वैक्रियशरीरेण प्रायः सदा रमन्ते इति भावः, जगतीपर्वताः–पर्वतविशेषाः, दारुपर्वतका–दारुनिर्मापिता इव पर्वतकाः दकमण्डपकाः–स्फटिकमण्डपकाः एवं दकमञ्चकाः दकमालकाः दकप्रासादाः, एते च दकमण्डपकादयः केचित् उत्सृता–उच्चा इत्यर्थः, केचित् क्षुल्ला–लघवः क्वचित् खुड्डखुड्डगा इति पाठः क्षुल्लक्षुल्लका–अतिलघवः आयताश्च, तथा अन्दोलकाः पक्ष्यन्दोलकाश्च तत्र यत्रागत्य २ मनुष्या आत्मानमन्दोलयंति इति, आन्दोलका इति लोके प्रसिद्धाः, यत्र तु पक्षिण आगत्यागत्यात्मानमन्दोलयंति ते पक्ष्यन्दोलकाः, ते चान्दोलकाः पक्ष्यन्दोलकाश्च तस्मिन् वनखण्डे तत्र तत्र प्रदेशे वानमन्तरदेवदेवीक्रीडायोग्या बहवः सन्ति, ते चोत्पातपर्वतादयः कथम्भूता इत्याह–सर्वरत्नमया अच्छा इत्यादिविशेषणजातं प्राग्वत् "तेसु णं उप्पायपव्वएसु जाव पक्खंदोलएसु बहूइं हंसासणाइं कोंचासणाइं गरुलासणाइं उण्णयासणाइं पणयासणाइं दीहासणाइं भद्दासणाइं पक्खासणाइं मगरासणाइं पउमासणाइं सीहा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सणाइं दिसासोवत्थियासणाइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं जाव पडिरूव"त्ति, अत्र व्याख्या—तेषु उत्पातपर्वतेषु यावत्पक्ष्यन्दोलकेषु अत्र यावत्करणात् नियतपर्वतादिपरिग्रहः बहूनि हंसासनानि, तत्र येषामासनानामधोभागे हंसा व्यवस्थिता यथा सिंहासने सिंहास्तानि हंसासनानि, एवं क्रौञ्चासनानि गरुडासनानि भाव्यानि, उन्नतासनानि—यान्युच्चासनानि प्रणतासनानि—निम्नासनानि दीर्घासनानि—शय्यारूपाणि भद्रासनानि—येषामधोभागे पीठिकाबन्धः पक्ष्यासनानि—येषामधोभागे नानारूपाः पक्षिणः, एवं मकरासनानि सिंहासनानि च भावनीयानि, पद्मासनानि—पद्माकाराणि आसनानि दिक्सौवस्तिकासनानि—येषामधोभागे दिक्सौवस्तिका—दिक्प्रधानाः स्वस्तिकाः आलिखिताः सन्ति, अत्र यथाक्रममासनानां संग्राहिका संग्रहणीगाथा—"हंसे कोञ्चे गरुले उण्णय पणए य दीह भद्दे य । पक्खे मयरे पउमे सीह दिसासोअ बारसमे ॥ १ ॥" एतानि सर्वाण्यपि कथम्भूतानीत्याह—'सव्वरयणामयाइं' इत्यादि प्राग्वत् । अथ गृहकसूत्रं यथा—"तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे आलिघरगा मालिघरगा कयलीघरगा अच्छणघरगा पेच्छणघरगा मज्जणघरगा पसाहणघरगा गब्भघरगा मोहणघरगा मालघरगा जालघरगा कुसुमघरगा चित्तघरगा गंधव्वघरगा आयंसघरगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा" इति, अत्र व्याख्या—तस्य वनखण्डस्य मध्ये तत्र तत्र प्रदेशे तस्यैव प्रदेशस्य तत्र तत्र एकदेशे बहूनि आलिगृहकाणि, आलिः—वनस्पतिविशेषस्तन्मयानि गृहकाणि आलिगृहकाणि मालिरपि वनस्पतिविशेषः तन्मयानि गृहकाणि मालिगृहकाणि, कदलीगृहकाणि लतागृहकाणि च प्रती-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६]

दीप अनुक्रम [६]

तानि, 'अच्छणघरगा' इति अवस्थानगृहकाणि येषु यदा तदा वाऽऽगत्य बहवः सुखासिकया अवतिष्ठन्ते, प्रेक्षणक-गृहकाणि प्रेक्षणकानि विदधति निरीक्ष्यन्ते च, मज्जनगृहकाणि यत्रागत्य स्वेच्छया मज्जनं कुर्वन्ति, प्रसाधनगृहकाणि यत्रागत्य स्वं परं च मण्डयन्ति, गर्भगृहकाणि–गर्भगृहाकाराणि मोहनगृहकाणि मोहनं–मैथुनसेवा तत्प्रधानानि गृह-काणि वासभवनानीति भावः, शालागृहकाणि–पट्टशालाप्रधानानि गृहकाणि जालगृहकाणि–जालयुक्तानि गृहकाणि कुसुमगृहकाणि–कुसुमप्रकरोपचितानि गृहकाणि चित्रगृहकाणि–चित्रप्रधानानि गृहकाणि गन्धर्वगृहकाणि–गीतनृत्या-भ्यासयोग्यानि गृहकाणि, आदर्शगृहकाणि–आदर्शमयानीव गृहकाणि, अत्र सूत्रे सर्वत्र ककारः स्वार्थिकोऽवसेयः, एतानि कथंभूतानीत्याह–'सवरयणामयाइं' इत्यादि प्राग्वत्, "तेसु णं आलिघरेसु जाव आयंसघरेसु बहूइं हंसासणाइं जाव दिसासोवत्थियासणाइं सवरयणामयाइं जाव पडिरूवाइं" इति गतार्थम्, अथ मण्डपकसूत्रं यथा–"तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे जाइमंडवगा जूहियामंडवगा मल्लियामंडवगा णोमालियामंडवगा वासंती-मंडवगा दधिवासुयामंडवगा सूरिल्लिमंडवगा तंबोलीमंडवगा णागलयामंडवगा अतिमुत्तयमंडवगा अप्फोआमंडवगा मालुआमंडवगा सवरयणामया जाव णिच्चं कुसुमिया जाव पडिरूवा" अत्र व्याख्या—'तत्थे'त्यादि पदयोजना सुगमा, जातिः–मालती तन्मया मण्डपकाः जातिमण्डपकाः, एवं उत्तरत्रापि पदयोजना कार्या, यूथिका प्रतीता मल्लिका–विचकिलः, वनमालिका वासन्ती स्पष्टे, एते च पुष्पप्रधाना वनस्पतयः, दधिवासुका नाम वनस्पतिविशेषः, सूरिल्लिरपि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स एव, ताम्बूली–नागवल्ली नागो–द्रुमविशेषः स एव लता नागलता, इह यस्य तिर्यक् तथाविधा शाखा प्रशाखा वा प्रसृता सा लतेत्यभिधीयते, अतिमुक्तकः–पुष्पप्रधानवनस्पतिः 'अप्फोआ' वनस्पतिविशेषः, मालुका–एकास्थिकफला वृक्षविशेषास्तद्युक्ता मण्डपका मालुकामंडपका, एते च कथंभूता इत्याह–'सव्वरयणामया'इत्यादि प्राग्वत् । 'तेसु णं जाइमंडवगेसु जाव मालुआमंडवगेसु बहवे पुढविसिलापट्टगा पण्णत्ता, अप्पेगइया हंसासणसंठिया अप्पेगइया कोंचासणसंठिआ अप्पेगइया गरुडासणसंठिआ अप्पेगइया उण्णयासणसंठिया अप्पेगइया पणयासणसंठिआ अप्पेगइया दीहासणसंठिया अप्पेगइया भद्दासणसंठिया अप्पेगइया पक्खासणसंठिया अप्पेगइया मगरासणसंठिया अप्पेगइया पउमासणसंठिआ अप्पेगइया सीहासणसंठिया अप्पेगइआ दिसासोवत्थियासणसंठिया अप्पेगे बहवे वरसयणासणविसिट्ठसंठाणसंठिया पण्णत्ता समणाउसो! आईणगरूअबूरणवणीयतूलफासमउआ सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा" अत्र व्याख्या–तेषु जातिमण्डपकेषु यावत् मालुकामण्डपकेषु यावत्करणात् यूथिकामण्डपकादिपरिग्रहः, बहवः शिलापट्टकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–अपिर्बाढार्थे एकके शिलापट्टकाः हंसासनवत् संस्थितं–भावे क्तप्रत्ययविधानात् संस्थानं येषां ते तथा, एवं क्रोञ्चासनसंस्थितादिष्वपि वाच्यं, अन्ये च बहवः शिलापट्टकाः यानि विशिष्टचिन्हानि विशिष्टनामानि च वराणि–प्रधानानि शयनानि आसनानि च तद्वत् संस्थिता वरशयनासनविशिष्टसंस्थानसंस्थिताः क्वचित् 'मांसलसुघट्टविसिट्ठसंठाणसंठिया' इति पाठः, तत्रान्ये च बहवः शिलापट्टकाः मांसला इव मांसला–अकठिना इत्यर्थः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्रीया वृत्तिः

॥ ४६ ॥

सुघृष्टा इव सुघृष्टा–अतिशयेन मसृणा इति भावः, विशिष्टसंस्थानसंस्थिताश्च प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण! हे आयुष्मन्! आईणगेत्यादि सुगममिति। अथ प्रस्तुतसूत्रमनुश्रियते, 'तत्थ ण'मिति अत्र व्याख्या–तत्रैतेषु उत्पातपर्वतादिगतहंसासनादिषु यावन्नानारूपसंस्थानसंस्थितपृथिवीशिलापट्टकेषु, णमिति पूर्ववत्, बहवो वनानामन्तरेषु भवाः पृषोदरादित्वान्मागमे वानमन्तरा देवा देव्यश्च यथासुखमासते आश्रयन्ति वाऽऽश्रयणीयं स्तम्भादि शेरते दीर्घकायप्रसारणेन वर्त्तन्ते, नतु निद्रां कुर्वन्ति, तेषां देवयोनिकतया निद्राया अभावात्, अत्रोपलक्षणात् 'चिट्ठंती'त्यादिकः पाठो जीवाभिगमोक्तो लिखितोऽस्ति, तिष्ठन्ति–ऊर्ध्वस्थानेन वर्त्तन्ते निषीदन्ति–उपविशन्ति 'तुअट्टंति'त्ति त्वग्वर्त्तनं कुर्वन्ति वामपार्श्वतः परावृत्य दक्षिणपार्श्वेनावतिष्ठन्ते दक्षिणपार्श्वतो वा परावृत्य वामपार्श्वेनावतिष्ठन्त इति, रमन्ते–रतिमाबध्नन्ति, तथा ललन्ति–मनईप्सितं यथा भवति तथा वर्त्तन्ते इति भावः, तथा क्रीडन्ति–यथासुखमितस्ततो गमनविनोदेन गीतनृत्यादिविनोदेन वाऽवतिष्ठन्ते, तथा मोहन्ति–मैथुनसेवां कुर्वन्ति, इत्येवं 'पुरा पोराणाण'मित्यादि पुरा–पूर्वं प्राग्भवे इति भावः कृतानां कर्मणामिति योगः अत एव पौराणानां सुचीर्णानां–सुचरितानां, इह सुचरितजनितं कर्मापि कार्ये कारणोपचारात् सुचरितमिति विवक्षितं, ततोऽयं भावार्थः–विशिष्टतथाविधधर्मानुष्ठानविषयाप्रमादकरणक्षान्त्यादिसुचरितानामिति, तथा सुपराक्रान्तानां अत्रापि कार्ये कारणोपचारात् सुपराक्रान्तजनितानि कर्माणि सुपराक्रान्तानि इत्युक्तं भवति, सकलसत्त्वमैत्रीसत्यभाषणपरद्रव्यानपहारसुशीलादिरूपं सुपराक्रमजनितानामिति, अत एव शुभानां–

१ वक्षस्कारे वनखण्डाधि०

॥ ४६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभफलानां इह किञ्चिदशुभफलमपि इन्द्रियमतिविपर्यासात् शुभफलमाभाति ततस्तात्त्विकशुभफलप्रतिपत्त्यर्थमस्यैव पर्यायमाह–कल्याणानां–तत्त्ववृत्त्या तथाविधविशिष्टफलदायिनां अथवा कल्याणानां–अनर्थोपशमकारिणां कल्याणं–कल्याणरूपं फलविपाकं 'पच्चणुभवमाणा' प्रत्येकमनुभवन्तो विहरन्ति–आसते । तदेवं पद्मवरवेदिकाया बहिःस्थितवनखण्डवक्तव्यतोक्ता, सम्प्रति तस्या एवार्वाक्स्थितवनखण्डवक्तव्यतामभिधित्सुराह–'तीसे णं जगईए' इत्यादि, तस्या जगत्या उपरि पद्मवरवेदिकाया अन्तर्मध्ये यः प्रदेशः एतस्मिन् महानेको वनखण्डः प्रज्ञप्तः, देशोने द्वे योजने विष्कम्भेन वेदिका–पद्मवरवेदिका तस्याः समकःतुल्यः परिक्षेपेण, अयं भावः–पद्मवरवेदिकाया यावान् (तावान्) अस्यापि, पद्मवरवेदिकाबहिःप्रदेशात् अन्तः पंचधनुःशतागमने यत् परिक्षेपन्यूनत्वं तन्न विवक्षितमल्पत्वादिति, 'किण्हे'त्ति कृष्णो यावदितिपदेन च बहिर्वनखण्डवदविशेषेण वनखण्डवर्णको ग्राह्यः, नवरं तृणविहीनो ज्ञातव्यः, अत्र तृणजन्यः शब्दोऽपि तृणशब्देनाभिधीयते उपचारादतस्तृणशब्दविहीनो ज्ञातव्यः, उपलक्षणत्वादस्य मणिशब्दविहीनोऽपि, पद्मवरवेदिकान्तरिततया तथाविधः वाताभावतो मणीनां तृणानां चाचलनेन परस्परं संघर्षाभावात् शब्दाभावः, उपपन्नश्चायमर्थः, जीवाभिगमसूत्रवृत्त्योस्तथैव दर्शनादिति । सम्प्रति जम्बूद्वीपस्य द्वारसंख्याप्ररूपणार्थमाह—

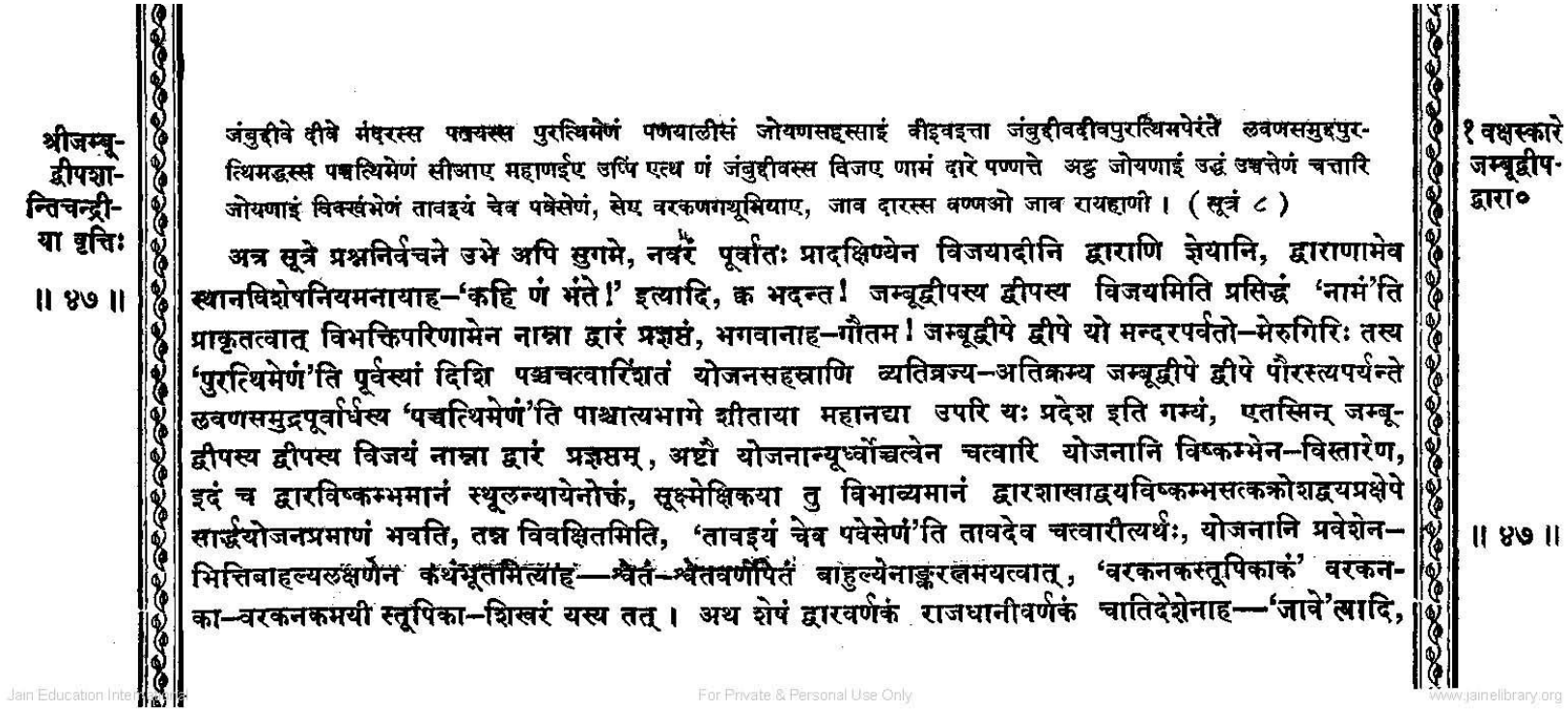
जंबुद्दीवस्स णं भंते! दीवस्स कइ दारा पण्णत्ता, गो०! चत्तारि दारा पं०, तं०–विजए १ वेजयंते २ जयंते ३ अपराजिए ४, एवं चत्तारिवि दारा सरायहाणिआ भाणियव्वा (सूत्रं ७) कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?, गो०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७,८]

दीप अनुक्रम [७,८]



श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ ४७ ॥

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं वीइवइत्ता जंबुद्दीवदीवपुरत्थिमपेरंते लवणसमुद्दपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीआए महाणईए उप्पिं एत्थ णं जंबुद्दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं, सेए वरकणगथूभियाए, जाव दारस्स वण्णओ जाव रायहाणी । (सूत्रं ८)

अत्र सूत्रे प्रश्ननिर्वचने उभे अपि सुगमे, नवरं पूर्वान्तः प्रादक्षिण्येन विजयादीनि द्वाराणि ज्ञेयानि, द्वाराणामेव स्थानविशेषनियमनायाह–'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य विजयमिति प्रसिद्धं 'नामं'ति प्राकृतत्वात् विभक्तिपरिणामेन नाम्ना द्वारं प्रज्ञप्तं, भगवानाह–गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे यो मन्दरपर्वतो–मेरुगिरिः तस्य 'पुरत्थिमेणं'ति पूर्वस्यां दिशि पञ्चचत्वारिंशतं योजनसहस्राणि व्यतिव्रज्य–अतिक्रम्य जम्बूद्वीपे द्वीपे पौरस्त्यपर्यन्ते लवणसमुद्रपूर्वार्धस्य 'पच्चत्थिमेणं'ति पाश्चात्यभागे शीताया महानद्या उपरि यः प्रदेश इति गम्यं, एतस्मिन् जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य विजयं नाम्ना द्वारं प्रज्ञप्तम्, अष्टौ योजनान्यूर्ध्वोच्चत्वेन चत्वारि योजनानि विष्कम्भेन–विस्तारेण, इदं च द्वारविष्कम्भमानं स्थूलन्यायेनोक्तं, सूक्ष्मेक्षिकया तु विभाव्यमानं द्वारशाखाद्वयविष्कम्भसत्कक्रोशद्वयप्रक्षेपे सार्द्धयोजनप्रमाणं भवति, तन्न विवक्षितमिति, 'तावइयं चेव पवेसेणं'ति तावदेव चत्वारीत्यर्थः, योजनानि प्रवेशेन–भित्तिबाहल्यलक्षणेन कथंभूतमित्याह—श्वेतं–श्वेतवर्णोपेतं बाहुल्येनाङ्करत्नमयत्वात्, 'वरकनकस्तूपिकाकं' वरकनका–वरकनकमयी स्तूपिका–शिखरं यस्य तत्। अथ शेषं द्वारवर्णकं राजधानीवर्णकं चातिदेशेनाह—'जावे'त्यादि,

१ वक्षस्कारे जम्बूद्वीप-द्वारा०

॥ ४७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ जम्बूद्वीपे विजयादि द्वाराण्यः कथनं आरभ्यते

यावद् द्वारस्य वर्णको–वर्णनग्रन्थो 'जाव रायहाणी'ति यावद्राजधानीवर्णकश्च जीवाभिगमोपाङ्गोक्तो निरवशेषो वक्तव्यः, तत्र प्रथमं द्वारवर्णको यथा–'ईहामिगउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुञ्जरवणलयपउमलयभत्तिचित्ते खंभुग्गयवरवेइयापरिगयाभिरामे विज्जाहरजमलजुअलजंतजुत्ते इव अच्चीसहस्समालणीए, रूवगसहस्सकलिए भिसमाणे भिब्भिसमाणे चक्खुल्लोअणलेसे सुहफासे सस्सिरीयरूवे वण्णओ दारस्स तस्सिमो होइ, तंजहा–वइरामया णेमा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलिअरुइलखंभे जायरूवोवचियपवरपंचवण्णमणिरयणकुट्टिमतले हंसगब्भमएलुए गोमेज्जमए इंदकीले लोहिअक्खमईओ दारचेडाओ जोईरसामए उत्तरंगे वेरुलिआमया कवाडा वइरामया संधी लोहिअक्खमईओ सूईओ णाणामणिमया समुग्गया वइरामया अग्गला अग्गलपासाया रययामया आवत्तणपेढिया अंकुत्तरपासए निरंतरिए घणकवाडे भित्तीसु चेव भित्तिगुलिया छप्पण्णा तिण्णि होंति गोमाणसीओ तत्तिआओ णाणामणिरयणवालरूवगलीलट्ठिअसालभंजिआगे वइरामए कूडे रययामए उस्सेहे सवतवणिज्जमए उल्लोए णाणामणिरयणजालपंजरमणिवंसगलोहियक्खपडिवंसगरययभोमे अंकामया पक्खा पक्खबाहाओ जोईसामयावंसा वंसकवेलुया य रययामईओ पट्टिआओ जायरूवमइओ ओहाडणीओ वइरामइओ उवरिपुच्छणीओ सवसेए रययामयच्छाणे अंकामयकणगकूडतवणिज्जथूभिआए सेए संखतलविमलनिम्मलदधिघणगोखीरफेणरयणिगरप्पगासे तिलगरयणद्धचंदचित्ते णाणामणिदामालंकिए अंतो बाहिं च सण्हे तवणिज्जवालुआपत्थडे सुहफासे सस्सिरीअरूवे पासाईए ४"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति, अत्र व्याख्या—'ईहामिगे'त्यादि विशेषणदशकं पद्मवरवेदिकागतवापीतोरणाधिकारे व्याख्यातार्थमिति ततोऽवसेयं, 'वण्णो दारस्स तस्सिमो होइ' इति वर्णको—वर्णकनिवेशो द्वारस्य—विजयाभिधानस्यायं—वक्ष्यमाणो भवति, तमेवाह—'तंजहे'त्यादि, तद्यथा—'वयरामया णेमा'इत्यादि, अत्र च द्वारवर्णनाधिकारे यत्र केवलं विशेषणं तत्र साक्षात् द्वारस्य विशेषणता यत्र तु विशेष्यसहितं तत्र तस्येति गम्यं, तेन तस्य विजयद्वारस्य वज्रमया नेमा—भूमिभागादूर्ध्वं निष्क्रामन्तः प्रदेशाः रिष्टरत्नमयानि प्रतिष्ठानानि—मूलपादाः वैडूर्याः—वैडूर्यरत्नमयाः रुचिराः स्तम्भाः यस्य तत्तथा, तथा जातरूपेण-सुवर्णेनोपचितैः—युक्तैः प्रवरं पञ्चवर्णमणिरत्नैः कुट्टिमतलं—बद्धभूमितलं यस्य तत्तथा, तथाऽस्य विजयद्वारस्य हंसगर्भरत्नमय एलुको—देहली गोमेदकरत्नमय इन्द्रकीलो—गोपुरकपाटयुगसन्धिनिवेशस्थानं लोहिताख्यं—पद्मरागाख्यं रत्नं तन्मय्यौ द्वारपिण्ड्यौ—द्वारशाखे सूत्रे स्त्रीत्वनिर्देश आर्षत्वात् ज्योतीरसमयं उत्तरङ्गं—द्वारस्योपरि तिर्यग्व्यवस्थितं काष्ठं वैडूर्यमयौ कपाटौ लोहिताक्षमय्यो—लोहिताक्षरत्नात्मिकाः सूचयः—फलकद्वयसम्बन्धविघटनाभावहेतुपादुकास्थानीयाः तत्र वज्रमयाः सन्धयः—सन्धिमेलाः फलकानां, किमुक्तं भवति?—वज्ररत्नापूरिताः फलकानां सन्धयः, तथा नानामणिमयाः समुद्गका इव समुद्गकाः—चूलिकागृहाणि, तानि नानामणिमयानि, यत्र न्यस्तौ कपाटौ निश्चलतया तिष्ठतः, वज्रमया अर्गला अर्गलाप्रासादाः, तत्रार्गलाः प्रतीताः अर्गलाप्रासादा यत्रार्गला नियम्यन्ते, रजतमयी आवर्त्तनपीठिका, आवर्त्तनपीठिका च यत्रेन्द्रकीलो भवति, तथा अङ्का—अङ्करत्नमया उत्तरपार्श्वा यस्य तत्तथा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७,८]

दीप अनुक्रम [७,८]

'निरन्तरितघनकपाट'मिति निर्गता अन्तरिका–लघ्वन्तररूपा ययोस्तौ निरन्तरिकौ अत एव घनकपाटौ यस्य तत्तथा 'भित्तिसु चेव भित्तिगुलिया छप्पण्णा तिण्णि होंति' इति तस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोर्भित्तिषु भित्तिषु गता भित्तिगुलिकाः पीठकसंस्थानीयाः तिस्रः षट्पञ्चाशतः–षट्पञ्चाशत्त्रिकप्रमिता भवन्ति, अष्टषष्ट्यधिकं शतमित्यर्थः, तथा गोमानस्यः–शय्याः तावन्मात्राः–षट्पञ्चाशत्त्रिकप्रमिताः, नानामणिरत्नमयानि व्यालरूपाणि–फणिरूपकाणि, लीलास्थितशालभञ्जकाश्च–लीलास्थितपुत्रिका यत्र तत्तथा, तथा तस्य द्वारस्य वज्रमयः कूटो–माढभागः रजतमय उत्सेधः, शिखरं केवलं, शिखरमत्र तस्यैव माढभागस्य सम्बन्धि द्रष्टव्यं न द्वारस्य, तस्य प्रागेवोक्तत्वात्, सर्वात्मना तपनीयमय 'उल्लोकः' उपरिभागः 'नानामणिरयणजालपञ्जरमणिवंसगलोहिअक्खपडिवंसगरययभोम्मे' इति मणयो–मणिमया वंशा येषां तानि मणिवंशकानि तथा लोहिताक्षा–लोहिताक्षमयाः प्रतिवंशाः येषां तानि लोहिताक्षप्रतिवंशकानि, तथा रजतमयी भूमिर्येषां तानि रजतभूमानि, प्राकृतत्वात् समासान्तो मकारस्य च द्वित्वं, मणिवंशकानि लोहिताक्षप्रतिवंशकानि रजतभूमानि, नानामणिरत्नानि–नानामणिरत्नमयानि जालपंजराणि–गवाक्षापरपर्यायाणि यस्मिन् द्वारे तत्तथा, पदानामन्यथोपनिपातः प्राकृतत्वात्, 'अङ्कामया पक्खा इत्यत आरभ्य रययामए छाणे' इत्यन्तानि पद्मवरवेदिकावद्भावनीयानि, 'अंकामयकणगकूडतवणिज्जथूभियागे' इति, अङ्कमयं–बाहुल्येनाङ्करत्नमयं पक्षबाह्वादीनामङ्करत्नात्मकत्वात् कनकं–कनकमयं कूटं–महच्छिखरं यस्य तत्तथा, तपनीया–तपनीयमयी स्तूपिका–लघुशिखररूपा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यस्य तत्तथा, ततः पदत्रयस्य पदद्वयमीलनेन २ कर्मधारयः, एतेन यत्प्राक् सामान्येनोत्क्षिप्तं 'सेए वरकणगथूभियागे' इति तदेव प्रपञ्चतो भावितमिति, सम्प्रति तदेव श्वेतत्वमुपसंहारव्याजेन भूय उपदर्शयति–श्वेतं, श्वेतत्वमेवोपमया द्रढयति–विमलं–निर्मलं यत् शङ्खतलं–शङ्खस्योपरितनो भागो यश्च निर्मलो दधिघनो–घनीभूतं दधि गोक्षीरफेनो रजतनिकरश्च–रूप्यराशिस्तद्वत्प्रकाशः–प्रतिमता यस्य तत्तथा, 'तिलगरयणद्धचंदचित्ते' इति तिलकरत्नानि–पुण्ड्रविशेषाः तैरर्द्धचन्द्रैश्च–अर्द्धचन्द्राकारैः सोपानविशेषैश्चित्रं–चित्रकारि तिलकरत्नार्द्धचन्द्रचित्रं, तथा नानामणयो–नानामणिमयानि दामानि–मालास्तैरलङ्कृतं नानामणिदामालङ्कृतं, तथा अन्तर्बहिश्च श्लक्ष्णं–श्लक्ष्णपुद्गलस्कन्धनिर्मापितं तपनीयाः–तपनीयमय्यो वालुकाः–सिकतास्तासां प्रस्तटः–प्रस्तारो यत्र तत्तपनीयवालुकाप्रस्तटं, 'सुहफास' इत्यादि प्राग्वत् । "विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो चंदणकलसा पण्णत्ता, ते चंदणकलसा वरकमलपइट्ठाणा सुरभिवरवारिपडिपुण्णा चंदणकयचच्चागा आविद्धकंठेगुणा पउमुप्पलपिहाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा महया महया महिंदकुंभसमाणा पण्णत्ता समणाउसो!" अत्र व्याख्या–विजयस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोरेकैकनैषेधिकीभावेन 'दुहओ'त्ति प्राकृतत्वात् ह्रस्वत्वे द्विधातो–द्विप्रकारायां नैषेधिक्यां, नैषेधिकी चात्र निषदनस्थानं, तत्र प्रत्येकं द्वौ द्वौ वन्दनाय कलशौ वन्दनकलशौ–मांगल्यघटौ प्रज्ञप्तौ, ते च वन्दनकलशा वरकमलं प्रतिष्ठानं–आधारो येषां ते तथा, तथा सुरभिवरवारिपरिपूर्णाः, चन्दनकृतचर्चाकाः–चन्दनकृतोपरागाः, 'आविद्ध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कण्ठेगुणा' इति आविद्धः–आरोपितः कण्ठे गुणो–रक्तसूत्ररूपो येषां ते तथा, कण्ठेकालवत् सप्तम्या अलुप्, तथा पद्ममुत्पलं च यथायोगं पिधानं येषां ते तथा, 'सव्वरयणामया' इत्यादि प्राग्वत्, 'महया महया' इति अतिशयेन महान्तो 'महेन्द्रकुम्भसमानाः' कुम्भानामिन्द्र इन्द्रकुम्भो, राजदन्तादिदर्शनादिन्द्रशब्दस्य पूर्वनिपातः, महांश्चासाविन्द्रकुम्भश्च तस्य समाना महेन्द्रकुम्भसमाना–महाकलशप्रमाणाः यद्वा महीन्द्रो–राजा तदर्थं तस्य सम्बन्धिनो वा कुम्भा–अभिषेककलशाः तत्समानाः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, 'विजयस्स णं दारस्स उभओपासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो णागदंतगा पण्णत्ता, ते णं णागदंतगा मुत्ताजालंतरूसिअहेमजालगवक्खजालखिंखिणीघंटाजालपरिक्खित्ता अब्भुग्गया अभिनिसिट्ठा तिरिअं सुसंपग्गहिया अहेपण्णगद्धरूवा पण्णगद्धसंठाणसंठिया सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा महया २ गयदंतसमाणा पण्णत्ता समणाउसो!" विजयस्य द्वारस्येत्यादिपदयोजना प्राग्वत्, द्वौ द्वौ नागदन्तकौ–नर्कुटिकौ अङ्कुटिकाविव्यर्थः प्रज्ञप्तौ, ते च नागदन्तका मुक्ताजालानामन्तरेषु यानि उच्छ्रितानि–लम्बमानानि हेमजालानि–हेममया दामसमूहा यानि च गवाक्षजालानि–गवाक्षाकृतिरत्नविशेषाः दामसमूहा यानि च किंकिणीघण्टाजालानि–क्षुद्रघण्टासमूहास्तैः परिक्षिप्ताः–सर्वतो व्याप्ताः, अभिमुखमुद्गता अभ्युद्गता–अग्रिमभागे मनागुन्नता इति भावः, येन तेषु माल्यदामानि सुस्थितानि भवन्ति, अभिमुखं–बहिर्भागाभिमुखं निसृष्टा–निर्गताः अभिनिसृष्टाः तिर्यग्–भित्तिप्रदेशैः सुष्ठु–अतिशयेन सम्यग्–मनागप्यचलनेन परिगृहीताः 'अहेपण्णगद्धरूवा' इति अधः–अधस्तनं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत् पन्नगस्य–सर्पस्यार्द्धं तस्येव रूपं–आकारो येषां ते तथा अधःपन्नगार्द्धवदतिसरला दीर्घाश्चेति भावः, एतदेव व्याचष्टे–'पन्नगार्द्धसंस्थानसंस्थिताः' अधःपन्नगार्द्धसंस्थानसंस्थिताः सर्वात्मना वज्रमयाः 'अच्छा' इत्यादि प्राग्वत्, 'महया महया' इति अतिशयेन महान्तो गजदन्तसमानाः–गजदन्ताकाराः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण! हे आयुष्मन्!। "तेसु णं णागदंतएसु बहवे किण्हसुत्तबद्धवग्घारिअमल्लदामकलावा एवं नील० लोहिअ० हालिद्द० सुक्किलसुत्तबद्धवग्घारिअमल्लदामकलावा, ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया णाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभियसमुदया जाव सिरीइ अईव उवसोभेमाणा २ चिट्ठंति" अत्र व्याख्या–तेषु च नागदन्तकेषु बहवः कृष्णसूत्रबद्धा 'वग्घारिअ'त्ति अवलम्बिताः माल्यदामकलापाः–पुष्पमालासमूहाः, एवं नीललोहितहारिद्रशुक्लसूत्रबद्धा अपि माल्यदामकलापा वाच्याः, 'ते णं दामा' इत्यादि, तानि दामानि 'तवणिज्जलंबूसगा' इति तपनीयः–तपनीयमयो लम्बूसगो–दाम्नामग्रिमभागे प्राङ्गणे लम्बमानो मण्डनविशेषो गोलकाकृतिर्येषां तानि तपनीयलम्बूसकानि, तथा पार्श्वतः–सामस्त्येन सुवर्णप्रतरकेण–सुवर्णपत्रकेण मण्डितानि सुवर्णप्रतरकमण्डितानि तथा नानारूपाणां मणीनां रत्नानां च ये विविधा विचित्रवर्णा हारा–अष्टादशसरिकास्तैरुपशोभितः समुदायो येषां तानि तथा, 'जाव सिरीए अईव उवसोभेमाणा २ चिट्ठंति' अत्र यावत्करणात् एवं परिपूर्णः पाठो द्रष्टव्यः 'ईसिमण्णोण्णमसंपत्ता पुव्वावरदाहिणुत्तरागएहिं वाएहिं मंदायं २ एइज्जमाणा २ पलंबमाणा २ पइंझमाणा २ उरालेणं मणुण्णेणं मणहरेणं कण्णमणनिव्वुइकरेणं सद्देणं ते पएसे सव्वओ समंता आपूरेमाणा

॥ ५० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२ सिरीए अतीव उवसोभेमाणा २ चिट्ठंति" एतच्च पूर्वं पद्मवरवेदिकावर्णने व्याख्यातमिति न भूयो व्याख्यायते, "तेसि णं णागदंतगाण उवरिं दो दो णागदंतगा पण्णत्ता, ते णं णागदंतगा मुत्ताजालंतरूसिया तहेव जाव समणाउसो !, तेसु णं णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कया पण्णत्ता, तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहूईओ वेरुलियामईओ धूवघडीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं धूवघडीओ कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुआभिरामाओ सुगंधवरगंधिआओ गंधवट्टिभूयाओ ओरालेणं मणुण्णेणं घाणमणनिव्वुइकरेणं गंधेणं ते पएसे सव्वओ समंता आपूरेमाणीओ २ सिरीए अईव उवसोभेमाणा २ चिट्ठंति" अत्र व्याख्या—तेषां नागदन्तानामुपरि अन्यौ द्वौ द्वौ नागदन्तकौ प्रज्ञप्तौ, ते च नागदन्तका मुक्ताजालंतरूसिअहेमजालगवक्खजाल इत्यादि प्रागुक्तं सर्वं द्रष्टव्यं, यावद् गजदन्तसमानाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, 'तेसु ण'मित्यादि तेषु नागदन्तकेषु बहूनि रजतमयानि सिक्कानि प्रज्ञप्तानि, तेषु रजतमयेषु सिक्यकेषु बह्व्यो वैडूर्य्यमय्यो धूपघट्यः—धूपघटिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च धूपघटिकाः कालागुरुश्च—कृष्णागुरुः प्रवरकुन्दुरुक्कं च—चीडाभिधानो गन्धद्रव्यविशेषः तुरुष्कं च—सिह्लकं धूपश्च—दशाङ्गादिः गन्धद्रव्यसंयोगज इति द्वन्द्वे तेषां सम्बन्धी यो 'मघमघेंत'त्ति मघमघायमानोऽतिशयवान् उद्धुतः—इतस्ततो विप्रसृतो गन्धस्तेनाभिरामाः, उद्धुतशब्दस्य परनिपात आर्षत्वात्, सुष्ठु—शोभनो गन्धो येषां ते तथा, समासान्तविधेरनित्यत्वादत्रेद्रूपस्य समासान्तस्याभावो यथा सुरभिगन्धेन वारिणेति, ते च ते वरगन्धाश्च—प्रधानवासास्तेषां गन्धः स आसु अस्तीति सुगन्धवरगन्धगन्धिकाः 'अतो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऽनेकस्वरा'दितीकप्रत्ययः (श्रीसिद्ध०७–२–६) अत एव गन्धवर्त्तिभूताः–सौरभ्यातिशयाद्गन्धद्रव्यगुटिकाकल्पाः उदारेण स्फारेण मनोज्ञेन–मनोऽनुकूलेन, कथं मनोऽनुकूलत्वमत आह–घ्राणमनोनिर्वृतिकरेण गन्धेन तान्–प्रत्यासन्नान् प्रदेशान् आपूरयन्त्यः २ श्रिया अतीव शोभमानाः २ तिष्ठन्ति, "विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ निसीहियाए दो दो सालभंजियाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं सालभंजियाओ लीलट्ठियाओ सुपइट्ठिआओ सुअलंकियाओ णाणाविहरागवसणाओ रत्तावंगाओ असियकेसीओ मिउविसयपसत्थलक्खणसंवेल्लियग्गसिरयाओ णाणामल्लपिणद्धाओ मुट्ठिगेज्झसुमज्झाओ आमेलगजमलजुअलवट्टिअअब्भुन्नयपीणरइअसंठियपयोहराओ ईसिं असोगवरपायवसमुट्ठियाओ वामहत्थगहियग्गसालाओ ईसिं अद्धच्छिकडक्खचिट्ठिएहिं लूसेमाणीओविव चक्खुल्लोअणलेसहिं अण्णमण्णं खिज्जमाणीओविव पुढवीपरिणामाओ सासयभावमुवगयाओ चंदाणणाओ चंदविलासिणीओ चंदद्धसमणिडालाओ चंदाहियसोमदंसणाओ उक्का इव उज्जोएमाणीओ विज्जुघणमरीचिसूरदिप्पंततेअअहिअयरसण्णिगासाओ सिंगारागारचारुवेसाओ पासादीयाओ तेअसा अईव २ उवसोभेमाणीओ चिट्ठंति' अत्र व्याख्या–विजयस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोरेकैकनैषेधिकीभावेन द्विधातो–द्विप्रकारायां नैषेधिक्यां द्वे द्वे शालभञ्जिके–पञ्चाल्यौ प्रज्ञप्ते, ताश्च शालभञ्जिका लीलया–ललिताङ्गनिवेशरूपया स्थिताः लीलास्थिताः सुष्ठु–मनोज्ञतया प्रतिष्ठिताः सुप्रतिष्ठिताः सुष्ठु–अतिशयेन रमणीयतया अलंकृताः स्वलंकृताः, तथा 'नानाविहरागवसणाओ' इति नानाविधो–नानाप्रकारो रागो–रञ्जनं येषां तानि तादृशानि वसनानि–वस्त्राणि संवृततया यासां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तास्तथा, रक्तोऽपाङ्गो–नयनप्रान्तं यासां ताः रक्तापाङ्गाः, असिताः–श्यामाः केशाः यासां ता असितकेशाः मृदवः–कोमला विशदा–निर्मलाः प्रशस्तानि–शोभनान्यस्फुटिताग्रत्वप्रभृतीनि लक्षणानि येषां ते प्रशस्तलक्षणाः, संवेल्लितं–संवृतं किञ्चिदाकुञ्चितं अग्रं येषां शेखरकरणात् ते संवेल्लिताग्राः शिरोजाः–केशाः यासां ता मृदुविशदप्रशस्तलक्षणसंवेल्लिताग्रशिरोजाः, नानारूपाणि माल्यानि–पुष्पाणि पिनद्धानि–आविद्धानि यथोचितस्थानेषु स्थापितानि यासां ता नानामाल्यपिनद्धाः, निष्ठान्तस्य परनिपातो भार्यादिदर्शनात्, मुष्टिग्राह्यं तनुतरत्वात् सुष्ठु मध्यं–मध्यभागो यासां ता मुष्टिग्राह्यसुमध्याः, 'आमेलगजमलजुअलवट्टिअअब्भुण्णयपीणरइअसंठिअपयोहराओ' आपीडः–शेखरकस्तस्य यमलं–समश्रेणीकं युगलं तद्वद्वर्त्तितौ–बद्धस्वभावावुपचितकठिनभावाविति भावः, अत एवाभ्युन्नतौ–तुङ्गौ पीनरतिदसंस्थितौ–पीवरसुखदसंस्थानौ पयोधरौ–स्तनौ यासां तास्तथा, तथा 'ईसिं असोगपायवसमुट्ठियाओ' इति, ईषत्–मनाक् अशोकवरपादपे समवस्थिता–आश्रिताः तथा वामहस्तेन गृहीतमग्रं शालायाः–शाखाया अर्थादशोकपादपस्य याभिस्ताः वामहस्तगृहीताग्रशाखाः, 'ईसिं अद्धच्छिकडक्खचिट्ठिएहिं लूसेमाणीओ विवे'ति ईषत्–मनाक् अर्द्धं–तिर्यग्वलितं अक्षि–चक्षुर्येषु कटाक्षरूपेषु चेष्टितेषु शृङ्गाराविर्भावक्रियाविशेषेष्वित्यर्थः तैर्मुष्णन्त्य इव सुहृज्जनमनांसीति गम्यं, तथा 'चक्खुल्लोअणलेसेहिं' अन्नमन्नं–परस्परं चक्षुषां लोकनेन–अवलोकनेन लेशाः–संश्लेषास्तैः खिद्यमाना इव, किमुक्तं भवति?–एवं नाम ताः तिर्यग्वलिताः कटाक्षैः परस्परमवलोकमानाः अवतिष्ठन्ति यथा नूनं परस्परसौभाग्यासहनतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यग्वलिताक्षिकटाक्षैः परस्परं खिद्यन्त इवेति, तथा 'पुढवीपरिणामाओ' इति पृथ्वीपरिणामरूपाः शाश्वतभावमुपगता विजयद्वारवत्, चन्द्राननाः–चन्द्रमुख्यः चन्द्रवन्मनोहरं विलसन्तीत्येवंशीलाश्चन्द्रविलासिन्यः चन्द्रार्द्धेन–अष्टमी-चन्द्रेण समं-सदृशं ललाटं यासां ताः चन्द्रार्द्धसमललाटाः, चन्द्रादप्यधिकं सोमं–सुभगं कान्तिमद्दर्शनं–आकारो यासां ताः तथा, उल्का इव–गगनाग्निज्वाला इवोद्योतमानाः विद्युतो–मेघवह्नयस्तासां घना–निविडा मरीचयस्तेभ्यो यच्च सूर्यस्य दीप्यमानं घनाद्यनावृतं तेजस्तस्मादधिकतरः सन्निकाशः–प्रकाशो यासां तास्तथा, शृङ्गारो–मण्डनभूषणादो-पस्तत्प्रधान आकारो यासां तास्तथा, चारुवेषाः–मनोहरनेपथ्याः, पश्चात्कर्मधारयः, अथवा शृङ्गारस्य–प्रथमरसस्या-गारमिव–गृहमिव चारु वेषो यासां तास्तथा, प्रासादीया इत्यादिपदचतुष्टयं प्राग्वत्, "विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो जालकडगा पण्णत्ता, ते णं जालकडगा सवरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा" विजयस्येत्यादि प्राग्वत्, द्वौ द्वौ जालकटकौ–जालकाकीर्णौ रम्यसंस्थानौ प्रदेशविशेषौ प्रज्ञप्तौ, ते च जालकटकाः सर्वरत्नमयाः'अच्छा' इत्यादि प्राग्वत्। "विजयस्स णं दारस्स उभओपासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो घंटाओ पण्ण-त्ताओ, तासि णं घंटाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–जंबूणयामईओ घंटाओ वइरामईओ लालाओ णाणामणिमया घंटापासगा तवणिज्जमईओ संकलाओ रययामईओ रज्जूओ, ताओ णं घंटाओ ओहस्सराओ मेहस्स-राओ हंसस्सराओ कोंचस्सराओ सीहस्सराओ दुंदुभिस्सराओ णंदिस्सराओ णंदिघोसाओ मंजुघोसाओ सुस्सराओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुस्सरघोसाओ उरालेणं मणुण्णेणं मणहरेणं कण्णमणनिव्वुइकरेणं सद्देणं जाव चिट्ठंति" अक्षरगमनिका प्राग्वत्, द्वे द्वे घण्टे प्रज्ञप्ते, 'तासि णं' तासां घण्टानामयमेतद्रूपो वर्णावासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–जाम्बूनदमय्यो घण्टाः, वज्रमय्यो लालाः नानामणिमया घण्टापार्श्वा–घण्टैकदेशविशेषाः, तपनीयमय्यः शृङ्खला यासु ता अवलम्बितास्तिष्ठन्ति, रजतमय्यो रज्जवः प्रतीताः ताश्च घण्टा ओघेन–प्रवाहेण स्वरो यासां तास्तथा, मेघस्येवातिदीर्घः स्वरो यासां तास्तथा, हंसस्येव मधुरः स्वरो यासां तास्तथा, एवं क्रोञ्चस्वराः, सिंहस्येव प्रभूतदेशव्यापी स्वरो यासां तास्तथा, एवं दुन्दुभिस्वराः, नन्दिः–द्वादशतूर्यसंघातस्तद्वत्स्वरो यासां तास्तथा, नन्दिवत् घोषो–निनादो यासां तास्तथा, मञ्जुः–प्रियः कर्णमनःसुखदायी स्वरो यासां तास्तथा, एवं मञ्जुघोषाः, किं बहुना?, सुस्वराः सुस्वरघोषाः, अथवा सुष्ठु यत् स्वं–स्वकीयं अनन्तरोक्तं वर्णं शृङ्खलादिकं तेन राजन्ते इति सुस्वराः तथा शोभनौ स्वरघोषौ यासां ताः, 'उरालेण' मित्यादि प्राग्वत्, "विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो वणमालाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं वणमालाओ णाणादुमलयकिसलयपल्लवसमाउलाओ छप्पयपरिभुज्जमाणसोभंतसस्सिरीयाओ पासादीयाओ ४" अत्र व्याख्या–पदयोजना प्राग्वत्, द्वे द्वे वनमाले प्रज्ञप्ते, ताश्च वनमाला द्रुमाणां नानालतानां च ये किशलयरूपा अतिकोमला इत्यर्थः पल्लवास्तैः समाकुलाः–सम्मिश्राः षट्पदैः परिभुज्यमानाः सत्यः शोभमानाः षट्पदपरिभुज्यमानशोभमानाः, अत एव सश्रीकाः, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः 'पासाईया' इत्यादि प्राग्वत्, "विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुहओ णिसीहियाए दो दो पकंठगा पण्णत्ता ते णं पकंठगा चत्तारि जोअणाइं आयामविक्खंभेणं दो जोअणाइं बाहल्लेणं सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा" इति, अत्र व्याख्या—पदयोजना प्राग्वत् द्वौ द्वौ प्रकण्ठकौ प्रज्ञप्तौ, प्रकण्ठको नाम पीठविशेषः, चूर्णौ तु "आदर्शवृत्तौ पर्यन्तावनतप्रदेशौ पीठौ प्रकण्ठा"विति, ते च प्रकण्ठकाः चत्वारि योजनान्यायामविष्कम्भेन–आयामविष्कम्भाभ्यां द्वे योजने बाहल्येन–पिण्डेन 'सव्ववइरामया' इति सर्वात्मना वज्रमयाः ते प्रकण्ठकाः 'अच्छा' इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत्, "तेसि णं पकंठगाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं पासायवडिंसगा पण्णत्ता, ते णं पासायवडिंसगा चत्तारि जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसिअपहसिया विविहमणिरयणभत्तिचित्ता वाउद्धुअविजयवेजयंतीपडागच्छत्तातिच्छत्तकलिया तुंगा गगणतलमणुलिहंतसिहरा जालंतररयणपंजरुम्मीलिआ इव मणिकणगथूभिआगा विअसियसयवत्तपोंडरीयतिलगरयणद्धचन्दचित्ता अंतो बाहिं च सण्हा तवणिज्जवालुआपत्थडा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया ४" तेषां प्रकण्ठकानामुपरि प्रत्येकं प्रासादावतंसकाः प्रज्ञप्ताः, प्रासादावतंसको नाम प्रासादविशेषः, तद्व्युत्पत्तिश्चैवं–प्रासादानामवतंसक इव–शेखरक इव प्रासादावतंसकः, ते च प्रासादावतंसकाः प्रत्येकं चत्वारि योजनान्यूर्द्धोच्चत्वेन द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्यां 'अब्भुग्गये'त्यादि, अभ्युद्गता–आभिमुख्येन सर्वतो विनिर्गताः उत्सृताः–प्रबलतया सर्वासु दिक्षु प्रसृता या प्रभा तया सिता इव–बद्धा इव तिष्ठन्तीति गम्यते, अन्यथा कथमिव तेऽत्युच्चा निरालम्बास्तिष्ठन्तीति भावः, तथा 'विविहमणिरयण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्तिचित्ता' इति विविधा–अनेकप्रकारा ये मणयः–चन्द्रकान्ताद्याः यानि च रत्नानि–कर्केतनादीनि तेषां भक्तिभिः–विच्छित्तिभिश्चित्रा–नानारूपा आश्चर्यवन्तो वा, नानाविधमणिरत्नभक्तिचित्राः, तथा 'वाउद्धुअविजयवेजयंतीपडाग-च्छत्ताइछत्तकलिया' वातोद्धुता–वायुकम्पिता विजयः–अभ्युदयस्तत्संसूचिका वैजयन्तीनाम्न्यो याः पताकाः, अथवा विजया इति वैजन्तीनां पार्श्वकर्णिका उच्यन्ते, तत्प्रधाना वैजयन्त्यो विजयवैजयन्त्यः–पताकास्ता एव विजयवर्जिता वैजयन्त्यः, छत्रातिछत्राणि–उपर्युपरिस्थितान्यातपत्राणि तैः कलिता वातोद्धूतविजयवैजयन्तीपताकाछत्रातिछत्रक-लिताः, तुङ्गा–उच्चाः, उच्चैस्त्वेन चतुर्योजनप्रमाणत्वात्, अत एव गगनतलं–अम्बरमनुलिखन्ति–अभिलंघयन्ति शिखराणि येषां ते तथा, तथा जालानि–जालकानि गृहभित्तिषु लोके यानि प्रतीतानि, तदन्तरेषु विशिष्टशोभा-निमित्तं रत्नानि येषु ते जालान्तररत्नाः, सूत्रे चात्र विभक्तिलोपः प्राकृतत्वात्, तथा पञ्जरादुन्मीलिता इव–बहिष्कृता इव पञ्जरोन्मीलिताः, यथा किल किमपि वस्तु वंशादिमयप्रच्छादनविशेषाद्बहिष्कृतमत्यन्तमविनष्टच्छायं भवति, एवं तेऽपि प्रासादावतंसका इति भावः, अथवा जालान्तरगतरत्नपञ्जरैः–रत्नसमुदायविशेषैरुन्मीलिता इव–उन्मिषितलोचना इवेत्यर्थः, मणिकनकस्तूपिका इति प्रतीतं, विकसितानि–विकस्वराणि शतपत्राणि पुण्डरीकाणि च–कमलविशेषाः द्वारादौ प्रतिकृतित्वेन स्थितानि तिलकरत्नानि–भित्त्यादिषु पुण्ड्रविशेषाः अर्द्धचन्द्राश्च द्वारादिषु तैश्चित्रा–नानारूपा आश्चर्यभूता वा नानामणिमयदामालंकृता इति व्यक्तं अन्तर्बहिश्च श्लक्ष्णा–मसृणाः, तपनीयस्य–रक्तसुवर्णस्य वा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लुकास्तासां प्रस्तटः–प्रस्तरः प्राङ्गणेषु येषां ते तथा, शेषं पूर्ववत्, "तेसि णं पासायवडिंसगाणं उल्लोआ पउमलयाभत्तिचित्ता असोगलयाभत्तिचित्ता चंपगलयाभत्तिचित्ता चूअलयाभत्तिचित्ता वणलयाभत्तिचित्ता वासंतिलयाभत्तिचित्ता सवतवणिज्जमया जाव पडिरूवा" तेषां प्रासादावतंसकानामुल्लोकाः–उपरितनभागाः पद्मलताभक्तिचित्राः अशोकलताभक्तिचित्राः चम्पकलताभक्तिचित्राः चूतलताभक्तिचित्राः वनलताभक्तिचित्राः वासन्तिकलताभक्तिचित्राः, सर्वात्मना तपनीयमयाः 'अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा' इति विशेषणकदम्बकं प्राग्वत्, "तेसि णं पासायवडिंसगाणं अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव मणीहिं उवसोभिए मणीणं वण्णो गंधो फासो अ णेअव्वो"त्ति, तेषां प्रासादावतंसकानामन्तर्बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, 'से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादि समभूमिवर्णनं वर्णपञ्चकसुरभिगन्धशुभस्पर्शवर्णनं च प्राग्वद् ज्ञेयं, "तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–रययामया सीहा सोवण्णिया पाया तवणिज्जमया चक्कला णाणामणिमयाइं पायसीसगाइं जंबूणयामयाइं पत्ताइं वइरामया संधी णाणामणिमयं चेच्चं ते णं सीहासणा ईहामिगउसभ जाव पउमलयाभत्तिचित्ता, संसारसारोवचिअविविहमणिरयणपायपीढा अत्थरयमिउमसूरगणवतयकुसंतलिच्चकेसरपच्चत्थुयाभिरामा आईणगरूअबूरनवणीयतूलफासा सुविरइयरयत्ताणा ओअविअखोमदुगुल्लपट्टपडिच्छायणा उवरिं रत्तंसुयसंवुडा सुरम्मा पासाइया ४" इति, 'तेसि ण'मित्यादि,

॥ ५४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेषां प्रासादावतंसकानामन्तर्बहुसमरमणीयानां भूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं सिंहासनं प्रज्ञप्तं, तेषां च सिंहासनानामयमेतद्रूपो वर्णावासो–वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–रजतमयाः सिंहाः, तैरुपशोभितानि सिंहासनानि, सौवर्णिकाः–सुवर्णमयाः पादाः, तपनीयमयानि चक्कलानि–पादानामधःप्रदेशाः भवन्ति, मुक्तानानामणिमयानि पादशीर्षकाणि–पादानामुपरितना अवयवविशेषाः, जाम्बूनदमयानि गात्राणि–ईषादीनि वज्रमया–वज्ररत्नापूरिताः सन्धयो–गात्राणां सन्धिमेलाः नानामणिमयं चेच्चं–व्यूतं विशिष्टं वानमित्यर्थः, तानि च सिंहासनानि ईहामृगऋषभतुरगनरमकरव्यालकिन्नररुरुसरभचमरकुञ्जरवनलतापद्मलताभक्तिचित्राणि, तथा सारसारैः–प्रधानप्रधानैर्विविधैर्मणिरत्नैरुपचितैः पादपीठैः सह यानि तानि तथा, प्राकृतत्वादुपचितशब्दस्यान्तरुपन्यासः, 'अत्थरयमउअमसूरगनवतयकुसंतलिच्चकेसरपच्चत्थुआभिरामा' इति आस्तरकं–आच्छादनं मृदु येषां मसूरकाणां तान्यास्तरकमृदूनि, विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, नवा त्वक् येषां ते नवत्वचः कुशान्ता–दर्भपर्यन्ता नवत्वचश्च ते कुशान्ताश्च नवत्वक्कुशान्ताः–प्रत्यग्रत्वगृदर्भपर्यन्तरूपा लिच्चानि–कोमलानि नम्रशीलानि च केसराणि, क्वचित् सिंहकेसरेतिपाठः तत्र सिंहकेसराणीव केसराणि मध्ये येषां मसूरकाणां तानि नवत्वक्कुशान्तलिच्चकेसराणि, सिंहकेसरेति पाठपक्षे एकस्य केसरशब्दस्य शाकपार्थिवादिदर्शनाल्लोपः, आस्तरकमृदुभिर्मसूरकैर्नवत्वक्कुशान्तलिच्चकेसरैः प्रत्यवस्तृतानि–आच्छादितानि सन्ति यानि अभिरामाणि तानि तथा, विशेषणपूर्वापरनिपातो यादृच्छिकः प्राकृतत्वात्, तथा 'आईणगरूअबूरनवनीयतूलफासा'

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति आजिनकं–चर्ममयं वस्त्रं तच्च स्वभावादतिकोमलं स्यात् रूतं–कर्पासपक्ष्म बूरो–वनस्पतिविशेषः नवनीतं–स्निग्धं तूलं–अर्कतूलं तेषामिव स्पर्शो येषां तानि तथा, सुविरचितं रजस्त्राणं प्रत्येकमुपरि येषां तानि तथा, 'ओविअ'त्ति परिकर्म्मितं यत् क्षौमं–दुकूलं कार्पासिकं वस्त्रं तत्प्रतिच्छादनं–रजस्त्राणस्योपरि द्वितीयमाच्छादनं येषां तानि तथा, 'उवरि रत्तंसुअसंवुआ'इति रक्ताशुकेन–अतिरमणीयेन वस्त्रेण संवृतानि–आच्छादितानि रक्तांशुकसंवृतानि, अत एव सुरम्याणि, 'पासाईया'इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत्, "तेसि णं सीहासणाणं उप्पिं विजयदूसे पण्णत्ते, ते णं विजयदूसा संखकुंददगरयमयमहिअफेणपुंजसन्निकासा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा" तेषां सिंहासनानामुपरि प्रत्येकं २ प्रतिसिंहासनमेकैकभावात् विजयदूष्यं–वितानकरूपो वस्त्रविशेषः प्रज्ञप्तः, तानि च विजयदूष्याणि शङ्खः प्रतीतः'कुंदे'ति कुन्दकुसुमं दकरजः–उदककणाः अमृतस्य–क्षीरोदधिजलस्य मथितस्य यः फेनपुञ्जो–डिण्डीरोत्करस्तत्सन्निकाशानि–तत्सदृशप्रभाणि, पुनः कथंभूतानीत्याह–'सव्वरयणामया' इति सर्वात्मना रत्नमयानि, शेषं प्राग्वत्, "तेसि णं विजयदूसाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं वइरामया अंकुसा पण्णत्ता, तेसु णं वइरामएसु अंकुसेसु पत्तेयं २ कुंभिक्का मुत्तादामा पण्णत्ता, ते णं कुंभिक्का मुत्तादामा अन्नेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं अद्धकुंभिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया जाव चिट्ठंति" तेषां सिंहासनोपरिस्थितानां विजयदूष्याणां प्रत्येकं २ बहुमध्यदेशभागे अङ्कुशा अङ्कुशाकारा मुक्तादामावलम्बनाश्रयभूताः प्रज्ञप्ताः, तेषु वज्रमये-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ष्वङ्कुशेषु प्रत्येकं प्रत्येकं कुम्भाग्रं—मगधदेशप्रसिद्धं कुम्भपरिमाणं मुक्तामयं मुक्तादाम प्रज्ञप्तं, अत्र वृत्त्यनुसारेण 'कुंभिके मुत्तादामे पण्णत्ते' इति पाठः सम्भाव्यते, कुम्भमानं तु उत्तरत्र चर्मरत्नछत्ररत्नसमुद्गकस्थितस्य चक्रिणो गृहपतिरत्नेन धान्यराशिसमर्पणाधिकारे वक्ष्यते, तानि च कुम्भाग्राणि मुक्तादामानि प्रत्येकं प्रत्येकमन्यैश्चतुर्भिः कुम्भाग्रैर्मुक्तादाम-भिस्तदर्धोच्चत्वप्रमाणमात्रैः सर्वतः—सर्वासु दिक्षु समन्ततः—सामस्त्येन संपरिक्षिप्तानि, 'अद्धकुंभिकेहिं' इत्यत्र अर्द्धशब्दः सूत्रे दृश्यमानोऽपि वृत्तावव्याख्यातत्वान्न व्याख्यात इति, 'ते णं दामा'इत्यादि दामवर्णकसूत्रं पद्मवरवेदिकादामवर्ण-कवद् व्याख्येयं, अत्र सूत्रादर्शेषु क्वचित् 'तेसि णं पासायवडिंसगाणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, सोत्थियसीहासण जाव छत्ताइछत्ता' इति सूत्रं दृश्यते,तद्व्याख्यानं च व्यक्तमिति, 'विजयस्स णं दारस्स उभओपासिं दुहओणिसीहियाए दो दो तोरणा पण्णत्ता, ते णं तोरणा णाणामणिमया तहेव जाव अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइच्छत्ता, तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो सालभंजिआ पण्णत्ता जहेव हेट्ठा तहेव, तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो णागदंतगा पण्णत्ता, ते णं णाग-दंतगा मुत्ताजालंतरूसिअ तहेव, तेसु णं णागदंतएसु बहवे किण्हसुत्तबद्धवग्घारियमल्लदामकलावा जाव चिट्ठंति' सर्वं चैतत् सूत्रं प्राग्वत् ज्ञेयं, नवरं नागदन्तकसूत्रे उपरि नागदन्तका न वक्तव्याः अभावादिति, "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो हयसंघाडगा जाव उसहसंघाडगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, एवं पंतीओ वीहीओ मिहुणगा, तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो पउमलयाओ जाव सामलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ जाव सव्वरयणामया जाव पडिरूवाओ"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र व्याख्या–तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ हयसंघाटकौ द्वौ द्वौ गजसंघाटकौ द्वौ द्वौ नरसंघाटकौ द्वौ द्वौ किंपुरुषसंघाटकौ द्वौ द्वौ महोरगसंघाटकौ द्वौ द्वौ गन्धर्वसंघाटकौ द्वौ द्वौ वृषभसंघाटकौ, एते च कथंभूता इत्याह–'सवरयणामया अच्छा सण्हा'इत्यादि प्राग्वत्, एवं पंक्तिवीथीमिथुनकान्यपि प्रत्येकं वाच्यानि, 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे पद्मलते यावत्करणात् द्वे द्वे नागलते द्वे द्वे अशोकलते द्वे द्वे चम्पकलते द्वे द्वे चूतलते द्वे द्वे वासन्तीलते द्वे द्वे कुन्दलते द्वे द्वे अतिमुक्तलते इति परिग्रहः, द्वे द्वे श्यामलते, एताश्च कथंभूता इत्याह–'निच्चं कुसुमियाओ' इत्यादि यावत्करणात् 'निच्चं मउलियाओ निच्चं लवइयाओ निच्चं थवइयाओ निच्चं गुलइयाओ निच्चं गुच्छियाओ निच्चं जमलियाओ निच्चं जुअलियाओ निच्चं विणमियाओ निच्चं पणमियाओ निच्चं सुविभत्तपडिमंजरिवडिंसगधरीओ निच्चं कुसुमियमउलियलवइयथवइयगुलइयगोच्छियविणमियपणमियसुविभत्तपडिमंजरिवडिंसगधरीओ'इति परिगृह्यते, अस्य व्याख्यानं प्राग्वत्, पुनः कथंभूता इत्याह–'सवरयणामया जाव पडिरूवा' इति अत्रापि यावत्करणात् 'अच्छा सण्हा' इत्यादिविशेषणकदम्बकपरिग्रहः, स च प्राग्वद्भावनीयः, "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो वंदनकलसा पन्नत्ता, ते णं वंदणकलसा वरकमलपइट्ठाणा तहेव सवरयणामया जाव पडिरूवा"इति, तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ वन्दनकलशौ प्रज्ञप्तौ, वर्णकश्च प्राक्तनो वक्तव्यः, "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो भिंगारगा पण्णत्ता वरकमलपइट्ठाणा तहेव सवरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा मत्तगयमहामुहागिइसमाणा पण्णत्ता समणाउसो!' तेषां तोरणाना पुरतो द्वौ द्वौ भृङ्गारकौ कन-

॥ ५६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालुकापरपर्यायौ प्रज्ञप्तौ, तेषामिव–वन्दनकलशानामिव वर्णको वक्तव्यः, नवरं पर्यन्ते 'मत्तगयमहामुहागिईसमाणा पण्णत्ता समणाउसो' इति वक्तव्यं, मत्तो यो गजस्तस्य महद्–अतिविशालं यन्मुखं तस्याकृतिः–आकारस्तत्समानाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण ! हे आयुष्मन् ! "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो आदंसगा पण्णत्ता, तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–तवणिज्जमया पगंठगा वेरुलियमया छरुहा वइरामया वारगा णाणामणिमया वलक्खा अंकामया मण्डला अणोग्घसिअनिम्मलाए छायाए सव्वओ चेव समणुबद्धा चंदमंडलपडिनिकासा महया २ अद्धकायसमाणा पण्णत्ता समणाउसो !" तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वावादर्शकौ–दर्प्पणौ प्रज्ञप्तौ, तेषां चादर्शकानामयमेतद्रूपो वर्णावासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–तपनीयमया प्रकंठका–पीठविशेषाः वैडूर्यमयाः थासकाः–आदर्शगण्डप्रतिबद्धप्रदेशाः, आदर्शगण्डानां मुष्टिग्रहणयोग्याः प्रदेशा इति भावः, वज्रमया वारगा–गंडा इत्यर्थः, नानामणिमया वलक्षाः, वलक्षो नाम शृङ्खलादिरूपमवलम्बनं येन सम्बद्ध आदर्शः सुस्थिरो भवति, तथा अङ्करत्नमयानि मण्डलानि यत्र प्रतिबिम्बसंभूतिः, तथा अवघर्षणमवघर्षितं भावे क्तप्रत्ययः भूत्यादिना निर्मार्जनमित्यर्थः अवघर्षितस्याभावोऽनवघर्षितं तेन निर्मला अनवघर्षितनिर्मला तया छायया–कान्त्या समनुबद्धा–युक्ताः, तथा 'चंदमंडलपडिनिकासा'इति चन्द्रमण्डलसदृशाः 'महयामहया'इति अतिशयेन महान्तोऽर्द्धकायसमानां–आलोककव्यन्तरादिकायार्द्धप्रमाणा इत्यर्थः, "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो वइरनाभा थाला पण्णत्ता, ते णं अच्छतिच्छडियसालितंदुलनहसंदट्ठपडिपुण्णाविव चिट्ठंति सव्वजंबूणयामया अच्छा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव पडिरूवा महया महया रहचक्कसमाणा पण्णत्ता समणाउसो !" तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे वज्रमयी नाभिः—मध्यभागो यत्रोलखे वज्रनाभे स्थाले प्रज्ञप्ते, तानि च स्थालानि तिष्ठन्तीति क्रियायोगः, अच्छा—निर्मलाः शुद्धस्फटिकवत् निश्चटिताः—त्रीन् वारान् छटिता—सिस्वचित्ता अत एव 'वखसंदट्ठा' नसाः—नखिकाः संदष्टा—बुसल्लादिभिश्लिष्टा येषां ते तथा, अत्र निष्ठान्तस्य परनिपातः भार्योढादिदर्शनात्, अच्छैः निश्चटितैः श्लक्ष्णितन्दुलैः वखसंदष्टैः परिपूर्णानीव अच्छत्रिश्चटितश्लक्ष्णितन्दुलनखसंदष्टपरिपूर्णानि, पृथिवीपरिणामरूपाणि तानि तथा स्थितानि केवलमेवमाकाराणीत्युपमा, तथा चाह—'सव्वजंबूणयामया' इति सर्वात्मना जाम्बूनदमयानि 'अच्छा सण्हा'इत्यादि प्राग्वत्, 'महयामहया' इति अतिशयेन महान्ति रथचक्रसमानानि प्रज्ञप्तानि, हे श्रमण ! हे आयुष्मन् ! "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो पाईओ पण्णत्ताओ, ताओ णं पाईओ अच्छोदगपडिहत्थाओ पाणाविहस्स फलहरिअस्स बहुपडिपुण्णाओ विव चिट्ठंति, सव्वरयणामईओ जाव पडिरूवाओ, महयामहया गोकलिंजचक्कसमाणाओ पण्णत्ताओ समणाउसो !" तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे पात्र्यौ प्रज्ञप्ते, ताश्च पात्र्योऽच्छेनोदकेन 'पडिहत्थाओ'त्ति परिपूर्णाः देशीशब्दोऽयं, 'पाणाविहस्स फलहरिअस्स बहुपडिपुण्णाओ विवे'ति अत्र षष्ठी तृतीयार्थे बहुवचने चैकवचनं प्राकृतत्वात्, नानाविधैः हरितफलैः बहुप्रभूतं प्रतिपूर्णा इव तिष्ठन्ति, न खलु तानि फलानि जलं वा किन्तु तथारूपाः शाश्वतभावमुपगताः पृथिवीपरिणामास्तत उपमानमिति, 'सव्वरयणामईओ' इत्यादि प्राग्वत्, 'महयामहया'इति अतिशयेन महत्यः, गवां चरणार्थं यद्वेग-

॥ ५७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दलमयं महद्राजनं डल्लेति प्रसिद्धं तद् गोकलिञ्जमुच्यते, तदेव चक्रं वृत्ताकारत्वात् तत्समानाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण ! हे आयुष्मन् ! "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो सुपइट्ठगा पण्णत्ता, ते णं सुपइट्ठगा सुसवोसहिपडिपुण्णा णाणाविहस्स पसाहणगभंडस्स बहुपडिपुण्णाविव चिट्ठंति, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा" तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ सुप्रतिष्ठकौ–आधारविशेषौ प्रज्ञप्तौ, ते च सुप्रतिष्ठकाः सुसर्वौषधिप्रतिपूर्णा नानाविधैः पञ्चवर्णैः प्रसाधनभाण्डैश्च बहुपरिपूर्णा इव तिष्ठन्ति, अत्रापि तृतीयार्थे षष्ठी बहुवचने चैकवचनं प्राकृतत्वात्, उपमानभावश्च प्राग्वत्, 'सव्वरयणामया' इत्यादि प्राग्वत् "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो मणोगुलियाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं मणोगुलियाओ सव्वेरुलियामईओ जाव पडिरूवाओ, तासु णं मणोगुलियासु बहवे सुवण्णरूप्पमया फलगा पण्णत्ता, तेसु णं सुवण्णरूप्पमएसु फलएसु बहवे वइरामया णागदंतगा पण्णत्ता, तेसु णं णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता" सर्वमेतत् सूत्रं व्याख्यातपूर्वं, नवरं मनोगुलिकाः–पीठिका इति, "तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वायकरगा पण्णत्ता, ते णं वायकरगा किण्हसुत्तसिक्कगमवच्छिआ जाव सुक्किलसुत्तसिक्कगमवच्छिया सव्वेरुलियामया अच्छा जाव पडिरूवा" इति, तेषु रजतमयेषु शिक्यकेषु बहवो वातकरका जलशून्याः करका इत्यर्थः प्रज्ञप्ताः, 'ते ण'मित्यादि, ते च वातकरकाः 'कृष्णसूत्रसिक्कगमवच्छिता'इति आच्छादनं गवच्छः, गवच्छाः सञ्जाता एष्विति गवच्छिताः कृष्णसूत्रैः–कृष्णसूत्रमयैः गवच्छैरिति गम्यते शिक्यकेषु गवच्छिताः कृष्णसूत्रशिक्यकगवच्छिताः, एवं नीलसूत्रशिक्यकगवच्छिता इत्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७,८]

दीप अनुक्रम [७,८]

अपि भावनीयं, ते च वातकरकाः सर्वात्मना वैडूर्यमयाः, 'अच्छा' इत्यादि प्राग्वत्, 'तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चित्ता रयणकरंडगा पण्णत्ता, से जहा णामए रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चित्ते रयणकरंडगे वेरुलिअमणिफालिअपडलप-च्चोअडे साए पभाए ते पएसे सवओ समंता ओभासेइ उज्जोवेइ तावेइ पभासेइ एवामेव तेवि चित्ता रयणकरंडगा वेरु-लिय जाव पभासिंति"त्ति, अत्र व्याख्या—तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ चित्रौ—चित्रवर्णोपेतौ नानाश्चर्यकरौ वा रत्न-करण्डकौ प्रज्ञप्तौ, एतावेव दृष्टान्तेन भावयति—'से जहा णाम ए' इत्यादि स यथा नाम राज्ञश्चतुरन्तचक्रवर्तिनः चतुर्षु—दक्षिणोत्तरपूर्वापररूपेषु पृथिवीपर्यन्तेषु चक्रेण वर्त्तितुं शीलं यस्य स चातुरन्तचक्रवर्त्ती तस्य चित्रः—आश्चर्यभूतो नाना-मणिमयत्वेन नानावर्णो वा 'वेरुलिअमणिफालिअपडलपच्चोअडे'त्ति बाहुल्येन वैडूर्यमणिमयस्तथा स्फाटिकपटलप्रत्यव-तटः—स्फाटिकपटलमयाच्छादनः स्वकीयया प्रभया तान् प्रवेशान् सर्वतः सर्वासु दिक्षु समन्ततः—सामस्त्येन अवभासय-ति, एतदेव पर्यायत्रयेण व्याचष्टे—उद्योतयति तापयति प्रभासयति, 'एवमेवे'त्यादि सुगमं, "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो हयकंठा पण्णत्ता जाव उसभकंठा पण्णत्ता सवे रयणामया जाव पडिरूवा" तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ हयक-ण्ठौ—हयकण्ठप्रमाणौ रत्नविशेषौ प्रज्ञप्तौ, एवं गजनरकिन्नरकिंपुरुषमहोरगगान्धर्ववृषभकण्ठा अपि वाच्याः, तथा चाह—'सवे रयणामया' इति, सर्वे रत्नमया इति रत्नविशेषरूपाः 'अच्छा'इत्यादि प्राग्वत्, "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो पुप्फचंगेरीओ पण्णत्ताओ, एवं मल्लचुण्णगंधवत्थाभरणसिद्धत्थगलोमहत्थगचंगेरीओ सवरयणामईओ अच्छाओ जाव

॥ ५८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिरूवाओ" इति, तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे पुष्पचङ्केर्य्यौ प्रज्ञप्ते, एवं माल्यचूर्णगन्धवस्त्राभरणसिद्धार्थकलोमहस्त-कचङ्केर्य्योऽपि वक्तव्याः, एताश्च सर्वा अपि सर्वात्मना रत्नमयाः 'अच्छा' इत्यादि प्राग्वत्, "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो पुप्फपडलगाइं जाव लोमहत्थगपडलगाइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं जाव पडिरूवाइं" एवं पुष्पादिचङ्केरीवत् पुष्पादीनामष्टानां पडलकान्यपि द्विद्विसंख्याकानि वाच्यानि, "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो सीहासणाइं पण्णत्ताइं, तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तहेव जाव पासादीया ४" इति, तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे सिंहासने प्रज्ञप्ते, तेषां च सिंहासनानां वर्णकः प्रागुक्तो निरवशेषो वक्तव्यो यावद्दामवर्णनं, 'तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो रुप्पच्छदा छत्ता पण्णत्ता, ते णं छत्ता वेरुलियविमलदंडा जंबूणयकण्णिया वइरसंधी मुत्ताजालपरिगया अट्ठसह-स्सवरकंचणसलागा दद्दरमलयसुगंधिसव्वोउयसुरहिसीयलच्छाया मंगलभत्तिचित्ता चंदागारोवमा"इति, अत्र व्याख्या–तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे रूप्यच्छदे–रजतमयाच्छादने छत्रे प्रज्ञप्ते, तानि च छत्राणि वैडूर्यरत्नमयविमलदण्डानि जाम्बूनदं–सुवर्णं तन्मयी कर्णिका येषां तानि जाम्बूनदकर्णिकानि, तथा वज्रसन्धीनि–वज्ररत्नापूरितदण्डशलाका-सन्धीनि मुक्ताजालपरिगतानि अष्टौ सहस्राणि–अष्टसहस्रसंख्याका वरकाञ्चनशलाका–वरकाञ्चनमय्यः शलाका येषु तानि अष्टसहस्रवरकांचनशलाकानि, तथा 'दद्दरमलयसुगंधिसव्वोउयसुरहिसीअलच्छाया' इति दर्दरः–चीवरा-वनद्धं कुण्डिकादिभाजनमुखं तेन गालिताः तत्र पक्का वा ये मलय इति–मलयोद्भवं श्रीखण्डं तत्सम्बन्धिनः सुगन्धयो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [७,८]

दीप अनुक्रम [७,८]

मन्दवातसत्कतरलेषु कतिपय मुरभिः शीतला च छाया येषां तानि तथा, 'अंजणगपतिरिक्का' अञ्जनकानां–सन्निकाशीकृतानां अष्टानां भक्त्या–विच्छित्त्या चित्रं–आलेखो येषां तानि तथा, 'चंदणारोचिया' इति चन्द्राकारः–चन्द्राकृतिः सा उपमा येषां तानि तथा, चन्द्रमण्डलवत् वृत्तानीति भावः, "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चामराओ पण्णत्ताओ, ताओ णं चामराओ चंदप्पभवइरवेरुलियणाणामणिरयणखचियविचित्तदंडाओ सुहुमरययदीहवालाओ संखंककुंददगरयअमयमहिअफेणपुंजसण्णिगासाओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ" तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे चामरे प्रज्ञप्ते, सूत्रे चामरशब्दस्य स्त्रीत्वं प्राकृतत्वात्, तानि च चामराणि 'चंदप्पभवइरवेरुलियणाणामणिरयणखचिअदंडाओ' इति चन्द्रप्रभः–चन्द्रकान्तो वज्रं वैडूर्यं च प्रतीतं चन्द्रप्रभवज्रवैडूर्याणि दण्डेषु च नानामणिरत्नानि खचितानि येषु दण्डेषु ते तथा, एवंरूपाश्चित्रा–नानाकारा दण्डा येषां चामराणां तानि तथा, सूक्ष्मा रजतमया दीर्घा वाला येषां तानि तथा, तथा 'संखंककुंददगरयअमयमहिअफेणपुंजसन्निकासाओ' इति शङ्खः–प्रतीतः अङ्को–रत्नविशेषः 'कुंदे'ति कुन्दपुष्पं दकरजः–उदककणाः अमृतमथितफेनपुञ्जाः–क्षीरोदजलमथनसमुत्था फेनपुंजास्तेषामिव सन्निकाशः–प्रभा येषां तानि तथा, 'अच्छाओ' इत्यादि प्राग्वत्, "तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो तेल्लसमुग्गया पण्णत्ता कोट्ठसमुग्गा पत्तसमुग्गा चोअसमुग्गा तगरसमुग्गा एलासमुग्गा हरिआलसमुग्गा हिंगुलयसमुग्गा मणोसिलासमुग्गा अंजणसमुग्गा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा" तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ तैलसमुद्गकौ–सुसन्धितैलाधारविशेषौ प्रज्ञप्तौ,

॥ ५९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७,८]

दीप अनुक्रम [७,८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

एवं कोडादिसप्तकापि वाच्याः, नवरं कोडे–गन्धद्रव्यविशेषः पत्रं–तमालपत्रादि चोयं–त्वगादिकं मन्थद्रव्यं अङ्गरागः सौवीराञ्जनं, अत्र सङ्ग्रहणिगाथा–"तेले कोट्ठ तगरे पत्ते चोए अ तगर एला य । हरिआले हिंगुलए मणोसिला अंजणसमुग्गे ॥ १ ॥" इति, एते सर्वेऽपि सप्तकाः सर्वात्मना रत्नमया इत्यादि प्राग्वत्, "विजए णं दारे अट्ठसयं चक्कज्झयाणं अट्ठसयं मिगज्झयाणं अट्ठसयं गरुलज्झयाणं अट्ठसयं विगज्झयाणं अट्ठसयं छत्तज्झयाणं अट्ठसयं पिच्छज्झयाणं अट्ठसयं सउणिज्झयाणं अट्ठसयं सिंहज्झयाणं अट्ठसयं वसहज्झयाणं अट्ठसयं सेआणं चउविसाणवरनागकेऊणं एवामेव सपुव्वावरेणं विजयदारे असीयं केउसहस्सं भवतीतिमक्खायं" अत्र व्याख्या–तस्मिन् विजयद्वारे अष्टशतं–अष्टाधिकं शतं चक्रध्वजानां चक्रालेखरूपचिन्होपेतानां ध्वजानां, एवं मृगगरुडवृकछत्रपिच्छशकुनिसिंहवृषभचतुर्दन्तहस्तिध्वजानामपि प्रत्येकमष्टशतमष्टशतं वक्तव्यं, 'एवामेव सपुव्वावरेणं'ति एवामेव–अनेन प्रकारेण सह पूर्वं यस्य येन वा सपूर्वं सपूर्वं च तदपरं च २ तेन सपूर्वापरेण पूर्वापरसमुदायेनेत्यर्थः, विजयद्वारेऽशीतं–अशीत्यधिकं केतुसहस्रं भवतीत्याख्यातं, मयाऽन्यैश्च तीर्थकृद्भिरिति शेषः, "विजयस्स णं दारस्स पुरओ णव भोमा पण्णत्ता, तेसि णं भोमाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता जाव मणीणं फासो, तेसि णं भोमाणं उप्पिं उल्लोआ पउमलया जाव सामलयाभत्तिचित्ता जाव सव्वतवणिज्जमया अच्छा जाव पडिरूवा, तेसि णं भोमाणं बहुमज्झदेसभाए जे से पंचमे भोमे तस्स णं भोमस्स बहुमज्झदेसभाए महं एगे सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ, विजयदूसे जाव अंकुसे जाव दामा चिट्ठंति"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र व्याख्या–विजयस्य द्वारस्य पुरतो नव भौमानि–विशिष्टानि स्थानानि प्रज्ञप्तानि, तुर्याङ्गे तु 'विजयस्स णं दारस्स एगमेगाए बाहाए णव णव भोमा पण्णत्ता' इति संख्याशब्दस्य पुरतो वीप्सावचनेन उभयबाहासत्कमीलनेनाष्टादशसंख्या अङ्कतो भौमानां सम्भाव्यते, तत्त्वं तु सातिशयजनगम्यमिति, तेषां च भौमानां भूमिभागः श्लोकाश्च पूर्ववद्वक्तव्याः, तेषां च भौमानां बहुमध्यदेशभागे यत्पञ्चमं भौमं तस्य बहुमध्यदेशभागे विजयद्वाराधिपविजयदेवयोग्यं सिंहासनं प्रज्ञप्तं, तस्य च सिंहासनस्य वर्णनं विजयदूष्यकुम्भाग्रमुक्तादामवर्णनं च प्राग्वत् 'उत्तरपुरच्छिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं चत्तारि भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तस्स णं सीहासणस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं चत्तारि भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तस्स णं सीहासणस्स दाहिणपुरच्छिमेणं एत्थ णं विजअस्स देवस्स अब्भिंतरिआए परिसाए अट्ठण्हं देवसाहस्सीणं अट्ठ भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तस्स णं सीहासणस्स दाहिणेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स मज्झिमियाए परिसाए दसण्हं देवसाहस्सीणं दस भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तस्स णं सीहासणस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स बाहिरियाए परिसाए बारसण्हं देवसाहस्सीणं बारस भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तस्स णं सीहासणस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स सत्तण्हं अणीआहिवईणं सत्त भद्दासणा पण्णत्ता, तस्स णं सीहासणस्स पुरच्छिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स सोलसआयरक्खदेवसाहस्सीणं सोलस भद्दासणसाहस्सीओ पण्ण-

॥ ६० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साओ, तंजहा–पुरच्छिमेणं चत्तारि साहस्सीओ, एवं चउसुवि जाव उत्तरेणं चत्तारि साहस्सीओ, अवसेसेसु भोमेसु पत्तेयं पत्तेयं सीहासणं सपरिवारं पण्णत्तं" अत्र व्याख्या–तस्य सिंहासनस्य 'अवरोत्तरेणं'ति अपरोत्तरस्यां वायव्यकोणे इत्यर्थः, 'उत्तरेणं'ति उत्तरस्यां दिशि उत्तरपूर्वस्यां च–ईशानकोणे सर्वसङ्कलनया तिसृषु दिक्षु अत्र विजयदेवस्य चतुर्णां समाने–विजयदेवसदृशे आयुर्द्युतिविभवादौ भवाः सामानिकास्तेषां 'साहस्सीणं'ति प्राकृतत्वाद् दीर्घत्वं स्त्रीत्वं च सहस्राणां चत्वारि भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तस्य च सिंहासनस्य पूर्वस्यामत्र विजयदेवस्य चतसृणामग्रमहिषीणां, इह 'कृताभिषेका देवी महिषी'त्युच्यते, सा च स्वपरिवारभूतानां सर्वासामपि देवीनामग्रा–प्रधानाः, ताश्च ता महिष्यश्च अग्रमहिष्यस्तासामग्रमहिषीणां प्रत्येकमेकैकसहस्रसंख्यदेवीपरिवारसहितानां चत्वारि भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तस्य सिंहासनस्य दक्षिणपूर्वस्यामाग्नेय्यां विदिशीत्यर्थः, अत्र विजयस्य देवस्य अभ्यन्तरिकायाः पर्षदः–अभ्यन्तरपर्षद्रूपाणामष्टानां देवसहस्राणां योग्यान्यष्ट भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तस्य सिंहासनस्य दक्षिणस्यां दिशि अत्र विजयदेवस्य मध्यमिकायाः पर्षदो दशानां देवसहस्राणां योग्यानि दश भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तस्य सिंहासनस्य दक्षिणापरस्यां दिशि नैर्ऋत्यां विदिशीत्यर्थः, अत्र विजयदेवस्य बाह्यपर्षदो द्वादशानां देवसहस्राणां योग्यानि द्वादश भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, ननु केऽभ्यन्तरमध्यबाह्यपर्षत्का देवाः यैरभ्यन्तरपर्षदादिव्यवहारो भवति ?, उच्यते, अभ्यन्तरपर्षत्का देवा आहूता एव स्वामिनोऽन्तिकमायान्ति न त्वनाहूताः, परमगौरवपात्रत्वात्, मध्यमपर्षत्कास्तु आहूता अपि अनाहूता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपि स्वामिनोऽन्तिकमायान्ति, मध्यमप्रतिपत्तिविषयत्वात्, बाह्यपर्षत्काः पुनरनाहूताः स्वामिनोऽन्तिकमायान्ति, तेषामाकारणलक्षणगौरवानर्हत्वात्, अथवा यया सहोत्तममतित्वात् पर्यालोच्य विजयदेवः कार्यं विदधाति सा गौरवे पर्यालोचनायां चात्यन्तमभ्यन्तराऽस्तीत्यभ्यन्तरिका, यस्याः पुरोऽभ्यन्तरपर्षदा सह पर्यालोच्य दृढीकृतं पदं गुणदोषकथनतः प्रपञ्चयति सा गौरवे पर्यालोचनायां च मध्यमे भावेऽस्तीति मध्यमिका, यस्याश्च पुरः प्रथमपर्षदा सह पर्यालोचितं द्वितीयपर्षदा सह प्रपञ्चितं पदमाज्ञाप्रधानः सन्निदं विधेयमिदं न विधेयं वेति प्ररूपयति सा गौरवात्पर्यालोचनाच्च बहिर्भावेऽस्तीति बाह्या, तस्य सिंहासनस्य पश्चिमेन–पश्चिमायां दिशि अत्र विजयस्य देवस्य सप्तानामनीकाधिपतीनां सप्त भद्रासनानि प्रज्ञप्तानि, अथ परिक्षेपान्तरमाह—तस्य सिंहासनस्य पूर्वस्यां दक्षिणस्यां पश्चिमाया उत्तरस्यां एवं चतसृषु दिक्षु अत्र विजयस्य देवस्य षोडशानामात्मरक्षकदेवसहस्राणां योग्यानि षोडश भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–पूर्वस्यां चत्वारि भद्रासनसहस्राणि, एवं चतसृष्वपि दिक्षु यावदुत्तरस्यां चत्वारि भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानीति, एतद् व्याख्यानं साम्प्रतदृश्यमानजीवाभिगमसूत्रबह्वादर्शपाठानुसारि, वृत्तौ तु तस्य सिंहासनस्य सर्वतः–सर्वासु दिक्षु समन्ततः–सामस्त्येनेत्यादि व्याख्यानमस्ति, तत्पाठान्तरापेक्षयेति सम्भाव्यते, अवशेषेषु भौमेषु पूर्वापरमीलनेनाष्टसङ्ख्यकेषु प्रत्येकं प्रत्येकं सिंहासनं सपरिवारं सामानिकादिदेवयोग्यभद्रासनरूपपरिवारसहितं प्रज्ञप्तं, 'विजयस्स णं दारस्स उवरिमागारे सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिए, तंजहा–रयणेहिं १ वइरेहिं २ वेरुलिएहिं ३ लोहिअ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्खेहिं ४ मसारगल्लेहिं ५ हंसगब्भेहिं ६ पुलएहिं ७ सोगंधिएहिं ८ जोइरसेहिं ९ अंकेहिं १० अंजणेहिं ११ रयएहिं १२ जायरूवेहिं १३ अंजणपुलएहिं १४ फलिहेहिं १५ रिट्ठेहिं १६" विजयस्य द्वारस्य उपरितन आकार–उत्तरङ्गादिरूपः, षोडशविधैः रत्नैरुपशोभितः, तद्यथा–रत्नैः १ वज्रैः २वैडूर्यैः ३ लोहिताक्षैः ४ मसारगल्लैः ५ हंसगर्भैः ६ पुलकैः ७ सौगन्धिकैः ८ ज्योतीरसैः ९ अङ्कैः १० अञ्जनैः ११ रजतैः १२ जातरूपैः १३ अञ्जनपुलकैः १४ स्फटिकैः १५ रिष्टैः १६, तत्र रत्नानि सामान्यतः कर्केतनादीनि, वज्रादीनि तु रत्नविशेषाः प्रतीता एव, नवरं रजतं–रूप्यं जातरूपं–सुवर्णं, एते अपि रत्ने एवेति, "विजयस्स णं दारस्स उवरिं अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, तंजहा–सोत्थिय सिरिवच्छ जाव दप्पणा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा" 'विजयस्स ण'मित्यादि, विजयस्य द्वारस्योपरि अष्टावष्टौ स्वस्तिकादीनि मङ्गलकानि प्रज्ञप्तानि, 'तद्यथे'त्यादिना तान्येवोपदर्शयति, 'सव्वरयणामया'इत्यादि प्राग्वत्, "विजयस्स णं दारस्स उप्पिं बहवे किण्हचामरज्झया जाव सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, विजयस्स णं दारस्स उप्पिं बहवे छत्ताइछत्ता तहेव" विजयस्स णं दारस्स उप्पिं बहवे किण्हचामरज्झया" इत्यादि सूत्रपाठः जीवाभिगमसूत्रबह्वादर्शेषु दृष्टत्वाल्लिखितोऽस्ति, स च पूर्ववद् व्याख्येयः, वृत्तौ तु केनापि हेतुना व्याख्यातो नास्तीति, 'से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ विजए दारे २ ?, गोयमा ! विजए णं दारे विजए णामं देवे महिड्ढिए महज्जुईए महाबले महायसे महासोक्खे पलिओवमठिइए परिवसइ, से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणीयाणं सत्तण्हं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणियाहिवईणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं विजयस्स णं दारस्स विजयाए अ रायहाणीए अन्नेसिं च बहूणं विजयारायहाणीवत्थव्वाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयहयनट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ विजए दारे २"इति, अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते–विजयद्वारं विजयद्वारमिति ? भगवानाह–गौतम ! विजये द्वारे विजयो नाम प्राकृतत्वादव्ययत्वाद्वा नामशब्दात्परस्य टावचनस्य लोपस्ततोऽयमर्थः–प्रवाहतः–अनादिकालसन्ततिपतितेन विजय इति नाम्ना देवो महर्द्धिको–महती ऋद्धिः–भवनपरिवारादिका यस्यासौ महर्द्धिकः, 'महाद्युतिकः' महती द्युतिः शरीरगता आभरणगता च यस्यासौ महाद्युतिकः, तथा महत् बलं–शारीरः प्राणो यस्य स महाबलः, तथा महत् यशः–ख्यातिर्यस्यासौ महायशाः, तथा 'महेसक्खे' इति महान् ईश इत्याख्या–प्रसिद्धिर्यस्यासौ महेशाख्यः, अथवा ईशनं ईशो भावे घञ्प्रत्ययः ऐश्वर्यमित्यर्थः, 'ईश ऐश्वर्ये'इति वचनात्, तत ईशं–ऐश्वर्यं आत्मनः ख्याति–अन्तर्भूतण्यर्थतया ख्यापयति–प्रथयति स ईशाख्यः महांश्चासावीशाख्यश्च महेशाख्यः, क्वचिन्महासोक्खे इति पाठः, तत्र महत्सौख्यं–प्रभूतसद्वेद्योदयवशाद्यस्य स महासौख्यः, पल्योपमस्थितिकः परिवसति, स च तत्र चतसृणां सामानिकसहस्राणां चतसृणामग्रमहिषीणां सपरिवाराणां प्रत्येकमेकैकसहस्रसंख्यपरिवारसहितानां तिसृणामभ्यन्तरमध्यमबाह्यरूपाणां यथाक्रममष्टदशद्वादशदेवसहस्रसङ्ख्याकानां पर्षदां, सप्तानीकानां–हयानीकगजानीकरथानी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कपदात्यनीकमहिषानीकगन्धर्वानीकनाट्यानीकरूपाणां सप्तानामनीकाधिपतीनां षोडशानामात्मरक्षकसहस्राणां विजयस्य द्वारस्य विजयायाश्च राजधान्या अन्येषां च बहूनां विजयराजधानीवास्तव्यानां देवानां देवीनां च अधिपतेः कर्म आधिपत्यं रक्षा इत्यर्थः, सा च रक्षा सामान्येनाप्यात्मरक्षकेणेव क्रियते तत आह–पौरपत्यं पुरस्य पतिः पुरपतिः तस्य कर्म पौरपत्यं, सर्वेषामग्रेसरत्वमिति भावः, तच्चाग्रेसरत्वं नायकत्वमन्तरेणापि स्वनायकनियुक्ततथाविधगृहचिन्तकसामान्यपुरुषस्येव, ततो नायकत्वप्रत्तिपत्त्यर्थमाह–'स्वामित्वं' स्वमस्यास्तीति स्वामी तद्भावः स्वामित्वं नायकत्वमित्यर्थः, तदपि च नायकत्वं पोषकत्वमन्तरेणापि भवति यथा मृगयूथाधिपतेर्मृगस्य, तत आह–भर्तृत्वं–पोषकत्वं, 'डुभृञ् धारणपोषणयो'रिति वचनात्, अत एव महत्तरकत्वं, महत्तरकत्वं कस्यचिदाज्ञाविकलस्यापि भवति यथा कस्यचिद्वणिजः स्वदासदासीवर्गं प्रति, तत आह–आज्ञया ईश्वरः आज्ञेश्वरः सेनायाः पतिः सेनापतिः आज्ञेश्वरश्चासौ सेनापतिश्च आज्ञेश्वरसेनापतिः तस्य कर्म आज्ञेश्वरसेनापत्यं स्वसैन्यं प्रत्यद्भुतमाज्ञाप्राधान्यमित्यर्थः कारयन् अन्यैर्निंयुक्तैः पुरुषैः पालयन् स्वयमेव, महता 'रवेणे'ति योगः 'अहय'त्ति आख्यानकप्रतिबद्धानि यदिवा अहतानि-अव्याहतानि नित्यानुबन्धानीति भावः, ये नाट्यगीते नाट्यं-नृत्यं गीतं-गानं यानि च वादितानि तन्त्रीतलतालत्रुटितानि, तन्त्री–वीणा तलो–हस्ततलस्तालः–कंशिका त्रुटितानि–शेषतूर्याणि, तथा यश्च घनमृदङ्गो–मेघसदृशध्वनिर्मुरजः पटुना पुरुषेण प्रवादितस्तत एतेषां द्वन्द्वस्तेषां रवेण-नादेन सहकारिभूतेन दिवि भवान् दिव्यान् अतिप्रधानानिति, तथा भोगार्हाः भोगाः–शब्दादयो भोगभोगाः, अथवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७,८]

दीप अनुक्रम [७,८]

भोगेभ्य–औदारिककायभावेभ्योऽतिशयिनो भोगा भोगभोगास्तान् भुञ्जानः–अनुभवन् विहरति–आस्ते, अत्र व्यत्ययः प्राकृतत्वात्, 'से एएणट्ठेण'मित्यादि, तत एतेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–विजयं द्वारं विजयं द्वारमिति, विजयाभिधान-देवस्वामिकत्वाद्विजयो देवः स्वामित्वेनास्यास्तीति वा अभ्रादित्वादप्रत्यये विजयमिति भावः, देवस्य विजयाभिधानता च यो यः पूर्वद्वाराधिपतिरुत्पद्यते देवः स स तत्सामानिकादिभिर्देवैः विजयो विजय इत्याह्वयते, तत्स्थितिप्रतिपादके कल्पपुस्तके तथाभिधानात्, "अदुत्तरं च णं गोअमा! विजयस्स णं दारस्स सासए णामधिज्जे पण्णत्ते, जं ण कयाइ णासि ण कयाइ णत्थि ण कयाइ ण भविस्सइ जाव अवट्ठिए णिच्चे विजए दारे" अथापरमपि विजयद्वारनामप्रवृत्तौ कारणं गौतम! विजयस्य द्वारस्य विजयमिति नामधेयं शाश्वतम्–अनादिसिद्धं प्रज्ञप्तं, शेषं सुगमं, एतत्सूत्रं वृत्तावदृष्टव्याख्यानमपि जीवाभिगमसूत्रबह्वादर्शेषु दृष्ट्वालिखितमस्तीति। एतेन विजयद्वारवर्णकः उक्तः, अथ राजधानीवर्णको यथा–'कहि णं भंते! विजयस्स देवस्स विजया णामं रायहाणी पण्णत्ता?, गोयमा! विजयस्स दारस्स पुरत्थिमं तिरिअमसंखिज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं विजयस्स देवस्स विजया णामं रायहाणी पण्णत्ता इत्यारभ्य विजए देवे २'इत्यन्तं सूत्रं ज्ञेयं, अत्र प्रश्नसूत्रं सुगमं, निर्वचनसूत्रे विजयद्वारस्य पूर्वस्यां दिशि तिर्य-गसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्य–अतिक्रम्यात्रान्तरे योऽन्यो जम्बूद्वीपोऽधिकृतद्वीपतुल्याभिधानः, अनेन जम्बूद्वी-पानामसङ्ख्येयत्वं सूचयति, तस्मिन् द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य अत्रान्तरे विजयस्य देवस्य विजया नाम राजधानी प्रज्ञप्ता

॥ ६३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मयाऽन्यैश्च तीर्थकृद्भिरित्यादि तावद् वाच्यं–यावन्निर्गमनसूत्रे विजयो देवो २ इति, अत्र च प्रारब्धोऽपि जीवाभिगमोक्तविजयानामराजधानीवर्णकः सामस्त्येन यन्न लिखितस्तद् ग्रन्थविस्तरभयात् वक्ष्यमाणयमकाराजधान्यधिकारे एवंविधवर्णकस्य साक्षाद्विद्यमानत्वेन व्याख्यास्यमानत्वाच्चेति, अत्र प्रस्तुतसूत्रे शेषद्वाराणां सराजधानीकानां स्वरूपकथनायातिदेशमाह–'एवं चत्तारिवी'त्यादि, एवं विजयद्वारप्रकारेण चत्वार्यपि जम्बूद्वीपस्य द्वाराणि सराजधानीकानि भणितव्यानि, ननु विजयद्वारस्य वर्णितत्वात् सूत्रे कथं चतुर्द्वारविषयकोऽतिदेशः समसूत्रि ?, उच्यते, अतिदेश्यातिदेशप्रतियोगिनोरत्यन्ततुल्यवर्णकत्वप्रतिपादनार्थं, ततश्च यथा विजयद्वारस्य वर्णकस्तथा वैजयन्तजयन्तापराजितद्वाराणामपि यथा चामीषां त्रयाणां तथा विजयद्वारस्यापि, यथा विजयराजधान्या वर्णकस्तथा वैजयन्ताजयन्तापराजितराजधानीनामपि यथा च तासां तिसृणां तथा विजयाराजधान्या अपीत्यर्थः सिद्धः, अस्ति चायं न्यायः, 'एगे जिए जिआ पंच'इत्यादौ तथा दर्शनात्, अमूनि च द्वाराणि पूर्वादिक्तः प्रादक्षिण्येन नामतो ज्ञेयानि, तथाहि–पूर्वस्यां विजयं दक्षिणस्यां वैजयन्तं पश्चिमायां जयन्तं उत्तरस्यामपराजितं चेति, अत्र वैजयन्तादिद्वाराणामपि जीवाभिगमत एव प्रश्ननिर्वचनरूपा आलापका वेदितव्याः, तथाहि–कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स दीवस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते?, गोअमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं पणयालीसं जोअणसहस्साइं अबाहाए जंबुद्दीवदीवदाहिणपेरंते लवणसमुद्ददाहिणद्धस्स उत्तरेणं एत्थ णं जंबुद्दीवस्स २ वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते अट्ठजोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं सच्चेव सव्वा वत्तव्वया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव णिचे, रायहाणी से दाहिणेणं जाव वेजयंते देवे २' इति, तथा 'कहि णं भंते ! जंबुद्दीवस्स दीवस्स जयंते णामं दारे पण्णत्ते ?, गोअमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं पणयालीसं जोअणसहस्साइं अबाहाए जंबुद्दीव-पच्चत्थिमपेरंते लवणसमुद्दपच्चत्थिमद्धस्स पुरत्थिमेणं सीओआए महाणईए उप्पिं एत्थ णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स जयंते णामं दारे पण्णत्ते, तं चेव से पमाणं, जयंते देवे, पच्चत्थिमेणं से रायहाणी जाव जयंते देवे २"इति, तथा "कहि णं भंते ! जंबुद्दीवस्स २ अपराजिए णामं दारे पण्णत्ते ?, गो० ! मंदरस्स उत्तरेणं पणयालीसं जोअणसहस्साइं अबाहाए जंबुद्दीवे दीवे उत्तरपेलंते लवणसमुद्दे उत्तरस्स दाहिणेणं एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे अपराइए णामं दारे पण्णत्ते, तं चेव पमाणं, राय-हाणी उत्तरेणं जाव अपराइए देवे २, चउण्हवि अण्णंमि जंबुद्दीवे'इति, अत्र व्याख्या–क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपस्य २ वैज-यन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं ?, भगवानाह–गौतम ! मन्दरस्य दक्षिणेन–दक्षिणस्यां दिशि पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राण्यबा-धया बाधनं बाधा–आक्रमणमिति न बाधा अबाधा–दूरवर्त्तित्वेनानाक्रमणमपान्तरालमित्यर्थः, तथा (या) कृत्वेति गम्यते, अपान्तराले मुक्त्वा इति भावः, जम्बूद्वीपद्वीपदक्षिणपर्यन्ते लवणसमुद्रदक्षिणार्द्धस्योत्तरेण जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य वैजयन्तं नाम्ना द्वारं प्रज्ञप्तं, अष्टौ योजनान्यूर्द्धोच्चत्वेनेत्यादिका सैव विजयद्वारसम्बन्धिन्येव सर्वा वक्तव्यता याव-न्नित्यं वैजयन्तमिति नाम, क्व भदन्त ! वैजयन्तस्य देवस्य वैजयन्तानाम्नी राजधानी इत्यादि सर्वं प्राग्वत्, वैजयन्तो देवो वैजयन्तो देव इति, एवं जयन्तापराजितद्वारवक्तव्यतापि वाच्या, नवरं जयन्तद्वारस्य पश्चिमायां दिशि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९] + गाथा दीप अनुक्रम [९-१०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

जयन्ता राजधानी अपराजितद्वारस्य चोत्तरस्यां दिशि अपराजिता राजधानी तिर्यगसंख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्येति वाच्यं । सम्प्रति विजयादिद्वाराणां परस्परमन्तरं प्रतिपिपादयिषुराह—

जंबुदीवस्स णं भंते ! दीवस्स दारस्स य दारस्स य केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?, गो० ! अउणासीइं जोअणसहस्साइं बावण्णं च जोअणाइं देसूणं च अद्धजोअणं दारस्स य २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते,—अउणासीइ सहस्सा बावण्णं चेव जोअणा हुंति । ऊणं च अद्धजोअण दारंतर जंबुदीवस्स ॥ १ ॥ (सूत्रं ९)

'जंबुद्दीवस्स ण'मित्यादि, जम्बूद्वीपस्य, णमिति प्राग्वत् , भदन्त ! द्वीपस्य सम्बन्धिनो द्वारस्य च द्वारस्य च कियत्—किंप्रमाणं 'अबाहाए अंतरे'त्ति बाधा—परस्परं संश्लेषतः पीडनं न बाधाऽबाधा तयाऽबाधया यदन्तरं व्यवधानमित्यर्थः प्रज्ञप्तं, इहान्तरशब्दो मध्यविशेषादिष्वर्थेषु वर्त्तमानो दृष्टस्तत्तद्व्यवच्छेदेन व्यवधानार्थपरिग्रहार्थमबाधाग्रहणं, अत्र निर्वचनं भगवानाह—गौतम ! एकोनाशीतिर्योजनसहस्राणि द्विपञ्चाशद्योजनानि देशोनं चार्द्धयोजनं द्वारस्य च द्वारस्य चाबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तं, तथाहि—जम्बूद्वीपपरिधिः प्राग्निर्दिष्टो योजनानि तिस्रो लक्षाः षोडश सहस्राणि द्वे शते सप्तविंशत्यधिके ३१६२२७ क्रोशत्रयं ३ अष्टाविंशं धनुःशतं १२८ त्रयोदशाङ्गुलानि १३ एकमर्द्धाङ्गुल १ मिति, अस्माद् द्वारचतुष्कविस्तारोऽष्टादशयोजनरूपोऽपनीयते, यत एकैकस्य द्वारस्य विस्तारो योजनानि चत्वारि ४ प्रतिद्वारं द्वारशाखाद्वयविस्तरश्च क्रोशद्वयं २, अस्मिंश्च द्वारस्य शाखयोश्च परिमाणे चतुर्गुणे जातान्यष्टादश योजनानि १८,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ विजय-आदि द्वाराणां परस्पर अंतरं कथ्यन्ते

प्रत सूत्रांक [९] + गाथा

दीप अनुक्रम [९-१०]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ ६५ ॥

ततस्तदपनयने शेषपरिधिसत्कस्यास्य योजनरूपस्य ३१६२०९ चतुर्भागे लब्धानि योजनानि एकोनाशीतिः सहस्राणि द्विपञ्चाशदधिकानि ७९०५२ क्रोशश्चैकः १, तथा परिधिसत्कस्य क्रोशत्रयस्य धनुःकरणे जातानि धनुषां षट् सहस्राणि ६०००, एषु च परिधिसत्काष्टाविंशत्यधिकधनुःशतस्य क्षेपे जातानि धनुषामेकषष्टिशतान्यष्टाविंशत्यधिकानि ६१२८ ततोऽस्य चतुर्भिर्भागे लब्धानि पंचदश शतानि द्वात्रिंशदधिकानि १५३२, यानि च परिधिसत्कत्रयोदश १३ अङ्गुलानि तेषामपि चतुर्भिर्भागे लब्धानि त्रीण्यङ्गुलानि ३, शेषे चैकस्मिन्नङ्गुले यवाः अष्टौ ८ एषु परिधिसत्कयवपञ्चक ५ क्षेपे जातास्त्रयोदश यवाः १३ एषां च चतुर्भिर्भागे लब्धास्त्रयो यवाः ३, शेषे चैकस्मिन् यवे यूकाः अष्टौ ८ आसु परिधिसत्कैकयूकाक्षेपे जाता नव ९ आसां चतुर्भिर्भागे लब्धे द्वे यूके २, शेषस्याल्पत्वान्न विवक्षा, एतच्च सर्वं देशोनमेकं गव्यूतमिति जातं पूर्वलब्धगव्यूतेन सह देशोनमर्द्धयोजनमिति, इममेवार्थं 'द्विर्बद्धं सुबद्ध'मिति अबद्धसूत्रतो बद्धसूत्रं लाघवरुचिसत्त्वानुग्राहकमिति वा गाथयाऽऽह–'अउनासी'ति, अत्र विभक्तिलोपः प्राकृतत्वात् । अथ चतुर्थप्रश्न एव आकारभावप्रत्यवताररूपे भरतवर्षस्वरूपं जिज्ञासुः पृच्छति–

कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे भरहे णामं वासे पण्णत्ते?, गो०! चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं दाहिणलवणसमुद्दस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे भरहे णामं वासे पण्णत्ते, खाणुबहुले कंटकबहुले विसमबहुले दुग्गबहुले पव्वयबहुले पवायबहुले उज्झरबहुले णिज्झरबहुले खड्डाबहुले दरिबहुले णईबहुले दहबहुले रुक्खबहुले

१वक्षस्कारे विजयादि-द्वारान्तरा० सू. ९

॥ ६५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ भरतक्षेत्रस्य स्वरुपम् वर्ण्यते

गुच्छबहुले गुल्मबहुले लयाबहुले वल्लीबहुले अडवीबहुले सावयबहुले तणबहुले तक्करबहुले डिम्बबहुले डमरबहुले दुब्भिक्खबहुले दुक्का-लबहुले पासंडबहुले किवणबहुले वणीमगबहुले ईतिबहुले मारिबहुले कुवुट्ठिबहुले अणावुट्ठिबहुले रायबहुले रोगबहुले संकिलेसबहुले अभिक्खणं अभिक्खणं संखोहबहुले पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे उत्तरओ पलिअंकसंठाणसंठिए दाहिणओ धणुपिट्ठसंठिए तिधा लवणसमुद्दं पुट्ठे गंगासिंधूहिं महाणईहिं वेअड्ढेण य पव्वएण छब्भागपविभत्ते जंबुद्दीवदीवणउयसयभागे पंचछव्वीसे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं । भरहस्स णं वासस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते, जे णं भरहं वासं दुहा विभयमाणे २ चिट्ठई, तं०—दाहिणड्ढभरहं च उत्तरड्ढभरहं च (सूत्रं १०)

'कहि णं भंते'त्ति प्रच्छकापेक्षया आसन्नत्वेन प्रथमं भरतस्यैव प्रश्नसूत्रं,क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतं नाम्ना वर्षं प्रज्ञप्तं ?, भगवानाह-गौतम ! 'चुल्लहिमवंते'त्यादि, चुल्लशब्दो देश्यः क्षुल्लपर्यायस्तेन क्षुल्लो-महाहिमवदपेक्षया लघुर्यो हिमवान् वर्षधर-पर्वतः क्षेत्रसीमाकारी गिरिविशेषस्तस्य दक्षिणेन दक्षिणस्यां दिशि दाक्षिणात्यलवणसमुद्रस्योत्तरस्यां पौरस्त्यलवणसमुद्रस्य पश्चिमायां पाश्चात्यलवणसमुद्रस्य पूर्वस्यां दिशि अत्रावकाशे भरतं नाम्ना वर्षं प्रज्ञप्तं,किंविशिष्टं तदित्याह-स्थाणवः-कीलका ये छिन्नावशिष्टवनस्पतीनां शुष्कावयवाः ठुंठा इति लोकप्रसिद्धाः तैर्बहुलं-प्रचुरं व्याप्तमित्यर्थः अथवा स्थाणवो बहुला यत्र तत्त-था, एवं सर्वत्र पदयोजना ज्ञेया, तथा कण्टका-बदर्यादिप्रभवाः विषमं-निम्नोन्नतं स्थानं दुर्गं-दुर्गमं स्थानं पर्वताः-क्षुद्रगिरयः प्रपाता-भृगवो यत्र मुमूर्षवो जना झम्पां ददति अथवा प्रपाता–रात्रिधाव्यः अवझरा–गिरितटादुदकस्याधःपतनानि तान्येव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

सदावस्थायीनि निर्झराः गर्ताः-प्रसिद्धाः दर्य्यो-गुहाः नद्यो द्रहाश्च प्रतीताः वृक्षाः रूक्षा वा-सहकारादयः गुच्छा-वृन्ताकीप्रभृतयः गुल्मा–नवमालिकादयः लताः–पद्मलताद्याः वल्ल्यः—कूष्माण्डीप्रमुखाः, अत्र नदीद्रहवृक्षादिवनस्पतीनामशुभानुभावजनितानामेव बाहुल्यं बोध्यं, नतु एकान्तसुषमादिकालभावि तथाविधशुभानुभावजनितानां, तेषां प्रायः प्रज्ञापककालेऽल्पीयस्त्वात्, अटव्यो–दूरतरजननिवासस्थाना भूमयः श्वापदा–हिंस्रजीवाः स्तेनाः–चौराः तदेव कुर्वन्तीति निरुक्तितस्तस्कराः–सर्वदा चौर्यकारिणः डिम्बानि–स्वदेशोत्थविप्लवा डमराणि–परराजकृतोपद्रवाः दुर्भिक्षं–भिक्षाचराणां भिक्षादुर्लभत्वं, दुष्कालो–धान्यमहार्घतादिना दुष्टः कालः पाखण्डं–पाखण्डिजनोत्थापितमिथ्यावादः कृपणाः प्रतीताः वनीपका–याचका ईतिः–धान्याद्युपद्रवकारिशलभमूषिकादिः मारिः–मरकः कुत्सिता वृष्टिः कुवृष्टिः कर्षकजनानभिलषणीया वृष्टिरित्यर्थः, अनावृष्टिः–वर्षणाभाव इति राजानः–आधिपत्यकर्त्तारः तद्बाहुल्यं च प्रजानां पीडाहेतुरिति रोगाः संक्लेशाश्च व्यक्ताः, अभीक्ष्णं २–पुनः पुनर्दण्डपारुष्यादिना संक्षोभाः–चित्तानवस्थितता प्रजानामिति शेषः, इदं च सर्वं विशेषणजातं भरतस्य प्रज्ञापकापेक्षया मध्यमकालीनानुभावमेव व्यावर्णितं, तेनोत्तरसूत्रे एकान्तसुषमादावस्य बहुसमरमणीयत्वातिस्निग्धत्वादिकमेकान्तदुष्षमादौ निर्वनस्पतिकत्वाराजत्वादिकं च वक्ष्यमाणं न विरुध्यते इति । प्रागेव प्राचीनं, स्वार्थे ईनप्रत्ययः, दिग्विवक्षायां प्राचीनं पूर्वा इत्यर्थः, एवं प्रतीचीनोदीचीने अपि वाच्ये, तेन पूर्वापरयोर्दिशोरायतं उदीचीदक्षिणयोर्दिशोर्विस्तीर्णं, अथवा प्राचीनप्रतीचीनावयवयोरायतमेवमुत्तरत्रापि, अथ तदेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्थानतो विशिनष्टि–उत्तरतः–उत्तरस्यां दिशि पर्यङ्कस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्य तत्तथा, दक्षिणतो–दक्षिणस्यां दिशि आरोपितज्यस्य धनुषः–कोदण्डस्य पृष्ठं–पाश्चात्यभागस्तस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्य तत्तथा, अत एवास्य धनुःपृष्ठशर-जीवाबाहानां सम्भवः, एषां च स्वरूपं स्वस्वावसरे निरूपयिष्यति, त्रिधा–पूर्वकोटिधनुःपृष्ठापरकोटिभिर्लवणसमुद्रं–क्रमेण पूर्वदक्षिणापरलवणसमुद्रावयवं स्पृष्टं–धातूनामनेकार्थत्वात् प्राप्तं, ग्रामप्राप्त इत्यादिवत् कर्त्तरि क्तप्रत्ययः, अयमर्थः–पूर्वकोट्या पूर्वलवणसमुद्रं धनुःपृष्ठेन दक्षिणलवणसमुद्रं अपरकोट्या पश्चिमलवणसमुद्रं संस्पृश्य स्थितमिति, अथेदमेव षट्खण्डविभजनद्वारा विशिनष्टि–गङ्गासिन्धुभ्यां महानदीभ्यां वैताढ्येन च पर्वतेन षट्संख्या भागाः षड्भागा-स्तैर्विभक्तं, अयमर्थः–अनन्तरोदितैस्त्रिभिर्दक्षिणोत्तरयोः प्रत्येकं खण्डत्रयकरणेन भरतस्य षट् खण्डानि कृतानीति। अथ यदि जम्बूद्वीपैकदेशभूतं भरतं तर्हि विष्कम्भतः तस्य कतितमे भागे तदित्याह–'जंबुद्दीवे'त्यादि, जम्बूद्वीपद्वीपस्य–जम्बू-द्वीपविष्कम्भस्य नवत्यधिकशततमो यो भागस्तस्मिन् इति, अथ नवत्यधिकशततमभागे कियन्ति योजनानीत्याह–'पञ्च षड्विंशत्यधिकानि योजनशतानि षट् च योजनस्यैकोनविंशतिभागान्, कोऽर्थः?–यादृशैरेकोनविंशतिभागैः समुदि-तैर्योजनं भवति तादृशान् षट् भागान् इति, विष्कम्भेन–विस्तारेण शरापरपर्यायेणेति, अत्राङ्कस्थापना यथा–५२६–$\frac{६}{१९}$, अयं भावः–जम्बूद्वीपविस्तारस्य लक्षयोजनरूपस्य नवत्यधिकशतेन भागे लब्धं ५२६ योजनानि $\frac{६}{१९}$, एतावानेव च भरतविस्तारः, ननु भाजकराशिर्नवत्यधिकशतरूपः षड्भागास्तु योजनैकोनविंशतिकलारूपा इति विसदृशमिव प्रति-

प्रत सूत्रांक [१०] दीप अनुक्रम [११]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ ६७ ॥

भाति, उच्यते, गणितनिपुणानां सर्वं सुज्ञानमेव, तथाहि–जम्बूद्वीपव्यासस्य योजनलक्ष १००००० मितस्य नवत्य-धिकशतभक्तस्यावशिष्टः षष्टिरूपो राशिर्भागदानासमर्थ इति भाज्यभाजकराश्योर्दशभिरपवर्त्ते जाता भाज्यराशौ षट् ६ भाजकराशौ १९ इति सर्वं सुस्थं, ननु नवत्यधिकशतरूपभाजकाङ्कोत्पत्तौ किं बीजमिति?, उच्यते, एको भागो भरतस्य द्वौ भागौ हिमवतः, पूर्वक्षेत्रतो द्विगुणत्वात्, चत्वारो हैमवतक्षेत्रस्य, पूर्ववर्षधरतो द्विगुणत्वात्, अष्टौ महाहिमवतः, पूर्वक्षेत्रतो द्विगुणत्वात्, षोडश हरिवर्षस्य, पूर्ववर्षधरतो द्विगुणत्वात्, द्वात्रिंशन्निषधस्य, पूर्वक्षेत्रतो द्विगुणत्वात्, सर्वे मिलिताः ६३, एते मेरोर्दक्षिणतस्तथोत्तरतोऽपि ६३ विदेहवर्षं तु ६४ भागाः, सर्वाग्रेण एतैर्भागैर्दक्षिणोत्तरतो जम्बूद्वी-पयोजनलक्षं पूरितं भवति, तत एतावान् भाजकाङ्कः १९० नवत्यधिकं शतं भागानामिति। अथ यदुक्तं–"गंगासिंधूहिं महाणईहिं वेयड्ढेण य पव्वएणं छब्भागपविभत्ते" इत्यत्र वैताढ्यस्य स्वरूपप्ररूपणाय सूत्रमाह–'भरहस्स ण'मित्यादि, भरतस्य वर्षस्य बहुमध्यदेशभागे वैजयन्तद्वारात् त्रिकलाधिकसाष्टत्रिंशद्द्विशतयोजनातिक्रमे पञ्चाशद्योजनक्षेत्रखण्डे, अत्र वैताढ्यो नाम पर्वतः प्रज्ञप्तः, यो णमिति प्राग्वत् भरतं वर्षं द्विधा विभजन् २, समांशतया चक्रवर्त्तिकाले च समस्वामिकतया तथाऽन्यैरपि प्रकारैर्द्वयोरपि तुल्यताद्योतनार्थमि (र्थं विभजनमि) ति। तत्रादावासन्नत्वेन दक्षिणार्द्ध-भरतं कास्तीति प्रश्नयति—

कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे भरहे णामं वासे पण्णत्ते?, गो०! वेयड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं दाहिणलवणसमुद्दस्स

१वक्षस्कारे भरतखरूपं सू. १०

॥ ६७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ दक्षिणार्धभरतक्षेत्रस्य वर्णनं क्रियते

उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढभरहे णामं वासे पण्णत्ते पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे अद्धचंदसंठाणसंठिए तिहा लवणसमुद्दं पुट्ठे, गंगासिंधूहिं महाणईहिं तिभागपविभत्ते दोण्णि अट्ठतीसे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभागे जोयणस्स विक्खंभेणं, तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा णव जोयणसहस्साइं सत्त य अडयाले जोयणसए दुवालस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स आयामेणं तीसे धणुपुट्ठे दाहिणेणं णव जोयणसहस्साइं सत्तछावट्ठे जोयणसए इक्कं च एगूणवीसइभागे जोयणस्स किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, दाहिणड्ढभरहस्स णं भंते! वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?, गो०! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा णामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव णाणाविह पञ्चवण्णेहिं मणीहिं तणेहिं उवसोभिए, तंजहा—कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव, दाहिणड्ढभरहे णं भंते! वासे मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?, गोयमा! ते णं मणुआ बहुसंघयणा बहुसंठाणा बहुउच्चत्तपज्जवा बहुआउपज्जवा बहूइं वासाइं आउं पालेंति, पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी अप्पेगइया तिरियगामी अप्पेगइया मणुयगामी अप्पेगइया देवगामी अप्पेगइआ सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति (सूत्रं ११)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, इदं च सूत्रं पूर्वसूत्रेण समगमतया विवृतप्रायं, नवरं अर्द्धचन्द्रसंस्थानसंस्थितत्वं तु दक्षिणभरतार्द्धस्य जम्बूद्वीपपट्टादावालेखदर्शनाद् व्यक्तमेव, तथा त्रिसंख्या भागास्त्रिभागास्तैः प्रविभक्तं, तत्र पौरस्त्यो भागो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११]

दीप अनुक्रम [१२]

गङ्गया पूर्वसमुद्रं मिलन्त्या कृतः, पाश्चात्यो भागस्तु सिन्ध्वा पश्चिमसमुद्रं मिलन्त्या कृतः, मध्यमभागस्तु गङ्गासिन्धुभ्यां कृत इति, द्वे अष्टत्रिंशदधिके योजनशते त्रींश्चैकोनविंशतिभागान् योजनस्य विष्कम्भेन, किमुक्तं भवति?–षट्कलाधिकषड्विंशपञ्चशतयोजन ५२६ $\frac{६}{१९}$ भरतविस्ताराद्वैताढ्यविस्तारे ५० योजनमिते शोधितेऽवशिष्टं चत्वारि योजनशतानि षट्सप्तत्यधिकानि षट् च कलाः ४७६ $\frac{६}{१९}$, एतदर्द्धे द्वे योजनानां शते अष्टत्रिंशदधिके तिस्रश्चापराः कलाः २३८ $\frac{३}{१९}$ इत्येवंरूपं यथोक्तं मानं भवति, एतेनास्य शरप्ररूपणा कृता, शरविष्कम्भयोरभेदादिति। अथ जीवासूत्रमाह–'तस्स जीवे'त्यादि, तस्य दक्षिणार्द्धभरतस्य जीवेव जीवा–ऋज्वी सर्वान्तिमप्रदेशपङ्क्तिः, उत्तरेण–उत्तरस्यां मेरुदिशीत्यर्थः, प्राचीने पूर्वस्यां प्रतीचीने–अपरस्यां चाऽऽयता–आयामवती द्विधा लवणसमुद्रं स्पृष्टा–छुप्तवती इदमेवार्थं द्योतयति–'पुरत्थिमिल्लाए' इति पूर्वया कोट्या–अग्रभागेन पौरस्त्यं लवणसमुद्रावयवं स्पृष्टा पाश्चात्यया कोट्या पाश्चात्यं लवणसमुद्रावयवं स्पृष्टा, नव योजनसहस्राणि अष्टचत्वारिंशानि–अष्टचत्वारिंशदधिकानि सप्त योजनशतानि द्वादश चैकोनविंशतिभागान् योजनस्यायामेन ९७४८ $\frac{१२}{१९}$, यच्च समवायाङ्गसूत्रे–'दाहिणड्ढभरहस्स णं जीवा पाईणपडीणायया दुहओ लवणसमुद्दं पुट्ठा णव जोअणसहस्साइं आयामेण'मित्युक्तं तत्सूचामात्रत्वात् सूत्रस्य शेषविवक्षा न कृता, वृत्तिकारेण तु जयमवशिष्टराशिरूपो विशेषो गृहीत इति, अत्र सूत्रेऽनुक्तापि जीवानयने करणभावना दर्श्यते, तथाहि–जम्बूद्वीपव्यासाद्विवक्षितक्षेत्रेषुः शोध्यते, ततो यज्जातं तत्तेनैवेषुणा गुण्यते, ततः पुनश्चतुर्भिर्गुण्यते, इत्थं सर्संस्कारो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राशिर्विवक्षितक्षेत्रस्य जीवावर्ग इत्युच्यते, अस्माच्च मूले गृह्यमाणे यल्लभ्यते तज्जीवाकलामानं, तस्य चैकोनविंशत्या भागे योजनराशिः शेषश्च कलाराशिः, तत्र जीवादिपरिज्ञानं धनुषपरिमाणपरिज्ञानाविनाभावि, तच्च न परिपूर्णयोजनसंख्याङ्कं किन्तु कलाभिः कृत्वा सातिरेकमिति विवक्षितक्षेत्रादेरिषुः सवर्णनार्थं कलीक्रियते, स च कलीकृतादेव जम्बूद्वीपव्यासात् सुखेन शोधनीय इति मण्डलक्षेत्रव्यासोऽपि १ शून्य ५ रूपः कलीकरणायैकोनविंशत्या गुण्यते, जातः १९ शून्यः ५, ततो दक्षिणभरतार्धेषोः साष्टत्रिंशद्द्विशतयोजनमितस्य कलीकृतस्य प्रक्षिप्तोपरितनकलात्रिकस्य ४५२५ रूपस्य शोधने जातः १८९५४७५, ततश्च दक्षिणार्द्धेषुणा ४५२५ रूपेण गुण्यते जातः, ८५७७०२४३७५, अयं चतुर्गुणः ३४३०८०९७५००, एष दक्षिणभरतार्द्धस्य जीवावर्गः, एतस्य वर्गमूलानयनेन लब्धाः कलाः १८५२२४, शेषं कलांशाः १६७३२४, छेदराशिरधः ३७०४४८, लब्धकलानां १९ भागे योजन ९७४७ कलाः १२, इयं दक्षिणभरतार्द्धजीवा, एवं वैताढ्यादिजीवास्वपि भाव्यं, यावद्दाक्षिणात्यविदेहार्द्धजीवा, एवमुत्तरैरावतार्द्धजीवा यावदुत्तरार्द्धविदेहजीवापीति । अथ दक्षिणभरतार्द्धस्य धनुःपृष्ठं निरूपयति—'तीसे धणुपट्ठे' इत्यादि, तस्याः—अनन्तरोक्ताया जीवाया दक्षिणतो–दक्षिणस्यां दिशि लवणदिशीत्यर्थः धनुःपृष्ठं अधिकारात् दक्षिणभरतार्द्धस्येति, यद्वा प्राकृतत्वाल्लिङ्गव्यत्यये तीसे इति तस्य–दक्षिणार्द्धभरतस्येति व्याख्येयं, नव योजनसहस्राणि षट्षष्ट्यधिकानि सप्त च योजनशतानि एकं चैकोनविंशतिभागं योजनस्य किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण–परिधिना प्रज्ञप्तं, अत्र करणभावना यथा–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवक्षितेषौ विवक्षितेषुगुणे पुनः षड्गुणे विवक्षितजीवावर्गयुते च यो राशिः स धनुःपृष्ठवर्ग इति व्यपदिश्यते, तस्माच्च वर्गमूले लब्धाना कलानां १९ भागे लब्धं योजनानि, अवशिष्टं कलाः, तथाहि–दक्षिणभरतार्द्धेषुकलाः ४५२५, अस्य वर्गः २०४७५६२५, अयं षड्गुणः १२२८५३७५०, अथ दक्षिणभरतार्द्धस्य जीवावर्गः ३४३०८०९७५००, अनयोर्युतिः ३४४३०९५१२५०, धनुःपृष्ठवर्गोऽयं, अस्य वर्गमूले लब्धं कलाः १८५५५५, शेषं कलांशाः २९३२२५, छेदकराशिरधस्तात् ३७१२१०, कलानां १९ भागे योजन ९७६६ कला १, ये च वर्गमूलावशिष्टाः कलांशास्तद्विवक्षया च सूत्रकृता कलाया विशेषाधिकत्वमभ्यधायि, आह–एवं जीवाकरणेऽपि वर्गमूलावशिष्टकलांशानां सद्भावात् तत्रापयुक्तकलानां साधिकत्वप्रतिपादनं न्यायप्राप्तं कथं नोक्तमिति?, उच्यते, सूत्रगतेर्वैचित्र्यादविवक्षितत्वात्, 'विवक्षाप्रधानानि हि सूत्राणी'ति, एवं वैताढ्यादिधनुःपृष्ठेष्वपि भाव्यं, यावद्दाक्षिणात्यविदेहार्द्धधनुःपृष्ठं, एवमुत्तरत उत्तरैरावतार्द्धधनुःपृष्ठं यावदुत्तरार्द्धविदेहधनुःपृष्ठमपीति, अत्र च दक्षिणभरतार्द्धे बाहाया असम्भवः । अथ दक्षिणभरतार्द्धस्वरूपं पृच्छन्निदमाह–'दाहिणड्ढे'त्यादि, दक्षिणार्द्धभरतस्य भगवन्! कीदृशः आकारस्य–स्वरूपस्य भावाः–पर्यायास्तेषां प्रत्यवतारः–प्रादुर्भावः प्रज्ञप्तः?, कीदृशः प्रस्तुतक्षेत्रस्य स्वरूपविशेष इति भावः, भगवानाह–गौतम! भरतस्य बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः 'से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वे'त्यादिको बहुसमत्ववर्णकः सर्वोऽपि ग्राह्यः, यावन्नानाविधपञ्चवर्णैः मणिभिस्तृणैश्चोपशोभितः, तद्यथेत्युपदर्शने, किंविशिष्टैर्मणिभिस्तृणैश्च?–कृत्रिमैः–क्रमेण शिल्पि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्षकादिप्रयोगनिष्पन्नैः अकृत्रिमैः क्रमाद्रत्नखानिसंभूतानुग्रसम्भूतैरुपशोभितो दक्षिणार्द्धभरतस्य भूमिभागः, अनेनास्य कर्मभूमित्वमभाणि, अन्यथा हैमवताद्यकर्मभूमिष्वपि इदं विशेषणमकथयिष्यदिति, चकारौ समुच्चयार्थौ एवकारावबधारणार्थौ, अथवा चैवेत्यखण्डमव्ययं समुच्चयार्थं, अपिचेत्यादिवत्, ननु अनेन सूत्रेण वक्ष्यमाणेनोत्तरभरतार्द्धवर्णकसूत्रेण च सह 'खाणुबहुले विसमबहुले कंटगबहुले' इत्यादिसामान्यभरतवर्णकसूत्रं विरुध्यति, न चैते सूत्रे अरकविशेषापेक्षे सामान्यभरतसूत्रं तु प्रज्ञापककालापेक्षमिति न विरोध इति वाच्यं, मणीनां तृणानां च कृत्रिमत्वाकृत्रिमत्वभणनेनानयोरपि प्रज्ञापककालीनत्वस्यैवौचित्यात्, कृत्रिममणितृणानां तत्रैव सम्भवात्, प्रज्ञापककालश्चावसर्पिण्यां तृतीयारकप्रान्तादारभ्य वर्षशतोनदुष्षमारकं यावदिति चेत्, उच्यते, अत्र 'खाणुबहुले विसमबहुले'इत्यादिसूत्रस्य बाहुल्यापेक्षयोक्तत्वेन क्वचिद्देशविशेषे पुरुषविशेषस्य पुण्यफलभोगार्थमुपसम्पद्यमानं भूमेर्बहुसमरमणीयत्वादिकं न विरुध्यति, भोजकवैचित्र्ये भोग्यवैचित्र्यस्य नियतत्वात्, अनेनास्यैकान्तशुभैकान्ताशुभमिश्रलक्षणकालत्रयाधारकत्वमसूचि, एकान्तशुभे हि काले सर्वे क्षेत्रभावाः शुभा एव एकान्ताशुभे हि सर्वे अशुभा एव मिश्रे तु क्वचिच्छुभाः क्वचिदशुभाः, अत एव पञ्चमारकाद् यावद्भूमिभागवर्णकं बहुसमरमणीयत्वादिकमेव सूत्रकारेणाभ्यधायि षष्ठेऽरके तु एकान्ताशुभे न तथेति सर्वं सुस्थं। अथ तत्रैव मनुष्यस्वरूपं पृच्छति–'दाहिणड्ढभरहे'त्यादि प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, निर्वचनसूत्रे भगवानाह–गौतम! येषां स्वरूपं भवता जिज्ञासितं ते मनुजा बहूनि–वज्रऋषभनाराचादीनि संहननानि–वपुर्ई-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११]

दीप अनुक्रम [१२]

ढीकारकारणास्थिनिचयात्मकानि येषां ते तथा, तथा बहूनि–समचतुरस्रादीनि संस्थानानि–विशिष्टावयवरचनात्मकशरीराकृतयो येषां ते तथा, बहवो–नानाविधा उच्चत्वस्य–शरीरोच्छ्रयस्य पर्यवाः–पञ्चधनुःशतसहस्रमानादिका विशेषा येषां ते तथा बहवः आयुषः–पूर्वकोटिवर्षशतादिकाः पर्यवा–विशेषा येषां ते तथा, बहूनि वर्षाणि आयुः पालयन्ति, पालयित्वा अपिः संभावनायां एके–केचन निरयगतिगामिनः–नरकगतिगन्तारः एवमप्येकके तिर्यग्गतिगामिनः अप्येकके मनुजगतिगामिनः अप्येकके देवगतिगामिनः अप्येकके सिद्ध्यन्ति–सकलकर्मक्षयकरणेन निष्ठितार्थीभवन्ति बुद्ध्यन्ते–केवलालोकेन वस्तुतत्त्वं जानन्ति मुच्यन्ते भवोपग्राहिकर्मांशेभ्यः परिनिर्वान्ति–कर्मकृततापविरहाच्छीतीभवन्ति, किमुक्तं भवति?—सर्वदुःखानामन्तं कुर्वन्ति, इदं च सर्वं स्वरूपकथनं अरकविशेषापेक्षया नानाजीवनपेक्ष्य मन्तव्यं, अन्यथा सुषमासुषमादावनुपपन्नं स्यात्। अथास्य सीमाकारी वैताढ्यगिरिः क्वास्तीति पृच्छति—

कहि णं भंते! जंबुद्दीवे २ भरहे वासे वेयड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते?, गो०! उत्तरद्धभरहवासस्स दाहिणेणं दाहिणभरहवासस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जंबुद्दीवे २ भरहे वासे वेयड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते, पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पणवीसं जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं छस्सकोसाइं जोअणाइं उव्वेहेणं पण्णासं जोअणाइं विक्खंभेणं ५०, तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं चत्तारि अट्ठासीए जोयणसए सोलस य एगूणवीसइभागे जोअणस्स अद्धभागं

॥ ७० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ दक्षिणार्धभरतक्षेत्रस्य सीमाकारी वैताढ्यगिरि स्वरुपम् वर्ण्यते

चं आयामेणं पण्णत्ता, तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा दस जोयणसहस्साइं सत्त य वीसे जोअणसए दुवालस य एगूणवीसइभागे जोअणस्स आयामेणं तीसे धणुपट्ठे दाहिणेणं दस जोअणसहस्साइं सत्त य तेआले जोयणसए पण्णरस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं रुअगसंठाणसंठिए सव्वरयतामए अच्छे सण्हे लट्ठे घट्ठे मट्ठे णीरए णिम्मले णिप्पंके णिक्कंकडच्छाए सप्पभे समिरीए पासाईए दरसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे। उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहि अ वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। ताओ णं पउमवरवेइयाओ अद्धजोयणं उद्धं उच्चत्तेणं पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं पव्वयसमियाओ आयामेणं वण्णओ भाणियव्वो। ते णं वणसंडा देसूणाइं दो जोअणाइं विक्खंभेणं पउमवरवेइयासमगा आयामेणं किण्हा किण्होभासा जाव वण्णओ। वेयद्धस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिमपच्चच्छिमेणं दो गुहाओ पण्णत्ताओ, उत्तरदाहिणायताओ पाईणपडीणवित्थिण्णाओ पण्णासं जोअणाइं आयामेणं दुवालस जोअणाइं विक्खंभेणं अट्ठ जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं वइरामयकवाडोहाडिआओ, जमलजुअलकवाडघणदुप्पवेसाओ णिच्चंधयारतिमिस्साओ ववगयगहचंदसूरणक्खत्तजोइसपहाओ जाव पडिरूवाओ तंजहा–तमिसगुहा चेव खंडप्पवायगुहा चेव, तत्थ णं दो देवा महिड्ढीया महज्जुईआ महाबला महायसा महासुक्खा महाणुभागा पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, तंजहा–कयमालए चेव णट्टमालए चेव। तेसि णं वणसंडाणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ वेअद्धस्स पव्वयस्स उभओ पासिं दस दस जोअणाइं उद्धं उप्पइत्ता एत्थ णं दुवे विज्जाहरसेढीओ पण्णत्ताओ पाईणपडीणायताओ उदीणदाहिणविच्छिण्णाओ दस दस जोअणाइं विक्खंभेणं पव्वयसमियाओ आयामेणं उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ताओ, ताओ णं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पउमवरवेइयाओ अद्धजोअणं उद्धं उच्चत्तेणं पञ्च धणुसयाइं विक्खंभेणं पञ्चयसमियाओ आयामेणं वण्णओ णेयव्वो, वणसंडावि पउमवरवेइयासमगा आयामेणं वण्णओ । विज्जाहरसेढीणं भंते! भूमीणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?, गोअमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा णाम ए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं तणेहिं उवसोभिए, तंजहा-कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव, तत्थ णं दाहिणिल्लाए विज्जाहरसेढीए गगणवल्लभपामोक्खा पण्णासं विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता, उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए रहनेउरचक्कवालपामोक्खा सट्ठिं विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता, एवामेव सपुव्वावरेणं दाहिणिल्लाए उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए एगं दसुत्तरं विज्जाहरणगरावाससयं भवतीतिमक्खायं, ते विज्जाहरणगरा रिद्धत्थिमियसमिद्धा पमुइय-जणजाणवया जाव पडिरूवा, तेसु णं विज्जाहरणगरेसु विज्जाहररायाणो परिवसंति महयाहिमवंतमलयमंदरमहिंदसारा रायवण्णओ भाणिअव्वो । विज्जाहरसेढीणं भंते! मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते? गोयमा! ते णं मणुआ बहुसंघयणा बहुसं-ठाणा बहुउच्चत्तपज्जवा बहुआउपज्जवा जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेंति, तासि णं विज्जाहरसेढीणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ वेअड्ढस्स पव्वयस्स उभओ पासिं दस दस जोअणाइं उद्धं उप्पइत्ता एत्थ णं दुवे आभिओगसेढीओ पण्णत्ताओ पाईणपडीणायताओ उदीणदाहिणविच्छिण्णाओ दस दस जोअणाइं विक्खंभेणं पव्वयसमियाओ आयामेणं उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ताओ वण्णओ दोण्हवि पव्वयसमियाओ आयामेणं, अभिओगसेढीणं भंते! केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?, गोअमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव तणेहिं उवसोभिए वण्णाइं जाव तणाणं सद्दोत्ति, तासि णं अभि-ओगसेढीणं तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं जाव वाणमंतरा देवा य देवीओ अ आसयंति सयंति जाव फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहरंति, तासु णं आभिओगसेढीसु सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमजमवरुणवेसमणकाइआणं आभिओगाणं देवाणं बहवे भवणा पण्णत्ता, ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा वण्णओ जाव अच्छरघणसंघविकिण्णा जाव पडिरूवा, तत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमजमवरुणवेसमणकाइआ बहवे आभिओगा देवा महिद्धीआ महज्जुईआ जाव महासुक्खा पलिओवमट्ठिइया परिवसंति। तासि णं आभिओगसेढीणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ वेयड्ढस्स पव्वयस्स उभओ पासिं पंच २ जोयणाइं उद्धं उप्पइत्ता, एत्थ णं वेयड्ढस्स पव्वयस्स सिहरतले पण्णत्ते पाईणपडियायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे दस जोअणाइं विक्खंभेणं पव्वयसमगे आयामेणं, से णं इक्काए पउमवरवेइयाए इक्केणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, पमाणं वण्णगो दोण्हंपि, वेयड्ढस्स णं भंते! पव्वयस्स सिहरतलस्स केरिसए आगारभावपडोआरे पण्णत्ते?, गोअमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहा णाम ए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए जाव वावीओ पुक्खरिणीओ जाव वाणमंतरा देवा य देवीओ अ आसयंति जाव भुंजमाणा विहरंति, जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे भारहे वासे वेअड्ढपव्वए कइ कूडा पं०?, गो०! णव कूडा पं०, तं०—सिद्धाययणकूडे १ दाहिणड्ढभरहकूडे २ खंडप्पवायगुहाकूडे ३ माणिभद्दकूडे ४ वेअड्ढकूडे ५ पुण्णभद्दकूडे ६ तिमिसगुहाकूडे ७ उत्तरड्ढभरहकूडे ८ वेसमणकूडे ९ (सूत्रं १२)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, इदं प्रायः पूर्वसूत्रेण समगमकत्वात् कण्ठ्यं, नवरं उत्तरार्द्धभरताद्दक्षिणस्यामित्यादि दिक्स्वरूपं गुरुजनदर्शितजम्बूद्वीपपट्टादेः ज्ञेयं, तथा पञ्चविंशतियोजनान्यूर्ध्वोच्चत्वेन षट् सक्रोशानि योजनान्युद्वे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धेन–भूमिप्रवेशेन, मेरुवर्जसमयक्षेत्रवर्त्तिगिरीणां निजनिजोत्सेधचतुर्थांशेन भूम्यवगाहस्योक्तत्वात्, योजनपञ्चविंशतेश्च-तुर्थांशे एतावत एव लाभात्, तथा पञ्चाशद्योजनानि विष्कम्भेनेति, अत्र प्रस्तावादस्य शरः प्रदर्श्यते, स चाष्टाशी-त्यधिके द्वे शते योजनानां कलात्रयं च २८८ $\frac{३}{१९}$, अस्य च करणं–दक्षिणभरतार्द्धशरे २३८ $\frac{३}{१९}$ इत्येवंरूपे वैताढ्य-पृथुत्वे पञ्चाशद् ५० योजनरूपे प्रक्षिप्ते यथोक्तं मानं भवति, आह–दक्षिणभरतार्द्धवदस्यापि विष्कम्भ एव शरोऽस्तु, मैवं, खण्डमण्डलक्षेत्रे आरोपितज्यधनुराकृतिः प्रादुर्भवति, तत्र चायामपरिज्ञानाय जीवा परिक्षेपप्रकर्षपरिज्ञानाय धनुःपृष्ठं व्यासप्रकर्षपरिज्ञानाय शरः, स च धनुःपृष्ठमध्यमत एवास्य भवति, प्रस्तुतगिरेश्च केवलस्य धनुराकृतेरभा-वेन धनुःपृष्ठस्याप्यभावात् शरोऽपि न सम्भवति, तेन दक्षिणधनुःपृष्ठेन सहैवास्य धनुःपृष्ठवत्त्वमिति प्राच्यशरमि-श्रित एवास्य विष्कम्भः शरो भवति, अन्यथा शरव्यतिरिक्तस्थाने न्यूनाधिकत्वेन प्रकृष्टव्यासप्राप्तेरेवानुपपत्तेरित्यलं प्रसङ्गेन, इदमेव शरकरणं दक्षिणविदेहार्द्धं यावद् बोध्यम्, एवमुत्तरतोऽपि ऐरावतवैताढ्यतः प्रारभ्योत्तरविदेहार्द्धं यावदिति । अथास्य बाहे आह—'तस्स बाह'त्ति तस्य–वैताढ्यस्य बाहा–दक्षिणोत्तरायता वक्रा आकाशप्रदेशपंक्तिः 'पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं'ति समाहारात् पूर्वपश्चिमयोरेकैका अष्टाशीत्यधिकानि चत्वारि योजनशतानि षोडश चैकोनविंश-तिभागान् योजनस्य एकस्यैकोनविंशतिभागस्य चार्धं–अर्धकला, योजनस्याष्टत्रिंशत्तमं भागमित्यर्थः, आयामेन–दैर्घ्येण प्रज्ञप्ता, ऋजुबाहायास्तु पर्वतमध्यवर्त्तिन्याः पूर्वापरायताया मानं क्षेत्रविचारादिभ्योऽवसेयं, अत्र करणं–यथा गुरुध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नुःपृष्ठाल्लघुधनुःपृष्ठं विशोध्य शेषस्यार्धे कृते बाहा, यथा गुरुधनुःपृष्ठं वैताढ्यसत्कं कलारूपं २०४१३२, अस्माल्लघुधनुःपृष्ठं कलारूपं १८५५५५ शोध्यते जातं १८५७७, अर्द्धे कृते कलाः ९२८८, तासामेकोनविंशत्या भागे योजनानि ४८८ कलाः १६ कलार्द्धं चेति, एवं यावद्दक्षिणविदेहार्द्धबाहा, एवमुत्तरत ऐरावतवैताढ्यबाहा यावदुत्तरविदेहार्द्धबाहा तावदिदं करणं भावनीयं, अथास्य जीवामाह–'तस्स जीवे'त्यादि, तस्य–वैताढ्यस्य जीवा 'उत्तरेणे'त्यादि प्राग्वत्, नवरं दश योजनसहस्राणि सप्त च विंशानि–विंशत्यधिकानि योजनशतानि द्वादश चैकोनविंशतिभागान् योजनस्यायामेनेति, अत्र करणभावना यथा–पूर्वोक्तकरणक्रमेण जम्बूद्वीपव्यासः कलारूपः १९ शून्यः ५, अस्माद्वैताढ्यशरकलानां ५४७५ शोधने जातं १८९४५२५, अस्मिन् वैताढ्यशर५४७५गुणे जातं १०३७२५२४३७५, तस्मिन् पुनश्चतुर्गुणे जातं ४१४९००९७५००, एष वैताढ्यजीवावर्गः, अस्य मूले जातं छेदराशिः ४०७३८२, लब्धं कलाः २०३६९१, शेषं कलांशाः ७४०१९, लब्धकलानामेकोनविंशत्या भागे लब्धानि योजनानि १०७२० कलाः $\frac{११}{१९}$, शेषकलांशानां अर्धाभ्यधिकत्वात्, अर्धाभ्यधिके रूपं देयमिति एककलाक्षेपे जाताः कलाः द्वादशेति $\frac{१२}{१९}$, अथास्य धनुःपृष्ठमाह–'तीसे धणुपुट्ठं दाहिणेण'मिति, गतार्थमेतत्, नवरं दश योजनसहस्राणि सप्त च त्रिचत्वारिंशानि–त्रिचत्वारिंशदधिकानि योजनशतानि पञ्चदश चैकोनविंशतिभागान् योजनस्येति, अत्र करणं यथा वैताढ्येषुः कलारूपः५४७५, अस्य वर्गः २९९७५६२५, अयं षड्गुणः १७९८५३७५०, वैताढ्यजीवावर्गश्च ४१४९००९७५०० उभयोर्मीलने

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२]

दीप अनुक्रम [१३]

जातं ४१६६९९५१२५० एष वैताढ्यधनुःपृष्ठवर्गः, अस्य मूले छेदराशिः ४०८२६४ लब्धकलाः २०४१३२ शेषकलांशाः ७७८२६ लब्धकलानामेकोनविंशत्या भागे लब्धं यथोक्तं मानं १०७४३ $\frac{15}{172}$, अथ किंविशिष्टोऽसौ वैताढ्य इत्याह–'रुअगे'त्यादि, रुचकं–ग्रीवाभरणभेदः तत्संस्थानसंस्थितः सर्वात्मना रजतमयः 'अच्छे'त्यादिपदकदम्बकं प्राग्वत्, उभयोः पार्श्वयोर्दक्षिणतः उत्तरतश्च द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्यां च वनखण्डाभ्यां सर्वतः–समन्तात् संपरिक्षिप्तः अत्र यत्पद्मवरवेदिकाद्वयं तत्पूर्वापरतो जगत्या रुद्धत्वान्निरवकाशत्वेनैकीभवनासम्भवात्, अन्यथा 'सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते'त्ति वचनेनैकैव स्यादिति, 'ताओ ण'मिति, सर्वं गतार्थं, नवरं पर्वतसमिका आयामेन, वैताढ्यसमाना आयामेनेत्यर्थः, अथैतद्गतगुहाद्वयप्ररूपणायाह–'वेयड्ढस्स ण'मित्यादि, वैताढ्यस्य पर्वतस्य 'पुरच्छिमपच्चच्छिमेणं'ति, अत्र सूत्रे पूर्वस्या दिशः पूज्यत्वात् आर्षत्वाद्वा पुरच्छिमेतिशब्दस्य प्राङ्निपातेऽपि पश्चिमायां पूर्वस्यामिति व्याख्येयं, अत्र ग्रन्थे ग्रन्थान्तरे च पश्चिमायां तमिस्रगुहायाः पूर्वस्यां च खण्डप्रपातगुहायाः अभिधानात्, द्वे गुहे प्रज्ञप्ते, प्राकृतशैल्या च बहुवचनं, उत्तरदक्षिणयोरायते, एतावता य एव वैताढ्यस्य विष्कम्भः स एवानयोरायाम इति भावः, प्राचीनप्रतीचीनविस्तीर्णे इत्याद्यर्थतो व्यक्तं, अत्र च उमास्वातिवाचककृतजम्बूद्वीपसमासप्रकरणे गुहाया विजयद्वारप्रमाणद्वारेतिविशेषणदर्शनात् चतुर्योजनविस्तृतद्वारा इत्यपि विशेषणं ज्ञेयं, वज्रमयकपाटाभ्यामवघाटिते, आच्छादिते इत्यर्थः, एते च द्वे अपि चक्रवर्त्तिकालवर्जं दक्षिणपार्श्वे उत्तरपार्श्वे च प्रत्येकं सदा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मीलितवज्रमयकपाटयुगले स्यातां, अत एव यमलानि–समस्थितानि युगलानि–द्वयरूपाणि घनानि–निश्छिद्राणि कपाटानि तैः दुष्प्रवेशे, तथा नित्यं अन्धकारतमिस्रं, द्वौ तुल्यार्थौ प्रकर्षपराविति प्रकृष्टान्धकारं ययोस्ते तथा, विशेषणद्वारा अत्रार्थे हेतुमाह—व्यपगतं ग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्राणां ज्योतिर्यतः स एतादृशः पन्था ययोस्ते तथा, अथवा व्यपगता ग्रहादीनां ज्योतिषश्च–अग्नेः प्रभा ययोस्ते तथा यावत्प्रतिरूपे, अत्र यावत्करणात् 'पासाईया' इत्यादि विशेषणत्रयं 'अच्छाओ' इत्यादीनि वा विशेषणानि यथासम्भवं ज्ञेयानि, ते गुहे नामतो दर्शयति, तद्यथा–'तमिस्रा गुहा चैव खण्डप्रपाता गुहा चैव' चैवशब्दौ द्वयोस्तुल्यकक्षताद्योतनार्थौ, तेन पश्चिमभागवर्त्तिनी तमिस्रा पूर्वभागवर्तिनी खण्डप्रपाता, इमे द्वे अपि समस्वरूपे वेदितव्ये इति, 'तत्थ ण'मित्यादि, सर्वमेतद् विजयदेवसमगमकमिति व्याख्यातप्रायं, नवरं कृतमालकस्तमिस्राधिपतिः नृत्तमालकः खण्डप्रपाताधिपतिरिति । अथात्र श्रेणिप्ररूपणायाह–'तेसि णं वणसंडाण'मित्यादि, तयोर्वैताढ्योभयपार्श्ववर्त्तिनोर्भूमिभागतयोर्वनखण्डयोर्बहुसमरमणीयाद् भूमिभागादूर्ध्वं वैताढ्यगिरेरुभयोः पार्श्वयोर्दश दश योजनान्युत्पत्य–गत्वा अत्र द्वे विद्याधरश्रेण्यौ–विद्याधराणामाश्रयभूते प्रज्ञप्ते, एका दक्षिणभागे एका चोत्तरभागे इत्यर्थः, प्रागपरायते उदग्दक्षिणविस्तीर्णे, उभे अपि विष्कम्भेन दश २ योजनानि, अत एव प्रथममेखलायां वैताढ्यविष्कम्भस्त्रिंशद्योजनानि, पर्वतसमिके आयामेन, वैताढ्यवदिमे अपि पूर्वापरोदधिस्पृष्टे इत्यर्थः, तथा प्रत्येकमुभयोः पार्श्वयोः द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्यां च वनखण्डाभ्यां संपरिक्षिप्ते, एवमे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२]

दीप अनुक्रम [१३]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ ७४ ॥

कैकस्यां श्रेण्यां द्वे पद्मवरवेदिके द्वे च वनखण्डे इत्युभयोः श्रेण्योर्मीलने चतस्रः पद्मवरवेदिकाश्चत्वारि वनखण्डानीति ज्ञेयं, संवादी चायमर्थः श्रीमलयगिरिकृतबृहत्क्षेत्रसमासवृत्त्या, तथा च तत्रोक्तम्–"एकैका च श्रेणिरुभयपार्श्ववर्त्तिभ्यां वैताढ्यप्रमाणायामाभ्यां द्वाभ्यां २ पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्यां २ वनखण्डाभ्यां समन्ततः परिक्षिप्ते"ति, शेषं सूत्रं गतार्थमिति, अथ तयोः श्रेण्योः स्वरूपं पृच्छति–'विज्जाहरे'त्यादि गतार्थं, नवरं अत्र बहुष्वादर्शेषु 'नाणामणिपंचवण्णेहिं मणीहिं' इति पाठो न दृश्यते, परं राजप्रश्नीयसूत्रवृत्त्योर्दृष्टत्वात् सङ्गतत्वाच्च 'नाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं तणेहिं' इति पाठो लिखितोऽस्तीति बोध्यं, अथोभयश्रेण्योर्नगरसङ्ख्यामाह–'तत्थ णं दाहिणिल्लाए'इत्यादि, तत्रतयोः श्रेण्योर्मध्ये दक्षिणस्यां विद्याधरश्रेण्यां गगनवल्लभप्रमुखाः पंचाशद्विद्याधरनगरावासाः प्रज्ञप्ताः, 'व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति'रिति तेन नगरावासा राजधानीरूपा ज्ञेयाः, स्वस्वदेशप्रतिबद्धाः, यदाह—"ते[1] दसयोजणपिहुलेहिं सेढीसु जम्मुत्तरासु सजणवया। गिरिवरदीहासु कमा खयरपुरा पण्ण सट्ठी या ॥ १ ॥" इति, उत्तरस्यां विद्याधरश्रेण्यां रथनूपुरचक्रवालप्रमुखाः षष्टिर्विद्याधरनगरावासाः प्रज्ञप्ताः, दक्षिणश्रेणेः सकाशादस्या अधिकदीर्घत्वात्, ऋषभचरित्रादौ तु दक्षिणश्रेण्यां रथनुपूरचक्रवालं उत्तरश्रेण्यां गगनवल्लभमुक्तं, तत्त्वं तु सातिशयश्रुतधरगम्यं, अनयोर्मुख्यता च श्रेण्यधिपराजधानीत्वेनेति, 'एवमेवे'त्युक्तन्यायेनैव सह पूर्वेण यदपरं तत् सपूर्वापरं–संख्यानं तेन दक्षिणस्या-

१ तानि दशयोजनपृथक्त्वयोः श्रेण्योर्याम्येतरयोः सजनपदानि । गिरिवरदीर्घयोः क्रमात् खचरपुराणि पंचाशत् षष्टिः ॥ १ ॥

१वक्षस्कारे वैताढ्यवर्णनं सू.१२

॥ ७४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुत्तरस्यां च विद्याधरश्रेण्यामेकं दशोत्तरं विद्याधरनगरावासशतं भवतीति आख्यातं मया अन्यैश्च तीर्थकरैरिति, श्रेणिद्वयगतपंचाशत्षष्टिसङ्कलने यथोक्तसंख्याभवनादेषां च दशोत्तरशतसंख्यानगराणां नामानि श्रीहेमाचार्यकृतश्रीऋषभदेवचरित्रादवगन्तव्यानीति, 'ते विज्जाहरे'त्यादि, तानि विद्याधरनगराणि ऋद्धानि–भवनादिभिर्वृद्धिमुपगतानि स्तिमितानि–निर्भयत्वेन स्थिराणि समृद्धानि–धनधान्यादियुक्तानि ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः, तथा प्रमुदिता–हृष्टाः प्रमोदवस्तूनां सद्भावाज्जना–नगरीवास्तव्यलोका जानपदाश्च–जनपदभवास्तत्रायाताः सन्तो येषु तानि तथा, यावत्करणात् सर्वोऽपि प्रथमोपाङ्गगतश्चम्पावर्णको ग्राह्यः(सू.१), स च विस्तरभयान्नेह लिख्यते, अथ कियत्पर्यन्तः स ग्राह्य इत्याह–'पडिरूवा'इति प्रतिरूपाणि–प्रतिविशिष्टं–असाधारणं रूपं–आकारो येषां तानि तथा तेषु, णमिति प्राग्वत्, विद्याधरनगरेषु विद्याधरराजानः परिवसन्ति, अत्र समासान्तविधेरनित्यत्वान्नादन्तता, कथंभूतास्ते इत्याह–महाहिमवान्–हैमवतक्षेत्रस्योत्तरतः सीमाकारी वर्षधरपर्वतः मलयः–पर्वतविशेषः सुप्रतीतो मन्दरो–मेरुः माहेन्द्रः–पर्वतविशेषः, शक्रो वा ते इव साराः–प्रधानाः, 'रायवण्णओ भाणियव्वो'त्ति, अत्रापि सर्वः प्रथमोपाङ्गगतो राजवर्णको भणितव्य (सू.६) इति 'विज्जाहरसेढी ण'मिति सूत्रं गतार्थं, अथात्रैव वर्त्तमानामाभियोगश्रेणिं निरूपयति–'तासि (सु) ण'मित्यादि, तयोर्विद्याधरश्रेण्योर्बहुसमरमणीयाद्भूमिभागाद् वैताढ्यस्य पर्वतस्योभयोः पार्श्वयोर्दश दश योजनान्यूर्ध्वमुत्पत्य अत्र द्वे आ–समन्तात् आभिमुख्येन युज्यन्ते–प्रेष्यकर्मणि व्यापार्यन्ते इत्याभियोग्याः–शक्रलोकपालप्रेष्यकर्मकारिणो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यन्तरविशेषास्तेषामावासभूते श्रेण्यौ–आभियोग्यश्रेण्यौ प्रज्ञप्ते, शेषं गतार्थं, नवरं 'वण्णओ दोण्हवि'त्ति द्वयोरपि जात्यपेक्षया पद्मवरवेदिकावनखण्डयोर्वर्णको वाच्य इति शेषः, तथा 'पवयसमियाओ आयामेणं'ति पर्वतसमिकाश्चतस्रोऽपि पद्मवरवेदिका आयामेन–दैर्घ्येण, अत्र तत्सम्बन्धानि वनखण्डान्यपि पर्वतसमान्यायामेनेति बोध्यं, 'आभिओगे'त्यादि, प्रागधस्तनसूत्रे जगती पद्मवरवेदिका समभूभागमणितृणवर्णादिकं व्यन्तरदेवदेवीक्रीडादिकं च येनैव गमेन व्यावर्णितं स एवात्र गम इति न पुनर्व्याख्यायते, 'तासि ण'मित्यादि, तासु आभियोग्यश्रेणिषु शक्रस्य-आसनविशेषस्याधिष्ठाता शक्रस्तस्य दक्षिणार्द्धलोकाधिपतेरित्यर्थः, देवेन्द्रस्य–देवानां मध्ये परमैश्वर्ययुक्तस्य देवराज्ञः–देवेषु कान्त्यादिगुणैरधिकं राजमानस्य सोमः–पूर्वदिक्पालो यमो–दक्षिणदिक्पालो वरुणः–पश्चिमदिक्पालो वैश्रमणः–उत्तरदिक्पालस्तेषां कायो–निकाय आश्रयणीयत्वेन येषां ते तथा तेषां, शक्रसम्बन्धिसोमादिदिक्पालपरिवारभूतानामित्यर्थः, आभियोग्यानां देवानां बहूनि भवनानि प्रज्ञप्तानि, तानि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, णमिति प्राग्वत्, भवनानि बहिर्वृत्तानि–बहिर्वृत्ताकाराणि अन्तः चतुरस्राणि–समचतुरस्राणि 'वण्णओ'त्ति अत्र भवनानां वर्णको वाच्यः, स च किंपर्यन्त इत्याह–'जाव अच्छरगणसंघविकिण्ण'त्ति, ततोऽपि कियत्पर्यन्त इत्याह–'जाव पडिरूव'त्ति,स च प्रज्ञापनास्थानाख्य(सू.४६)द्वितीयपदोक्तः, यथा–'अहे पुक्खरकण्णिआसंठाणसंठिया उक्किण्णंतरविउलगंभीरखायपरिहा पागारट्टालयकवाडतोरणपडिदुवारदेसभागा जंतसयग्घिमुसलमुसुंढिपरिवारिआ अउज्झा सयाजया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयागुत्ता अडयालकोट्ठगरइआ अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामरदंडोवरक्खिआ लाउल्लोइअमहिआ गोसी-
ससरसरत्तचंदणदद्दर(दिण्ण)पंचंगुलितला उवचिअचंदणकलसा चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्त-
विउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघेंत-
गंधुद्धुआभिरामा सुगंधवरगंधिआ गंधवट्टिभूया अच्छरगणसंघसंविकिण्णा दिव्वतुडियसद्दसंपणदिआ सव्वरयणामया
अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पहा समरीइआ सउज्जोआ पासादीया
दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूव'त्ति, अत्र व्याख्या—अधस्तनभागे पुष्करकर्णिकासंस्थानसंस्थितानि तथा उत्कीर्णमि-
वोत्कीर्णं अतीव व्यक्तमित्यर्थः उत्कीर्णमन्तरं यासां खातपरिखाणां ता उत्कीर्णान्तराः, किमुक्तं भवति ?–खातानां च
परिखाणां च स्पष्टवैविक्त्योन्मीलनार्थमपान्तराले महती पाली समस्तीति उत्कीर्णान्तराः, विपुला–विस्तीर्णा गम्भी-
रा–अलब्धमध्यभागाः खातपरिखा येषां भवनानां परितस्तानि तथा, खातपरिखाणामयं विशेषः–परिखा उपरि विशाला
अधः सङ्कुचिता खातं तूभयत्रापि सममिति, तथा प्राकारेषु–वप्रेषु प्रतिभवनं अट्टालकाः–प्रकारस्योपरिवर्त्त्याश्रयवि-
शेषाः कपाटानि–प्रतोलीद्वारसत्कानि, एतेन प्रतोल्यः सर्वत्र सूचिताः, अन्यथा कपाटानामसम्भवात्, तोरणानि–
प्रतोलीद्वारेषु प्रसिद्धानि प्रतिद्वाराणि–मूलद्वारापान्तरालवर्तिलघुद्वाराणि एतद्रूपा देशभागा–देशविशेषा येषु तानि
तथा, यन्त्राणि नानाविधानि शतघ्न्यो–महायष्टयो महाशिला वा या उपरिष्टात् पातिताः सत्यः पुरुषाणां शतानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भन्तीति, मुसलानि–प्रतीतानि मुषण्ढ्यः–शस्त्रविशेषास्तैः परिवारितानि–समन्ततो वेष्टितानि, अत एवायोध्यानि-परैर्योद्धुमशक्यानि अयोध्यत्वादेव 'सदाजयानि' सदा–सर्वकालं जयो येषु तानि सदाजयानि, सर्वकालं जयवन्तीति भावः, तथा सदा–सर्वकालं गुप्तानि प्रहरणैः पुरुषैश्च योद्धृभिः सर्वतो निरन्तरपरिवारिततया परेषामसहमानानां मनाग-पि प्रवेशासम्भवात्, तथा अष्टचत्वारिंशद्भेदभिन्नविच्छित्तिकलिताः कोष्ठकाः–अपवरका रचिताः–स्वयमेव रचनां प्राप्ता येषु तानि तथा, सुखादिदर्शनात् पाक्षिको निष्ठान्तस्य परनिपातः, तथा अष्टचत्वारिंशद्भेदभिन्नविच्छित्तयः कृता वन-माला येषु तानि तथा, अन्ये त्वभिदधति–अडयाल इति देशीशब्दः प्रशंसावाची, ततोऽयमर्थः–प्रशस्तकोष्ठकरचितानि प्रशस्तकृतवनमालानीति, तथा क्षेमाणि–परकृतोपद्रवरहितानि शिवानि–सदा मङ्गलोपेतानि, तथा किङ्कराः–किङ्करभूता येऽमरास्तैः दण्डैः कृत्वोपरक्षितानि, सर्वतः समन्ततोऽपरक्षितानि, तथा लाइअमिव लाइअं–छगणादिना भूमेरुपले-पनमिव 'उल्लोइआ' उल्लोइयमिव उल्लोइअं च सेटिकादिना कुड्यादिषु धवलनमिव ताभ्यां महितानीव–पूजितानीव, तथा गोशीर्षेण–चन्दनविशेषेण सरसेन–रक्तचन्दनेन च दर्दरेण–बहलेन दर्दराभिधानाद्रिजातश्रीखण्डेन वा दत्ताः–न्यस्ताः पञ्चाङ्गुलयस्तला–हस्तका येषु तानि तथा, उपचिता–निवेशिता वंदनकलशा–माङ्गल्यघटा येषु तानि तथा, वन्दन-घटैः–माङ्गल्यकलशैः सुकृतानि–सुष्ठु कृतानि शोभनानीत्यर्थः यानि तोरणानि तानि प्रतिद्वारदेशभागं–द्वारदेशभागे २ येषु तानि तथा, देशभागाश्च देशा एव, तथा आसक्तो भूमौ लग्न उत्सक्तश्च–उपरि लग्नो विपुलः–अतिविस्तीर्णो वृत्तः-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिनिचिततया वर्त्तुलो वग्घारिअत्ति–प्रलम्बितो माल्यदामकलापः–पुष्पमालासमूहो येषु तानि तथा, पञ्चवर्णाः सरसाः सुरभयो ये मुक्ताः–करप्रेरिताः पुष्पपुञ्जास्तैर्य उपचारः–पूजा भूमेस्तेन कलितानि, 'कालागरु' इत्यादि विशेषणत्रयं प्राग्वत्, अप्सरोगणानां संघः–समुदायः तेन सम्यग्–रमणीयतया विकीर्णानि–व्याप्तानि, तथा दिव्यानां त्रुटितानां-आतोद्यानां ये शब्दास्तैः सम्यक्–श्रोतृमनोहारितया प्रकर्षेण–सर्वकालं नदितानि–शब्दवन्ति 'सवरयणामया' इत्यादि पदानि प्राग्वत्, 'तत्थ ण' मित्यादि, गतार्थमेतत् । अथ वैताढ्यस्य शिखरतलमाह—'तासि ण'मित्यादि, तयोः–आभियोग्यश्रेण्योर्बहुसमरमणीयाद्भूमिभागाद्वैताढ्यस्य पर्वतस्योभयोः पार्श्वयोः पञ्च पञ्च योजनान्यूर्ध्वमुत्पत्य–गत्वा अत्रान्तरे वैताढ्यस्य पर्वतस्य शिखरतलं प्रज्ञप्तं, 'पाईणे'त्यादि प्राग्वत्, तच्च शिखरतलं एकया पद्मवरवेदिकया तत्परिवेष्टकभूतेन चैकेन वनखण्डेन सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तं, अयं भावः–यथा जगती मध्यभागे पद्मवरवेदिकैकैव जगतीं दिक्षु विदिक्षु वेष्टयित्वा स्थिता तथेयमपि सर्वतः शिखरतलं पर्यन्ते वेष्टयित्वा स्थिता, परमेषा आयतचतुरस्राकार-शिखरतलसंस्थितत्वेनायतचतुरस्रा बोद्धव्या, अत एवैकसंख्याका, तत्परतो बहिर्वर्त्ति वनखण्डमप्येकं, न तु वैताढ्य-मूलगतपद्मवरवेदिकावने इव दक्षिणोत्तरविभागेन द्वयरूपे इति, श्रीमलयगिरिपादास्तु क्षेत्रविचारबृहद्वृत्तौ "तन्मध्ये पद्मवरवेदिकोभयपार्श्वयोर्वनखण्डा"वित्याहुः, प्रमाणं–विष्कम्भायामविषयं, वर्णकश्च द्वयोरपि पद्मवरवेदिकावनखण्डयोः, प्राग्वद्भणितव्य इत्यध्याहार्यं, अथ शिखरतलस्य स्वरूपं पृच्छति–'वेअड्ढस्स ण'मित्यादि, एतत्सर्वं जगतीगत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२]

दीप अनुक्रम [१३]

पद्मवरवेदिकाया वनखण्डभूमिभागवद् व्याख्येयं, अथास्य कूटवक्तव्यता पृच्छति–'जंबुद्दीवे ण'मित्यादि, जम्बूद्वीपे णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! द्वीपे भरते वर्षे वैताढ्यपर्वते कति कूटानि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–सिद्धानि–शाश्वतानि सिद्धानां वा–शाश्वतीनामर्हत्प्रतिमानामायतनं–स्थानं सिद्धायतनं तदाधारभूतं कूटं सिद्धायतनकूटं, दक्षिणार्द्धभरतनाम्ना देवस्य निवासभूतं कूटं दक्षिणार्द्धभरतकूटं, खण्डप्रपातगुहाधिपदेवनिवासभूतं कूटं खण्डप्रपातगुहाकूटं, माणिभद्रनाम्नो देवस्य निवासभूतं कूटं माणिभद्रकूटं, वैताढ्यनाम्नो देवस्य निवासभूतं कूटं वैताढ्यकूटं, पूर्णभद्रनाम्नो देवस्य निवासभूतं कूटं पूर्णभद्रकूटं, अन्यत्र माणिभद्रकूटादनन्तरं पूर्णभद्रकूटं दृश्यते, तमिस्रगुहाधिपदेवस्य निवासभूतं कूटं तमिस्रगुहाकूटं, उत्तरार्द्धभरतनाम्नो देवस्य निवासभूतं कूटं उत्तरार्द्धभरतकूटं, वैश्रमणलोकपालनिवासभूतं कूटं वैश्रमणकूटं, सर्वत्र मध्यपदलोपी समासः। अथ 'यथोद्देशं निर्देश' इति प्रथमसिद्धायतनकूटस्थानप्रश्नमाह—

कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेअड्ढपव्वए सिद्धायतणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते?, गो०! पुरच्छिमलवणसमुद्दस्स पच्चच्छिमेणं दाहिणड्ढभरहकूडस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेअड्ढे पव्वए सिद्धायतणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते, छ सक्कोसाइं जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं मूले छ सक्कोसाइं जोअणाइं विक्खंभेणं मज्झे देसूणाइं पंच जोअणाइं विक्खंभेणं उवरि साइरेगाइं तिण्णि जोअणाइं विक्खंभेणं मूले देसूणाइं बावीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं मज्झे देसूणाइं पण्णरस जोअणाइं परिक्खेवेणं उवरिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैताढ्यपर्वते सिद्धायतनकूटस्य स्वरुपम् एवं शाश्वत-जिनप्रतिमाया: स्वरुपम् कथ्यते

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१४]

साइरेगाइं णव जोअणाइं परिक्खेवेणं, मूले विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए, सव्वरयणामए अच्छे सण्हे जाव पडिरूवे । से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, पमाणं वण्णओ दोण्हंपि, सिद्धायतणकूडस्स णं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव वाणमंतरा देवा य जाव विहरंति । तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं महं एगे सिद्धाययणे पण्णत्ते कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं देसूणं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं अणेगखंभसयसन्निविट्ठे खंभुग्गयसुकयवइरवेइआतोरणवररइअसालभंजिअसुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसंठिअपसत्थवेरुलिअविमलखंभे णाणामणिरयणखचिअउज्जलबहुसमसुविभत्तभूमिभागे ईहामिगउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजरवणलयजावपउमलयभत्तिचित्ते कंचणमणिरयणथूभियाए णाणाविहपंच० वण्णओ घंटापडागपरिमंडिअग्गसिहरे धवले मरीइकवयं विणिम्मुअंते लाउल्लोइअमहिए जाव सया, तस्स णं सिद्धायतणस्स तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता, ते णं दारा पंच धणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं अद्धाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेआवरकणगथूभिआगा दारवण्णओ जाव वणमाला, तस्स णं सिद्धाययणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव तस्स णं सिद्धाययणस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे देवच्छंदए पण्णत्ते पंचधणुसयाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं पंच धणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं सव्वरयणामए, एत्थ णं अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाणमित्ताणं संनिक्खित्तं चिट्ठइ एवं जाव धूवकडुच्छुगा । (सूत्रम् १३)

'कहि ण'मित्यादि कण्ठ्यम्, नवरं दक्षिणार्द्धभरतकूटं ह्यस्मात्पश्चिमदिग्वर्त्तीति ततः पूर्वेणेति, तच्चोच्चत्वादिना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१४]

॥ ७८ ॥

कियत्प्रमाणमित्याह—'छ सकोसाइं' इत्यादि, सक्रोशानि षड्योजनान्यूर्द्ध्वोच्चत्वेन मूले सक्रोशानि षट् योजनानि विष्कम्भेन मध्ये देशोनानि पञ्च योजनानि, सपादक्रोशन्यूनानि पञ्च योजनानीत्यर्थः, विष्कम्भेन, उपरि सातिरेकाणि त्रीणि योजनानि, अर्द्धक्रोशाधिकानि त्रीणि योजनानीत्यर्थः, विष्कम्भेनेति, अथास्य शिखरादधोगमनेन विवक्षितस्थाने पृथुत्वज्ञानाय करणमुच्यते—शिखरादवपत्य यावद्योजनादिकमतिक्रान्तं तावत्प्रमाणे योजनादिके द्विकेन भक्ते कूटोत्सेधार्द्धयुक्ते च यज्जायते तदिष्टस्थाने विष्कम्भः, तथाहि—शिखरात् किल त्रीणि योजनानि क्रोशार्द्धाधिकान्यवतीर्णः, ततो योजनत्रयस्य क्रोशार्द्धाधिकस्य द्विकेन भागे लब्धाः षट् क्रोशाः क्रोशस्य च पादः, कूटोत्सेधश्च सक्रोशानि षड् योजनानि, अस्यार्द्धं योजनत्रयी क्रोशार्द्धाधिका, अस्मिंश्च पूर्वराशौ प्रक्षिप्ते जातानि सपादक्रोशोनानि पञ्च योजनानि, इयान् मध्यदेशे विष्कम्भः, एवमन्यत्रापि प्रदेशे भावनीयं । तथा मूलादूर्ध्वगमने इष्टस्थाने विष्कम्भपरिज्ञानाय करणमिदं—मूलादतिक्रान्तयोजनादिके द्विकेन भक्ते लब्धं मूलव्यासाच्छोध्यतेऽवशिष्टमिष्टस्थाने विष्कम्भः, तथाहि—मूलात् त्रीणि योजनानि क्रोशार्द्धाधिकानि ऊर्ध्वं गतः, अस्य द्विकेन भागे लब्धाः ६ क्रोशाः क्रोशस्य च पादः, एतावान् मूलव्यासात् शोध्यते, शेषं पञ्च योजनानि सपादक्रोशोनानि, इयान् मध्यभागे विष्कम्भः, एवमन्यत्रापि प्रदेशे भाव्यं, इमे चारोहावरोहकरणे शेषेषु वैताढ्यकूटेषु पञ्चशतिकेषु हिमवदादिकूटेषु सहस्राङ्केषु च हरिस्सहादिकूटेषु अष्टयोजनिकेषु च ऋषभकूटेष्ववतारणीये, वाचनान्तरोक्तमानापेक्षया तु ऋषभकूटेषु करणं जगतीवदिति । अस्य च

॥ ७८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्मवरवेदिकादिवर्णनायाह—'से ण'मित्यादि व्यक्तं, अथ सिद्धायतनकूटस्योपरि भूभागवर्णनायाह–'सिद्धायतण' इत्यादि प्राग्वत्, अथात्र जिनगृहवर्णनायाह–'तस्स ण' मित्यादि, तस्य–बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र महदेकं सिद्धानां–शाश्वतीनामर्हत्प्रतिमानामायतनं–स्थानं चैत्यमित्यर्थः प्रज्ञप्तं क्रोशमायामेनार्द्धक्रोशं विष्कम्भेन देशोनं क्रोशमूर्द्ध्वोच्चत्वेन, देशश्चात्र षष्ट्यधिकपञ्चशतधनूरूप इति, यत उक्तं वीरंजयसेहरेत्यादिक्षेत्रविचारस्य वृत्तौ–'ताणुवरि चेइहरा दहदेवीभवणतुल्लपरिमाणा' इत्यस्या गाथाया व्याख्याने "तेषां वैताढ्यकूटानामुपरि चैत्यगृहाणि द्रहदेवीभवनतुल्यपरिमाणानि वर्त्तन्ते, यथा श्रीगृहं क्रोशैकदीर्घं क्रोशार्द्धविस्तारं चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतधनुरुच्च"मिति, तथा अनेकेषु स्तम्भशतेषु संनिविष्टं, तदाधारकत्वेन स्थितमित्यर्थः, तथा स्तम्भेषु उद्गता–संस्थिता सुकृतैव सुकृता निपुणशिल्पिरचितेवेति भावः ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः, तादृशी वज्रवेदिका–द्वारशुण्डिकोपरि वज्ररत्नमयी वेदिका तोरणं च स्तम्भोद्गतसुकृतं यत्र तत्तथा, तथा वराः–प्रधाना रतिदा–नयनमनःसुखकारिण्यः सालभंजिका येषु ते तथा सुश्लिष्टं–सम्बद्धं विशिष्टं–प्रधानं लष्टं–मनोज्ञं संस्थितं-संस्थानं येषां ते तथा ततः पदद्वयकर्मधारये तादृशाः प्रशस्ताः–प्रशंसास्पदीभूता वैडूर्यविमलस्तम्भा यत्र तत्तथा, ततः पूर्वपदेन कर्मधारयः, तथा नानामणिरत्नानि खचितानि यत्र स नानामणिरत्नखचितः, निष्ठान्तस्य परनिपातः भार्यादिदर्शनात्, तादृश उज्ज्वलो–निर्मलो बहुसमः–अत्यन्तसमः सुविभक्तो भूमिभागो यत्र तत्तथा, 'ईहामिगे'त्यादि प्राग्वत् व्याख्येयं, नवरं मरीचिकवचं–किर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१४]

णजालपरिक्षेपं विनिर्मुञ्चत्, तथा लाइअं नाम यद्गोमेर्गोमयादिना उपलेपनं उल्लोइअं-कुड्यानां मालस्य च सेटिका-दिभिः संमृष्टीकरणं लाउल्लोइअं ताभ्यामिव महितं-पूजितं लाउल्लोइअमहिअं, यथा गोमयादिनोपलिप्तं सेटिकादिना च धवलीकृतं यद्वद् गृहादि सश्रीकं भवति तथेदमपीति भावः, तथा 'जाव झया' इति अत्र यावत्करणात् वक्ष्य-माणयमिकाराजधानीप्रकरणगतसिद्धायतनवर्णकेऽतिदिष्टः सुधर्मासभागमो वाच्यो, यावत्सिद्धायतनोपरि ध्वजा उपवर्णिता भवन्ति, यद्यप्यत्र यावत्पदग्राह्ये द्वारवर्णकप्रतिमावर्णकधूपकदुच्छादिकं सर्वमन्तर्भवति तथापि स्थाना-शून्यतार्थं किञ्चित् सूत्रे दर्शयति-'तस्स णं सिद्धायतणस्स' इत्यादि, तस्य-सिद्धायतनस्य तिसृणां दिशां समाहार-स्त्रिदिक् तस्मिन्, अनुस्वारः प्राकृतत्वात्, पूर्वदक्षिणोत्तरविभागेषु त्रीणि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तानि द्वाराणि पञ्चधनुः-शतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन अर्धतृतीयानि धनुःशतानि विष्कम्भेन, तावन्मात्रमेव प्रवेशेन, अर्द्धतृतीयानि धनुःशतानीत्यर्थः, 'सेआ वरकणगथूभिआगा' इतिपदोपलक्षितो द्वारवर्णको मन्तव्यो विजयद्वारवद् यावद्वनमालावर्णनम् । अत्रैव भूभागवर्णनायाह—'तस्स ण' मित्यादि सुगमं, 'सिद्धाययणस्स' इत्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्य-देशभागे अत्र महानेको देवच्छन्दको-देवोपवेशस्थानं प्रज्ञप्तः, अत्रानुक्तापि आयामविष्कम्भाभ्यां देवच्छन्दकसमाना उच्चैस्त्वेन तु तदर्द्धमाना मणिपीठिका सम्भाव्यते, अन्यत्र राजप्रश्नीयादिषु देवच्छन्दकाधिकारे तथाविधमणिपी-ठिकाया दर्शनात् यथा सूर्याभविमाने 'तस्स णं सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगा मणिपेढिया पण्णत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलसजोअणाइं आयामविक्खंभेणं अट्ठ जोअणाइं उच्चत्तेणं'ति, तथा विजयाराजधान्यामपि 'तस्स णं सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं महं एगा मणिपेढिआ पण्णत्ता दो जोअणाइं आयामविक्खंभेणं जोअणं बाहल्लेणं सव्वमणिमया अच्छा जाव पडिरूवा' इति, स च देवच्छन्दकः पञ्चधनुःशतान्यायामविष्कम्भाभ्यां सातिरेकाणि साधिकानि पञ्चधनुःशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन सर्वात्मना रत्नमयः, तत्र देवच्छन्दकेऽष्टशतं–अष्टोत्तरं शतं जिनप्रतिमानां जिनोत्सेधप्रमाणमात्राणां–जिनोत्सेधः–तीर्थकरशरीरोच्छ्रायः, तस्य च प्रमाणं उत्कृष्टतः पञ्चधनुःशतात्मकं जघन्यतः सप्तहस्तात्मकं इह च पञ्चधनुःशतात्मकं गृह्यते, तदेव मात्रा–प्रमाणं यासां तास्तथा तासां, तथा जगत्स्वाभाव्यात्, देवच्छन्दकस्य चतुर्दिक्षु प्रत्येकं सप्तविंशतिभावेन सन्निक्षिप्तं तिष्ठति, ननु पद्मवरवेदिकादय इव शाश्वतभावरूपा जिनप्रतिमा भवन्तु, परं प्रतिष्ठितत्वाभावेन तासामाराध्यत्वं कथमिति चेत्?, उच्यते, शाश्वतभावा इव शाश्वतभावधर्मा अपि सहजसिद्धा एव भवन्ति, तेन शाश्वतप्रतिमा इव शाश्वतप्रतिमाधर्मा अपि प्रतिष्ठितत्वाराध्यत्वादयः सहजसिद्धा एवेति, किं

१ तत्र जिनोत्सेधो जघन्यतः सप्त हस्ताः उत्कर्षतः पञ्च धनुःशतानि, परमिह तिर्यग्लोकवर्तित्वेन पञ्चधनुःशतानामित्यर्थः, यदुक्तं "तत्थुस्सेहंगुलओ सत्तकरा उड्ढलोअअहलोए । सासयपडिमा वंदे पणधणुसयमाण तिरिलोए ॥ १ ॥" इति, यत्तु राजप्रश्नीयोपांगवृत्तौ सूर्याभविमाने जिनप्रतिमानामुत्सेधमधिकृत्य इह तु पंचधनुःशतानि संभाव्यन्ते इति भणितं तत्र सूक्ष्मदृशां पर्यालोचनायाः संभावनाया अपि संभावनैव विजृम्भते, पर्यालोचनात्वेवं–देवानां भवधारणीयशरीरेण तादृक्प्रतिमानां पूजाकरणादावसंगतमिवाभाति, न चैवं तिर्यग्लोकेऽपि समानं, यतो देवानां वैक्रियशरीरेण मनुजानां च भरतादिकारितजिनप्रतिमापूजने तदुचितप्रमाणवतैव शरीरेण नासंगतिगन्धोऽपि, (उभयत्रापि वैक्रियकृतिरस्त्येव, तिर्यग्लोके विद्याधराणां सातिशयत्वान्न क्षतिः) (हीर० वृत्तौ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिष्ठापनान्तरविचारेण ?, ततः शाश्वतप्रतिमासु सहजसिद्धमेवाराध्यत्वमिति न किञ्चिदनुपपन्नमिति, अत्र प्रतिमानां उत्सेधाङ्गुलमानेन पञ्चधनुःशतप्रमाणानां प्रमाणाङ्गुलमानेन पञ्चधनुःशतायामविष्कम्भे देवच्छन्दकेऽनवकाशचिन्ता न विधेयेति, अत्र प्रतिमावर्णकसूत्रं एवं–'जाव धूवकडुच्छुगा' इति सूत्रेण सूचितं जीवाभिगमाद्युक्तमवसेयं, तच्चेदम्– 'तासि णं जिणपडिमाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–तवणिज्जमया हत्थतलपायतला अंकामयाइं णक्खाइं अंतोलोहियक्खपडिसेगाइं कणगामया पाया कणगामया गुप्फा कणगामईओ जंघाओ कणगामया जाणू कणगामया ऊरू कणगामईओ गायलट्ठीओ रिट्ठामए मंसू तवणिज्जमईओ णाभीओ रिट्ठामईओ रोमराईओ तवणिज्जमया चुच्चुआ तवणिज्जमया सिरिवच्छा कणगमईओ बाहाओ कणगामईओ गीवाओ सिलप्पवालमया उट्ठा फलिहामया दंता तवणिज्जमईओ जीहाओ तवणिज्जमया तालुआ कणगमईओ णासिगाओ अंतोलोहिअक्खपडिसेगाओ अंकामयाइं अच्छीणि अंतोलोहिअक्खपडिसेगाइं पुलगामईओ दिट्ठीओ रिट्ठामईओ तारगाओ रिट्ठामयाइं अच्छिपत्ताइं रिट्ठामईओ भमुहाओ कणगामया कवोला कणगामया सवणा कणगामईओ णिडालपट्टियाओ वइरामईओ सीसघडीओ तवणिज्जमईओ केसंतकेसभूमिओ रिट्ठामया उवरिमुद्धया, तासि णं जिणपडिमाणं -पिट्ठओ पत्तेयं २ छत्तधारपडिमा पण्णत्ता, ताओ णं छत्तधारपडिमाओ हिमरययकुंदिंदुप्पगासाइं सकोरंटमल्लदामाइं धवलाइं आयवत्ताइं सलीलं ओहारेमाणीओ चिट्ठंति, तासि णं जिणपडिमाणं उभओपासिं पत्तेयं २ दो दो चामरधारपडिमाओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१४]

पण्णत्ताओ, ताओ णं चामरधारपडिमाओ चंदप्पहवइरवेरुलियणाणामणिकणगरयणखइअमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाओ चिल्लियाओ संखंककुंददगरयमथमहिअफेणपुंजसन्निकासाओ सुहुमरययदीहवालाओ धवलाओ चामराओ सलीलं धारेमाणीओ चिट्ठंति, तासि णं जिणपडिमाणं पुरओ दो दो णागपडिमाओ दो दो जक्खपडिमाओ दो दो भूअपडिमाओ दो दो कुंडधारपडिमाओ विणओणयाओ पायवडियाओ पंजलिउडाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति सबरयणामईओ अच्छाओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ नीरयाओ निप्पंकाओ जाव पडिरूवाओ, तत्थ णं जिणपडिमाणं पुरओ अट्ठसयं घंटाणं अट्ठसयं वंदणकलसाणं एवं भिंगाराणं आयंसगाणं थालाणं पाईणं सुपइट्ठगाणं मणोगुलिआणं वातकरगाणं चित्ताणं रयणकरंडगाणं हयकंठाणं जाव उसभकंठाणं पुप्फचंगेरीणं जाव लोमहत्थचंगेरीणं पुप्फपडलगाणं जाव लोमहत्थपडलगाणं" तासां जिनप्रतिमानामयमेतद्रूपो वर्णव्यासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा– तपनीयमयानि हस्ततलपादतलानि तथा कनकमयाः पादाः तथा कनकमया गुल्फाः अङ्कमयाः–अङ्करत्नमया अन्तर्लोहिताख्यरत्नप्रतिसेका नखाः, कनकमय्यो जङ्घाः, कनकमयानि जानूनि, कनकमया ऊरवः, कनकमय्यो गात्रयष्टयः, तपनीयमया नाभयः रिष्टरत्नमय्यो रोमराजयः, तपनीयमयाश्चुचुकाः–स्तनाग्रभागाः, तपनीयमयाः श्रीवत्साः, तथा कनकमय्यो बाहाः, तथा कनकमय्यो ग्रीवा रिष्टरत्नमयानि श्मश्रूणि शिलाप्रवालमया–विद्रुममया ओष्ठा स्फटिकमया दन्ताः तपनीयमय्यो जिह्वाः तपनीयमयानि तालुकानि कनकमय्यो नासिका अन्तर्लोहिताक्षरत्नप्रतिसेका अङ्कमया-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्यक्षीणि अन्तर्लोहिताक्षप्रतिसेकानि, रिष्टरत्नमय्योऽक्षिमध्यगतास्तारिकाः रिष्टरत्नमयान्यक्षिपत्राणि-नेत्ररोमाणि रिष्टरत्नमय्यो भ्रुवः कनकमय्यः कपोलाः कनकमया श्रवणाः कनकमय्यो ललाटपट्टिकाः वज्रमय्यः शीर्षघटिकाः तपनीयमय्यः केशान्तकेशभूमयः, केशान्तभूमयः केशभूमयश्चेति भावः, रिष्टरत्नमया उपरि मूर्द्धजाः—केशाः, ननु केशरहितशीर्षमुखानां भावजिनानां प्रतिरूपकत्वेन सद्भावस्थापना, जिनानां कुतः केशकूर्चादिसम्भवः ?, उच्यते, भावजिनानामपि अवस्थितकेशादिप्रतिपादनस्य सिद्धान्तसिद्धत्वात्, यदुक्तं श्रीसमवायाङ्गेऽतिशयाधिकारे—"अवट्ठिअकेसमंसुरोमणहे" इति, तथा औपपातिकोपाङ्गे—'अवट्ठिअसुविभत्तचित्तमंसू' इति, अवस्थितत्वं च देवमाहात्म्यतः पूर्वोत्पन्नानां केशादीनां तथैवावस्थानं न तु सर्वथाऽभावत्वं, इत्थमेव शोभातिरेकदर्शनं पुरुषत्वप्रतिपत्तिश्च, तेन प्रस्तुते न तत्प्रतिरूपताव्याघातः, नन्वेवं सति अर्चनकेन किमालम्ब्य तेषां श्रामण्यावस्था भावनीयेति चेत् ?, उच्यते, परिकर्मितरिष्टमणिमयतथाविधाल्पकेशादिरमणीयमुखादिस्वरूपमिति, यत्तु श्रीतपागच्छनायकश्रीदेवेन्द्रसूरिशिष्यश्रीधर्मघोषसूरिपादैर्भाष्यवृत्तौ भगवतोऽपगतकेशशीर्षमुखनिरीक्षणेन श्रामण्यावस्था सुज्ञानैवेत्यभिदधे तदवर्द्धिष्णुत्वेनाल्पत्वेन चाभावस्य विवक्षणात् श्रामण्यावस्थाया अप्रतिबन्धकत्वाच्चेति न किमप्यनुपपन्नं, तासां जिनप्रतिमानां पृष्ठत एकैका छत्रधारप्रतिमा प्रज्ञप्ता, ताश्च छत्रधारप्रतिमा हिमरजतकुन्देन्दुप्रकाशानि सकोरण्टमाल्यदामानि धवलानि आतपत्राणि—छत्राणि सलीलं धारयन्त्यस्तिष्ठन्ति, तासां जिनप्रतिमानामुभयोः पार्श्वयोः प्रत्येकं द्वे द्वे चामरधारप्रतिमे प्रज्ञप्ते, ताश्च चामर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धारप्रतिमाः चन्द्रप्रभः–चन्द्रकान्तो वज्रं–हीरकमणिः वैडूर्यं च–प्रतीतं तानि शेषाणि च नानामणिरत्नानि खचितानि येषु दण्डेषु ते तथा, एवंरूपा महार्हस्य–महार्घस्य तपनीयस्य सत्का उज्वला विचित्रा दण्डा येषु तानि तथा, 'चिल्लियाओ' इत्यादि प्राग्वत्, नवरं 'चामराओ'त्ति प्राकृतत्वात् स्त्रीत्वं चामराणि सलीलं धारयन्त्यो–वीजयन्त्यो वीजयन्त्यस्तिष्ठन्ति, तासां जिनप्रतिमानां पुरतो द्वे द्वे नागप्रतिमे द्वे द्वे यक्षप्रतिमे द्वे द्वे भूतप्रतिमे द्वे द्वे कुण्डधारप्रतिमे–आज्ञाधारप्रतिमे; विनयावनते पादपतिते प्राञ्जलिपुटे सन्निक्षिप्ते तिष्ठतः, ताश्च 'सव्वरयणामईओ' इत्यादि प्राग्वत्, 'तत्थ ण' मित्यादि, तस्मिन् देवच्छन्दके जिनप्रतिमानां पुरतोऽष्टशतं घण्टानां अष्टशतं वन्दनकलशानां–माङ्गल्यघटानां अष्टशतं भृङ्गाराणामष्टशतमादर्शानामष्टशतं स्थालानामष्टशतं पात्रीणामष्टशतं सुप्रतिष्ठकानामष्टशतं मनोगुलिकानां–पीठिकाविशेषरूपाणामष्टशतं वातकरकाणामष्टशतं चित्राणां रत्नकरण्डकानामष्टशतं हयकण्ठानामष्टशतं गजकण्ठानामष्टशतं नरकण्ठानामष्टशतं किन्नरकण्ठानामष्टशतं किंपुरुषकण्ठानामष्टशतं महोरगकण्ठानामष्टशतं गन्धर्वकण्ठानामष्टशतं वृषभकण्ठानामष्टशतं पुष्पचङ्गेरीणामष्टशतं माल्यचङ्गेरीणामष्टशतं चूर्णचङ्गेरीणामष्टशतं गंधचङ्गेरीणामष्टशतं वस्त्रचङ्गेरीणामष्टशतमाभरणचङ्गेरीणामष्टशतं सिद्धार्थकचङ्गेरीणामष्टशतं लोमहस्तकचङ्गेरीणां लोमहस्तका–मयूरपिच्छपुञ्जनिका अष्टशतं पुष्पपटलकानामष्टशतं माल्यपटलकानां मुत्कलानि पुष्पाणि ग्रथितानि माल्यानि अष्टशतं चूर्णपटलकानामेवं गन्धवस्त्राभरणसिद्धार्थकलोमहस्तकपटलकानामपि प्रत्येकं प्रत्येकमष्टशतं द्रष्टव्यं, अष्टशतं सिंहासनानामष्टशतं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छत्राणामष्टशतं चामराणामष्टशतं तैलसमुद्गकानामष्टशतं कोष्ठसमुद्गकानामष्टशतं चोअकसमुद्गकानामष्टशतं तगरसमुद्गकानामष्टशतमेलासमुद्गकानामष्टशतं हरितालसमुद्गकानामष्टशतं हिंगुलकसमुद्गकानामष्टशतं मनःशिलासमुद्गकानामष्टशतमञ्जनसमुद्गकानां, सर्वाण्यप्येतानि तैलादीनि परमसुरभिगन्धोपेतानि द्रष्टव्यानि, अष्टशतं ध्वजानां, अत्र सङ्ग्रहणीगाथे–'वंदणकलसा भिंगारगा य आयंसगा य थाला य। पाईओ सुपइट्ठा मणगुलिया वायकरगा य ॥ १ ॥ चित्ता रयणकरंडय हयगयनरकंठगा य चंगेरी। पडलगसीहासणछत्त चामरासमुगयझया य ॥ २ ॥' अष्टशतं धूपकडुच्छुकानां सन्निक्षिप्तं तिष्ठति। उक्ता सिद्धायतनकूटवक्तव्यता, अथ दक्षिणार्द्धभरतकूटस्वरूपं पृच्छन्नाह—

कहि णं भंते! वेअड्ढे पव्वए दाहिणड्ढभरहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते?, गो० खंडप्पवायकूडस्स पुरच्छिमेणं सिद्धाययणकूडस्स पच्चच्छिमेणं एत्थ णं वेअड्ढपव्वए दाहिणड्ढभरहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते, सिद्धाययणकूडप्पमाणसरिसे जाव तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे पासायवडिंसए पण्णत्ते, कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसियपहसिए जाव पासाईए ४, तस्स णं पासायवडंसगस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगा मणिपेढिआ पण्णत्ता, पंच धणुसयाइं आयामविक्खंभेणं अड्ढाइज्जाहिं धणुसयाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमई, तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं सिंहासणं पण्णत्तं, सपरिवारं भाणियव्वं, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–दाहिणड्ढभरहकूडे २?, गो०! दाहिणड्ढभरहे णामं देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से णं तत्थ चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१५-१८]

अणियाहिवईणं सोलसण्हं अयारक्खदेवसाहस्सीणं दाहिणड्ढभरहकूडस्स दाहिणड्ढाए रायहाणीए अण्णेसिं बहूणं देवाण य देवीण य जाव विहरइ ॥ कहि णं भंते ! दाहिणड्ढभरहकूडस्स देवस्स दाहिणड्ढा णामं रायहाणी पण्णत्ता ?, गो० ! मंदरस्स पव्वतस्स दक्खिणेणं तिरियमसंखेज्जदीवसमुद्दे वीईवइत्ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे दक्खिणेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिण-ड्ढभरहकूडस्स देवस्स दाहिणड्ढभरहा णामं रायहाणी भाणिअव्वा जहा विजयस्स देवस्स, एवं सव्वकूडा णेयव्वा जाव वेसमणकूडे परोप्परं पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं, इमेसिं वण्णावासे गाहा–'मज्झे वेअड्ढस्स उ कणयमया तिण्णि होंति कूडा उ । सेसा पव्वयकूडा सव्वे रयणामया होंति ॥ १ ॥ माणिभद्दकूडे १ वेअड्ढकूडे २ पुण्णभद्दकूडे ३ एए तिण्णि कूडा कणगामया सेसा छप्पि रयणमया, दोण्हं विसरिसणामया देवा कयमालए चेव णट्टमालए चेव, सेसाणं छण्हं सरिसणामया–जण्णामया य कूडा तन्नामा खलु हवंति ते देवा । पलिओवमट्ठिईया हवंति पत्तेअपत्तेयं ॥ १ ॥ रायहाणीओ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरिअं असंखेज्जदीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोअणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं रायहाणीओ भाणिअव्वाओ विजयरायहाणीसरिसयाओ (सूत्रं १४)

'कहि ण' मित्यादि, अत्र सर्वापि पदयोजना सुगमा, नवरं प्रासादावतंसकः क्रोशमूर्ध्वोच्चत्वेनार्द्धक्रोशं विष्कम्भेन, अत्र सूत्रेऽनुक्तमप्यर्द्धक्रोशमायामेनेति बोध्यं, 'सेसेसु अ पासाया कोसुच्चा अद्धकोसपिहुदीहा' इत्यादिश्रीसोमतिलक-सूरिकृतसिरिनिलयमितिक्षेत्रविचारवचनात्, श्रीउमास्वातिकृते जम्बूद्वीपसमासे तु प्रासादावतंसकः क्रोशार्द्धक्रोशदै-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१५-१८]

॥ ८३ ॥

ध्यविस्तारः किञ्चिदूनतदुच्छ्रयः उक्तोऽस्तीति, 'अब्भुग्गयमूसिअ' इत्यादि प्राग्वत्, अथ तत्र यदस्ति तदाह–'तस्स ण'-मित्यादि सुगमं, नवरं 'सपरिवारं'ति दक्षिणार्द्धभरतकूटाधिपसामानिकादिदेववोग्यभद्रासनसहितमिति, अथ प्रस्तुतकू-टनामान्वर्थं पृच्छति–'से केणट्ठेण'मित्यादि, सर्वं चैतत्सूत्रं विजयद्वारनामान्वर्थसूचकसूत्रवत्परिभावनीयं, नवरं दक्षि-णार्द्धाया इति पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् पाठान्तरानुसाराद्वा दक्षिणार्द्धभरताया राजधान्या इति, अत्र सूत्रेऽदृश्य-मानमपि 'से तेणट्ठेण'मित्यादि सूत्रं स्वयं ज्ञेयं, तथा च दक्षिणार्द्धभरतकूटनामा देवः स्वामित्वेनास्यास्तीत्यभ्रादित्वाद-प्रत्यये दक्षिणार्द्धभरतकूटमिति, अथास्य राजधानी क्वास्तीति पृच्छति–'कहिं ण'मित्यादि व्यक्तं, अथापरकूटवक्तव्यतां दक्षिणार्द्धभरतकूटातिदेशेनाह–'एवं सव्व' इत्यादि, एवं–दक्षिणार्द्धभरतकूटन्यायेन सर्वकूटानि तृतीयखण्डप्रपातगुहा-कूटादीनि नेतव्यानि–बुद्धिपथं प्रापणीयानि यावन्नवमं वैश्रमणकूटं, 'परोप्परं'ति परस्परं 'पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं'ति पूर्वापरेण, अयमर्थः–पूर्वं पूर्वं पूर्वस्यां उत्तरमुत्तरमपरस्यां, पूर्वापरविभागस्यापेक्षिकत्वात्, 'इमेसिं' इत्यादि, एषां कूटा-नां वर्णकव्यासे–वर्णकविस्तारे इमा–वक्ष्यमाणा गाथा, 'इमा से' इति पाठे तु से इति वचनस्य व्यत्ययात् तेषां कूटानां वर्णावासे इमा गाथेति योजनीयं, 'मज्झे वेअड्ढस्स उ' इत्यादि, तुशब्दो विशेषे स च व्यवहितसम्बन्धः, तेन वैताढ्यस्य मध्ये तु चतुर्थपञ्चमषष्ठरूपाणि त्रीणि कूटानि कनकमयानि भवन्ति, सूत्रे स्त्रीलिङ्गनिर्देशः प्राकृतत्वात्, शेषाणि पर्वत-कूटानि वैताढ्यवर्षधरमेरुप्रभृतिगिरिकूटानि 'व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति'रिति हरिस्सहहरिकूटबलकूटवर्जितानि रत्नमया-

॥ ८३ ॥

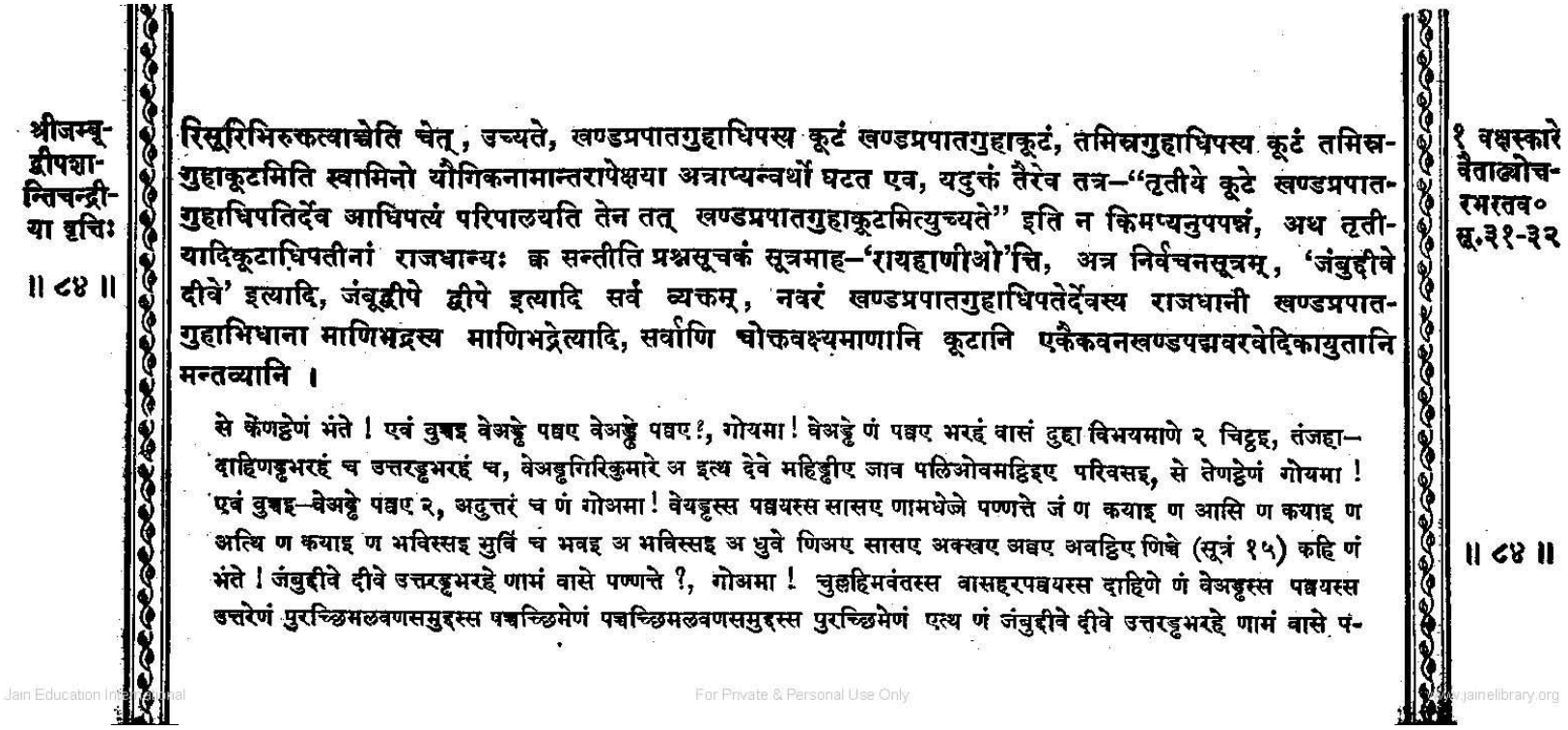
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नि ज्ञातव्यानि, यत्त्वत्र वैताढ्यप्रकरणे सर्वपर्वतगतकूटज्ञापनं तत्सर्वेषामेकवर्णकत्वेन लाघवार्थं, तथा वैताढ्यस्येत्यत्र जात्यपेक्षयैकवचनं तेन सर्वेषामपि वैताढ्यानां भरतैरावतमहाविदेहविजयगतानां नवसु कूटेषु सर्वमध्यमानि त्रीणि त्रीणि कूटानि कनकमयानि ज्ञातव्यानि, एतदेव वैताढ्ये व्यक्त्या दर्शयति–'माणिभद्द' इत्यादि, द्वयोः कूटयोर्विसदृशनामकौ देवौ स्वामिनौ, तद्यथा–कृतमालकश्चैव नृत्तमालकश्चैव, तमिस्रगुहाकूटस्य कृतमालः स्वामी खण्डप्रपातगुहाकूटस्य नृत्तमालः स्वामी, शेषाणां षण्णां कूटानांसदृक्–कूटनामसदृशं नाम येषां ते सदृग्नामका देवाः स्वामिनः, यथा दक्षिणार्धभरतकूटस्य दक्षिणार्द्धभरतकूटनामा देवः स्वामी, एवमन्येषामपि भावना कार्या, एनमेवार्थं सविशेषं गाथयाऽऽह–यन्नामकानि कूटानि तन्नामानः खलुनिश्चये भवन्ति देवाः पल्योपमस्थितिका भवन्ति, प्रत्येकं २ प्रतिकूटमित्यर्थः, एतेनाष्टानां कूटानां स्वामिन उक्ताः, सिद्धायतनकूटे तु सिद्धायतनस्यैव मुख्यत्वेन तत्स्वामिदेवानभिधानमिति, ननु दक्षिणार्द्धभरतकूटानां स्वसदृशनामकदेवाश्रयभूतत्वात् नामान्वर्थः सङ्गच्छते, यथा दक्षिणार्द्धभरतनामदेवस्वामिकत्वादुपचारेण दक्षिणार्द्धभरतनामा देवः स्वामित्वेनास्यास्तीति अभ्रादित्वादप्रत्यये वा दक्षिणार्द्धभरतं, एवमन्येष्वपि, परं खण्डप्रपातगुहाकूटतमिस्रगुहाकूटयोः स कथं ?, तत्स्वामिनोर्नृत्तमालकृतमालयोर्विसदृशनामकत्वात्, न च खण्डप्रपातगुहाया उपरिवर्त्ति कूटं खण्डप्रपातगुहाकूटमित्यादिरेवान्वर्थोऽस्त्विति वाच्यं, अत्र सूत्रे दक्षिणार्द्धभरतकूटवत् शेषकूटानामतिदेशात् बृहत्क्षेत्रसमासवृत्तौ "एवं शेषकूटान्यपि स्वस्वाधिपतियोगतः प्रवृत्तान्यवसेयानी"ति श्रीमलयगि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१५-१८]



श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ ८४ ॥

रिसूरिभिरुक्तत्वाच्चेति चेत्, उच्यते, खण्डप्रपातगुहाधिपस्य कूटं खण्डप्रपातगुहाकूटं, तमिस्रगुहाधिपस्य कूटं तमिस्र-गुहाकूटमिति स्वामिनो यौगिकनामान्तरापेक्षया अत्राप्यन्वर्थो घटत एव, यदुक्तं तैरेव तत्र–"तृतीये कूटे खण्डप्रपात-गुहाधिपतिर्देव आधिपत्यं परिपालयति तेन तत् खण्डप्रपातगुहाकूटमित्युच्यते" इति न किमप्यनुपपन्नं, अथ तृती-यादिकूटाधिपतीनां राजधान्यः क्व सन्तीति प्रश्नसूचकं सूत्रमाह–'रायहाणीओ'त्ति, अत्र निर्वचनसूत्रम्, 'जंबुद्दीवे दीवे' इत्यादि, जंबूद्वीपे द्वीपे इत्यादि सर्वं व्यक्तम्, नवरं खण्डप्रपातगुहाधिपतेर्देवस्य राजधानी खण्डप्रपात-गुहाभिधाना माणिभद्रस्य माणिभद्रेत्यादि, सर्वाणि चोक्तवक्ष्यमाणानि कूटानि एकैकवनखण्डपद्मवरवेदिकायुतानि मन्तव्यानि ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ वेअड्ढे पव्वए वेअड्ढे पव्वए ?, गोयमा ! वेअड्ढे णं पव्वए भरहं वासं दुहा विभयमाणे २ चिट्ठइ, तंजहा–दाहिणड्ढभरहं च उत्तरड्ढभरहं च, वेअड्ढगिरिकुमारे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–वेअड्ढे पव्वए २, अदुत्तरं च णं गोअमा ! वेयड्ढस्स पव्वयस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते जं ण कयाइ ण आसि ण कयाइ ण अत्थि ण कयाइ ण भविस्सइ भुविं च भवइ अ भविस्सइ अ धुवे णिअए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे (सूत्रं १५) कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे णामं वासे पण्णत्ते ?, गोअमा ! चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणे णं वेअड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरेणं पुरच्छिमलवणसमुद्दस्स पच्चच्छिमेणं पच्चच्छिमलवणसमुद्दस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे णामं वासे प-

१ वक्षस्कारे वैताढ्योच्च-रभरतव० सू.३१-३२

॥ ८४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ उत्तरार्धभरतस्य स्वरुपम् वर्ण्यते

ण्णत्ते पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे पलिअंकसंठिए दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे पुरच्छिमिल्लाए कोडीए पुरच्छिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे पच्चच्छिमिल्लाए जाव पुट्ठे गंगासिंधूहिं महाणईहिं तिभागपविभत्ते दोण्णि अट्ठतीसे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभागे जोअणस्स विक्खंभेणं, तस्स बाहा पुरच्छिमपच्चच्छिमेणं अट्ठारस बाणउए जोअणसए सत्त य एगूणवीसइभागे जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं तस्स जीवा उत्तरेणं पाइणपडीणायया दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा तहेव जाव चोद्दस जोअणसहस्साइं चत्तारि अ एक्कहत्तरे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स किंचिविसेसूणे आयामेणं पण्णत्ता, तीसे धणुपट्ठे दाहिणेणं चोद्दस जोअणसहस्साइं पंच अट्ठावीसे जोअणसए एक्कारस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं । उत्तरड्ढभरहस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारपडोयारे पण्णत्ते ?, गोअमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा णामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव, उत्तरड्ढभरहे णं भंते ! वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?, गोअमा ! ते णं मणुआ बहुसंघयणा जाव अप्पेगइआ सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेंति (सूत्रं १६)

अथ वैताढ्यनाम्नो निरुक्तं पृच्छति–'से केणट्ठेण'मित्यादि, अत्र प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, उत्तरसूत्रे तु वैताढ्यः पर्वतः, णमिति प्राग्वत्, भारतं वर्षं–भरतक्षेत्रं द्विधा विभजन् २ तिष्ठति, तद्यथा–दक्षिणार्द्धभरतं च उत्तरार्द्धभरतं च, तेन भरतक्षेत्रस्य द्वे अर्द्धे करोतीति वैताढ्यः पृषोदरादित्वाद्रूपसिद्धिः, अथ प्रकारान्तरेण नामान्वर्थमाह–अथ च वैताढ्यगिरिकुमारोऽत्र देवो महर्द्धिको यावत्करणात् 'महज्जुई' इत्यादिपदसङ्ग्रहः पल्योपमस्थितिकः परिवसति, तेन वैताढ्य इति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाभाग्वर्थो विजयद्वारवद् ज्ञेयः, सदृशनामकस्वामिकत्वात् , 'अदुत्तरं च ण'मित्यादि प्राग्वत् । अथोत्तरार्द्धभरतवर्ष कास्तीति प्रश्नसूत्रमाह–'कहि ण'मित्यादि, दक्षिणार्द्धभरतसमगमकत्वेन व्यक्तं, नवरं 'पलिअंक'त्ति पर्यङ्कवत् संस्थितं–संस्थानं यस्य तत्तथा, द्वे शते अष्टत्रिंशदधिके त्रींश्चैकोनविंशतिभागान् योजनस्य विष्कम्भेनेति, अस्य शरस्तु प्राच्य-शरसहितस्वक्षेत्रविस्तारो योजनतः ५२६–६, कलास्तु १०००० । अथास्य बाहे आह–'तस्स बाहा' इत्यादि, तस्योत्त-रार्द्धभरतस्य बाहा–पूर्वोक्तस्वरूपा पूर्वापरयोर्दिशोरेकैका अष्टादश योजनशतानि द्विनवतियोजनाधिकानि सप्त चैकोन-विंशतिभागान् योजनस्य अर्द्धभागं चैकोनविंशतितमभागस्य, योजनस्याष्टत्रिंशत्तमभागमित्यर्थः, अत्र करणं यथा–गुरु धनुःपृष्ठं कलारूपं २७६०४२ अस्मात् २०४१३१ कलारूपं लघु धनुःपृष्ठं शोध्यते, जातं ७१९११, अर्द्धे कृते जातं कला ३५९५५ कलार्द्धं च, तासां योजनानि १८९२ कलाः ७ कलार्द्धं चेति, एतच्चैकैकस्मिन् पार्श्वे बाहाया आयाममानं । अथास्य जीवामाह—'तस्स जीवा उत्तरे ण'मित्यादि, तस्य जीवा–प्रागुक्तस्वरूपा उत्तरेण–क्षुद्रहिमवद्गिरिदिशि प्राची-नप्रतीचीनायता द्विधा लवणसमुद्रं स्पृष्टा तथैव–दक्षिणार्द्धभरतजीवासूत्रवदेव 'जाव'त्ति 'पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे'ति पर्यन्तं सूत्रं ज्ञेयमिति भावः, 'चउद्दस'त्ति चतुर्दश योजनसहस्राणि चत्वारि चैकसप्तत्यधिकानि योजनशतानि षट् चैकोनविंशतिभागान् योजनस्य किञ्चिद्विशेषोनान् आयामेन प्रज्ञप्ता, अत्र करणं यथा–कलीकृतो जम्बूद्वीपव्यासः १९ शून्य ५, इषूनितः १८९ शून्य ४, इषुगुणः १८९ शून्यः८, चतुर्गुणः ७५६ शून्य ८, एष उत्तरभरतार्द्धजीवावर्गः, अस्य

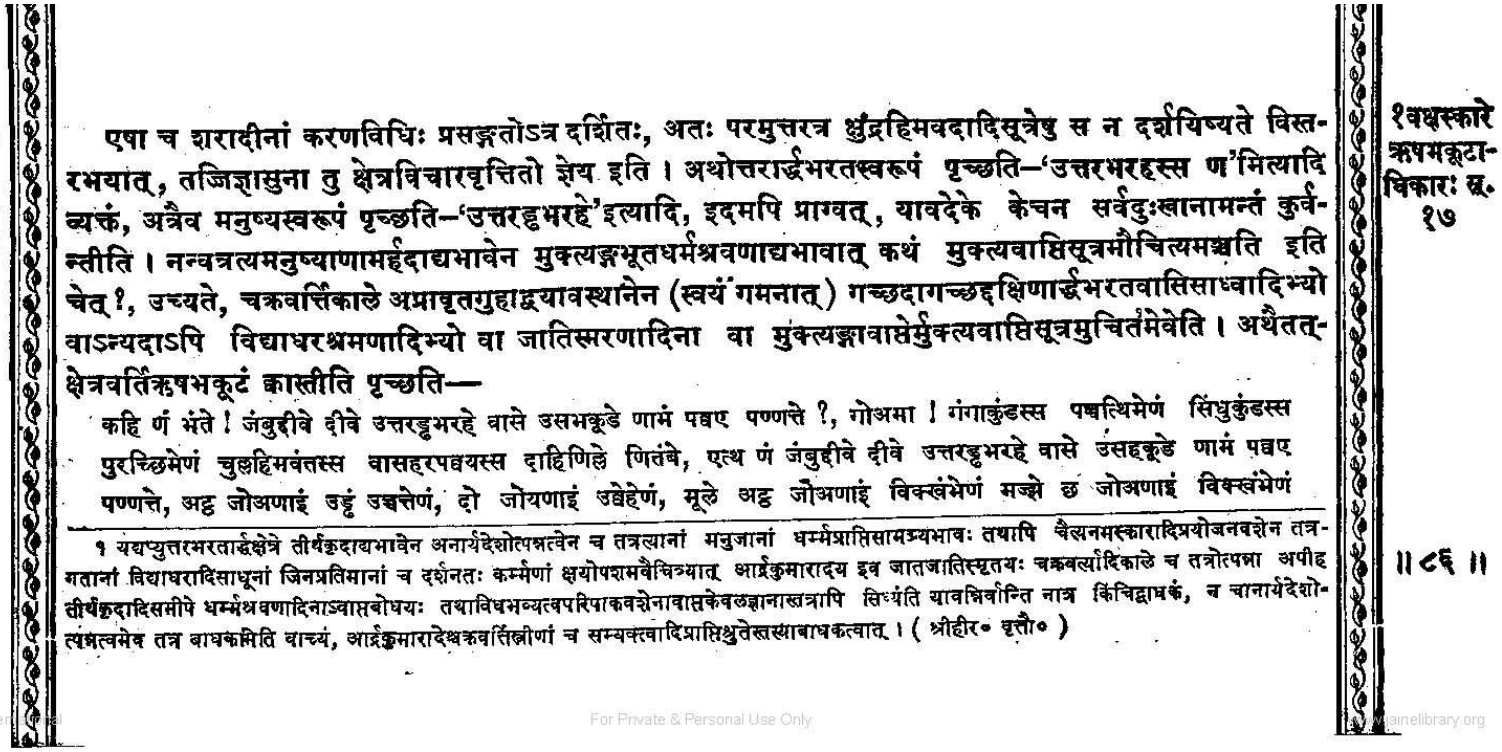
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनुर्मूल लब्धाः कलाः २७४९५४, शेष कलाशाः २९७८८४ छेदः ५४९९०८ लब्धकलानां १९ भागे योजन १४४७१ $\frac{५}{१९}$ उद्धरितैः शेषकलांशैर्मध्ये प्रक्षिप्तैः षष्ठी कला किञ्चिद्विशेषोना विवक्षितेति। अथास्य धनुःपृष्ठमाह–'तीसे' इत्यादि, तस्या–उत्तरार्द्धभरतजीवाया दक्षिणपार्श्वे धनुःपृष्ठं अर्थादुत्तरार्द्धभरतस्य चतुर्दश योजनसहस्राणि पञ्च शतान्यष्टाविंशत्यधिकानि एकादश चैकोनविंशतिभागान् योजनस्य परिक्षेपेण–परिधिना प्रज्ञप्तमिति शेषः, अत्र करणं यथा–उत्तरार्द्धभरतस्य कलीकृत इषुः १०००, अस्य वर्गः १ शून्य ८, स च षड्गुणः ६ शून्य ८, सोऽप्युत्तरार्द्धभरतजीवावर्गेण ७५६०००००००० इत्येवंरूपेण मिश्रितो जातः ७६२ शून्य ८, एष उत्तरार्द्धभरतस्य जीवावर्गः, अस्य मूले लब्धाः कलाः २७६०४३, शेषं कलांशाः २६२१५१, छेदराशिः ५५२०२६, कलानामेकोनविंशत्या भागे १४५२८ $\frac{१}{१९}$, अत्र शेषांशानामविवक्षितत्वान्नैकादशकलानां साधिकत्वसूचा, अत्र दक्षिणार्द्धभरतादिक्षेत्रसम्बन्धिशरादिचतुष्कस्य सुखेन परिज्ञानाय यन्त्रकस्थापना यथा—

क्षेत्र०	शर०	बाहा०	जीवा०	धनुःपृष्ठं
दक्षिणभरतार्द्धं	२३८ योजनभागः $\frac{३}{१९}$	०	९७३८ योज० $\frac{१२}{१९}$	९७६६ योजनभागः $\frac{१}{१९}$
वैताढ्यपर्वतः	२८८ योजनभागः $\frac{३}{१९}$	४८८ योज० $\frac{१६}{१९}$ $\frac{१}{३८}$	१०७२० योज० $\frac{१२}{१९}$	१०७४३ योजनभागः $\frac{९५}{१९}$
उत्तरभरतार्द्धं	५२६ योजनभागः $\frac{१}{१९}$	१८९२ योज० $\frac{७}{१९}$ $\frac{१}{२}$	१४४७१ योज० $\frac{५}{१९}$	१५५२८ योजनभागः $\frac{११}{१९}$

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५-१६] दीप अनुक्रम [१९-२०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः



श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥ ८६ ॥

१वक्षस्कारे ऋषभकूटाधिकारः सू. १७

एषा च शरादीनां करणविधिः प्रसङ्गतोऽत्र दर्शितः, अतः परमुत्तरत्र क्षुद्रहिमवदादिसूत्रेषु स न दर्शयिष्यते विस्तरभयात्, तज्जिज्ञासुना तु क्षेत्रविचारवृत्तितो ज्ञेय इति । अथोत्तरार्द्धभरतस्वरूपं पृच्छति–'उत्तरभरहस्स ण'मित्यादि व्यक्तं, अत्रैव मनुष्यस्वरूपं पृच्छति–'उत्तरड्ढभरहे'इत्यादि, इदमपि प्राग्वत्, यावदेके केचन सर्वदुःखानामन्तं कुर्वन्तीति । नन्वत्रत्यमनुष्याणामर्हदाद्यभावेन मुक्त्यङ्गभूतधर्मश्रवणाद्यभावात् कथं मुक्त्यवाप्तिसूत्रमौचित्यमञ्चति इति चेत्?, उच्यते, चक्रवर्त्तिकाले अप्रावृतगुहाद्वयावस्थानेन (स्वयं गमनात्) गच्छदागच्छद्दक्षिणार्द्धभरतवासिसाध्वादिभ्यो वाऽन्यदाऽपि विद्याधरश्रमणादिभ्यो वा जातिस्मरणादिना वा मुक्त्यङ्गावाप्तेर्मुक्त्यवाप्तिसूत्रमुचितमेवेति । अथैतत्क्षेत्रवर्तिऋषभकूटं क्वास्तीति पृच्छति—

कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे वासे उसभकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! गंगाकुंडस्स पच्चत्थिमेणं सिंधुकुंडस्स पुरच्छिमेणं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे वासे उसहकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते, अट्ठ जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दो जोयणाइं उव्वेहेणं, मूले अट्ठ जोअणाइं विक्खंभेणं मज्झे छ जोअणाइं विक्खंभेणं

१ यद्यप्युत्तरभरतार्द्धक्षेत्रे तीर्थकृदाद्यभावेन अनार्यदेशोत्पन्नत्वेन च तत्रत्यानां मनुजानां धर्म्मप्राप्तिसामग्र्यभावः तथापि वैताढ्यनमस्कारादिप्रयोजनवशेन तत्रगतानां विद्याधरादिसाधूनां जिनप्रतिमानां च दर्शनतः कर्म्मणां क्षयोपशमवैचित्र्यात् आर्द्रकुमारादय इव जातजातिस्मृतयः चक्रवर्त्यादिकाले च तत्रोत्पन्ना अपीह तीर्थकृदादिसमीपे धर्म्मश्रवणादिनाऽवाप्तबोधयः तथाविधभव्यत्वपरिपाकवशेनावाप्तकेवलज्ञानास्तत्रापि सिध्यंति यावन्निर्वान्ति नात्र किंचिद्बाधकं, न चानार्यदेशोत्पन्नत्वमेव तत्र बाधकमिति वाच्यं, आर्द्रकुमारादेश्चक्रवर्त्तिस्त्रीणां च सम्यक्त्वादिप्राप्तिश्रुतेस्तस्याबाधकत्वात् । (श्रीहीर० वृत्तौ०)

॥ ८६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ उत्तरार्धभरते स्थित रुषभकूटस्य स्वरुपम् ---

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [२१]

उवरिं चत्तारि जोअणाइं विक्खंभेणं, मूले साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं मज्झे साइरेगाइं अट्ठारस जोअणाइं परिक्खेवेणं उवरिं साइरेगाइं दुवालस जोअणाइं परिक्खेवेणं, पाठान्तरं–मूले बारस जोअणाइं विक्खंभेणं मज्झे अट्ठ जोअणाइं विक्खंभेणं उप्पिं चत्तारि जोअणाइं विक्खंभेणं मूले साइरेगाइं सत्ततीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं मज्झे साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं उप्पिं साइरेगाइं बारस जोअणाइं परिक्खेवेणं, मूले विच्छिण्णे मज्झे संक्खित्ते उप्पिं तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वजंबूणयामए अच्छे सण्हे जाव पडिरूवे, से णं एगाए पउमवरवेइआए तहेव जाव भवणं कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं देसऊणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, अट्ठो तहेव, उप्पलाणि पउमाणि जाव उसभे अ एत्थ देवे महिड्ढीए जाव दाहिणेणं रायहाणी तहेव मंदरस्स पव्वयस्स जहा विजयस्स अविसेसियं (सूत्रं १७)

'कहिं ण'मित्यादि, क्व भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरार्द्धभरते वर्षे ऋषभकूटो नाम्ना पर्वतः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह–गौतम! गङ्गाकुण्डस्य यत्र हिमवतो गङ्गा निपतति तद्गङ्गाकुण्डं तस्य पश्चिमायां, यत्र तु सिन्धुर्निपतति तत् सिन्धुकुण्डं तस्य पूर्वस्यां, क्षुल्लहिमवतो वर्षधरस्य दाक्षिणात्यनितम्बे, सामीपकसप्तम्या नितम्बासन्ने इत्यर्थः, अत्र प्रदेशे जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरार्द्धभरते वर्षे ऋषभकूटो नाम्ना पर्वतः प्रज्ञप्तः, अष्टयोजनान्यूर्द्धोच्चत्वेन द्वे योजने उद्वेधेन–भूमिप्रवेशेन, उच्चत्वचतुर्थांशस्य भूम्यवगाढत्वात्, अष्टानां चतुर्थांशे द्वयोरेव लाभात्, मूलमध्यान्तेषु क्रमादष्ट षट् चत्वारि योजनानि विष्कम्भेन–विस्तरेण उपलक्षणत्वादायामेनापि, समवृत्तस्यायामविष्कम्भयोस्तुल्यत्वादिति, तथा मूलमध्यान्तेषु पंचविंशतिरष्टादश द्वादश च योजनानि सातिरेकाणि परिक्षेपेण–परिधिना, अथास्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठान्तरं–वाचनाभेदस्तद्गतपरिमाणान्तरमाह–मूले द्वादश योजनानि विष्कम्भेन मध्येऽष्ट योजनानि विष्कम्भेन उपरि चत्वारि योजनानि विष्कम्भेन, अत्रापि विष्कम्भायामतः साधिकत्रिगुणं मूलमध्यान्तपरिधिमानं सूत्रोक्तं सुबोधं । अत्राह परः–एकस्य वस्तुनो विष्कम्भादिपरिमाणे द्वैरूप्यासम्भवेन प्रस्तुतग्रन्थस्य च सातिशयस्थविरप्रणीतत्वेन कथं नान्यतरनिर्णयः ?, यदेकस्यापि ऋषभकूटपर्वतस्य मूलादावष्टादियोजनविस्तृतत्वादि पुनस्तत्रैवास्य द्वादशादियोजनविस्तृतत्वादीति, सत्यं, जिनभट्टारकाणां सर्वेषां क्षायिकज्ञानवतामेकमेव मतं मूलतः, पश्चात्तु कालान्तरेण विस्मृत्यादिनाऽयं वाचनाभेदः, यदुक्तं श्रीमलयगिरिसूरिभिर्ज्योतिष्करण्डकवृत्तौ–"इह स्कन्दिलाचार्यप्रवृ(तिप)त्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्त्या साधूनां पठनगुणनादिकं सर्वमप्यनेशत्, ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः संघमेलापकोऽभवत्, तद्यथा–एको वलभ्यामेको मथुरायां, तत्र च सूत्रार्थसंघटने परस्परं वाचनाभेदो जातः, विस्मृतयोर्हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा २ संघटने भवत्यवश्यं वाचनाभेद" इत्यादि, ततोऽत्रापि दुष्करोऽन्यतरनिर्णयः द्वयोः पक्षयोरुपस्थितयोरनतिशायिज्ञानिभिरनभिनिविष्टमतिभिः प्रवचनाशातनाभीरुभिः पुण्यपुरुषैरिति न काचिदनुपपत्तिः, किञ्च–सैद्धान्तिकशिरोमणिपूज्यश्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणप्रणीतक्षेत्रसमाससूत्रे उत्तरमतमेव दर्शितं, यथा–'सव्वेवि उसहकूडा उविद्धा अट्ठजोयणे हुंति । बारस अट्ठ य चउरो मूले मज्झुवरि विच्छिण्णा ॥ १ ॥" 'मूले विच्छिण्ण' इत्यादि शेषवर्णकः प्राग्वत् । अथास्य पद्मवरवेदिकाद्याह–'से णं एगाए' इत्यादि, स ऋषभकूटाद्रिरेकया पद्मवर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदिकया तथैवेति–यथा सिद्धायतनकूटवर्णकः प्रागुक्तस्तथाऽत्रापि वक्तव्य इत्यर्थः, कियत्पर्यन्त इत्याह–यावद्भवनं–ऋषभाख्यदेवस्थानं, स चायं 'एगेण य वणसंडेण सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, उसहकूडस्स णं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा णामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव वाणमंतरा जाव विहरंति, तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे महं एगे भवणे पण्णत्ते'इति, अत्र व्याख्या पूर्ववत्, भवनमानं साक्षादेव सूत्रे दर्शयति–क्रोशमायामेनार्द्धक्रोशं विष्कम्भेन देशोनं क्रोशं चत्वारिंशदधिकचतुर्दशधनुःशतरूपमूर्द्धोच्चत्वेन, यद्यपि भवनमायामापेक्षया किञ्चिन्न्यूनोच्छ्रायमानं भवति प्रासादस्तु आयामद्विगुणोच्छ्राय इति श्रीज्ञाताधर्मकथाङ्गवृत्त्यादौ भवनप्रासादयोर्विशेषो दृश्यते तथाप्यत्र तयोरेकार्थकत्वं ज्ञेयं, श्रीमलयगिरिसूरिभिः क्षेत्रसमासवृत्तौ "एतेषां ऋषभकूटानामुपरि प्रत्येकमेकैकः प्रासादावतंसकः, ते च प्रासादाः प्रत्येकमेकं क्रोशमायामतोऽर्द्धक्रोशं विष्कम्भतो देशोनं क्रोशमुच्चत्वेने" त्यत्रोक्तभवनतुल्यप्रमाणतया ऋषभकूटेषु प्रासादानामभिधानादिति, अर्थो नामान्वर्थ ऋषभकूटस्य तथैवेति यथा जीवाभिगमादौ यमकादीनां पर्वतानामुक्तस्तथात्रापि औचित्येन वक्तव्यः, तदभिलापसूत्रं तु 'उप्पलाणी'त्यादिना सूचितं तदनुसारेणेदं 'से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–उसहकूडपव्वए २ ?, गोअमा ! उसहकूडपव्वए खुड्डासु खुड्डियासु वावीसु पुक्खरिणीसु जाव बिलपंतीसु बहूइं उप्पलाइं पउमाइं जाव सहस्सपत्ताइं उसहकूडप्पभाइं उसहकूडवण्णाभाइं' इति, अत्र व्याख्या–प्रश्नसूत्रं सुगमं, उत्तरसूत्रे ऋषभकूटपर्वते क्षुल्लासु क्षुल्लिकासु वापीषु पुष्करिणीषु यावद्बिलपङ्क्तिषु बहून्युत्पलानि पद्मानि

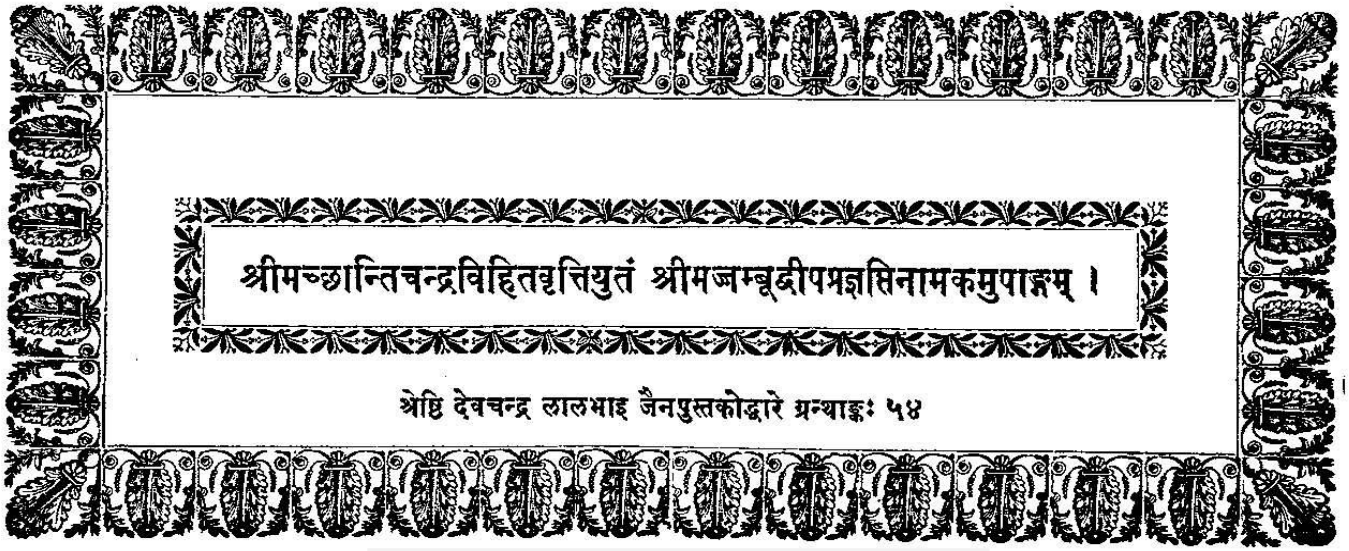
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यावत् सहस्रपत्राणि ऋषभकूटप्रभाणि–ऋषभकूटाकाराणि ऋषभकूटवर्णानि तथा ऋषभकूटवर्णस्येव आभा–प्रतिभासो येषां तानि ऋषभकूटवर्णाभानि ततस्तानि तदाकारत्वात् तद्वर्णत्वात् तद्वर्णसादृश्याच्च ऋषभकूटानीति प्रसिद्धानि, तद्योगादेष पर्वतोऽपि ऋषभकूटः, उभयेषामपि नाम्नामनादिकालप्रवृत्तोऽयं व्यवहार इति नेतरेतराश्रयदोषप्रसङ्गः, एवमन्यत्रापि परिभावनीयं, प्रकारान्तरेणापि नामनिमित्तमाह–'उसभे अ'इत्यादि, ऋषभश्चात्र देवो महर्द्धिकः, अत्र यावत्करणात् 'महज्जुईए जाव उसहकूडस्स उसहाए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, से एएणट्ठेणं एवं वुच्चइ उसहकूडपव्वए २' इति पर्यन्तः सूत्रपाठो ज्ञेयः, अत्र व्याख्या प्राग्वत् । 'दाहिणे णं' इत्यादि, राजधानी ऋषभदेवस्य ऋषभा नाम्नी मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणतस्तथैव वाच्या यथा विजयदेवस्य प्रागुक्ता, अविशेषितं–विशेषरहितं, क्रियाविशेषणमेतत्, अस्या विजयायाः राजधान्याश्च नामतोऽन्तरं न त्वस्मिन् वर्णके इति भावः ॥ इति सातिशयधर्मदेशनारससमुल्लासविस्मयमानऐदंयुगीननराधिपतिचक्रवर्त्तिसमानश्रीअकब्बरसुरत्राणप्रदत्तषाण्मासिकसर्वजन्तुजाताभयदानशत्रुञ्जयादिकरमोचनस्फुरन्मानप्रदानप्रभृतिबहुमानसाम्प्रतविजयमानश्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीहीरविजयसूरीश्वरपदपद्मोपासनाप्रवणमहोपाध्यायश्रीसकलचन्द्रगणिशिष्योपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रगणिविरचितायां जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तौ प्रमेयरत्नमञ्जूषानाम्न्यां भरतक्षेत्रस्वरूपनिरूपको नाम प्रथमो वक्षस्कारः ॥ १ ॥ ग्रंथाग्रं ३१६८।२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथम-वक्षस्कार: परिसमाप्त:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:



इयं मूल संपादने मुद्रितं अन्तिम-पृष्ठं वर्तते

Jain Education International www.jainelibrary.org

भाग 23	जंबूद्वीप-उवंगसूत्र [७/१] मूलं एवं मलयगिरिसूरिजी रचिता टीका मूल संशोधकः सम्पादकश्च पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब किंचित् वैशिष्ट्य समर्पितेन सह पुन: संकलनकर्ता मुनि दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत सूत्रांक [१८] + गाथा: दीप अनुक्रम [२२-२६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

अथ द्वितीयो वक्षस्कारः

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे कतिविहे काले पण्णत्ते ?, गो० ! दुविहे काले पण्णत्ते, तंजहा–ओसप्पिणिकाले अ उस्सप्पिणिकाले अ, ओसप्पिणिकाले णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?, गो० !, छविहे पण्णत्ते, तं०–सुसमसुसमकाले १ सुसमाकाले २ सुसमदुस्समकाले ३ दुस्समसुसमाकाले ४ दुस्समाकाले ५ दुस्समदुस्समाकाले ६, उस्सप्पिणिकाले णं भंते ! कतिविहे पं० ?, गो० ! छविहे पण्णत्ते, तं०–दुस्समदुस्समाकाले १ जाव सुसमसुसमाकाले ६ । एगमेगस्स णं भंते ! मुहुत्तस्स केवइया उस्सासद्धा विआहिआ ?, गोअमा ! असंखिज्जाणं समयाणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा आवलिअत्ति वुच्चइ संखिज्जाओ आवलिआओ ऊसासो संखिज्जाओ आवलिआओ नीसासो 'हट्ठस्स अणवगल्लस्स, णिरुवकिट्ठस्स जंतुणो । एगे ऊसासनीसासे, एस पाणुत्ति वुच्चई ॥१॥ सत्त पाणूइं से थोवे, सत्त थोवाइं से लवे । लवाणं सत्तहत्तरीए, एस मुहुत्तेत्ति आहिए ॥२॥ तिण्णि सहस्सा, सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च ऊसासा । एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥ ३ ॥ एएणं मुहुत्तप्पमाणेणं तीसं मुहुत्ता अहोरत्तो पण्णरस अहोरत्ता पक्खो दो पक्खा मासो दो मासा उऊ तिण्णि उऊ अयणे दो अयणा संवच्छरे पंचसंवच्छरिए जुगे वीसं जुगाइं वाससए दस वाससयाइं वाससहस्से सयं वाससहस्साणं वाससयसहस्से चउरासीइं वाससयसहस्साइं से एगे पुव्वंगे चउरासीई पुव्वंगसयसहस्साइं से एगे पुव्वे एवं बिगुणं बिगुणं णेअव्वं तुडिए २ अडडे २ अववे २ हूहूए २ उप्पले २ पउमे २ णलिणे २ अत्थणिउरे २ अउए २ नउए २ पउए २ चूलिया २ सीसपहेलिए २ जाव चउरासीइं सीसपहेलिअंगसयसहस्साइं सा एगा सीसपहेलिया एताव ताव गणिए एताव ताव गणिअस्स विसए तेण परं ओवमिए । (सूत्रं १८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ द्वितिय-वक्षस्कारः आरभ्यते

***अत्र 'काल' स्वरुपम् वर्णनं क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१८] + गाथा: दीप अनुक्रम [२२-२६]

॥ ८९ ॥

अथ क्षेत्राण्यवस्थितानवस्थितकालभेदेन द्विधा जानन्नप्यत्र साक्षादवसर्पतः शुभान् भावान् वीक्ष्य पारिशेष्यात् संभाव्यमानमनवस्थितकालं हृदि निधाय पृच्छति–'जंबुद्दीवे णं भंते !' इत्यादि, जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतवर्षे भगवन् ! कतिविधः कालः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह–गौतम ! द्विविधः कालः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–अवसर्पति हीयमानारकतयाऽवसर्पयति वा–क्रमेणायुःशरीरादिभावान् हापयतीत्यवसर्पिणी स चासौ कालश्च २, प्रज्ञापकापेक्षया चास्या आदावुपन्यासः, क्षेत्रेषु भरतस्येव, उत्सर्पति–वर्द्धते आरकापेक्षया वर्द्धयति (वा) क्रमेणायुरादीन् भावानित्युत्सर्पिणी स चासौ कालश्च २, चकारद्वयं द्वयोरपि समानारकतासमानपरिमाणतादिज्ञापनार्थं, तदेव प्रश्नयति–'अवसर्पिणीकालः कतिविधः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा सुष्ठु–शोभनाः समाः–वर्षाणि यस्यां सा सुषमा 'निर्दुःसुवेः समसूते' (श्रीसि० १२–३–५६) इति षत्वं सुषमा चासौ सुषमा च सुषमसुषमा–द्वयोः समानार्थयोः प्रकृष्टार्थवाचकत्वादत्यन्तसुषमा, एकान्तसुखरूपोऽस्या एव प्रथमारक इत्यर्थः, स चासौ कालश्चेति, द्वितीयः सुषमाकालः, तृतीयः सुषमदुष्षमा, दुष्टाः समा अस्यामिति दुष्षमा, सुषमा चासौ दुष्षमा च सुषमदुष्षमा सुषमानुभावबहुलाऽल्पदुष्षमानुभावेत्यर्थः, चतुर्थो दुष्षमसुषमादुष्षमा चासौ सुषमा च दुष्षमसुषमा, दुष्षमानुभावबहुलाऽल्पसुषमानुभावेत्यर्थः, पञ्चमो दुष्षमा षष्ठो दुष्षमदुष्षमाकालः निरुक्तं तु सुषमसुषमावत् , एवमुत्सर्पिणीसूत्रमपि भाव्यं, परं षडपि काला व्यत्ययेन भाव्याः, यश्चावसर्पिण्यां षष्ठः कालो दुष्षमदुष्षमाख्यः स एवात्र प्रथमो यावत् सुषमसुषमाकालः षष्ठ इति । अथ द्विविधस्यापि कालस्य परिमाणं

॥ ८९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

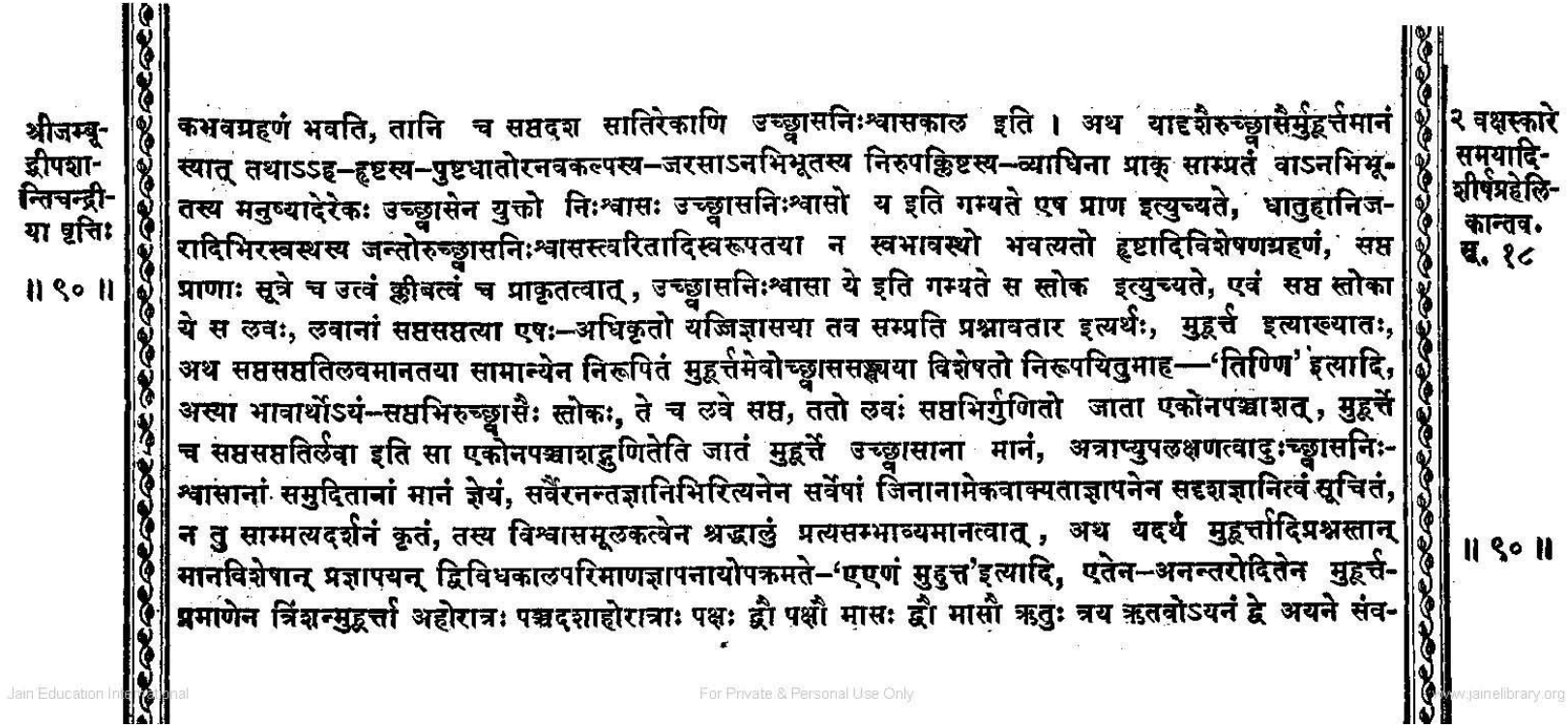
प्रत सूत्रांक [१८] + गाथा: दीप अनुक्रम [२२-२६]

जिज्ञासुस्तन्मूलभूतकालविशेषप्रश्नायोपक्रमते–'एगमेगे'इत्यादि, एकैकस्य मुहूर्त्तस्य भगवन् ! कियत्य उच्छ्वासाद्धा–उच्छ्वासप्रमितकालविशेषा व्याख्याताः, एकस्मिन् मुहूर्त्ते कियन्त उच्छ्वासा भवन्ति, उच्छ्वासशब्देनात्रोपलक्षणत्वादुच्छ्वासनिःश्वासाः समुदिता गृह्यन्ते, अत्रोत्तरम्–असङ्ख्येयानां समयप्रसिद्धपटशाटिकापाटनदृष्टान्तप्रज्ञापनीयस्वरूपाणां परमनिकृष्टकालविशेषाणां समयानां समुदया–वृन्दानि तेषां याः समितयो–मीलनानि तासां समागमः–संयोग एकीभवनं तेन यत्कालमानं भवतीति गम्यते सा एका जघन्ययुक्तासङ्ख्यातकसमयप्रमाणा आवलिका इति संज्ञया प्रोच्यते जिनैरिति शेषः, यद्यप्यसांव्यवहारिकत्वेन समयावलिके उपेक्ष्य प्रश्नसूत्रे मुहूर्त्तोच्छ्वासादिपृच्छा तथापि केवलिप्रज्ञायाः यावदवधिपर्यन्तं धावनादुच्छ्वासादीनां तन्निरूपणाधीननिरूपणत्वाच्चाचार्यस्य तयोर्निरूपणं युक्तिमदिति, नन्वेतदुत्प्लवमानमण्डूकैर्गोकलिञ्जभरणं यतः पूर्वसमयसद्भावे उत्तरसमयस्यानुत्पन्नत्वेनोत्तरसमयसद्भावे पूर्वसमयस्य विनष्टत्वेन किमिह समुदयसमितिसमागमः सङ्गच्छते येनासङ्ख्याततत्पिण्डात्मकता आवलिकादीनां प्रोच्यते ?, अयं हि समुदयादिधर्मो विमात्रस्निग्धरूक्षपुद्गलादीनां न कालस्येति, सत्यं, यं यं कालविशेषं प्ररूपयितुकामेन प्रज्ञापकपुरुषविशेषेण यावन्तो यावन्तः समया एकज्ञानविषयीकृतास्तावन्तस्ते समुदयसमितिसमागता उपचर्यन्ते, अत एवायमौपाधिकः कालो न वास्तव इति न काचिदनुपपत्तिः, सङ्ख्येया आवलिका उच्छ्वासः–अन्तर्मुखः पवनः सङ्ख्येया आवलिका निःश्वासो–बहिर्मुखः पवनः, सङ्ख्येयत्वोपपत्तिश्चैवम्–षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयेनावलिकानामेकं क्षुल्ल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१८] + गाथा: दीप अनुक्रम [२२-२६]



श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥ ९० ॥

कभवग्रहणं भवति, तानि च सप्तदश सातिरेकाणि उच्छ्वासनिःश्वासकाल इति । अथ यादृशैरुच्छ्वासैर्मुहूर्त्तमानं स्यात् तथाऽऽह–हृष्टस्य–पुष्टधातोरनवकल्पस्य–जरसाऽनभिभूतस्य निरुपक्लिष्टस्य–व्याधिना प्राक् साम्प्रतं वाऽनभिभूतस्य मनुष्यादेरेकः उच्छ्वासेन युक्तो निःश्वासः उच्छ्वासनिःश्वासो य इति गम्यते एष प्राण इत्युच्यते, धातुहानिजरादिभिरस्वस्थस्य जन्तोरुच्छ्वासनिःश्वासस्त्वरितादिस्वरूपतया न स्वभावस्थो भवत्यतो हृष्टादिविशेषणग्रहणं, सप्त प्राणाः सूत्रे च उत्वं क्लीबत्वं च प्राकृतत्वात्, उच्छ्वासनिःश्वासा ये इति गम्यते स स्तोक इत्युच्यते, एवं सप्त स्तोका ये स लवः, लवानां सप्तसप्तत्या एषः–अधिकृतो यज्जिज्ञासया तव सम्प्रति प्रश्नावतार इत्यर्थः, मुहूर्त्त इत्याख्यातः, अथ सप्तसप्ततिलवमानतया सामान्येन निरूपितं मुहूर्त्तमेवोच्छ्वाससङ्ख्यया विशेषतो निरूपयितुमाह—'तिण्णि' इत्यादि, अस्या भावार्थोऽयं–सप्तभिरुच्छ्वासैः स्तोकः, ते च लवे सप्त, ततो लवः सप्तभिर्गुणितो जाता एकोनपञ्चाशत्, मुहूर्त्ते च सप्तसप्ततिर्लवा इति सा एकोनपञ्चाशद्गुणितेति जातं मुहूर्त्ते उच्छ्वासाना मानं, अत्राप्युपलक्षणत्वादुःच्छ्वासनिःश्वासानां समुदितानां मानं ज्ञेयं, सर्वैरनन्तज्ञानिभिरित्यनेन सर्वेषां जिनानामेकवाक्यताज्ञापनेन सदृशज्ञानित्वं सूचितं, न तु साम्मत्यदर्शनं कृतं, तस्य विश्वासमूलकत्वेन श्रद्धालुं प्रत्यसम्भाव्यमानत्वात्, अथ यदर्थं मुहूर्त्तादिप्रश्नस्तान् मानविशेषान् प्रज्ञापयन् द्विविधकालपरिमाणज्ञापनायोपक्रमते–'एएणं मुहुत्त'इत्यादि, एतेन–अनन्तरोदितेन मुहूर्त्तप्रमाणेन त्रिंशन्मुहूर्त्ता अहोरात्रः पञ्चदशाहोरात्राः पक्षः द्वौ पक्षौ मासः द्वौ मासौ ऋतुः त्रय ऋतवोऽयनं द्वे अयने संव-

२ वक्षस्कारे समयादि-शीर्षप्रहेलि-कान्तव. सू. १८

॥ ९० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८] + गाथा: दीप अनुक्रम [२२-२६]

त्सरः पञ्चसंवत्सरिकं युगं विंशतिर्युगानि वर्षशतं, विंशतेः पञ्चगुणितायाः शतत्वात्, दश वर्षशतानि वर्षाणां सहस्रं, शतं वर्षसहस्राणां वर्षशतसहस्रं लक्षमित्यर्थः, चतुरशीतिः वर्षशतसहस्राणि यानीति गम्यते तदेकं पूर्वाङ्गं, अतः परं लक्षाणां चतुरशीत्या गुणकारसंख्यास्थानानां सप्तविंशतिसंख्यानां (सद्भावः), तथाहि–चतुरशीतिः पूर्वाङ्गशतसहस्राणि यानीति गम्यते तदेकं पूर्वं, पूर्वाङ्गलक्षाणां चतुरशीत्या गुणितं पूर्वं भवतीति भावः, तद्वर्षमानं चैतत्–"पुवस्स उ परिमाणं सयरिं खलु हुंति कोडिलक्खाओ। छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धवा वासकोडीणं॥ १॥" स्थापना ७०५६-०००००००००० एवमिति–पूर्वाङ्गपूर्वन्यायेन संख्यास्थानमुत्तरोत्तरं त्रुटिताङ्गं त्रुटितमित्यादि तदङ्गतल्लक्षणभेदाभ्यां द्विगुणं २–द्विसंख्याङ्कं २ ज्ञातव्यं, अयमाशयः–सूत्रे एकत्वेन निर्दिश्यमानानि १३ संख्यास्थानानि लाघवधप्रानसूत्रे-

---

१ विगुणं विगुणं–प्रधानं प्रधानं यथोत्तरं प्रकर्षवद्यथा स्यात्तथा, क्रियाविशेषणं, यथा पूर्वाङ्गापेक्षया पूर्वं प्रधानं तथा पूर्वापेक्षया त्रुटिताङ्गं प्रधानं तदपेक्षया त्रुटितमित्यादि यावच्छीर्षप्रहेलिका सर्वप्रधानं बहुतरपदार्थविषयत्वात्, यद्वा विगुणं–गुणरहितमनादिसिद्धसंकेतमात्रवशादेव विवक्षितसंख्याभिधायकं न पुनरुद्योदशषोडशसपादशतादिवद्गुणनिष्पन्नं, तथा च यथा पूर्वाङ्गं पूर्वं च तथा त्रुटितादिपदकदम्बकमपि ज्ञातव्यं, वीप्सा, त्रुटितादिपदानामपि बहुत्वात् प्रत्यवतारकल्पत्वेऽपि सान्वर्थलाभावाच्च, ननु अंगं तावत्कारणं तच्च कार्यसापेक्षमिति, पूर्वस्यांगं–कारणं पूर्वाङ्गमिति निरुक्त्या, पूर्वाङ्गस्य चतुरशीतिलक्षगुणकारेणैव पूर्वसंख्याया जायमानत्वात् सान्वर्थतेति चेत्, मैवं, पूर्वपदस्यैव सान्वर्थताया अभावे कथं तत्कारणस्य सान्वर्थतेत्याकूतात्, केचित्तु विगुणं विगुणमिति पाठमभ्युपगम्य द्विगुणं द्विगुणं–द्विभेदं द्विभेदमिति वदंति, तेषां इदमाकूतं यथा–पूर्वाङ्गं पूर्वं चेति द्वौ भेदौ तथा त्रुटितादिष्वपि त्रुटिताङ्गं त्रुटितमिति द्वौ भेदौ वक्तव्यौ यावच्छीर्षप्रहेलिकांगं शीर्षप्रहेलिका चेति, परमेतत्पाठावलोकने यतनीयमिति। (हीर० वृत्तौ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१८] + गाथा: दीप अनुक्रम [२२-२६]

॥ ९१ ॥

णेत्थमाह, न चेदं सूत्रं एषां द्विगुणकारभ्रमजनकं भाव्यं, चतुरशीतिगुणकारस्थानन्तरमेवोक्तत्वात्, अथेषा शब्दसंस्कारमात्रं–त्रुटिताङ्गं त्रुटितं १ अडडाङ्गं १ अडडं २ अववाङ्गं अववं ३ हूहुकाङ्गं हूहुकं ४ उत्पलाङ्गं उत्पलं ५ पद्माङ्गं पद्मं ६ नलिनाङ्गं नलिनं ७ अर्थनिपूराङ्गं अर्थनिपूरं ८ अयुताङ्गं अयुतं ९ नयुताङ्गं नयुतं १० प्रयुताङ्गं प्रयुतं ११ चूलिकाङ्गं चूलिकं १२ शीर्षप्रहेलिकाङ्गं यावच्चतुरशीतिशीर्षप्रहेलिकाङ्गशतसहस्राणि यानि सा एका शीर्षप्रहेलिका १३, अस्याः स्थापना यथा ७५८२६३२५३०.७३०१०२४११५.७९७३५६९९७५.६९६८९६२१८९.६६८४८०८०१८.३२९६

१ वलभीवाचनानुगतस्तु ज्योतिष्करंडेऽन्यथाऽपि दृश्यते, तथाहि–पूर्वाङ्गं १ पूर्वं २ लताङ्गं ३ लता ४ महालतांगं ५ महालता ६ नलिनाङ्गं ७ नलिनं ८ महानलिनांगं ९ महानलिनं १० पद्मांगं ११ पद्मं १२ महापद्माङ्गं १३ महापद्म १४ कमलांगं १५ कमलं १६ महाकमलांगं १७ महाकमलं १८ कुमुदांगं १९ कुमुदं २० महाकुमुदांगं २१ महाकुमुदं २२ त्रुटिताङ्गं २३ त्रुटितं २४ महात्रुटितांगं २५ महात्रुटितं २६ अटटांगं २७ अटटं २८ महाअटटांगं २० महाअटटं ३० ऊहांगं ३१ ऊहं ३२ महोहांगं ३३ महोहं ३४ शीर्षप्रहेलिकांगं ३५ शीर्षप्रहेलिका ३६ चेति, न चात्र सम्मोहः कर्तव्यः, दुर्भिक्षादिदोषेण श्रुतहान्या यस्य यादृशं स्मृतिगोचरीभूतं तेन तथा सम्मतीकृत्य लिखितं, तच्च लिखनमेकं मथुरायामपरं च वलभ्यामिति, यदुक्तं ज्योतिष्करंडवृत्तावेव "इह स्कंदिलाचार्यप्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्त्या साधूनां पठनगणनादिकं सर्वमप्यनेशत्, ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः संघयोर्मेलापकोऽभवत्, तद्यथा–एको वलभ्यां एको मथुरायां, तत्र सूत्रार्थसंघटने परस्परं वाचनाभेदो जातः, विस्मृतयोर्हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा २ संघटने भवत्यवश्यं वाचनाभेदो' इति न काचिदनुपपत्तिः, तत्रानुयोगद्वारादिकमिदानीं वर्तमानं माथुरवाचनानुगतं, ज्योतिष्करंडसूत्रकर्ता त्वाचार्यो वालभ्यः, तत इदं संख्यास्थानप्रतिपादनं वालभ्यवाचनानुगतमिति नास्यानुयोगद्वारप्रतिपादितसंख्यास्थानैः सह विसदृशत्वमुपलभ्य विचिकित्सितव्यमिति, तथाऽनुयोगद्वारे प्रयुतनयुतयोः परावृत्तिरप्यस्तीति । (हीर० वृत्तौ)

॥ ९१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति चतुःपञ्चाशदङ्काः अग्रे च चत्वारिंशं शून्यशतं, तदेवं शीर्षप्रहेलिकायां सर्वाण्यमूनि चतुर्णवत्यधिकशतसङ्ख्यान्यङ्कस्थानानि भवन्ति, इदं च माथुरवाचनानुगतानुयोगद्वारादिसंवादिसंख्यास्थानप्रतिपादनं ज्योतिष्करण्डप्रकीर्णकेन सह विसंवदति, परं न विचिकित्सितव्यं, बालभ्यवाचनानुगतत्वात् तस्य, भवति हि वाचनाभेदे सूत्रपाठभेद इति, तत्संवादिशीर्षप्रहेलिकाङ्कस्थापना त्वेवंरूपा ज्ञेया यथा–१८७५५१७९५५.०११२५९५४१९.००९६९९८१३४.३९७७० ७९७४६.५४९४२६१९७७.७७७४७६५७२५.७३४५७१८६८१.६. इति सप्ततिरङ्का अग्रे चाशीत्यधिकं शून्यशतं, तदेवं ज्योतिष्करण्डोक्तशीर्षप्रहेलिकायां पञ्चाशदधिकशतद्वयसंख्यान्यङ्कस्थानानि भवन्ति, अत्र तत्त्वं केवलिनो विदन्तीति, अनेन चैतावता कालमानेन केषांचिद्ग्रहप्रभानारकाणां भवनपतिव्यन्तराणां सुषमदुष्षमारकसंभविनां नरतिरश्चां च यथासम्भवमायूंषि मीयन्ते, एतस्माच्च परतोऽपि सर्षपचतुष्पल्यप्ररूपणागम्यः संख्येयः कालोऽस्ति, किन्त्वनतिशायिनामसंव्यवहार्यत्वान्नेहोक्तः, एतदेवाह–एतावद्–इयन्मात्रं तावदिति प्रक्रमार्थे कालगणितं, समयतः प्रभृति शीर्षप्रहेलिकापर्यन्तं संख्यास्थानमित्यर्थः, एतावान्–शीर्षप्रहेलिकाप्रमेयराशिपरिमाणो गणितस्य विषयो–गणितगोचर आयुःस्थित्यादिकालः, कुत इत्याह–ततः परं–शीर्षप्रहेलिकातः परं उपमया निर्वृत्तमौपमिकं, उपमामन्तरेण यत्कालप्रमाणमनतिशायिना ग्रहीतुं न शक्यते तदौपमिकमिति भावः, सूत्रे च तृतीया पञ्चम्यर्थे प्राकृतत्वात् । तदेव प्रष्टुमाह—

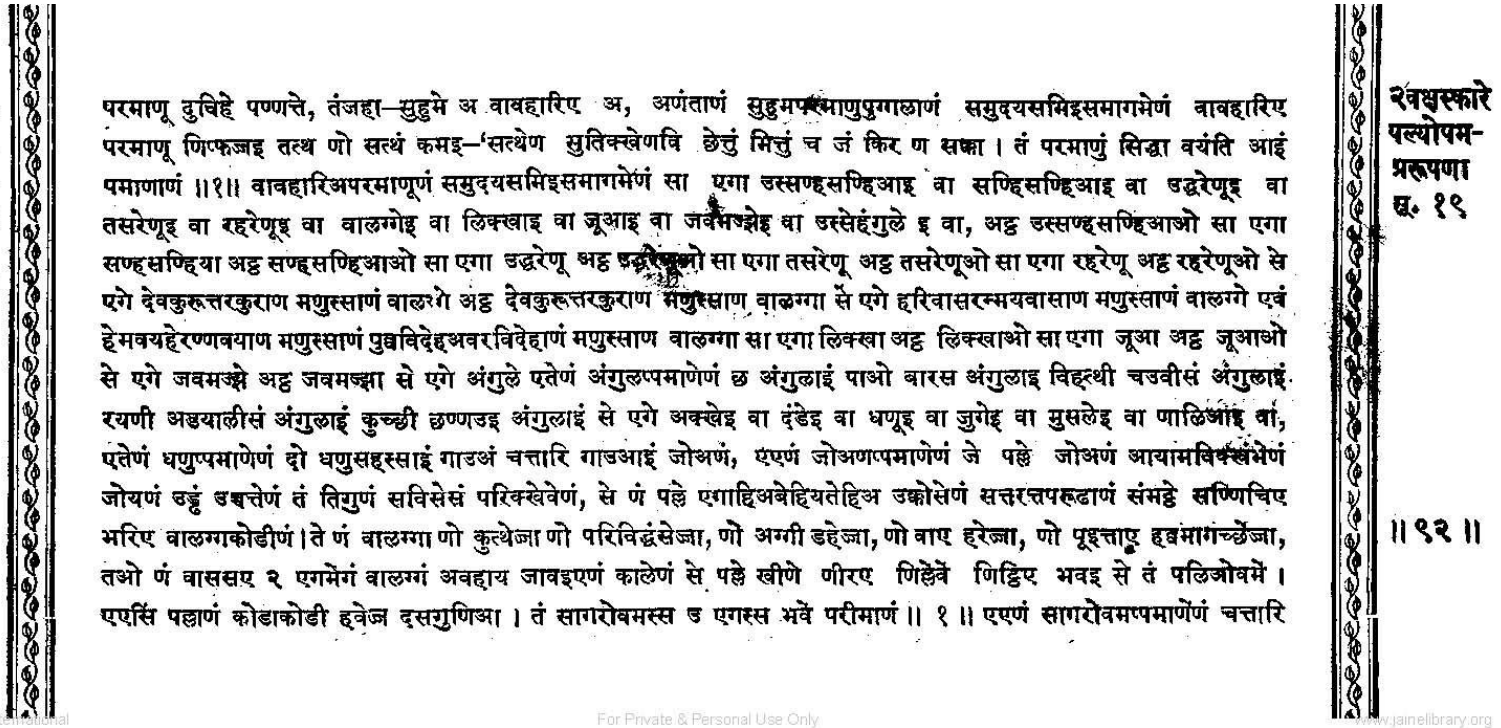
से किं तं उवमिए ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–पलिओवमे अ सागरोवमे अ, से किं तं पलिओवमे ?, पलिओवमस्स परूवणं करिस्सामि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ औपमिक-काल-स्वरूपं वर्ण्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१९] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७-३२]



परमाणू दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—सुहुमे अ वावहारिए अ, अणंताणं सुहुमपरमाणुपुग्गलाणं समुदयसमिइसमागमेणं वावहारिए परमाणू णिप्फज्जइ तत्थ णो सत्थं कमइ—'सत्थेण सुतिक्खेणवि छेत्तुं भित्तुं च जं किर ण सक्का । तं परमाणुं सिद्धा वयंति आई पमाणाणं ॥१॥ वावहारिअपरमाणूणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा उस्सण्हसण्हिआइ वा सण्हिसण्हिआइ वा उद्धरेणूइ वा तसरेणूइ वा रहरेणूइ वा वालग्गेइ वा लिक्खाइ वा जूआइ वा जवमज्झेइ वा उस्सेहंगुले इ वा, अट्ठ उस्सण्हसण्हिआओ सा एगा सण्हसण्हिया अट्ठ सण्हसण्हिआओ सा एगा उद्धरेणू अट्ठ उद्धरेणूओ सा एगा तसरेणू अट्ठ तसरेणूओ सा एगा रहरेणू अट्ठ रहरेणूओ से एगे देवकुरूत्तरकुराण मणुस्साणं वालग्गे अट्ठ देवकुरूत्तरकुराण मणुस्साण वालग्गा से एगे हरिवासरम्मयवासाण मणुस्साणं वालग्गे एवं हेमवयहेरण्णवयाण मणुस्साणं पुव्वविदेहअवरविदेहाणं मणुस्साण वालग्गा सा एगा लिक्खा अट्ठ लिक्खाओ सा एगा जूआ अट्ठ जूआओ से एगे जवमज्झे अट्ठ जवमज्झा से एगे अंगुले एतेणं अंगुलप्पमाणेणं छ अंगुलाइं पाओ बारस अंगुलाइ विहत्थी चउवीसं अंगुलाइं रयणी अडयालीसं अंगुलाइं कुच्छी छण्णउइ अंगुलाइं से एगे अक्खेइ वा दंडेइ वा धणूइ वा जुगेइ वा मुसलेइ वा णालिआइ वा, एतेणं धणुप्पमाणेणं दो धणुसहस्साइं गाउअं चत्तारि गाउआइं जोअणं, एएणं जोअणप्पमाणेणं जे पल्ले जोअणं आयामविक्खंभेणं जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहिअबेहियतेहिअ उक्कोसेणं सत्तरत्तपरूढाणं संभट्ठे सण्णिचिए भरिए वालग्गकोडीणं । ते णं वालग्गा णो कुत्थेज्जा णो परिविद्धंसेज्जा, णो अग्गी डहेज्जा, णो वाए हरेज्जा, णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, तओ णं वाससए २ एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे णीरए णिल्लेवे णिट्ठिए भवइ से तं पलिओवमे । एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिआ । तं सागरोवमस्स उ एगस्स भवे परीमाणं ॥ १ ॥ एएणं सागरोवमप्पमाणेणं चत्तारि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१९] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७-३२]

सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा १ तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमा २ दो सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमदुस्समा ३ एगा सागरोवमकोडाकोडी बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिआ कालो दुस्समसुसमा ४ एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दुस्समा ५ एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दुस्समदुस्समा ६, पुणरवि उस्सप्पिणीए एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दुस्समदुस्समा १ एवं पडिलोमं णेअव्वं जाव चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा ६, दससागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी दससागरोवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणी वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणीउस्सप्पिणी । (सूत्रं१९)

'से किं तं ओवमिए ?' इत्यादि, अथ किं तदौपमिकं ?, अत्रोत्तरं–औपमिकं द्विविधं प्रज्ञप्तं, अनेन विधेयनिर्देशस्तेन न पौनरुक्त्याशङ्का, पल्येन वक्ष्यमाणस्वरूपेणोपमा यस्य तत्तथा, दुर्लभपारत्वात् सागरेण–समुद्रेणोपमा यस्य तत्तथा, उभयत्र चकारद्वयं तुल्यकक्षताद्योतनार्थं, तुल्यकक्षता चोभयोरप्यसंख्येयकालत्वसूचनार्थं, अथ किं तत् पल्योपमं ?, आचार्यस्तु पल्योपमप्ररूपणां करिष्यामीति, अनेन च क्रियारम्भसूचकवचनेन शिष्यस्य मनःप्रसत्तिः कृता भवति, अन्यथा 'परमाणू दुविहे' इत्यादिप्रक्रियाक्रमेण दूरसाध्यां पल्योपमप्ररूपणां प्रति सन्दिहानः शिष्योऽनादृतो भवेदिति, गुरोः शिष्यं प्रति वाचनादानेऽयमेव हि विधिः, यतः–"धम्ममइएहिं अइसुंदरेहिं कारणगुणोवणीएहिं। पल्हायंतो अ मणं सीसं चोएइ आयरिओ ॥ १ ॥" [धर्ममयैरतिसुन्दरैः उपनीतकारणगुणैः प्रह्लादयंश्च मनः शिष्यं नुदति आचार्यः ॥ १ ॥] परमाणुर्द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–सूक्ष्मश्च व्यावहारिकश्च, शस्त्राद्यविषयत्वादिको धर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१९] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७-३२]

उभयोरपीति समानकक्षताद्योतनार्थं प्रत्येकं चकारः, तत्र सूक्ष्मस्य 'कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः । एकरसवर्णगन्धो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥ १ ॥" इत्यादिलक्षणलक्षितस्यात्यन्तपरमनिकृष्टतालक्षणं स्वरूपमतिरिच्यापरं वैशेषिकं रूपं न प्रतिपादनीयमस्तीति तं संस्थाप्यापरं स्वरूपतो निरूपयति–अनन्तानां सूक्ष्मपरमाणुरूपपुद्गलानां सम्बन्धिनो ये समुदयाः–त्रिचतुरादिमेलकास्तेषां याः समितयो–बहूनि मीलनानि तासां समागमेन–संयोगेनैकीभावेनेतियावत् व्यावहारिकः परमाणुरेको निष्पद्यते, इदमुक्तं भवति–निश्चयनयो हि निर्विभागं सूक्ष्मं पुद्गलं परमाणुमिच्छति, यस्त्वेतैरनेकैर्जायते तं सांशत्वात् स्कन्धमेव व्यपदिशन्ति, व्यवहारनयस्तु तदनेकसङ्घातनिष्पन्नोऽपि यः शस्त्रच्छेदाग्निदाहादिविषयो न भवति तमद्यापि तथाविधस्थूलभावाप्रतिपत्तेः परमाणुत्वेन व्यवहरति, ततोऽसौ निश्चयतः स्कन्धोऽपि व्यवहारनयमतेन व्यावहारिकः परमाणुरुक्तः, अयं च स्कन्धत्वात् काष्ठवत् छेदादिविषयो भवतीति वादिनं प्रत्याह–तत्र शस्त्रं न क्रामति–न सञ्चरति, असिक्षुरादिधारामाप्योऽपि स न छिद्येत न च भिद्येतेत्यर्थः, यद्यनन्तैः परमाणुभिर्निष्पन्नाः काष्ठादयः शस्त्रच्छेदादिविषया दृष्टास्तथाप्यनन्तस्यानन्तभेदत्वात्तावत्प्रमाणेन निष्पन्नोऽद्यापि सूक्ष्मत्वान्न शस्त्रच्छेदादिविषयतामासादयतीति भावः, एतेनाग्निदाह्यता जलार्द्रता गङ्गाप्रतिश्रोतोविहन्यमानता जलक्लोथादिकं सर्वमपि निरस्तं मन्तव्यं, सर्वेषामपि तेषां शस्त्रत्वाविशेषात्, अत्रार्थे प्रमाणमाह–शस्त्रेण सुतीक्ष्णेनापि छेत्तुं–खड्गादिना द्विधा कर्त्तुं भेत्तुं–अनेकधा विदारयितुं सूच्यादिना वस्त्रादिवद्वा सच्छिद्रं कर्त्तुं, वा विकल्पे, यं–पुद्गलादिविशेषं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१९] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७-३२]

किलेति निश्चये न शक्काः, केऽपि पुरुषा इति शेषः, तं व्यावहारिकपरमाणुं सिद्धा इव सिद्धा भगवन्तोऽर्हन्त उत्पन्नकेवलज्ञाना न तु सिद्धाः सिद्धिगताः, तेषां वचनयोगासम्भवादिति, आदिं–प्रथमं प्रमाणानां–वक्ष्यमाणोत् श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकादीनामिति, एतेन श्रद्धालून् प्रति आगमप्रमाणमभिहितं, तर्कानुसारिणः प्रति प्रयोगः–अणुपरिमाणं क्वचिद्विश्रान्तं तरतमशब्दवाच्यत्वात् महत्परिमाणवत्, यत्र च विश्रान्तं स परमाणुः, विपक्षे वस्तुनः स्थूलताऽपि नोपपद्यते, न च द्व्यणुकादि नार्थान्तरमिति वाच्यं, स च सिद्ध्यन् परमनिकृष्टो निरंश एव सिध्येत्, अन्यथाऽनवस्था सर्षपसुमेर्वोस्तुल्यपरिमाणापत्तिश्च, ततः सिद्धः परमाणुः, ननु सिद्ध्यतु सः सूक्ष्मत्वाच्च न चक्षुरादिगम्यः, परं यदनन्तैः सूक्ष्मैः परमाणुभिरेको व्यावहारिकः परमाणुरारभ्यते स चक्षुराद्यगोचरः शस्त्रच्छेदाद्यगोचरश्चेति तन्मन्दं, उच्यते, द्विविधो हि पुद्गलपरिणामः–सूक्ष्मो बादरश्च, तत्र सूक्ष्मपरिणामपरिणतानां पुद्गलानामनिन्द्रियकत्वमगुरुलघुपर्यायवत्त्वं शस्त्रच्छेदाद्यविषयत्वमित्यादयो धर्मा भवन्ति, तेन न काप्यनुपपत्तिः, श्रूयते चागमे पुद्गलानामेवं सूक्ष्मत्वासूक्ष्मत्वपरिणामो यथा द्विप्रदेशिकः स्कन्धः एकस्मिन्नभःप्रदेशे माति स एव च द्वयोरपि मातीति संकोचविकाशकृतो भेदः, दृश्यते च लोकेऽपि पिञ्जिततुलपुञ्जलोहपिण्डयोः परिमाणभेदः, इत्यलं विस्तरेणेति, अथ प्रमाणान्तरलक्षणार्थमाह–अनन्तानां व्यावहारिकपरमाणूनां समुदयसमितिसमागमेन या परिमाणमात्रेति गम्यते सैका अतिशयेन श्लक्ष्णा श्लक्ष्णश्लक्ष्णा सैव श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका उत्तरप्रमाणापेक्षया उत्-प्राबल्येन श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका उच्छ्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, इतिरुपदर्शने वा उत्तरापेक्षया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१९] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७-३२]

समुच्चये, एवं श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकेति वा इत्यादिष्वपि वाच्यं, एते च श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकादयोऽङ्गुलान्ताः प्रमाणभेदा यथोत्तरमष्टगुणाः सन्तोऽपि प्रत्येकमनन्तपरमाणुकत्वं न व्यभिचरन्त्यतः निर्विशेषितमप्युक्तं–'सण्हसण्हिआइ वे'त्यादि, प्राक्तनप्रमाणापेक्षयाऽष्टगुणत्वेन स्थौल्यादूर्ध्वरेण्वपेक्षया त्वष्टभागप्रमाणत्वात् श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकेत्युच्यते, स्वतः परतो वा ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्चलनधर्म्मो जालप्रविष्टसूर्यप्रभाभिव्यङ्ग्यो रेणुरूर्ध्वरेणुः त्रस्यति–पौरस्त्यादिवायुप्रेरितो गच्छति यो रेणुः स त्रसरेणुः रथगमनात् रेणुः रथरेणुः वालाग्रलिक्षादयः प्रतीताः, देवकुरूत्तरकुरुहरिवर्षरम्यकादिनिवासिमानवानां केशस्थूलताक्रमेण क्षेत्रशुभानुभावहानिर्भावनीया यावत्पूर्वविदेहापरविदेहाश्रयमनुष्याणामष्टौ वालाग्राणि एका लिक्षा, ता अष्ट यूका, अष्टौ यूका एकं यवमध्यं, अष्टौ यवमध्यानि एकमङ्गुलं, एतेनाङ्गुलप्रमाणेनेति न तु न्यूनाधिकतया, षडङ्गुलानि पादः–पादस्य मध्यतलप्रदेशः, पादैकदेशत्वात् पादः, अथवा पादो ह्रस्वचतुर्थांशः, द्वादशाङ्गुलानि वितस्तिः सुखावबोधार्थमेवमुपन्यासः, लाघवार्थं तु द्वौ पादौ वितस्तिरिति पर्यवसितोऽर्थः, अन्यथा पादसंज्ञाया नैरर्थक्यापत्तिः, एवमग्रेऽपि चतुर्विंशतिरङ्गुलानि रत्निरिति सामयिकी परिभाषा, नामकोशादौ तु 'वद्धमुष्टिर्हस्तो रत्नि'रिति, अष्टचत्वारिंशदङ्गुलानि कुक्षिः, षण्णवतिरङ्गुलानि एकोऽक्ष इति वा–शकटावयवविशेषः दण्ड इति वा धनुरिति वा युगमिति वा–वोढृस्कन्धकाष्ठं मुसलमिति वा नालिका इति वा–यष्टिविशेषः, अत्र च धनुषोपयोगः, संज्ञान्तराणि तु प्रसङ्गतोऽत्र लिखितानि अन्यत्रोपयोगीनीति, एतेन धनुःप्रमाणेन द्वे धनुःसहस्रे गव्यूतं, चत्वारि गव्यूतानि योजनं, एतेन योजन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाणेन यः पल्यो–धान्याश्रयविशेषः स इव सर्वत्र समत्वात्, लुप्तोपमाकः शब्द इति, योजनमायामविष्कम्भाभ्यां समवृत्तत्वात् प्रत्येकमुत्सेधाङ्गुलनिष्पन्नयोजनं योजनमूर्ध्वोच्चत्वेन, तद्योजनं त्रिगुणं सविशेषं परिरयेण, वृत्तपरिधेः किञ्चिदूनषड्भागाधिकत्रिगुणत्वात्, स पल्य 'एगाहिअबेहिअ'त्ति षष्ठीबहुवचनलोपादेकाहिकद्व्याहिकत्र्याहिकाणामुत्कर्षतः सप्तरात्रप्ररूढाना–सप्तदिवसोद्गतपर्यन्तानां भृतो वालाग्रकोटीनामिति सम्बन्धः, तत्र मुण्डिते शिरस्येकेनाह्ना यावत्प्रमाणा वालाग्रकोटय उत्तिष्टन्ति ता एकाहिक्यः, द्वाभ्यां तु यास्ता द्व्याहिक्याः, त्रिभिस्तु त्र्याहिक्यः, कथंभूत इत्याह–'संमृष्ट' आकर्णपूरितः 'सन्निचितः' प्रचयविशेषान्निबिडीकृतः वालानामग्रकोटयः–प्रकृष्टा विभागा इत्यर्थः, यद्वा वालाग्रकोटीनामिति वालेषु–विदेहनरवालाद्यपेक्षया सूक्ष्मत्वादिलक्षणोपेततयाऽग्राणि–श्रेष्ठानि वालाग्राणि, कुरुनररोमाणि तेषां कोटयः अनेकाः–कोटाकोटिप्रमुखाः सङ्ख्याः "स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्" इत्यादिवत्, तथा वालाग्रकोटीनामिति तृतीयार्थे षष्ठी यथा माषाणां भृतः कोष्ठ इति, तेन वालाग्रकोटीभिर्भृत इति सुखावबोधाऽक्षरयोजना कार्या इति, वालाग्रसङ्ख्यानयनोपायस्त्वयं–देवकुरूत्तरकुरुनरवालाग्रतोऽष्टगुणं हरिवर्षरम्यकनरवालाग्रमिति, यत्रैकं हरिवर्षरम्यकनरवालाग्रं तत्र कुरुनरवालाग्राण्यष्ट तिष्ठन्ति, यत्र चैकं हैमवतहैरण्यवतनरवालाग्रं तत्र कुरुनरवालाग्राणि चतुःषष्टिः, एवं विदेहनरवालाग्रे ५१२ लिक्षायां ४०९६ यूकायां ३२७६८ यवमध्ये २६२१४४ अङ्गुलेऽङ्गतः २०९७१५२, अत्राङ्गुलमुत्सेधाङ्गुलं ग्राह्यं, आत्माङ्गुलस्यानियतत्वात् प्रमाणाङ्गुलस्यातिमात्रत्वात्, अत्र सर्वत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वप्रमाणापेक्षयोत्तरोत्तरप्रमाणस्याष्टाष्टगुणकारेणेयं सङ्ख्या समुत्तिष्ठति, अथायं राशिश्चतुर्विंशतिगुणो हस्तः चतुर्विंशत्यङ्गुलमानत्वादस्य, स चैवं ५०३३१६४८ नामतः पञ्च कोटयस्त्रीणि लक्षाणि एकत्रिंशत्सहस्राणि षट् शतान्यष्टचत्वारिंशदधिकानि, एष राशिश्चतुर्गुणो धनुषि, चतुर्हस्तमानत्वादस्य, अङ्कतः २०१३२६५९२ नामतो विंशतिः कोटयस्त्रयोदश लक्षाणि षड्विंशतिः सहस्राणि पञ्च शतानि द्विनवत्यधिकानि, अयं द्विसहस्रगुणः क्रोशे, द्विसहस्रमानत्वादस्य, अङ्कतो यथा–४०२६५३१८४००० नामतः चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वे शते पञ्चषष्ट्यधिके कोटीनां एकत्रिंशल्लक्षाणि चतुरशीतिः सहस्राणि, पुनरयं राशिश्चतुर्गुणो योजने, चतुःक्रोशप्रमाणत्वादस्य, अङ्कत१६१०६१२७३६०००नामतः एकं लक्षमेकषष्टिः सहस्राण्येकषष्ट्यधिकानि कोटीनां तथा सप्तविंशतिर्लक्षाणि षट्त्रिंशत्सहस्राणि, शूचीगणनयैवेदं गणितं बोध्यं, अयं शूचीराशिरनेनैव गुणितः प्रतरसमचतुरस्रयोजने,शूच्या शूचीगुणिताया एव प्रतरत्वात्, अङ्कतः २५९४०७३२८-५१६५४०५६९६००००० नामतो यथा पञ्चविंशतिः शतानि चतुर्नवत्यधिकानि कोटाकोटिकोटीनां तथा सप्त लक्षाणि त्रयस्त्रिंशत्सहस्राण्यष्ट शतानि त्रिपञ्चाशदधिकानि कोटाकोटीनां तथा पञ्चषष्टिर्लक्षाणि चत्वारिंशत्सहस्राणि पञ्च शतान्येकोनसप्तत्यधिकानि कोटीनां तथा षष्टिर्लक्षाणि, अयं राशिर्भूयः पूर्वराशिना गुणितो घनरूपो रोमराशिः स्यात्, तथाहि–अङ्कतः ४१७८०४७६६२५८८१५८४२७७८४५४४२५६०००००००००नामतः एकचत्वारिंशत्कोटयोऽष्टसप्ततिर्लक्षाणि चत्वारि सहस्राणि सप्त शतानि त्रिषष्ट्यधिकानि कोटाकोटिकोटाकोटीनां तथा पञ्चविंशतिर्लक्षाण्यष्टाशीतिः सहस्राण्येकं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१९] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७-३२]

शतमष्टपञ्चाशदधिकं कोटाकोटिकोटीनां तथा द्विचत्वारिंशल्लक्षाणि सप्तसप्ततिः सहस्राण्यष्ट शतानि पञ्चचत्वारिंशदधिकानि कोटाकोटीनां तथा चतुश्चत्वारिंशल्लक्षाणि पञ्चविंशतिः सहस्राणि षट् शतानि कोटीनामिति, अयं च राशिः समचतुरस्रघनयोजनप्रमितपल्यगतः समवृत्तघनयोजनप्रमितपल्यगतराश्यपेक्षया कियद्भागाभ्यधिकस्तेनाधिकभागपातनार्थं सौकुमार्याय स्थूलोपायमाह–अनन्तरोक्तराशेश्चतुर्विंशत्या २४ भागे हृते लब्धं १७४०८५३१८०२४५०६६०११५७६८-९३४४०००००००० अयं चैकोनविंशत्या १९ गुणितः समवृत्तघनयोजनपल्यगतो राशिर्भवतीति, स चाङ्कतो यथा ३३३०७५२१०४२४५५५,२५४२१९९५०९१५३५०००००००० अयमर्थः–तादृशैश्चतुर्विंशत्या भागैः समचतुरस्रघनयोजनप्रमितपल्यगतो रोमराशिर्भवति तादृशैरेकोनविंशत्या भागैः समवृत्तघनयोजनप्रमितपल्यगतो राशिर्भवति, ननु चतुर्विंशत्या भागहरणमेकोनविंशत्या गुणनं च किमर्थं ?, उच्यते, एकयोजनप्रमाणवृत्तक्षेत्रस्य करणरीत्यागतं योजनत्रयमेकश्च योजनषड्भागः ३$\frac{1}{6}$ सवर्णने च जातं $\frac{19}{6}$ एतच्च वृत्तपल्यपरिधिक्षेत्रं, अनेन सह समचतुरस्रपल्यपरिधिक्षेत्रं चतुर्योजनरूपं गुण्यते, स्थापना यथा–$\frac{19}{6} \times \frac{4}{1}$ अनयोः $\frac{19}{6}$ समच्छेदे $\frac{24}{6}$ लाघवार्थं द्वयोरपि छेदापनयने जातं १९–२४ किमुक्तं भवति–समचतुरस्रपरिधिक्षेत्रात् वृत्तपरिधिक्षेत्रं स्थूलवृत्त्या पञ्चभागन्यूनमिति तत्करणार्थोऽयमुपक्रम इति, स्थूलवृत्तिश्च योजनषड्भागस्य किञ्चिदधिकतया अविवक्षणात्, अथ प्रकृते प्रस्तुमः–'ते ण'मिति प्राग्वत्, तानि वालाग्राणि न कुर्य्युः–प्रचयविशेषाच्छुषिराभावाद्वायोरसम्भवाच्च नासारतां गच्छेयुरित्यर्थः, अतो न परिविध्वंसेरन्-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१९] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७-३२]

कतिपयपरिशाटनमप्यङ्गीकृत्य न विध्वंसं गच्छेयुः अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम इति, तानि नाग्निर्दहेत् न वायुरपहरेदतीव निचितत्वादग्निपवनावपि तत्र न क्रमेते इत्यर्थः, तानि च न पूतितया–पूतिभावं कदाचिदागच्छेयुः, न कदाचिद्दुर्गन्धितां प्राप्नुयुरित्यर्थः, अथ केतिकर्त्तव्यता ?, तामेवाह–ततस्तेभ्यो वालाग्रेभ्योऽथवा 'तत' इति तथाविधपल्यभरणानन्तरं वर्षशते २ एकैकं वालाग्रमपहृत्य कालो मीयेत इति शेषः, ततश्च यावता कालेन स पल्यः क्षीणो–वालाग्रकर्षणात् क्षयमुपागतः आकृष्टधान्यकोष्ठागारवत्, तथा (नीरजाः)–निर्गतरजःकल्पसूक्ष्मवालाग्रोऽपकृष्टधान्यरजःकोष्ठागारवत्, निर्लेपोऽत्यन्तसंश्लेषात्तन्मयतागतवालाग्रलेपापहारादपनीतधान्यलेपकोष्ठागारवत्, निष्ठितोऽपनेतव्यद्रव्यापनयनमाश्रित्य निष्ठां गतः विशिष्टप्रयत्नप्रमार्जितकोष्ठागारवत्, एकार्थिका वा एते शब्दा अत्यन्तविशुद्धिप्रतिपादनपराः, वाचनान्तरे दृश्यमानं चान्यदपि पदमुक्तानुसारतो व्याख्येयं, तदेतत्पल्योपममिति, इदं च पल्यगतवालाग्राणां सङ्ख्येयैरेव वर्षैस्तदपहारसम्भवात् संख्येयवर्षकोटाकोटीमानं बादरपल्योपमं ज्ञेयं, न चानेनात्र वक्ष्यमाणसुषमसुषमादिकालमानादावधिकारः, परं सूक्ष्मपल्योपमस्वरूपसुखप्रतिपत्तये प्ररूपितमिति ज्ञायते, तेन पूर्वोक्तमेकैकवालाग्रमसंख्येयखण्डीकृत्य भृतस्योत्सेधाङ्गुलयोजनप्रमाणायामविष्कम्भावगाहस्य पल्यस्य वर्षशते २ एकैकवालाग्रापहारेण सकलवालाग्रखण्डनिर्लेपनाकालरूपमसङ्ख्येयवर्षकोटीकोटीप्रमाणं सूक्ष्मपल्योपमं, विचित्राकृतिराचार्यस्येति सूत्रकारेणानुक्तमपि स्वयं ज्ञेयं, तेनैव च प्रस्तुतोपयोगः, अन्यथाऽनुयोगद्वारादिभिः सह विरोधप्रसङ्गादिति सर्वं सुस्थं, एवमग्रे सागरोपमेऽपि

॥ ९६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१९] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७-३२]

ज्ञेयं, अथ सागरोपमस्वरूपं गाथापद्येनाह–'एएसिं पल्लाण'मित्यादि, एतेषामनन्तरोदितानां पल्यानामिति पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् पल्योपमानां या दशगुणिता कोटाकोटिर्भवेत् तत्सागरोपमस्यैकस्य भवेत् परिमाणमिति, प्रायः सर्वं कण्ठ्यं, नवरमेतेन सागरोपमप्रमाणेन न न्यूनाधिकेनेत्यर्थः चतस्रः सागरोपमकोटाकोट्यः कालः सुषमसुषमा-प्राग्व्यावर्णितान्वर्था, अयमर्थः–चतुःसागरोपमकोटाकोटीलक्षणः कालः प्रथम आरक इत्युच्यते, 'बायालीस'त्ति या च सागरोपमकोटाकोट्येका द्विचत्वारिंशत्सहस्रैरूनैवोनिका असौ कालश्चतुर्थोऽरकः, सा दुष्षमासत्कैरेकविंशतिसहस्रैर्दुष्ष-मदुष्षमासत्कैरेकविंशतिसहस्रैश्च वर्षाणां पूरणीया, तेन पूर्णा कोटाकोट्येका भवति, अवसर्पिणीकालस्य दशसागरकोटा-कोटी पूरिका भवतीत्यर्थः, एवं प्रतिलोममिति–पश्चानुपूर्व्या ज्ञेयं, अवसर्पिणीयुक्ता उत्सर्पिणी अवसर्पिणीउत्सर्पिणी कालचक्रमित्यर्थः । उक्तं भरते कालस्वरूपं, अथ काले भरतस्वरूपं पृच्छन्नाह–तत्राप्यवसर्पिण्या वर्त्तमानत्वेनादौ सुषमसुषमायां प्रश्नः—

जंबुद्दीवे णं भंते दीवे भरहे वासे इमीसे उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए उत्तकट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभाव-पडोयारे होत्था?, गो० ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव णाणामणिपंचवण्णेहिं तणेहि य मणीहि य उवसोभिए, तंजहा–किण्हेहिं जाव सुक्किलेहिं, एवं वण्णो गंधो फासो सद्दो अ तणाण य मणीण य भाणिअव्वो, जाव तत्थ णं बहवे मणुस्सा मणुस्सीओ अ आसयंति सयंति चिट्ठंति णिसीअंति तुअट्टंति हसंति रमंति ललंति, तीसे णं समाए भरहे

श्रीजम्बू. १७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल-संपादकस्य मुद्रण-शुद्धि-स्खलनत्वात् अत्र सूत्रस्य क्रम १९ द्वि-वारान् मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१९R] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७-३२]

श्रीजम्बू-द्वीपप्रज्ञा-न्तिचन्द्रीया वृत्तिः

॥ ९७ ॥

वासे बहवे उद्दाला कुद्दाला मुद्दाला कयमाला णट्टमाला दंतमाला नागमाला सिंगमाला संखमाला सेअमाला णामं दुमगणा पण्णत्ता, कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला मूलमंतो कंदमंतो जाव बीअमंतो पत्तेहि अ पुप्फेहि अ फलेहिं अ उच्छण्णपडिच्छण्णा सिरीए अईव २ उवसोभेमाणा चिट्ठंति, तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ बहवे भेरुतालवणाइं हेरुतालवणाइं मेरुतालवणाइं पभयालवणाइं सालवणाइं सरलवणाइं सत्तिवण्णवण्णाइं पूअफलिवणाइं खज्जूरीवणाइं णालिएरीवणाइं कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूलाइं जाव चिट्ठंति, तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ बहवे सेरिआगुम्मा णोमालिआगुम्मा कोरंटयगुम्मा बंधुजीवगगुम्मा मणोज्जगुम्मा बीअगुम्मा बाणगुम्मा कणइरगुम्मा कुज्जायगुम्मा सिंदुवारगुम्मा मोग्गरगुम्मा जूहिआगुम्मा मल्लिआगुम्मा वासंतिआगुम्मा वत्थुलगुम्मा कत्थुलगुम्मा सेवालगुम्मा अगत्थिगुम्मा मगदंतिआगुम्मा चंपकगुम्मा जातीगुम्मा णवणीइआगुम्मा कुंदगुम्मा महाजाइगुम्मा रम्मा महामेहणिकुरंबभूआ दसद्धवण्णं कुसुमं कुसुमेंति जे णं भरहे वासे बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं वायविधुअग्गसाला मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिअं करंति, तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तहिं तहिं बहुईओ पउमलयाओ जाव सामलयाओ णिच्चं कुसुमिआओ जाव लयावण्णओ, तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ २ तहिं २ बहुइओ वणराइओ पण्णत्ताओ किण्हाओ किण्होभासाओ जाव मणोहराओ रयमत्तगछप्पयकोरगभिंगारगकोंडलगजीवंजीवगनंदीमुहकविलपिंगलक्खगकारंडवचक्कवायगकलहंसहंससारसअणेगसउणगणमिहुणविअरिआओ सद्दुण्णइयमहुरसरणाइआओ संपिंडिअ० णाणाविहगुच्छ० वावीपुक्खरणीदीहिआसु असुणि० विचित्त० अब्भि० साउन्त० णिरोगक० सव्वोउअपुप्फफलसमिद्धाओ पिंडिमजावपासादीआओ ४, (सूत्रं १९)

२वक्षस्कारे सुषमसुषमाधिकारः सू. १९

॥ ९७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल-संपादकस्य मुद्रण-शुद्धि-स्खलनत्वात् अत्र सूत्रस्य क्रम १९ द्वि-वारान् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१९R] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७-३२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे भरतक्षेत्रेऽस्यामवसर्पिण्या सम्प्रति या वर्त्तमानेति शेषः, सुषमसुषमानाम्न्या समाया काल-विभागलक्षणायां अरके इत्यर्थः, किंलक्षणायामित्याह–उत्तमकाष्ठां–प्रकृष्टावस्थां प्राप्तायां, क्वचिदुत्तमट्ठपत्ताए इति पाठस्तत्रोत्तमा तत्कालापेक्षयोत्कृष्टानर्थान्–वर्णादीन् प्राप्ता उत्तमार्थप्राप्ता तस्यां, भरतस्य वर्षस्य कीदृश आकारभावप्र-त्यवतारः 'होत्थ'त्ति अभवत् ?, सर्वमन्यत् प्राग्व्याख्यातार्थं, नवरमत्र मनुष्योपभोगाधिकारे शयनमुभयथापि सङ्गच्छते निद्रासहितरहितत्वभेदात्, अथ सविशेषमनुजिघृक्षुणा गुरुणाऽपृष्टमपि शिष्यायोपदेष्टव्यमिति प्रश्नपद्धतिरहितं प्रथमारकानुभावजनितभरतभूमिसौभाग्यसूचकं सूत्रचतुर्दशकमाह–'तीसे णं' मित्यादि, तस्यां समायां भरतवर्षे बहव उद्दालाः कोद्दालाः मोद्दालाः कृतमालाः नृत्तमालाः दन्तमालाः नागमालाः शृङ्गमालाः शङ्खमालाः श्वेतमाला नाम द्रुमगणा–द्रुमजातिविशेषसमूहाः प्रज्ञप्तास्तीर्थकरगणधरैः हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, ते च कथंभूता इत्याह–कुशाः–दर्भा विकुशा–बल्वजादयस्तृणविशेषास्तैर्विशुद्धं–रहितं वृक्षमूलं–तदधोभागो येषां ते तथा, इह मूलं शाखादीनामपि आदिमो भागो लक्षणया प्रोच्यते यथा शाखामूलमित्यादि ततः सकलवृक्षसत्कमूलप्रतिपत्तये वृक्षग्रहणं, मूलमन्तः कन्दमन्त इति पदद्वयं यावत्पदसङ्ग्राह्यं च जगतीवनगततरुगणवद् व्याख्येयं, पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैश्च अवच्छन्नप्रतिच्छन्ना इति प्राग्वत् श्रिया अतीवोपशोभमानास्तिष्ठन्ति–वर्त्तन्ते इति भावः, 'तीसे णं समाए' इत्यादि, तस्यां समायां बहूनि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, भेरुतालादयो वृक्षविशेषाः, क्वचित्प्रभवालवणा इति पाठस्तत्र पभवालाः–तरुविशेषाः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१९R] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७-३२]

सालः–सर्जः सरलो–देवदारुः सप्तपर्णः प्रतीतस्तेषां वनानि पूगफली–क्रमुकतरुः खर्जूरीनालिकेरौ प्रतीते तासां वनानि शेषं प्राग्वत्, 'तीसे णं' इत्यादि, तस्यां समायां बहवः सेरिकागुल्मा नवमालिकागुल्माः कोरण्टकगुल्माः बन्धुजीवकगुल्माः यत्पुष्पाणि मध्याह्ने विकसन्ति, मनोऽवद्यगुल्माः बीअकगुल्माः बाणगुल्माः करवीरगुल्माः कुब्जगुल्माः सिंदुवारगुल्माः [जातिगुल्माः] मुद्गरगुल्माः यूथिकागुल्माः मल्लिकागुल्माः वासंतिकगुल्माः वस्तुलगुल्माः कस्तुलगुल्माः सेवालगुल्माः अगस्त्यगुल्माः (मगदन्तिकागुल्माः) चम्पकगुल्माः जातिगुल्माः नवनीतिकागुल्माः कुन्दगुल्मा महाजातिगुल्माः, गुल्मा नाम ह्रस्वस्कन्धबहुकाण्डपत्रपुष्पफलोपेताः, एषां च केचित्प्रतीताः केचिद्देशविशेषतोऽवगन्तव्याः, रम्याः महामेघनिकुरम्बभूताः दशार्द्धवर्णं–पञ्चवर्णं कुसुमं–जातावेकवचनं कुसुमसमूहं कुसुमयन्ति–उमादयन्तीति भावः, ये णमिति प्राग्वत् भरते वर्षे इति षष्ठीसप्तम्योरर्थं प्रत्यभेदाद्भरतस्य वर्षस्य बहुसमरमणीयं भूमिभागं वातविधुता–वायुकम्पिता या अग्रशालास्ताभिर्मुक्तो यः पुष्पपुञ्जः स एवोपचारः–पूजा तेन कलितं–युक्तं कुर्वन्तीति । 'तीसे ण'मित्यादि, सर्वमेतत् प्राग्वत्, अथात्रैव वनश्रेणिवर्णनायाह–'तीसे ण'मित्यादि, तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र २ प्रदेशे बह्व्यो वनराजयः प्रज्ञप्ताः, इहैकानेकजातीयानां वृक्षाणां पङ्क्तयो वनराजयः, ततः पूर्वोक्तसूत्रेभ्योऽस्य भिन्नार्थतेति न पौनरुक्त्यं, ताश्च कृष्णाः कृष्णावभासा इत्यादि विशेषणजातं प्राग्वत् यावन्मनोहारिण्यः, यावत्पदसङ्ग्रहश्चायं–'णीलाओ णीलोभासाओ हरिआओ हरिओभासाओ सीआओ सीओभासाओ णिद्धाओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल-संपादकस्य मुद्रण-शुद्धि-स्खलनत्वात् अत्र सूत्रस्य क्रम १९ द्वि-वारान् मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१९R] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७-३२]

णिद्धोभासाओ तिव्वाओ तिव्वोभासाओ किण्हाओ किण्हच्छायाओ णीलाओ णीलच्छायाओ हरिआओ हरिअच्छायाओ सीआओ सीअच्छायाओ णिद्धाओ णिद्धच्छायाओ तिव्वाओ तिव्वच्छायाओ घणकडिअडच्छायाओ वाचनान्तरे घणकडिअकडच्छायाओ महामेहणिकुरंबभूयाओ रम्माओ' इति, इदं च सूत्रं प्राक् पद्मवरवेदिकावनवर्णनाधिकारे लिखितमपि यत्पुनर्लिखितं तदतिदेशदर्शितानां सूत्रे साक्षाद्दर्शितानां च वनवर्णकविशेषणपदानां विभागज्ञापनार्थमिति, सूत्रे कानिचिदेकदेशग्रहणेन कानिचित्सर्वग्रहणेन कानिचित्क्रमेण कानिचिदुत्क्रमेण साक्षाल्लिखितानि सन्ति, तेन मा भूद्वाचयितृणां व्यामोह इति. सम्यक्पाठज्ञापनाय वृत्तौ पुनर्लिख्यते,–'रयमत्तछप्पयकोरगभिंगारकोंडलगजीवंजीवगनंदीमुहकविलपिंगलक्खगकारंडवचक्कवायकलहंससारसअणेगसउणगणमिहुणविअरिआओ सहुण्णइअमहुसरणादिआओ संपिंडिअत्ति–संपिंडिअदरियभमरमहुकरपहकरपरिलिंतमत्तच्छप्पयकुसुमासवलोलमहुरगुमगुमंतगुंजंतदेसभागाओ, णाणाविहगुच्छत्ति–णाणाविहगुच्छगुम्ममंडवगसोहिआओ, वावीपुक्खरिणीदीहिआसु अ सुणित्ति–वावीपुक्खरिणीदीहिआसु अ सुणिवेसिअरम्मजालघरयाओ विचित्तत्ति–विचित्तसुहकेउभूआओ अब्भिंतत्ति–अब्भिंतरपुप्फफलाओ बाहिरपत्तोच्छण्णाओ पत्तेहि अ पुप्फेहि अ उच्छण्णपरिच्छण्णाओ साउत्ति–साउफलाओ णिरोगकत्ति–णिरोगयाओ, सव्वोउअपुप्फफलसमिद्धाओ पिंडिमत्ति–पिंडिमनीहारिमं सुगंधिं सुहसुरभिं मणहरं च महया गंधद्धणिं मुअंतीओ जाव पासादीआओ इति, व्याख्या प्राग्वत्, नवरं रतमत्ताः–सुरतोन्मादिनो ये षट्पदाद्या जीवा इत्यादि, एवमेव हि सूत्रकाराः पदैकांश-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१९R] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७-३२]

ग्रहणतः 'एवं जाव तहेव इच्चाइ वण्णओ सेसं जहा' इत्यादिपदाभिव्यञ्जकैरतिदेशैर्दर्शितविवक्षणीयवाच्याः सूत्रे लाघवं दर्शयंति, यत उक्तं निशीथभाष्ये षोडशोद्देशके–"कत्थइ देसग्गहणं कत्थइ भण्णंति निरवसेसाइं । उक्कमकमजुत्ताइं कारणवसओ निरुत्ताइं ॥ १ ॥" [कुत्रचिद्देशग्रहणं कुत्रचित् भण्यन्ते निरवशेषाणि । उक्रमक्रमयुक्तानि कारणवशतो निरुक्तानि ॥ १ ॥] अथात्र वृक्षाधिकारात् कल्पद्रुमस्वरूपमाह—

तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ तहिं तहिं मत्तंगाणामं दुमगणा पण्णत्ता, जहा से चंदप्पभा जाव छण्णपडिच्छण्णा चिट्ठंति, एवं जाव अणिगणाणामं दुमगणा पण्णत्ता (सूत्रं० २०)

'तीसे ण'मित्यादि, तस्यां समायां भरते वर्षे तत्र तत्र देशे–तस्मिन् २ प्रदेशे मत्तं–मदस्तस्याङ्गं–कारणं मदिरारूपं येषु ते मत्ताङ्गा नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः, कीदृशास्ते इत्याह–यथा ते चन्द्रप्रभादयो मद्यविधयो बहुप्रकाराः, सूत्रे चैकवचनं प्राकृतत्वात् , यावच्छब्दाभ्यां सूचितो मत्ताङ्गादिद्रुमवर्णको जीवाभिगमोपाङ्गानुसारेण भावनीयः, स चायं 'जहा से चंदप्पभामणिसिलागवरसीधुवरवारुणिसुजायपत्तपुप्फफलचोअणिज्जाससारबहुदव्वजुत्तिसंभारकालसंधिआसवा महुमेरगरिट्ठाभदुद्धजातिपसन्नतल्लगसताउखज्जूरिमुद्दिआसारकाविसायणसुपक्कखोअरसवरसुरा वण्णगंधरसफरिसजुत्ता बलवीरिअपरिणामा मज्जविही बहुप्पगारा तहेव ते मत्तंगावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए मज्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा वीसंदंति

॥ ९९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र कल्पद्रुम-स्वरुपम् वर्ण्यते

कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव छन्नपडिच्छन्ना सिरीइ अईव उवसोभेमाणा२चिट्ठंती'ति अत्र व्याख्या–इदं च संकेतवाक्यं अपरेष्वपि व्याख्यास्यमानकल्पद्रुमसूत्रेषु बोध्यं, चन्द्रस्येव प्रभा–आकारो यस्याः सा चन्द्रप्रभा मणिशिलाकेव मणिशिलाका वरं च तत्सीधु च २ वरा चासौ वारुणी च वरवारुणी तथा सुजातानां–सुपरिपाकागतानां पुष्पानां फलानां चोयस्य–गन्धद्रव्यस्य यो निर्यासो–रसस्तेन साराः तथा बहूनां द्रव्याणामुपबृंहणकानां युक्तयो–मीलनानि तासां सम्भारः–प्राभूत्यं येषु ते तथा काले–स्वस्वोचिते सन्धितदङ्गभूतानां द्रव्याणां सन्धानं योजनमित्यर्थः तस्माज्जायन्ते इति कालसन्धिजाः, एवंविधाश्च ते आसवाः, किमुक्तं भवति ?–पत्रादिवासकद्रव्यभेदादनेकप्रकारो ह्यासवः पत्रासवादिरनेन निर्दिष्टो भवतीति, ततः पदद्वयपदद्वयमीलनेन विशेषणसमासः, मधुमेरकौ मद्यविशेषौ रिष्टाभा–रिष्टरत्नवर्णाभा या शास्त्रान्तरे जम्बूफलकलिकेति प्रसिद्धा दुग्धजातिः–आस्वादतः क्षीरसदृशी प्रसन्ना–सुराविशेषः तलकोऽपि–सुराविशेषः शतायुर्नाम या शतवारं शोधितापि स्वस्वरूपं न जहाति सारशब्दस्य प्रत्येकं योजनात् खर्ज्जूरसारनिष्पन्न आसवविशेषः खर्ज्जूरसारः, मृद्वीका–द्राक्षा तत्सारनिष्पन्न आसवो मृद्वीकासारः कपिशायनं–मद्यविशेषः सुपक्वः–परिपाकागतो यः क्षोदरसः–इक्षुरसस्तन्निष्पन्ना वरसुरा, एते सर्वेऽपि मद्यविशेषाः पूर्वकाले लोकप्रसिद्धा इदानीमपि शास्त्रान्तरतो लोकतो वा यथास्वरूपं वेदितव्याः, कथंभूता एते मद्यविशेषा इत्याह–वर्णेन प्रस्तावादतिशायिना एवं गन्धेन रसेन स्पर्शेन च युक्ता–सहिता बलहेतवो वीर्यपरिणामा येषां ते तथा बहवः प्रकारा जातिभेदेन येषां ते बहुप्रकाराः, तथैवेतिपदं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [३३]

भिन्नक्रमेण योजनात्, तथास्वरूपेणैव नं त्वन्यादृशेन मद्यविधिना–मद्यप्रकारेणोपपेतास्ते मत्ताङ्गा अपि द्रुमगणा इति भावः, अन्यथा दृष्टान्तयोजना न सम्यग्भवतीति, किंविशिष्टेन मद्यविधिनेत्याह–अनेको–व्यक्तिभेदाद्बहु–प्रभूतं यथा स्यात् तथा विविधो जातिभेदतो नानाविध इति भावः, स च केनापि कल्पपालादिना निष्पादितोऽपि सम्भाव्यते तत आह–विस्रसया–स्वभावेन तथाविधक्षेत्रादिसामग्रीविशेषजनितेन परिणतो न पुनरीश्वरादिना निष्पादित इति, तत पदत्रयस्य पदद्वय २ मीलनेन कर्मधारयः, सूत्रे च स्त्रीत्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, ते च मद्यविधिनोपपेता न तालादि-वृक्षा इवाङ्कुरादिषु किन्तु फलादिषु, तथा चाह–फलेषु पूर्णाः मद्यविधिभिरिति गम्यं, सप्तम्यर्थे तृतीया प्राकृतत्वात्, विष्यंदन्ति–श्रवन्ति सामर्थ्यात्तानेवानन्तरोदितान् मद्यविधीन्, क्वचिद्विसट्टन्तीति पाठः, तत्र विकसन्तीति व्याख्येयं, किमुक्तं भवति ?–तेषां फलानि परिपाकागतमद्यविधिभिः पूर्णानि स्फुटित्वा २ तान् मद्यविधीन् मुञ्चन्तीति भावः, शेषं तथैव । अथ द्वितीयकल्पवृक्षजातिस्वरूपमाख्यातुमाह–'तीसे णं समाए तत्थ २ तहिं २ बहवे भिंगंगाणाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से वारगघडगकलसकरगकक्करिपायंचणिउदंकवद्धणिसुपइट्ठगविट्ठरपारीचसकभिंगा-रकरोडिसरगपत्तीथालणल्लगचवलिअवमददगवारगविचित्तवट्टगमणिवट्टगसुत्तिचारुपीणयाकंचणमणिरयणभत्तिचित्ता भायणविही य बहुप्पगारा तहेव ते भिंगंगावि दुमगणा अणेगबहुविहवीससापरिणयाए भायणविहीए उववेआ फलेहिं पुण्णाविव विसट्टंती'ति तस्यां समायां तत्रेत्यादि प्राग्वत् भृतं–भरणं पूरणमित्यर्थः तत्राङ्गानि–कारणानि, न हि भरण-

॥१००॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रिया भरणीयं भाजनं वा विना भवतीति तत्सम्पादकत्वात् वृक्षा अपि भृताङ्गाः प्राकृतत्वाच्च भिंगंगा उच्यन्ते, यथा ते वारको–मरुदेशप्रसिद्धनामा माङ्गल्यघटः घटको–लघुर्घटः कलशो–महाघटः करकः प्रतीतः कर्करी–स एव विशेषः पादकाञ्चनिका–पादधावनयोग्या काञ्चनमयी पात्री उदङ्को–येनोदकमुदच्यते वार्द्धानी–गलंतिका, यद्यपि नामकोशे करककर्करीवार्द्धानीनां न कश्चिद्विशेषस्तथापीह संस्थानादिकृतो विशेषो लोकतोऽवसेय इति, सुप्रतिष्ठकः–पुष्पपात्रविशेषः पारी–स्नेहभाण्डं चषकः–सुरापानपात्रं भृङ्गारः–कनकालुषा सरको–मदिरापात्रं पात्रीस्थाले प्रसिद्धे दकवारके–जलघटः, विचित्राणि–विविधविचित्रोपेतानि वृत्तकानि–भोजनक्षणोपयोगीनि घृतादिपात्राणि तान्येव मणिप्रधानानि वृत्तकानि मणिवृत्तकानि शुक्तिः–चन्दनाद्याधारभूता शेषा विष्टरकरोडिनल्लकचपलितावमदचारुपीनका लोकतो विशिष्टसम्प्रदाया-द्वाऽवगम्याः, काञ्चनमणिरत्नानां भक्तयो–विच्छित्तयस्ताभिश्चित्रा भाजनविधयो–भाजनप्रकारा बहुप्रकारा एकैकस्मिन् विधाववान्तरानेकभेदभावात् तथैवेति पूर्ववत् ते भृताङ्गा अपि द्रुमगणा 'अणेगे'ति पूर्ववत् भाजनविधिनोपपेताः फलैः पूर्णा इव विकसन्ति, अयमर्थः–तेषां भाजनविधयः फलानीव शोभन्ते, अथवा इवशब्दस्य भिन्नक्रमेण योजना, तेन फलैः पूर्णा भाजनविधिना वोपपन्ना दृश्यन्ते इति। अथ तृतीयकल्पवृक्षस्वरूपमाह–'तीसे णं समाए तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहवे तुडिअंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो !, जहा से आलिंगमुइंगपणवपडहदद्दरगकरडिडिंडिमभंभाहोरम्भ-कणियखरमुहिमुगुंदसंखिअपिरलीवच्चकपरिवाइणिवंसवेणुघोसविवंचिमहतिकच्छभिरिगिसिगिआतलतालकंसतालसुसंपउ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

त्ता आतोज्जविही निउणगंधव्वसमयकुसलेहिं फंदिआ तिट्ठाणकरणसुद्धा तहेव ते तुडिअंगावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए ततवितततघणझुसिराए आतोज्जविहीए उववेआ फलेहिं पुण्णाविव विसट्टंति, कुसविकुसजाव चिट्ठंती'ति, यथा ते आलिङ्गो नाम यो वादकेन मुरज आलिङ्ग्य वाद्यते, हृदि धृत्वा वाद्यत इत्यर्थः, मृदङ्गो–लघुमर्दलः पणवो–भाण्ड-पटहो लघुपटहो वा पटहः स्पष्टः दर्दरिको यस्य चतुर्भिश्चरणैरवस्थानं भुवि स गोधाचर्मावनद्धो वाद्यविशेषः करटी–सुप्रसिद्धा डिण्डिमः–प्रथमप्रस्तावनासूचकः पणवविशेषः भंभा–ढक्का निःस्वानानीति सम्प्रदायः, होरंभा–महाढक्का महानिःस्वानानीत्यर्थः क्वणिता–काचिद्वीणा खरमुखी–काहला मुकुन्दो–मुरजविशेषो योऽतिलीनं प्रायो वाद्यते शङ्खिका-लघुशङ्खरूपा तस्याः स्वरो मनाक् तीक्ष्णो भवति न तु शङ्खस्येवातिगम्भीरः पिरलीवच्चकौ तृणरूपवाद्यविशेषौ परिवादि-नी–सप्ततन्त्री वीणा वंशः–प्रतीतः वेणुः–वंशविशेषः सुघोषा–वीणाविशेषः विपंचीति–तन्त्री वीणा–महती शततन्त्रिका सा कच्छपी–भारती वीणा रिगिसिगिका–घर्ष्यमाणवादित्रविशेष इति श्राद्धविधिवृत्तौ, एते कथंभूता इति ?, तलं–हस्तपुटं तालाः कांस्यतालाश्च प्रतीताः एतैः सुसंप्रयुक्ताः–सुष्ठु अतिशयेन सम्यग्–यथोक्तनीत्या प्रयुक्ताः–सम्बद्धाः, यद्यपि हस्तपुटं न कश्चित्तूर्यविशेषस्तथापि तदुत्थितशब्दप्रतिकृतिः शब्दो लक्ष्यते, एतादृशा आतोद्यविधयः–तूर्यप्रकाराः निपुणं यथा भवति एवं गन्धर्वसमये–नाट्यसमये कुशलास्तैः स्पन्दिता–व्यापारिता इति भावः, पुनः किंविशिष्टा इत्याह–त्रिषु–आदिमध्यावसानेषु स्थानेषु करणेन–क्रियया यथोक्तवादनक्रियया शुद्धा–अवदाता न पुनरस्थानव्यापार-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णरूपदोषलेशेनापि कलङ्किताः ते त्रुटिताङ्गा अपि द्रुमगणास्तथैव–तथाप्रकारेण न त्वन्यादृशेन ततं–वीणादिकं विततं–पटहादिकं घनं–कांस्यतालादिकं शुषिरं–वंशादिकं एतद्रूपेण सामान्यतश्चतुर्विधेन आतोद्यविधिनोपेपताः, शेषं प्राग्वत्। अथ चतुर्थकल्पवृक्षस्वरूपमाह–'तीसे णं समाए तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहवे दीवसिहाणामं दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो !, जहा से संझाविरागसमए नवनिहिवइणो दीविआचक्कवालविंदे पभूयवट्टिपलित्तणेहे धणिउज्जलिए तिमिरमद्दए कणगनिगरकुसुमिअपालिआतगवणप्पगासे कंचणमणिरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाहिं दीविआहिं सहसा पज्जालिउस्सप्पिअनिद्धतेअदिप्पंतविमलगहगणसमप्पहाहिं वितिमिरकरसूरपसरिउज्जोअचिल्लिआहिं जालुज्जलयहसिआभिरामाहिं सोभमाणा तहेव ते दीवसिहावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए उज्जोअविहीए उववेआ फलेहिं पुण्णा कुसविकुस जाव चिट्ठंती'ति, तस्यां समायां दीपशिखा इव दीपशिखास्तत्कार्यकारित्वात्, अन्यथा व्याघातकालत्वेन तत्राग्नेरभावाद्दीपशिखानामप्यसम्भवात्, योजना प्राग्वत्, यथा तत्सन्ध्यारूपो उपरमसमयवर्त्तित्वेन मन्दो रागस्तत्समये-तदवसरे नवनिधिपतेश्चक्रवर्त्तिन इव हृस्वा दीपा दीपिकास्तासां चक्रवालं–सर्वतः परिमण्डलरूपं वृन्दं कीदृगित्याह–प्रभूता–भूयस्यः स्थूरा वा वर्त्तयो–दशा यस्य तत्तथा पर्याप्तः–परिपूर्णः स्नेहः–तैलादिरूपो यस्य तत् तथा घनं–अत्यर्थमुज्ज्वलितं अत एव तिमिरमर्दकं, पुनः किंविशिष्टमित्याह–कनकनिकरः–सुवर्णराशिः कुसुमितं च तत्पारिजातकवनं च–पुष्पितसुरतरुविशेषवनं ततो द्वन्द्वस्तद्वत्प्रकाशः–प्रभा आकारो यस्य तत्तथा, एतावता समुदायविशेषणमुक्तमिदानीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [३३]

समुदायसमुदायिनोः कथंचित् भेद इति ख्यापयन् समुदायविशेषणमेव विवक्षुः समुदायिविशेषणान्याह–लोकेऽपि वक्कारो भवन्ति 'यदियं जन्ययात्रा महर्द्धिकजनैराकीर्णे'ति 'कंचणे'त्यादि, दीपिकाभिः शोभमानमिति सम्बन्धः, कथंभूताभिर्दीपिकाभिरत आह–काञ्चनमणिरत्नमयाः विमलाः–स्वाभाविकागन्तुकमलरहिता महार्हा–महोत्सवार्हाः तपनीयं–सुवर्णविशेषस्तेनोज्ज्वला–दीप्ताः विचित्रा–विचित्रवर्णा दण्डाः यासां तास्तथा ताभिः सहसा–एककालं प्रज्वालिताश्च ता उत्सर्पिताश्च वर्त्युत्सर्पणेन तथा स्निग्धं–मनोहरं तेजो यासां तास्तथा, दीप्यमानो रजन्यां भास्वान् विमलोऽत्र धूल्याद्यपगमेन ग्रहगणो–ग्रहसमूहस्तेन समा प्रभा यासां तास्तथा ताभिः, ततः पदद्वय २मीलनेन कर्मधारयः, तथा वितिमिराः कराः यस्यासौ वितिमिरकरो–निरन्धकारकिरणः स चासौ सूरश्च तस्येव यः प्रसृत उद्योतः–प्रभासमूहस्तेन चिल्लिआहिंति–देशीपदमेतत् दीप्यमानाभिरित्यर्थः, ज्वाला एव यदुज्ज्वलं प्रहसितं–हासस्तेनाभिरामा–रमणीयास्ताभिः, अत एव शोभमानं, तथैव ते दीपशिखा अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविस्रसापरिणतेनोद्योतविधिनोपपेताः, यथा दीपशिखा रात्रौ गृहान्तरुद्द्योतन्ते दिवा वा गृहादौ तद्वदेते द्रुमा इत्याशयः, एवं च वक्ष्यमाणज्योतिष्शिकाख्यद्रुमेभ्यो विशेषः कृतो भवतीति, शेषं प्राग्वत् । अथ पञ्चमकल्पवृक्षस्वरूपमाह–'तीसे णं समाए तत्थ २ बहवे जोइसिआ णामं दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो ! जहा से अइरुग्गयसरयसूरमण्डलपडंतउक्कासहस्सदिप्पंतविज्जुज्जलहुअवहणिद्धूमजलिअणिद्धंतधोअतत्ततवणिज्जकिंसुआसोअजासुअणकुसुमविमउलिअपुंजमणिरयणकिरणजच्चहिंगुलयणिगररूवाइरेगरूवा ॥१०२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तहेव ते जोइसिआवि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए उज्जोअविहीए उववेया सुहलेसा मंदलेसा मंदायवलेसा कूडा इव ठाणट्ठिआ अन्नोन्नसमोगाढाहिं लेसाहिं साए पहाए ते पएसे सव्वओ समंता ओहासेंति उज्जोअंति पभासंति कुसुम जाव चिट्ठंतीति, अत्र व्याख्या–तस्यां समायां 'तत्थे'त्यादि पूर्ववत्, ज्योतिषिका नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता इत्यन्वययोजना, नामान्वर्थस्वयं–ज्योतींषि–ज्योतिष्का देवास्त एव ज्योतिषिकाः, अत्र मतान्तरेण स्वार्थे इकप्रत्ययः, 'उणादयोऽव्युत्पन्नानि नामानी'त्यव्युत्पत्तिपक्षाश्रयणादिसुप्रत्ययान्तत्वाभावादिकारलोपाभावश्च सम्भाव्यते, जीवाभिगमवृत्तौ ज्योतिषिका इति संस्कारदर्शनात्, तत्रापि प्रधानाप्रधानयोः प्रधानस्यैव ग्रहणं, तेन अत्र ज्योतिषिकशब्देन सूर्यो गृह्यते, तत्सदृशप्रकाशकारित्वेन वृक्षा अपि ज्योतिषिकाः, 'ज्योतिर्वह्निदिनेशयोः' इति वचनाद्वा ज्योतिःशब्दः सूर्यवाचको वह्निवाचको वा, शेषं स्वार्थिकप्रत्ययादिकं तथैव, ते च किंविशिष्टा इत्याह–यथा ते 'अचिरे'त्यादिना 'हुतवह' इत्यन्तेन सम्बन्धः, अचिरोद्गतं शरत्सूर्यमण्डलं, यथा वा पतदुल्कासहस्रं प्रसिद्धं, यथा वा दीप्यमाना विद्युत् यथा वा उद्गता ज्वाला यस्य स उज्ज्वालः, तथा निर्द्धूमो–धूमरहितो ज्वलितो–दीप्तो हुतवहो–दहनः, सूत्रे पदोपन्यासव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, ततः सर्वेषामेषां द्वन्द्वः, एते च कथंभूता इत्याह–निर्धौतं–नितरामग्निसंयोगेन (शोधितमलं) यद्धौतं–शोधितं तप्तं च तपनीयं, ये च किंशुकाशोकजपाकुसुमानां विमुकुलितानां–विकसितानां पुञ्जा ये च मणिरत्नकिरणाः यश्च जात्यहिङ्गुलकनिकरस्तद्रूपेभ्योऽतिरेकेण–अतिशयेन यथायोगं वर्णतः प्रभया च रूपं–स्वरूपं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [३३]

येषां ते तथा, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, तथैव ते ज्योतिषिका अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविस्रसापरिणते-नोद्द्योतविधिनोपपेता यावत्तिष्ठन्तीति सण्टङ्कः, ननु यदि सूर्यमण्डलादिषत्ते प्रकाशकास्तर्हि तद्वत्ते दुर्निरीक्ष्यत्वतीव्रत्व-जङ्गमत्वादिधर्मोपेता अपि भवन्तीत्याह–सुखा–सुखकारिणी लेश्या–तेजो येषां ते तथा अत एव मन्दलेश्यास्तथा मन्दा-तपस्य लेश्या–जनितप्रकाशस्य लेश्या येषां ते तथा, सूर्यानलाद्यातपस्य तेजो यथा दुस्सहं न तथा तेषामित्यर्थः, तथा कूटानीव–पर्वतादिशृङ्गाणीव स्थानस्थिताः–स्थिरा इति, समयक्षेत्रबहिर्वर्तिज्योतिष्का इव तेऽवभासयन्तीति भावः, तथाऽन्योऽन्यं–परस्परं समवगाढाभिर्लेश्याभिः सहिता इति शेषः, किमुक्तं भवति?–यत्र विवक्षिता ज्योतिषिकाख्य-तरुलेश्या अवगाढा तत्रान्यस्य लेश्याऽवगाढा यत्रान्यतरुलेश्या अवगाढा तत्र विवक्षिततरुलेश्या अवगाढा इति, 'साए पभाए'इत्यादि, 'पभासन्ती'त्यन्तं सूत्रं विजयद्वारतोरणसम्बन्धिरत्नकरण्डकवर्णने व्याख्यातमिति, 'कुशविकुशे'-त्यादि पूर्ववत्, एषां च बहुन्यापी दीपशिखावृक्षप्रकाशापेक्षया तीव्रश्च प्रकाशो भवतीति पूर्वेभ्यो विशेषः। अथ षष्ठक-ल्पवृक्षस्वरूपमाह–'तीसे णं समाए तत्थ २ बहवे चित्तंगा णामं दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से पेच्छाघरे विचित्ते रम्मे वरकुसुमदाममालुज्जले भासंतमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए विरल्लिअविचित्तमल्लसिरिसमुदयप्पगब्भे गंठिम-वेढिमपूरिमसंघाइमेण मल्लेणं छेअसिप्पिविभागरइएणं सव्वओ चेव समणुबद्धे पविरललंबंतविप्पइट्ठपंचवण्णेहिं कुसुय-दामेहिं सोभमाणे वणमालकयग्गए चेव दिप्पमाणे, तहेव ते चित्तंगावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए

॥१०३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मल्लविहीए उववेआ कुसविकुसजाव चिट्ठन्ती'ति, तस्यां समायामित्यादि प्राग्वत्, नवरं 'चित्तंगा' इति चित्रस्य अनेकप्रकारस्य विवक्षाप्राधान्यान्माल्यस्य अंगं–कारणं तत्सम्पादकत्वाद्दक्षा अपि चित्राङ्गाः, यथा तत्प्रेक्षागृहं विचित्रं–नानाचित्रोपेतमत एव रम्यं-रमयति द्रष्टृणां मनांसीति बाहुलकात् कर्त्तरि यप्रत्ययः, किंविशिष्ट इत्याह–वरकुसुमदामां मालाः-श्रेणयस्ताभिरुज्ज्वलं देदीप्यमानत्वात्, तथा भास्वान्–विकसिततया मनोहरतया च देदीप्यमानो मुक्तो यः पुष्पपुञ्जोपचारस्तेन कलितं, तथा विरलितानि 'तमूथी विस्तारे' इत्यस्य 'तमेस्तडतडतडविरला' इत्यनेन विरलादेशे कृते क्तप्रत्यये च विरलितानि–विरलीकृतानि विचित्राणि यानि माल्यानि-ग्रथितपुष्पमालास्तेषां यः श्रीसमुदयः-शोभाप्रकर्षस्तेन प्रगल्भं–अतीव परिपुष्टं, तथा ग्रंथिमं–यत्सूत्रेण ग्रथितं वेष्टिमं–यत् पुष्पमुकुटमिवोपर्युपरि भ्रियराकृत्या मालारचनं पूरिमं–यल्लघुच्छिद्रेषु पुष्पनिवेशेन पूर्यते सङ्घातिमं–यत्पुष्पं पुष्पेण परस्परनालप्रवेशेन संयोज्यते, ततः समाहारद्वन्द्वे एवंविधेन माल्येन छेकशिल्पिना–परमदक्षिणकलावता विभागरचितेन–विभक्तिपूर्वकं कुशलेन यत्र यत्र योग्यं ग्रन्थिमादि तत्र तेन सर्वतः–सर्वासु दिक्षु समनुबद्धं, तथा प्रविरलैर्लम्बमानैः, तत्र प्रविरलत्वं मनागप्यसंहतत्वमात्रेण भवति ततो विप्रकृष्टत्वप्रतिपादनायाह–विप्रकृष्टैः–बृहदन्तरालैः पञ्चवर्णैः, ततः कर्मधारयः, कुसुमदामभिः शोभमानं, वनमालावन्दनमाला कूलाऽग्रे–अग्रभागे यस्य तत्तथा, तथाभूतं सदीप्यमानं, तथैव चित्राङ्गा अपि नाम द्रुमगणा अनेकबहुविधविविधविस्रसापरिणतेन माल्यविधिनोपपेताः, 'कुसविकुसविसुद्धमूला' इत्यादि प्राग्वत् । अथ सप्तमकल्पवृक्षस्वरूप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माह–'तीसे णं समाए तत्थ २ बहवे तहिं २ चित्तरसा णामं दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से सुगंधवरकमलसालितंदुलविसिट्ठणिरुवहयदुद्धरद्धे सारयघयगुडखंडमहुमेलिए अइरसे परमण्णे होज्जा उत्तमवण्णगंधमंते अहवा रण्णो चक्कवट्टिस्स होज्ज णिउणेहिं सूवपुरिसेहिं सज्जिए चउक्कप्पसेअसित्ते इव ओदणे कलमसालिणिवत्तिए विप्पमुक्के सवप्फमिउविसयसगलसित्थे अणेगसालणगसंजुत्ते अहवा पडिपुण्णदव्वुवक्खडे सुसक्खए वण्णगंधरसफरिसजुत्तबलवीरिअपरिणामे इंदिअबलपुट्ठिविवद्धणे खुप्पिवासामहणे पहाणंगुलकढिअखंडमच्छंडिघउवणीएव मोअगे सण्हसमिइगब्भे हवेज्ज परमेट्ठगसंजुत्ते तहेव ते चित्तरसावि दुमगणा अणेगबहुविहविविहवीससापरिणयाए भोअणविहीए उववेआ कुसविकुसजाव चिट्ठंती'ति, तस्यां समायामित्यादि योजना प्राग्वत्, नवरं चित्रो–मधुरादिभेदभिन्नत्वेनानेकप्रकार आस्वादयितृणामाश्चर्यकारी वा रसो येषां ते तथा, यथावत्परमान्नं–पायसं भवेदिति सम्बन्धः, किंविशिष्टमित्याह–ये सुगन्धाः–प्रवरगन्धोपेताः, समासान्तविधेरनित्यत्वादत्रेदरूपस्य समासान्तस्याभावो यथा सुरभिगन्धेन वारिणेति, वराः–प्रधाना दोषरहितक्षेत्रकालादिसामग्रीसम्पादितात्मलाभा इति भावः, कलमशालेः–शालिविशेषस्य तन्दुला–निस्त्वचितकणाः यच्च विशिष्टं–विशिष्टगवादिसम्बन्धि निरुपहतमिति–पाकादिभिरविनाशितं दुग्धं तै राद्धं–पक्वं, परमकलमशालिभिः परमदुग्धेन च यथोचितमात्रपाकेन निष्पादितमित्यर्थः, तथा शारदघृतं गुडः खण्डं मधु वा शर्करापरपर्यायं मेलितं यत्र तत्तथा, क्तान्तस्य परनिपातः प्राकृतत्वात् सुखादिदर्शनाद्वा, अत एवातिरसमुत्तमवर्णगन्धवत्, यथा वा राज्ञश्च-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रवर्त्तिनः ओदन इव भवेदित्यन्वयः, निपुणैः सूपपुरुषैः–सूपकारैः सज्जितो–निष्पादितः चत्वारः कल्पा यत्र स चासौ सेकश्च चतुष्कल्पसेकस्तेन सिक्तः, रसवतीशास्त्राभिज्ञा हि ओदनेषु सौकुमार्योत्पादनाय सेकविषयांश्चतुरः कल्पान् विदधति, स च ओदनः किंविशिष्ट? इत्याह–कलमशालिनिर्वर्त्तितः कलमशालिमय इत्यर्थः, विपक्को–विशिष्टपरिपाकमागतः सबाष्पानि–बाष्पं मुञ्चन्ति मृदूनि–कोमलानि चतुष्कल्पसेकादिना परिकर्म्मितत्वात् विशदानि सर्वथा तुषादिमलापगमात् सकलानि–पूर्णानि सित्थानि यत्र स तथा, अनेकानि शालनकानि–पुष्पफलप्रभृतीनि प्रसिद्धानि तैः संयुक्तः, अथवा मोदक इव भवेदिति, किंविशिष्ट? इत्याह–परिपूर्णानि–समस्तानि द्रव्याणि–एलाप्रभृतीनि उपस्कृतानि–नियुक्तानि यत्र स तथा, निष्ठान्तस्य परनिपातः सुखादिदर्शनात्, सुसंस्कृतो–यथोक्तमात्राग्निपरितापादिना परमसंस्कारमुपनीतः वर्णगन्धरसस्पर्शाः सामर्थ्यादतिशायिनस्तैर्युक्ता बलवीर्यहेतवश्च परिणामा आयतिकाले यस्य स तथा, अतिशायिभिर्वर्णादिभिर्बलवीर्यहेतुपरिणामैश्चोपेता इति भावः, तत्र बलं–शारीरं वीर्य-आन्तरोत्साहः, तथा इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां बलं–स्वस्वविषयग्रहणपाटवं तस्य पुष्टिः–अतिशायी पोषस्तां वर्द्धयति, नन्द्यादित्वादनः, तथा क्षुत्पिपासामथन इति व्यक्तं, तथा प्रधानः क्थितो–निष्पक्को गुडस्तादृशं वा खण्डं तादृशी वा मत्स्यण्डी–खण्डशर्करा तादृशं वा घृतं तान्युपनीतानि–योजितानि यस्मिन् स तथा, निष्ठान्तस्य परनिपातः सुखादिदर्शनात्, तथा श्लक्ष्णा–सूक्ष्मा त्रिर्वस्त्रगालितत्वेन समिता–गोधूमं चूर्णं तद्गर्भः–तन्मूलदलनिष्पन्न इति भावः, परमेष्टकं–अत्यन्तवल्लभं तदुपयोगि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यं तेन संयुक्तः, एतद्व्यक्तिः सम्प्रदायगम्या, तथैव ते चित्ररसा अपि द्रुमगणाः अनेकबहुविधविविधविस्रसापरिणतेन भोजनविधिनोपपेता इत्यादि प्राग्वत्। अथाष्टमकल्पवृक्षस्वरूपमाह–'तीसे णं समाए तत्थ २ बहवे मणिअंगा णामं दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से हारद्धहारवेडणयमउडकुंडलवामुत्तगहेमजालमणिजालकणगजालगसुत्तगउच्चियकडगखुडुयएकावलिकंठसुत्तगमगरिअउरत्थगेविज्जसोणिसुत्तगचूलामणिकणगतिलगफुल्लगसिद्धत्थयकण्णवालिससिसूरउसहचक्कगतलभंगयतुडिअहत्थमालगहरिसयकेऊरवलयपालंबअंगुलिज्जगवलक्खदीणारमालिआकंचिमेहलकलावपयरगपारिहेरगपायजालघंटिआखिंखिणिरयणोरुजालखुड्डिअवरगेऊरचलणमालिआकणगणिगलमालिआकंचणमणिरयणभत्तिचित्ता तहेव ते मणिअंगावि दुमगणा अणेगजावभूसणविहीए उववेआ जाव चिट्ठंती'ति तस्यां समायामित्यादि प्राग्वत्, नवरं मणिमयानि आभरणान्याधेये आधारोपचाराम्मणीनि तान्येवाङ्गानि–अवयवा येषां ते मण्यङ्गा भूषणसम्पादका इत्यर्थः, यथा ते हाराः–अष्टादशसरिकः अर्द्धहारो–नवसरिकः वेष्टनकः–कर्षाभरणविशेषः मुकुटकुण्डले प्रतीते वामोत्तकः हेमजालं–सच्छिद्रसुवर्णालङ्कारविशेषः एवं मणिजालकनकजालके अपि, परं कनकजालकस्य हेमजालतो भेदो दृष्टिगम्यः, सूत्रकं–वैकक्षककृतं सुवर्णसूत्रं उचितकटकानि–योग्यवलयानि क्षुद्रकं–अङ्गुलीयकविशेषः एकावली च–विचित्रमणिकृता एकसरिका च कण्ठसूत्रं–प्रसिद्धं मकरिका–मकराकार आभरणविशेषः उरस्यं हृदयाभरणविशेषः ग्रैवेयं–ग्रीवाभरणविशेषः, अत्र सामान्यविवक्षया ग्रैवेयमिति जीवाभिगमवृत्त्यनुसारेणोक्तं, अन्यथा हेमव्याकरणादावलङ्कारविवक्षायां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रैवेयकमिति स्यात्, एवमन्यत्रापि तत्तद्वृत्त्यनुसारेण ज्ञेयं, श्रोणिसूत्रकं–कटिसूत्रकं चूडामणिर्नाम सकलनृपरक्षसारो नरामरेन्द्रमौलिस्थायी अमङ्गलामयप्रमुखदोषहृत् परममङ्गलभूत आभरणविशेषः कनकतिलकं–ललाटाभरणं पुष्पकं-पुष्पाकृति ललाटाभरणं सिद्धार्थकं–सर्षपप्रमाणस्वर्णकणरचितसुवर्णमणिकमयं कर्णवाली–कर्णोपरितनविशेषभूषणविशेषः शशिसूर्यवृषभाः स्वर्णमयचन्द्रकादिरूपा आभरणविशेषाः चक्रकं–चक्राकारः शिरोभूषणविशेषः तलभङ्गकं त्रुटिकानि च बाह्याभरणानि, अनयोर्विशेषस्तु आकारकृतः, हस्तमालकं हर्षकं केयूरं-अङ्गदं, पूर्वस्वाकृतिकृतो विशेषः, वलयं–कङ्कणं प्रालम्बं–झुम्बनकं अङ्गुलीयकं-मुद्रिका वलक्षं-रूढिगम्यं दीनारमालिका चन्द्रमालिका सूर्यमालिका–दीनाराद्याकृतिमणिकमालाः काञ्चीमेखलाकलापाः–स्त्रीकट्याभरणविशेषाः, विशेषश्चैषां रूढिगम्यः, प्रतरकं–वृत्तप्रतर आभरणविशेषः पारिहार्यं–वलयविशेषः पादेषु जालाकृतयो घण्टिका–घर्घरिकाः किङ्किण्यः–क्षुद्रघण्टिकाः रत्नोरुजालं–रत्नमयं जङ्घावाः प्रलम्बमानं सङ्कलकं सम्भाव्यते क्षुद्रिका वराणि नूपुराणि व्यक्तानि चरणमालिका–संस्थानविशेषकृतं पादाभरणं लोके पागडां इति प्रसिद्धं, कनकनिगडः–निगडाकारः पादाभरणविशेषः सौवर्णः सम्भाव्यते, (लोके) च कडलां इति प्रसिद्धानि, एतेषां मालिका–श्रेणिः, अत्र च व्याख्यातव्यतिरिक्तं भूषणस्वरूपं लोकतो गम्यं, इत्यादिका भूषणविधयो–मण्डनप्रकाराः बहुप्रकारा अवान्तरभेदात्, ते च किंविशिष्टा इत्याह–काञ्चनमणिरत्नभक्तिचित्रा इति व्यक्तं, तथैव च–तथा प्रकारेण भूषणविधिनोपपेतास्ते मण्यङ्गा इति तात्पर्यार्थः, शेषं प्राग्वत् । अथ नवमकल्पवृक्ष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूपमाह—'तीसे णं समाए तत्थ २ बहवे गेहागारा णामं दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो !, जहा से पागारट्टाल-यचरिअदारगोपुरपासायागासतलमंडवएगसालगबिसालगतिसालगचउसालगगब्भघरमोहणघरवलभीहरचित्तमालयघर-भत्तिघरवट्टतंसचउरंसणंदिआवत्तसंठिआ पंडुरतलमुंडमालहम्मियं अहवणं धवलहरअद्धमागहविब्भमसेलद्धसेलसंठिअ-कूडागारसुविहिअकोट्ठगअणेगघरसरणलेणआवणा विडंगजालविंदणिज्जूहअपवरगचंदसालिआरूवविभत्तिकलिआ भवण-विही बहुविकप्पा तहेव ते गेहागारावि दुमगणा अणेगबहुविह विविहवीससापरिणयाए सुहारुहणसुहोत्ताराए सुहणिक्ख-मणपवेसाए दद्दरसोपाणपंतिकलिआए पइरिक्कसुहविहाराए मणोणुकूलाए भवणविहीए उववेआ जाव चिट्ठंती'ति, तस्यां समायामित्यादि प्राग्वत्, गेहाकारा नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः, यथा ते प्राकारो—वप्रः अट्टालकः—प्राकारोपरिवर्त्त्याश्रय-विशेषः चरिका—नगरप्राकारान्तरालेऽष्टहस्तप्रमाणो मार्गः द्वारं व्यक्तं, गोपुरं—पुरद्वारं प्रासादो—नरेन्द्राश्रयः आकाश-तलं—कटाद्यच्छन्नकुट्टिमं मण्डपः—छायाद्यर्थं पटादिमय आश्रयविशेषः एकशालकद्विशालकत्रिशालकचतुःशालकादीनि भवनानि, नवरं गर्भगृहं—सर्वतोवर्त्तिगृहान्तरं अभ्यन्तरगृहमित्यर्थः, अन्यथोत्तरत्र वक्ष्यमाणेनापवरकेण पौनरुक्त्यं स्यात्, मोहनगृहं—सुरतगृहं, वलभी—छदिराधारस्तत्प्रधानं गृहं, चित्रशालगृहं—चित्रकर्मवद् गृहं मालकगृहं—द्वितीयभू-मिकाद्युपरिवर्ति गृहं भक्तिः—विच्छित्तिस्तत्प्रधानं गृहं वृत्तं—वर्तुलाकारं व्यस्रं-त्रिकोणं चतुरस्रं—चतुष्कोणं नन्द्यावर्त्तः—प्रासादविशेषस्तद्वत्संस्थितानि नन्द्यावर्त्ताकाराणि गृहाणि पश्चात् द्वन्द्वः, पाण्डुरतलं—सुधामयतलं मुण्डमालहर्म्यं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्यनाच्छादितशिखरादिभागरहितं हर्म्यं, अथवा णमिति प्राग्वत्, धवलगृहं–सौधं अर्द्धमागधविभ्रमाणि–गृहविशेषाः शैलसंस्थितानि–पर्वताकाराणि गृहाणि अर्द्धशैलसंस्थितानि तथैव कूटाकारेण–शिखराकृत्याऽऽढ्यानि सुविधिकोष्ठकानि–सुसूत्रणापूर्वकरचितोपरितनभागविशेषा अनेकानि गृहाणि सामान्यतः शरणानि–तृणमयानि लयनानि-पर्वतनिकुट्टितगृहाणि आपणा–हट्टाः इत्यादिका भवनविधयो–वास्तुप्रकारा बहुविकल्पा इत्यन्वयः, कथम्भूता इत्याह–विटङ्कः–कपोतपाली जालवृन्दः–गवाक्षसमूहः निर्यूहो–द्वारोपरितनपार्श्वविनिर्गतदारु अपवरकः प्रतीतः चन्द्रशालिका–शिरोगृहं, एवंरूपाभिर्विभक्तिभिः कलिताः, तथैव भवनविधिनोपपेतास्ते गेहाकारा अपि द्रुमगणास्तिष्ठन्तीति सम्बन्धः, किंविशिष्टेन विधिनेत्याह—सुखेनारोहणं-ऊर्ध्वगमनं सुखेनावतारः–अधस्तादवतरणं यस्य स तथा सुखेन निष्क्रमणं–निर्गमः प्रवेशश्च यत्र स तथा, कथमुक्तस्वरूपमित्याह—दर्दरसोपानपङ्क्तिकलितेन, अत्र हेतौ तृतीया, तथा प्रतिरिक्ते–एकान्ते सुखो विहारः अवस्थानशयनादिरूपो यत्र स तथा मनोऽनुकूलेनेति व्यक्तं, शेषं प्राग्वत्। अथ दशमकल्पवृक्षस्वरूपमाह—'तीसे णं समाए तत्थ तत्थ बहवे अणिगणा णामं दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से आईणगखोमतणुलकंबलदुगूलकोसेज्जकालमिगपट्टअंसुअचीणअंसुअपट्टा आभरणचित्तसण्हगकल्लाणगभिंगणीलकज्जलबहुवण्णरत्तपीअसुक्किलसकयमिगलोमहेमप्परलगअवरुत्तरासिंधुउसभदामिलवंगकलिंगनलिणतंतुमयभत्तिचित्ता वत्थविही बहुप्पगारा पवरपट्टणुग्गया वण्णरागकलिआ तहेव ते अणिगणावि दुमगणा अणेगबहुविहविविहवीससापरिणयाए वत्थविहीए उववे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ कुसविकुसजाव चिट्ठंती'ति वाक्ययोजना पूर्ववत्, नामार्थस्तु विचित्रवस्त्रदायित्वात् न विद्यन्ते नग्नास्तत्कालीनजना येभ्यस्तेऽनग्नाः, यच्च प्राक्तनेषु बहुषु जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रादर्शेषु आयाणा इति दृश्यते स लिपिप्रमादः सम्भाव्यते, प्रस्तुतसूत्रालापकविस्तारोपदर्शके जीवाभिगमे एतादृशस्य पाठस्यादर्शनात्, आजिनकं—चर्ममयं वस्त्रं क्षौमं—तामान्यतः कार्पासिकं अतसीमयमित्यन्ये, तनुः—शरीरं सुखस्पर्शतया लाति—आदत्ते गृह्णातीति तनुलं—तनुसुखादि कम्बलः प्रतीतः तथुअकम्बल इति पाठे तु तन्तुकः—सूक्ष्मोर्णाकम्बलः दुकूलं—गौडविषयविशिष्टं कार्पासिकं अथवा दुकूलो—वृक्षविशेषस्तस्य वल्कं गृहीत्वा उदूखले जलेन सह कुट्टयित्वा वुसीकृत्य च व्यूयते यत्तद् दुकूलं कौशेयं—कृमिविशेषस्तन्तुनिष्पन्नं कालमृगपट्टः—कालमृगचर्म्म अंशुकचीनांशुकानि नानादेशेषु प्रसिद्धानि दुकूलविशेषरूपाणि, पूर्वोक्तस्यैव वल्कस्य बाह्याभ्यन्तरहीरिभिर्निष्पाद्यन्ते सूक्ष्मान्तराणि भवन्ति तानि चीनांशुकानि वा पट्टानि—पट्टसूत्रनिष्पन्नानि आभरणैर्विचित्राणि—विचित्राणि आभरणविचित्राणि श्लक्ष्णानि—सूक्ष्मतन्तुनिष्पन्नानि कल्याणकानि—परमवस्त्रलक्षणोपेतानि भृङ्गः—कीटविशेषः स इव नीलं तथा कज्जलवर्णं बहुवर्णं—विचित्रवर्णं रक्तं पीतं शुक्लं संकृत्तं—परिकर्मितं वन्यमृगलोम हेम च तदात्मकं कनकरत्नचित्रितत्वादिधर्मयोगात् रल्लकः—कम्बलविशेषो जीणादिः पश्चात् द्वन्द्वः, एते च कथंभूता इत्याह—अपरः—पश्चिमदेशः उत्तरः—उत्तरदेशः सिन्धुः—देशविशेषः उसभत्ति—सम्प्रदायगम्यं द्रविडबंगकलिङ्गा देशविशेषाः एतेषां सम्बन्धिनस्तद्देशोत्पन्नत्वेन ये ते तथा नलिनतन्तवः—सूक्ष्मतन्तवस्तन्मय्यो या भक्तयो—विच्छित्तयो विशिष्टरचनास्ताभिः चित्रा

Jain Education International

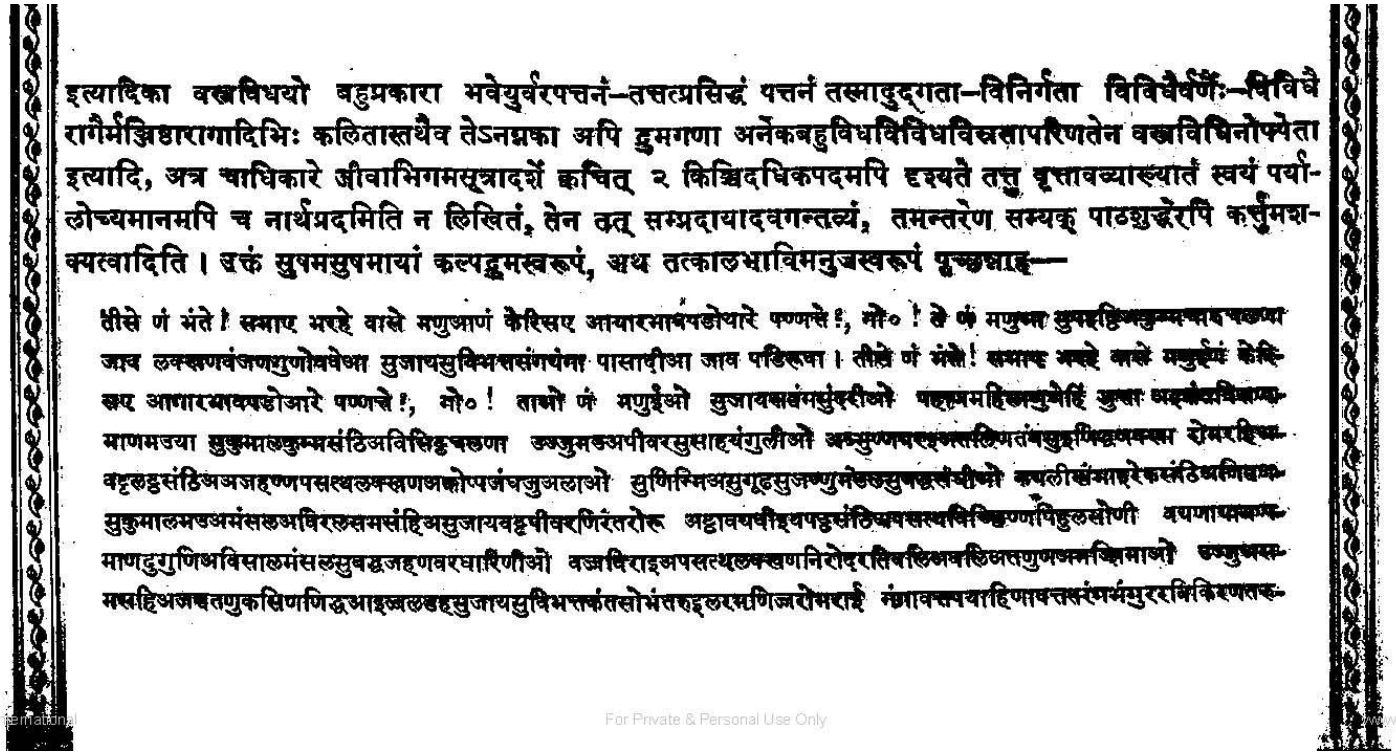
For Private & Personal Use Only

www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [३३]



इत्यादिका वस्त्रविधयो बहुप्रकारा भवेयुर्वरपत्तनं–तत्तत्प्रसिद्धं पत्तनं तस्मादुद्गता–विनिर्गता विविधैर्वर्णैः–विविधै रागैर्मञ्जिष्ठारागादिभिः कलितास्तथैव तेऽनग्नका अपि द्रुमगणा अनेकबहुविधविविधविस्रसापरिणतेन वस्त्रविधिनोपपेता इत्यादि, अत्र चाधिकारे जीवाभिगमसूत्रादर्शे क्वचित् २ किञ्चिदधिकपदमपि दृश्यते तत्तु वृत्तावव्याख्यातं स्वयं पर्यालोच्यमानमपि च नार्थप्रदमिति न लिखितं, तेन तत् सम्प्रदायादवगन्तव्यं, तमन्तरेण सम्यक् पाठशुद्धेरपि कर्तुमशक्यत्वादिति । उक्तं सुषमसुषमायां कल्पद्रुमस्वरूपं, अथ तत्कालभाविमनुजस्वरूपं पृच्छन्नाह—

तीसे णं भंते! समाए भरहे वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?, गो०! तेसि णं मणुआणं सुसमसुसमाए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ जाव तणवणस्सइवण्णओ सुजायसुविभत्तसंगयंगा पासादीआ जाव पडिरूवा। तीसे णं भंते! समाए भरहे वासे मणुईणं केरिसए आगारभावपडोआरे पण्णत्ते?, गो०! ताओ णं मणुईओ सुजायसव्वंगसुंदरीओ पहाणमहिलागुणेहिं जुत्ता अइसोहिमाणमज्जा सुकुमालकुम्मसंठिअविसिट्ठचलण उज्जुमउअपीवरसुसाहयंगुलीओ अब्भुण्णयरइअतलिणतंबसुद्धणिद्धणक्खा रोमरहिअवट्टलट्ठसंठिअअजहण्णपसत्थलक्खणअकोप्पजंघजुअलाओ सुणिम्मिअसुगूढसुजण्णुमंडलसुणिअत्तसंधीओ कयलीखंभाहेरुकसंठिअविसिट्ठसुकुमालमउअमंसलअविरलसमसंहिअसुजायवट्टपीवरणिरंतरोरू अट्ठावयवीइपट्टसंठिअपसत्थविच्छिण्णपिहुलसोणी वयणायामप्पमाणदुगुणिअविसालमंसलसुबद्धजहणवरधारिणीओ वज्जविराइअपसत्थलक्खणनिरोदरतिवलिअवलिअतणुणमणिज्जमाओ उज्जुअसमसहिअजच्चतणुकसिणणिद्धआइज्जलडहसुजायसुविभत्तकंतसोभंतरुइलरमणिज्जरोमराई गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरणतरुणबोधिअआकोसायंतपउमगब्भीरविअडणाभी अणुब्भडपसत्थपीणकुच्छी सण्णयपासा संगयपासा सुंदरपासा सुजायपासा मिअमाइअपीणरइअपासा अकरंडुअकणगरुअगणिम्मलसुजायणिरुवहयदेहधारी कणगसिलातलुज्जलपसत्थसमतलोवचिअविच्छिण्णपिहुलवक्खत्थरा पीवरसुजायसंठिअपसत्थभुजा जुगसण्णिभपीणरइअघणथिरसुसिलिट्ठवट्टदोभुआ रत्तुप्पलपत्तमउअसुकुमालतालुजीहा मूसागयपवरकणगतावि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र सुषमसुषमकालवर्ती मनुष्यस्य स्वरुपम् कथ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

णाओहिअआकोसायंतपउमगंभीरविअडणाभा अणुब्भडपसत्थपीणकुच्छीओ सण्णयपासाओ संगयपासाओ सुजायपासाओ मिअमाइ-अपीणरइअपासाओ अकरंडुअकणगरुअगणिम्मलसुजायणिरुवहयगायलट्ठीओ कंचणकलसप्पमाणसमसहिअलट्ठचुचुआमेलगजमलजु-अलवट्टिअअब्भुण्णयपीणरइअयपीवरपओहराओ भुअंगअणुपुव्वतणुअगोपुच्छवट्टसंहिअणमिअआइज्जललिअबाहा तंबणहाओ मंसलग्गह-त्थाओ पीवरकोमलवरंगुलीआओ णिद्धपाणिरेहा रविससिसंखचक्कसोत्थियसुविभत्तसुविरइअपाणिलेहाओ पीणुण्णयकक्खवत्थि-प्पएसा पडिपुण्णगलकपोला चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवाओ मंसलसंठिअपसत्थहणुगाओ दाडिमपुप्फप्पगासपीवरपलंब-कुंचिअवराधराओ सुंदरुत्तरोट्ठाओ दहिदगरयचंदकुंदवासंतिमउलधवलअच्छिद्दविमलदसणाओ रत्तुप्पलपत्तमउअसुकुमालतालुजी-हाओ कणवीरमउलकुडिलअब्भुग्गयउज्जुतुंगणासाओ सारयणवकमलकुमुअकुवलयविमलदलणिअरसरिसलक्खणपसत्थअजिम्हकं-तणयणा पत्तलधवलायतआतंवलोअणाओ आणामिअचावरुइलकिण्हब्भराइसंगयसुजायभुमगाओ अल्लीणपमाणजुत्तसवणा सुसव-णाओ पीणमट्ठगंडलेहाओ चउरंसपसत्थसमणिडालाओ कोमुईरयणिअरविमलपडिपुण्णसोमवयणा छत्तुण्णयउत्तमंगाओ अकविलसु-सिणिद्धसुगंधदीहसिरयाओ छत्त १ ज्झय २ जूअ ३ थूभ ४ दामणि ५ कमंडलु ६ कलस ७ वावि ८ सोत्थिअ ९ पडाग १० जव ११ मच्छ १२ कुम्म १३ रहवर १४ मगरज्झय १५ अंक १६ थाल १७ अंकुस १८ अट्ठावय १९ सुपइट्ठग २० मयूर २१ सिरिअभिसेअ २२ तोरण २३ मेइणि २४ उदहि २५ वरभवण २६ गिरि २७ वरआयंस २८ सलीलगय २९ उसभ ३० सीह ३१ चामर ३२ उत्तमपसत्थबत्तीसलक्खणधरीओ हंससरिसगईओ कोइलमहुरगिरसुस्सराओ कंता सव्वस्स अणुमयाओ ववगयवलिपलिअवंगदुव्वण्णवाहिदोहग्गसोगमुक्का उच्चत्तेण य णराण थोवूणमुस्सिआओ सभावसिंगारचारुवेसा संगयगयहसिय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणिअचिट्ठिअविलाससंलावणिउणजुत्तोवयारकुसला सुंदरथणजहणवयणकरचलणणयणलावण्णरूवजोव्वणविलासकलिआ णंदणवण-विवरचारिणीउव्व अच्छराओ भरहवासमाणुसच्छराओ अच्छेरगपेच्छणिज्जाओ पासाईआओ जाव पडिरूवाओ, ते णं मणुआ ओहस्सरा हंसस्सरा कोंचस्सरा णंदिस्सरा णंदिघोसा सीहस्सरा सीहघोसा सुसरा सूसरणिग्घोसा छायायवोज्जोविअंगमंगा वज्जरि-सहनारायसंघयणा समचउरंसंठाणसंठिआ छविणिरातंका अणुलोमवाउवेगा कंकग्गहणी कवोयपरिणामा सउणिपोसपिट्ठंतरोरुप-रिणया छद्धणुसहस्समूसिआ, तेसि णं मणुआणं बे छप्पण्णा पिट्ठकरंडकसया पण्णत्ता समणाउसो!, पउमुप्पलगन्धसरिसणीसास-सुरभिवयणा, ते णं मणुआ पगईउवसंता पगईपयणुकोहमाणमायालोभा मिउमद्दवसंपन्ना अल्लीणा भद्दगा विणीआ अप्पिच्छा अस-णिहिसंचया विडिमंतरपरिवसणा जहिच्छिअकामकामिणो (सूत्रं २१)

'तीसे णं भंते!' इत्यादि, तस्यां समायां भदन्त! भरतवर्षे मनुजानां प्रक्रमाद् युग्मिनां कीदृशक आकारभावप्रत्यवतारः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह–गौतम! ते मनुजाः सुप्रतिष्ठिताः–सत्प्रतिष्ठानवन्तः सङ्गतनिवेशा इत्यर्थः, कूर्मवत्–कच्छपवदुन्नतत्वेन चारवश्चरणा येषां ते तथा, ननु 'मानवा मौलितो वर्ण्या, देवाश्चरणतः पुन'रिति कविसमयान्मनुजजन्मिनां युग्मिनां पादादारभ्य वर्णनं कथं युक्तिमदिति, उच्यते, वरेण्यपुण्यप्रकृतिकत्वेन ते देवत्वेनेवाभिमता इति न काचिदनुपपत्तिरिति, अत्र यावच्छब्दसङ्ग्राह्यं मुद्धसिरया इत्यन्तं, जीवाभिगमादिप्रसिद्धं सूत्रं चैतत् 'रत्तुप्पलपत्त-मउअसुकुमालकोमलतला णगणगरमगरसागरचक्कंकहरंकलक्खणंकिअचलणा अणुपुव्वसुसाहयंगुलीया उण्णयतणुतंब-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥१०९॥

णिद्धणक्खा संठिअसुसिलिट्ठगूढगुप्फा एणीकुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्वजंघा समुग्गनिमग्गगूढजाणू गयससणसुजायसण्णि-भोरू वरवारणमत्ततुल्लविक्कमविलासिअगई पमुइअवरतुरगसीहवरवट्टिअकडी वरतुरगसुजायगुज्झदेसा आइण्णहउव्व निरुवलेवा साहयसोणंदमुसलदप्पणणिगरिअवरकणगच्छरुसरिसवरवइरवलिअमज्झा [झसविहगसुजायपीणकुच्छी] झसोअरा सुइकरणा गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरणतरुणबोहिअआकोसायंतपउमगंभीरविअडणाभा उज्जुअसमसंहिअजच्चतणुकसिणणिद्धआदेज्जलडहसुमालमउअरमणिज्जरोमराई संणयपासा संगयपासा सुंदरपासा सुजायपासा मिअमाइअपीणरइअपासा अकरंडुअकणगरुअगणिम्मलसुजायणिरुवहयदेहधारी पसत्थबत्तीसलक्खणधरा कणगसिलायलुज्जलपसत्थसमतलउवइअविच्छिण्णपिहुलवच्छा सिरिवच्छंकिअवच्छा जुअसण्णिभपीणरइअपीवरपउट्ठसंठिअसुसिलिट्ठविसिट्ठघणथिरसुबद्धसंधिपुरवरवरफलिहवट्टिअभुजा भुजगीसरविउलभोगआयाणफलिहउच्छूढदीहबाहू रत्ततलोवइअमउअमंसलसुजायपसत्थलक्खणअच्छिद्दजालपाणी पीवरकोमलवरंगुलीआ आयंबतलिणसुइरुइलणिद्धणक्खा चंदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा संखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा दिसासोवत्थियपाणिलेहा चंदसूरसंखचक्कदिसासोवत्थिअपाणिलेहा अणेगवरलक्खणुत्तमपसत्थसुइरइअपाणिलेहा वरमहिसवराहसीहसद्दुलउसहणगवरपडिपुण्णविपुलखंधा चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा मंसलसंठिअपसत्थसद्दूलविपुलहणुआ अवट्ठिअसुविभत्तचित्तमंसू ओअविअसिलप्पवालबिंबफलसण्णिभाधरोट्ठा पंडुरससिसगलविमलणिम्मलसंखगोखीरफेणकुंददगरयमुणालिआधवलदंतसेढी अखंडदंता अफुडिअदंता

२वक्षस्कारे युग्मिस्वरूपं सू. २१

॥१०९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२१]

दीप अनुक्रम [३४]

सुजायदंता अविरलदंता एगदंतसेढीव अणेगदंता हुअवहणिद्धंतधोअतत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहा गरुलायतउजुतुं-
गणासा अवदालिअपोंडरीकणयणा कोआसियधवलपत्तलच्छा आणामिअचावरुइलकिण्हब्भराइसंठिअसंगयआयय सुजा-
यतणुकसिणणिद्धभुमआ अल्लीणपमाणजुत्तसवणा सुस्सवणा पीणमंसलकवोलदेसभागा णिव्वणसमलट्ठमट्ठचंदद्धसमणि-
लाडा उडुवइपडिपुण्णसोमवयणा घणणिचिअसुबद्धलक्खणुण्णयकूडागारणिभपिंडिअग्गसिरा छत्तागारुत्तमंगदेसा दाडि-
मपुप्फपगासतवणिज्जसरिसणिम्मलसुजायकेसंतभूमी सामलिबोंडघणणिचिअच्छोडिअमिउविसयपसत्थसुहुमलक्खणसुगं-
धसुंदरभुअमोअगभिंगणीलकज्जलपहट्ठभमरगणणिद्धणिकुरंबणिचिअपयाहिणावत्तमुद्धसिरया' इति, अत्र व्याख्या—रक्त-
लोहितमुत्पलपत्रवन्मृदुकं—मार्दवगुणोपेतमकर्कशमित्यर्थः तच्चासुकुमारमपि सम्भवति यथा घृष्टमृष्टपाषाणप्रतिमा तत
आह—सुकुमालेभ्योऽपि—शिरीषकुसुमादिभ्योऽपि कोमलं—सुकुमालं तलं—पादतलं येषां ते तथा, नगो—गिरिः नगरमक-
रसागरचक्काणि स्पष्टानि अङ्कधरः—चन्द्रः अङ्कः—तस्यैव लाञ्छनं यल्लोके मृगादिव्यपदेशं लभते, एवंरूपैर्लक्षणैरुक्तवस्त्वा-
कारपरिणतामी रेखाभिरङ्कितात्रलना येषां ते तथा, पूर्वस्या अनु लघव इति गम्यते अनुपूर्वाः, किमुक्तं भवति?—
पूर्वस्याः पूर्वस्याः उत्तरोत्तरा नखं नखेन हीनाः 'णहं णहेण हीणाओ' इति सामुद्रिकशास्त्रवचनात्, अथवा आनुपू-
र्व्येण—परिपाट्या वर्द्धमाना हीयमाना वा इति गम्यते, सुसंहता—अविरला अङ्गुल्यः—पादाग्रावयवा येषां ते तथा, अत्रा-
नुपूर्वेणेति विशेषणग्रहणात् पादाङ्गुलीग्रहणं, तासामेव नखं नखेन हीनत्वात्, उन्नता—मध्ये तुङ्गास्तनवः—प्रतलास्ता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥११०॥

आ–रक्ताः स्निग्धाः–स्निग्धकान्तिमन्तो नखाः पादगता इति सामर्थ्यलभ्यं तद्वर्णनाधिकारात् येषां ते तथा, णक्खे-त्यत्र द्वित्वं सेवादित्वात्, संस्थितौ–सम्यक् स्वप्रमाणतया स्थितौ सुश्लिष्टौ–सुघनौ सुस्थिरावित्यर्थः गूढौ–गुप्तौ मांसल-त्वादनुपलक्ष्यौ गुल्फौ–घुटिकौ येषां ते तथा, एणी–हरिणी तस्या इह जङ्घा ग्राह्या, कुरुविन्दः–तृणविशेषः वर्त्तं च–सूत्रवेलनकं एतानीव वृत्ते–वर्तुले आनुपूर्व्येण–क्रमेण ऊर्ध्वं स्थूले स्थूलतरे इति शेषः जङ्घे येषां ते तथा, औपपाति-कवृत्तौ तु अन्ये त्वाहुः एण्यः–स्नायवः कुरुविन्दः–कुटिलकाभिधानो रोगविशेषस्ताभिस्त्यक्ते इत्यपि व्याख्यातमस्ति, वृत्तेत्यादि तथैव, समुद्गः–समुद्गकाख्यभाजनविशेषस्तस्य तत्पिधानस्य च सन्धिस्तद्वन्निमग्ने गूढे–मांसलत्वादनुपलक्ष्ये जानुनी येषां ते तथा, क्वचित्समुग्ग [णिमग्ग] गूढजाणू इति पाठस्तत्र समुद्गकस्येव–पक्षिविशेषस्येव निसर्गतो गूढे–स्वभा-वतो मांसलत्वादनुन्नते न तु शोफादिविकारतः शेषं तथैव, गजस्य–हस्तिनः श्वसनः–शुण्डादण्डः सुजातः–सुनिष्प-न्नस्तस्य सन्निभा ऊरुर्येषां ते तथा, सुजातशब्दस्य विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, मत्तो वरः–प्रधानो भद्रजातीय-त्वाद्वारणो–हस्ती तस्य विक्रमः–चंक्रमणं तद्वद्विलासिता–विलासः सञ्जातोऽस्या इति तारकादित्वादितप्रत्ययः विलास-वती गतिः–गमनं येषां ते तथा, अत्रापि मत्तशब्दस्य विशेष्यात् परनिपातः प्राकृतत्वात्, प्रमुदितो रोगाद्यभावेनाति-पुष्टो यौवनप्राप्त इति गम्यते एवंविधो यो वरतुरगः सिंहवरश्च तद्वद्वर्त्तिता–वृत्ता कटीर्येषां ते तथा, वरतुरगस्येव सुजातः सुगुप्तत्वेन सुनिष्पन्नो गुह्यदेशो येषां ते तथा, आकीर्णहय इव–जात्याश्व इव निरुपलेपाः–निरुपलेपशरीराः,

॥११०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जात्याश्वो हि मूत्राद्यनुपलिप्तगात्रो भवतीति, संहृतसौनन्दं नाम ऊर्ध्वीकृतमुलूखलाकृतिकाष्ठं तच्च मध्ये तनु उभयोः पार्श्वयोर्बृहत् अथवा संहृतं–सङ्क्षिप्तमध्यं सौनन्दं–रामायुधं मुसलविशेष एव मुसलं सामान्यतः दर्प्पणशब्देनेहावयवे समुदायोपचाराद्दर्पणगण्डो गृह्यते तथा निगरितं–सारीकृतं वरकनकं तस्य त्सरुः–खड्गादिमुष्टिस्तैः सदृशं तेषामित्यर्थः, तथा वरवज्रस्येव–सौधर्मेन्द्रायुधस्येव क्षामो वलितो–वलयः संजाता अस्येति वलितो–वलित्रयोपेतो मध्यो–मध्यभागो येषां ते तथा, झषस्येव अनन्तरोक्तस्येवोदरं येषां ते तथा, शुचीनि–पवित्राणि निरुपलेपानीति भावः, करणानि–चक्षुरादीनीन्द्रियाणि येषां ते तथा, अत्र च 'पम्हविअडणाभा' इति पदं क्वचिद्वाचनान्तरे प्रसिद्धमपि उत्तरपदेन मा पुनरुक्ताभासो भूयादिति न व्याख्यातं, गङ्गाया आवर्त्तकः–पयसां भ्रमः स इव प्रदक्षिणावर्त्ता न तु वामावर्त्ता तरङ्गा इव तरङ्गाः तिस्रो वलयस्ताभिर्भङ्गुरा–भुग्ना रविकिरणैः तरुणैः–अभिनवैर्बोधितं–उन्निद्रीकृतं सत् आकोशायमानं विकचीभवदित्यर्थः पद्मं तद्वद् गम्भीरा विकटा–विशाला नाभिर्येषां ते तथा, विशेषणस्य परनिपातः प्राग्वत्, अस्माच्च निर्देशादनाम्न्यपि समासान्तः, ऋजुका–अवक्रा समा न क्वापि दन्तुरा संहिता–सन्ततिरूपेण स्थिता न त्वपान्तरालव्यवच्छिन्ना सुजाता–सुजन्मा न तु कालादिवैगुण्यतो दुर्जन्मा, अत एव जात्या–प्रधाना तन्वी न तु स्थूरा कृष्णा न तु मर्कटवर्णा स्निग्धा–चिक्कणा आदेया–दर्शनपथमुपगता सती पुनः पुनराकांक्षणीया, उक्तमेव विशेषणद्वारेण समर्थयते–लडहा–सलवणिमा अत आदेया सुकुमारमद्दी–अतिकोमला रमणीया–रम्या रोमराजिर्येषां ते तथा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक् अधोऽधः क्रमेण नते पार्श्वे येषां ते तथा, सङ्गते–देहप्रमाणोचिते पार्श्वे येषां ते तथा, अत एव सुन्दरपार्श्वाः सुजातपार्श्वा इति पदद्वयं व्यक्तं, तथा मिते–परिमिते मात्रिके–मात्रोपेते एकार्थपदद्वययोगादतीव मात्रान्विते नोचित-प्रमाणाश्यूनाधिके पीने–उपचिते रतिदे पार्श्वे येषां ते तथा, अविद्यमानं–मांसलत्वेनानुपलक्ष्यमाणं करण्डकं–पृष्ठवंशा-स्थिकं यस्य देहस्य सोऽकरण्डुकः, अत्राल्पत्वेनाभावविवक्षणादेवं निर्देशः, अनुदरा कन्येत्यादिवत्, अथवा अकरण्डु-कमिवेति व्याख्येयं, कनकस्येव रुचको–रुचिर्यस्य स(तथा) निर्मलः–स्वाभाविकागन्तुकमलरहितः सुजातो–बीजाधाना-दारभ्य जन्मदोषरहितः निरुपद्रवो–ज्वरादिदंशाद्युपद्रवरहितः एवंविधो यो देहस्तं धारयन्तीत्येवंशीलाः, तथा कनक-शिलातलवदुज्ज्वलं प्रशस्तं समतलं–अविषमं उपचितं–मांसलं विस्तीर्णमूर्ध्वाधोऽपेक्षया पृथुलं दक्षिणोत्तरतो वक्षः–उरो येषां ते तथा, श्रीवच्छो–लाञ्छनविशेषस्तेनाङ्कितं वक्षो येषां ते तथा, युगसन्निभौ–वृत्तत्वेनायतत्वेन च यूपतुल्यौ पीनौ–मांसलौ रतिदौ–पश्यतां सुभगौ पीवरप्रकोष्ठकौ–अकृशकलाचिकौ, तथा संस्थिताः–संस्थानविशेषवन्तः सुश्लिष्टाः–सुघनाः विशिष्टाः–प्रधानाः घना–निबिडाः स्थिरा–नातिश्लथाः सुबद्धाः–स्नायुभिः सुष्ठु बद्धाः सन्धवः–अस्थिसन्धा-नानि ययोस्तौ तथा, पुरवरपरिघवत्–महानगरार्गलावद्वर्त्तितौ–वृत्तौ भुजौ येषां ते तथा, ततः पदद्वयद्वयमीलनेन कर्मधारयः, पुनर्बाहुमेवायामतो विशिनष्टि–भुजगेश्वरो–भुजगराजस्तस्य विपुलो यो भोगः–शरीरं तथा आदीयते–द्वारस्थगनार्थं गृह्यत इत्यादानः स चासौ परिघः–अर्गला 'उच्छूढ'त्ति स्वस्थानादवक्षिप्तो निष्काशितो द्वारपृष्ठभागे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दत्त इत्यर्थः, विशेषणव्यस्तता चार्षत्वात्, ततः पूर्वपदेन कर्मधारयः, तद्वद्दीर्घौ बाहू येषा ते तथा, न चात्रानन्तरोक्तविशेषणेन पौनरुक्त्यमाशङ्कनीयं, अत्रायामतादर्शनाय प्रस्तुतविशेषणस्य विशिष्य दर्शनात्, रक्ततलौ–अरुणावधोभागौ उपचितौ–उन्नतौ औपयिकौ वा–उचितौ अवपतितौ वा–क्रमेण हीयमानोपचयौ मृदुकौ मांसलौ सुजाताविति पदत्रयं प्राग्वत्, प्रशस्तलक्षणौ अच्छिद्रजालौ–अविरलाङ्गुलिसमुदायौ पाणी–हस्तौ येषां ते तथा, पीवरकोमलवरंगुलीआ इति व्यक्तं, आताम्रा–ईषद्रक्तास्तलीनाः–प्रतलाः शुचयः–पवित्रा रुचिरा–मनोज्ञाः स्निग्धा–अरूक्षा नखा येषां ते तथा, नखशब्दे द्विर्भावस्तु प्राग्वत्, चन्द्र इव चन्द्राकारा पाणिरेखा येषां ते तथा, एवमन्यान्यपि त्रीणि पदानि 'दिसासोवत्थिअ'त्ति दिक्सौवस्तिको–दिक्प्रोक्षकः दिक्प्रधानः स्वस्तिको दक्षिणावर्तः स्वस्तिक इत्यन्ये स पाणौ रेखा येषां ते तथा, एतदेवानन्तरोक्तविशेषणपञ्चकं तत्प्रशस्ततात्प्रकर्षप्रतिपादनाय संग्रहवचनेनाह–'चंदसूरे'ति गतार्थं, ननु इयन्त्येव लक्षणानि तेषां शरीरस्थानीत्याह–अनेकैः–प्रभूतैर्वरैः–प्रधानैर्लक्षणैरुत्तमाः–प्रशंसास्पदीभूताः शुचयः–पवित्राः रचिताः–स्वकर्मणा निष्पादिताः पाणिरेखा येषां ते तथा, वरमहिषः–प्रधानसैरिभः वराहो–वनसूकरः सिंहः–केसरी शार्दूलो–व्याघ्रः ऋषभो–गौः नागवरः–प्रधानगजः एषामिव प्रतिपूर्णः–स्वप्रमाणेनाहीनो विपुलो–विस्तीर्णः स्कन्धः–अंसदेशो येषां ते तथा, चतुरङ्गुलं–स्वाङ्गापेक्षया चतुरङ्गुलप्रमितं सुष्ठु–शोभनं प्रमाणं यस्याः सा तथा, कम्बुवरसदृशी–उन्नततया वलित्रययोगेन च प्रधानशङ्कसन्निभा ग्रीवा येषां ते तथा, विवेकविलासे तु प्रतिमाद्या एकादशा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ङ्गस्थानसङ्ख्यायां 'चतुःपञ्च चतुर्वह्नि' इति श्लोके ग्रीवायारूयङ्गुलं मानमिति, मांसलं–पुष्टं तथा संस्थितं–संस्थानं तेन प्रशस्तं–सङ्कुचितं कमलाकारत्वात् शार्दूलस्येव–व्याघ्रस्येव विपुलं–विस्तीर्णं हनुकं येषां ते तथा, अवस्थितानि–अवर्धिष्णूनि सुविभक्तानि–परस्परं शोभमानविभागानि न तु पुनर्मरुजाताभीरस्येव व्यादानमात्रलक्ष्यवदनविवरस्य कूर्चकेशपुञ्जा इव पुञ्जीभूतानि चित्राणि–अतिरम्यतयाऽद्भुतानि श्मश्रूणि–कूर्चकेशा येषां ते तथा, श्मश्रूणामभावे षण्डभावप्रतिपत्तिः हीयमानत्वे चैन्द्रलुप्तिकत्ववार्द्धकप्रतिपत्तिः वर्द्धमानत्वे च संस्कारकजनाभावाद्गृहनभूतानि तानि स्युरित्यवस्थितत्वं, 'उअविअ'त्ति परिकर्मितं यच्छिलारूपं प्रवालं आयतविद्रुमखण्डमित्यर्थः, न तु मणिकादिरूपं, तस्यैतदुपमानानुपपत्तेः बिम्बफलं–पक्वगोल्हाफलं तयोः सन्निभो रक्ततयोन्नतमध्यतया अधरोष्ठः–अधस्तनो दन्तच्छदो येषां ते तथा, पाण्डुरं यच्छशिशकलं–चन्द्रमण्डलखण्डं अकलङ्कश्चन्द्रमण्डलभाग इत्यर्थः विमलानां मध्ये निर्मलश्च यः शङ्खो गोक्षीरफेनश्च प्रतीतः कुन्दं च–कुन्दकुसुमं दकरजश्च–वाताहतजलकणः मृणालिका च–पद्मिनीमूलं तद्वद्धवला दन्तश्रेणी–दशनपङ्क्तिर्येषां ते तथा, अखण्डदन्ताः–परिपूर्णदशनाः अस्फुटितदन्ताः–अजर्जरदन्ताः अत एव सुजातदन्ताः–जन्मदोषरहितदन्ता अविरलदन्ता–निरन्तरालदन्ताः, एकाकारा दन्तश्रेणिर्येषां ते तथा त इव परस्परानुपलक्ष्यमाणदन्तविभागत्वात् अनेके–द्वात्रिंशद्दन्ता येषां ते तथा, एवं नाम तेऽविरलदन्ता यथाऽनेकदन्ता अपि सन्तः एकाकारपङ्क्त्य इव लक्ष्यन्ते इति भावः, हुतवहेन–अग्निना निर्ध्मातं–निर्दग्धं सत् धौतं–शोधितमलं तप्तं–

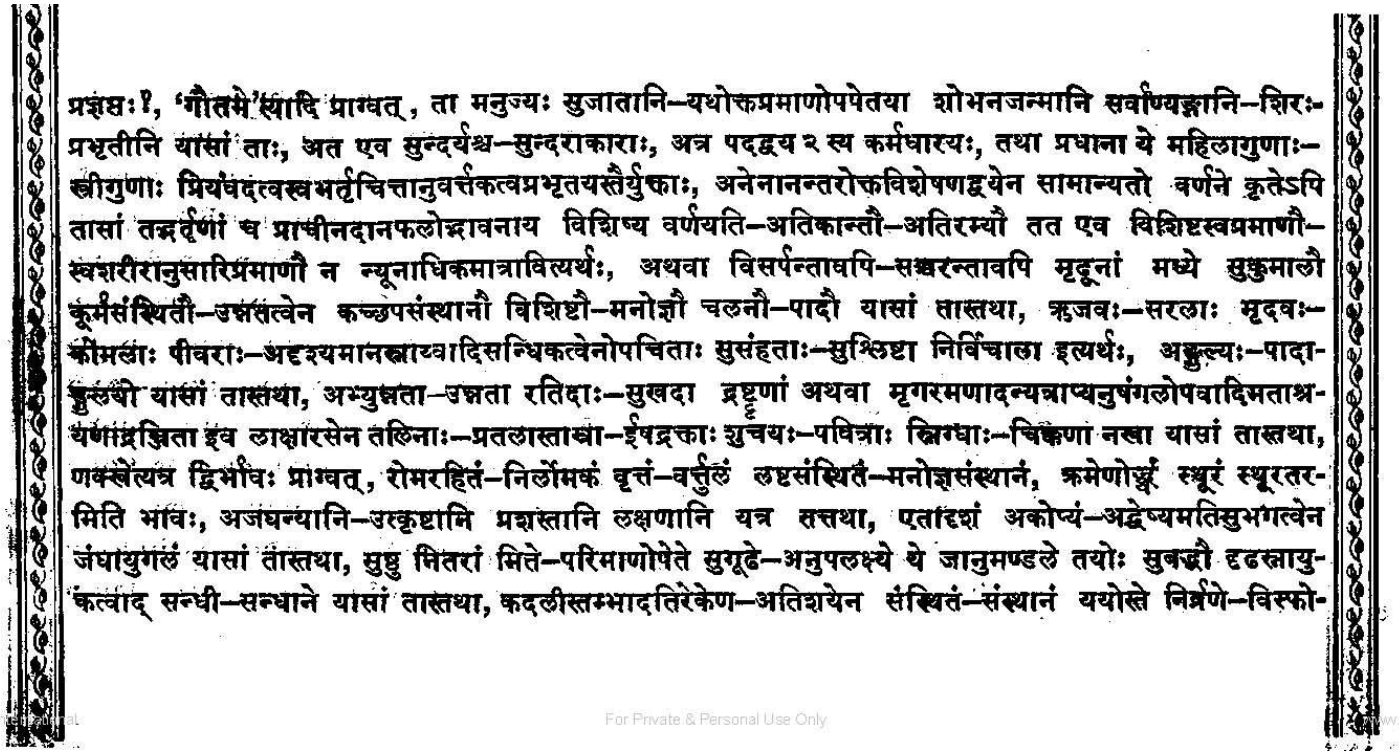
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सतापं तपनीयं–सुवर्णविशेषस्तद्वद्रक्ततलं–लोहितरूपं तालु च–काकुदं जिह्वा च–रसना येषा ते तथा, गरुडस्येव–पक्षिराजस्येवायता–दीर्घा ऋज्वी–सरला तुङ्गा–उन्नता न तु मुद्गलजातीयस्येव चिपिटा नासा–नासिका येषां ते तथा, अवदालितरविकरैर्विकासितं यत्पुण्डरीकं–श्वेतं पद्मं तद्वन्नयने येषां ते तथा, 'कोसाइअ'त्ति 'विकासेः कोआसविसट्टा' (श्रीसि० ९३) वित्यनेन कोआसिते–विकसिते धवले च क्वचिद्देशे पत्रले–पक्ष्मवती अक्षिणी–नेत्रे येषां ते तथा, आनामितं–ईषन्नामितमारोपितमिति भावः यश्चापं–धनुस्तद्वद्रुचिरे–संस्थानविशेषभावतो रमणीये कृष्णाभ्रराजीव संस्थिते सङ्गते–यथोक्तप्रमाणोपपन्ने आयते–दीर्घे सुजाते–सुनिष्पन्ने तनू–तनुके श्लक्ष्णपरिमितबालपंक्त्यात्मकत्वात् कृष्णे–कालिमोपेते स्निग्धच्छाये भ्रुवौ येषां ते तथा, आलीनौ–मस्तकभित्तौ किञ्चिल्लग्नौ न तु टप्परौ प्रमाणयुक्तौ–स्वप्रमाणोपेतौ श्रवणौ–कर्णौ येषां ते तथा अत एव सुश्रवणा इति स्पष्टं, अथवा सुष्ठु श्रवणं–शब्दोपलम्भो येषां ते तथा, पीनौ–पुष्टौ यतो मांसलौ–उपचितौ कपोललक्षणौ देशभागौ–मुखावयवौ येषां ते तथा, निर्व्रणं–विस्फोटकादिक्षतरहितं समं–अविषमं लष्टं–मनोज्ञं मृष्टं–मसृणं चन्द्रार्द्धसमं–अष्टमीचन्द्रसदृशं ललाटं येषां ते तथा, सूत्रे निलाडेति प्राकृतलक्षणवशात्, प्रतिपूर्णः–पौर्णमासीय उडुपतिः–चन्द्रः स इव सोमं–सश्रीकं वदनं येषां ते तथा, पदव्यत्यये प्राकृत एव हेतुः, घनवद्–अयोघनवन्निचितं–निविडं सुबद्धं–सुष्ठु स्नायुनद्धं लक्षणोन्नतं–प्रशस्तलक्षणं कूटस्य–गिरिशिखिरस्याकारेण निभं–सदृशं पिण्डिकेव–पाषाणपिण्डिकेव वर्त्तुलत्वेन पिण्डिकायमानमग्रशिरः–उष्णीषलक्षणं येषां ते तथा, छत्राकारः–छत्रसदृश-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तमाङ्गरूपो देशो येषां ते तथा, दाडिमपुष्पस्य प्रकाशेन–अरुणिम्ना तथा तपनीयेन च सदृशी निर्मला सुजाता केशान्ते–बालसमीपे केशभूमिः–केशोत्पत्तिस्थानभूता मस्तकत्वग् येषां ते तथा, तथा शाल्मल्या–वृक्षविशेषस्य यद् बोण्डं–फलं तद्वद् घना–निचिता अतिशयेन निबिडाः, छोटिता अपि युग्मिनां परिज्ञानाभावेन केशपाशाकरणात् परं छोटिता अपि तथा स्वभावेन शाल्मलीबोडाकारवद् घना निचिता एवावतिष्ठन्ते तेनैतद्विशेषणोपादानं, तथा मृदवः–अखराः विशदा–निर्मलाः प्रशस्ताः–प्रशंसास्पदीभूताः सूक्ष्माः–श्लक्ष्णाः लक्षणं विद्यते येषां ते लक्षणाः–लक्षणवन्तः अभ्रादित्वादप्रत्ययः सुगन्धाः–परमगन्धोपेताः अत एव सुन्दरास्तथा भुजमोचको–रत्नविशेषः भृङ्गो–नीलकीटः, अस्य ग्रहणं तु नीलकृष्णयोरैक्यात्, नीलो–मरकतमणिः कज्जलं–प्रतीतं ग्रहृष्टः–पुष्टः भ्रमरगणः, स चात्यन्तकालिमोपेतः स्यादिति, ते इव स्निग्धाः निकुरम्बभूताः सन्तो निचिता न तु विकीर्णाः सन्तः संकुञ्चिताः ईषत्कुटिलाः–कुण्डलीभूता इत्यर्थः, प्रदक्षिणावर्त्ताश्च मूर्द्धनि शिरोजा–बाला येषां ते तथा, इत्येतत्पर्यन्तमतिदेशसूत्रं, अथ मूलसूत्रमनुश्रियते–लक्षणानि–स्वस्तिकादीनि व्यञ्जनानि–मषीतिलकादीनि गुणाः–क्षान्त्यादयस्तैरुपपेताः, सुजातं पूर्ववत्, सुविभक्तं–अङ्गप्रत्यङ्गानां यथोक्तवैचित्र्यसद्भावात् सङ्गतं–प्रमाणोपपन्नं, न तु षडङ्गुलिकादिवन्यूनाधिकमङ्गं–देहो येषां ते तथा, प्रासादीया इति पदचतुष्कं गतार्थमिति। अथ युगलधर्मे समानेऽपि मा भूत्पंक्तिभेद इति युग्मिरूपं पृच्छति–'तीसे ण' मित्यादि, तस्यां भदन्त! समायां भरते वर्षे मनुजीनां प्रस्तावाद् युग्मिनीनां कीदृश आकारभावप्रत्यवतारः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

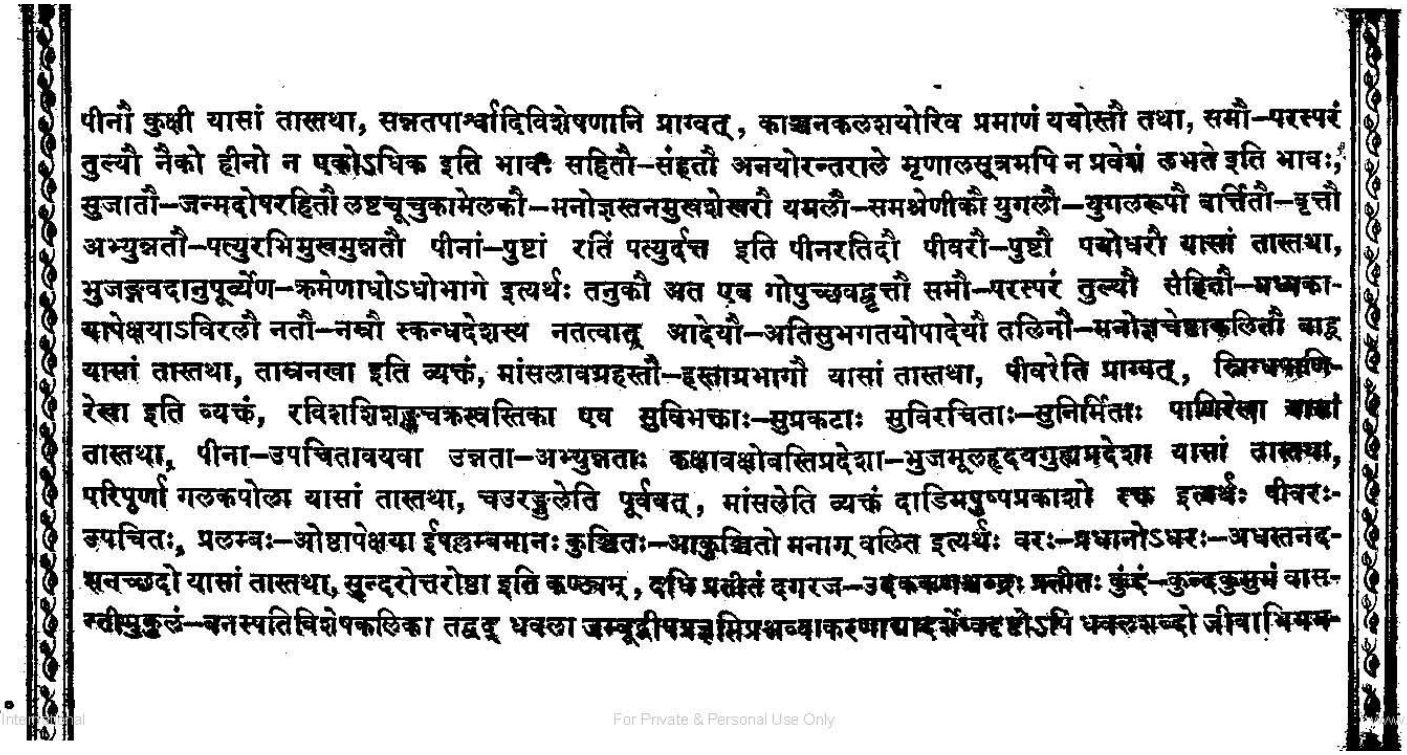


प्रज्ञप्तः?, 'गौतमे'त्यादि प्राग्वत्, ता मनुज्यः सुजातानि–यथोक्तप्रमाणोपपेतया शोभनजन्मानि सर्वाण्यङ्गानि–शिरः-प्रभृतीनि यासां ताः, अत एव सुन्दर्यश्च–सुन्दराकाराः, अत्र पदद्वय २ स्य कर्मधारयः, तथा प्रधाना ये महिलागुणाः–स्त्रीगुणाः प्रियंवदत्वस्वभर्तृचित्तानुवर्त्तकत्वप्रभृतयस्तैर्युक्ताः, अनेनानन्तरोक्तविशेषणद्वयेन सामान्यतो वर्णने कृतेऽपि तासां तद्वर्णां च प्राचीनदानफलोद्भावनाय विशिष्य वर्णयति–अतिकान्तौ–अतिरम्यौ तत एव विशिष्टस्वप्रमाणौ–स्वशरीरानुसारिप्रमाणौ न न्यूनाधिकमात्रावित्यर्थः, अथवा विसर्पन्तावपि–सञ्चरन्तावपि मृदूनां मध्ये सुकुमालौ कूर्मसंस्थितौ–उन्नतत्वेन कच्छपसंस्थानौ विशिष्टौ–मनोज्ञौ चलनौ–पादौ यासां तास्तथा, ऋजवः–सरलाः मृदवः–कोमलाः पीवराः–अदृश्यमानस्नाय्वादिसन्धिकत्वेनोपचिताः सुसंहताः–सुश्लिष्टा निर्विचाला इत्यर्थः, अकूर्म्यः–पादा-कुरुंथी यासां तास्तथा, अभ्युन्नता–उन्नता रतिदाः–सुखदा द्रष्टृणां अथवा मृगरमणादन्यत्राप्यनुषंगलोपवादिमताश्र-यणाद्रञ्जिता इव लाक्षारसेन तलिनाः–प्रतलास्ताम्रा–ईषद्रक्ताः शुचयः–पवित्राः स्निग्धाः–चिक्कणा नखा यासां तास्तथा, णक्खेत्यत्र द्विर्भावः प्राग्वत्, रोमरहितं–निर्लोमकं वृत्तं–वर्त्तुलं लष्टसंस्थितं–मनोज्ञसंस्थानं, क्रमेणोर्ध्वं स्थूरं स्थूरतर-मिति भावः, अजघन्यानि–उत्कृष्टानि प्रशस्तानि लक्षणानि यत्र तत्तथा, एतादृशं अकोप्यं–अद्वेष्यमतिसुभगत्वेन जंघायुगलं यासां तास्तथा, सुष्ठु नितरां मिते–परिमाणोपेते सुगूढे–अनुपलक्ष्ये ये जानुमण्डले तयोः सुबद्धौ दृढस्नायु-कत्वाद् सन्धी–सन्धाने यासां तास्तथा, कदलीस्तम्भादतिरेकेण–अतिशयेन संस्थितं–संस्थानं ययोस्ते निर्व्रणे–विस्फो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टकादिक्षतरहिते सुकुमारमृदुके–अत्यर्थकोमले मासले–मांसपूर्णे न तु काकजंघावद्दुर्बले अविरले–परस्परासन्ने समे प्रमाणतस्तुल्ये सहिके–क्षमे सुजाते–सुनिष्पन्ने वृत्ते–वर्तुले पीवरे–सोपचये निरन्तरे–परस्परनिर्विशेषे ऊरू–सक्थिनी यासां तास्तथा, वीतिः–विगतेतिको घुणाद्यक्षत इति भावः एवंविधोऽष्टापदो–द्यूतफलकं, विशेषणव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, तद्वत् प्रशस्तसंस्थिता–प्रधानसंस्थाना प्रशस्ता विस्तीर्णपृथुला–अतिविपुला श्रोणिः–कटेरग्रभागो यासां तास्तथा, वदनायामप्रमाणस्य मुखदीर्घत्वस्य च द्वादशाङ्गुलप्रमाणस्य तस्माद् द्विगुणं चतुर्विंशत्यङ्गुलं विस्तीर्णं मांसलं–पुष्टं सुबद्धं–अश्लथं जघनवरं–प्रधानकटीपूर्वभागं धारयन्तीत्येवंशीलाः, अत्रापि विशेषणस्य परनिपातः प्राग्वत्, वज्रवद्विराजितं क्षामत्वेन तथा प्रशस्तलक्षणं सामुद्रिकप्रशस्तगुणोपेतं निरुदरं–विकृतोदररहितं अथवा निरुदरं–अल्पत्वेनाभाववविवक्षणात् तिस्रो वलयो यत्र तत्त्रिवलिकं तथा वलितं–सञ्जातबलं न च क्षामत्वेन दुर्बलमाशङ्कनीयं, तनु–कृशं नतं–नम्रं तनुनतमीषन्नम्रमित्यर्थः, ईदृशं मध्यं यासां तास्तथा, स्वार्थे कप्रत्ययः, ऋजुकानां–अवक्राणां समानां–तुल्यानां न क्वापि दन्तुराणां संहितानां–संततानां न त्वपान्तराले व्यवच्छिन्नानां जात्यानां–स्वभावजानां प्रधानानां वा तनूनां–सूक्ष्माणां कृष्णानां–कालानां न तु मर्कटवर्णानां स्निग्धानां–सतेजस्कानां आदेयानां–दृष्टिसुभगानां 'लडह'त्ति ललितानां सुजातानां–सुनिष्पन्नानां सुविभक्तानां–सुविविक्तानां कान्तानां–कमनीयानां अत एव शोभमानानां रुचिररमणीयानां–अतिमनोहराणां रोम्णां राजिः–आवलीर्यासां तास्तथा, गङ्गावत्तेतिपदं प्राग्वत्, अनुद्भटौ–अनुल्बणौ प्रशस्तौ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



पीनौ कुक्षी यासां तास्तथा, सन्नतपार्श्वादिविशेषणानि प्राग्वत्, काञ्चनकलशयोरिव प्रमाणं ययोस्तौ तथा, समौ–परस्परं तुल्यौ नैको हीनो न एकोऽधिक इति भावः सहितौ–संहतौ अनयोरन्तराले मृणालसूत्रमपि न प्रवेष्टुं लभते इति भावः; सुजातौ–जन्मदोषरहितौ लष्टचूचुकामेलकौ–मनोज्ञस्तनमुखशेखरौ यमलौ–समश्रेणीकौ युगलौ–युगलरूपौ वर्त्तितौ–वृत्तौ अभ्युन्नतौ–पत्युरभिमुखमुन्नतौ पीनां–पुष्टां रतिं पत्युर्दत्त इति पीनरतिदौ पीवरौ–पुष्टौ पयोधरौ यासां तास्तथा, भुजङ्गवदानुपूर्व्येण–क्रमेणाधोऽधोभागे इत्यर्थः तनुकौ अत एव गोपुच्छवद्वृत्तौ समौ–परस्परं तुल्यौ सेहिकौ–मध्यकापेक्षयाऽविरलौ नतौ–नम्रौ स्कन्धदेशस्य नतत्वात् आदेयौ–अतिसुभगतयोपादेयौ तलिनौ–मनोज्ञचेष्टाकलितौ बाहू यासां तास्तथा, ताम्रनखा इति व्यक्तं, मांसलाग्रहस्तौ–हस्ताग्रभागौ यासां तास्तथा, पीवरेति प्राग्वत्, स्निग्धपाणिरेखा इति व्यक्तं, रविशशिशङ्खचक्रस्वस्तिका एव सुविभक्ताः–सुप्रकटाः सुविरचिताः–सुनिर्मिताः पाणिरेखा यासां तास्तथा, पीना–उपचितावयवा उन्नता–अभ्युन्नताः कक्षावक्षोवस्तिप्रदेशा–भुजमूलहृदयगुह्यप्रदेशा यासां तास्तथा, परिपूर्णा गलकपोला यासां तास्तथा, चउरङ्गुलेति पूर्ववत्, मांसलेति व्यक्तं दाडिमपुष्पप्रकाशो रक्त इत्यर्थः पीवरः–उपचितः, प्रलम्बः–ओष्ठापेक्षया ईषल्लम्बमानः कुञ्चितः–आकुञ्चितो मनाग् वलित इत्यर्थः वरः–प्रधानोऽधरः–अधस्तनदशनच्छदो यासां तास्तथा, सुन्दरोत्तरोष्ठा इति कण्ठ्यम्, दधि प्रतीतं दगरज–उदककणश्लक्ष्णः प्रतीतः कुंदं–कुन्दकुसुमं वासन्तीमुकुलं–वनस्पतिविशेषकलिका तद्वद् धवला जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिप्रभव्याकरणादर्शेष्वदृष्टोऽपि धवलशब्दो जीवाभिगम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्तौ दर्शनालिखितोऽस्ति अच्छिद्रा–अविरला विमला–निर्मला दशना–दन्ता यासां तास्तथा, रक्तोत्पलवद्रक्तं मृदुसु-कुमारं–अतिकोमलं तालु जिह्वा च यासां तास्तथा, करवीरकलिकावत् नासापुटद्वयस्य यथोक्तप्रमाणतया संवृताकारतया वाऽकुटिला–अवक्रा सती अभ्युद्गता–भ्रूद्वयमध्यतो विनिर्गता अत एव ऋज्वी–सरला सती तुङ्गा–उच्चा नतु गवादि-शृङ्गवद्वक्रा सती तुङ्गेत्यर्थः, एवंविधा नासा यासां तास्तथा, शरदि भवं शारदं नवं कमलं–रविबोध्यं कुमुदं–चन्द्र-बोध्यं कुवलयं–तदेव नीलं एषां यो दलनिकरः–पत्रसमूहस्तत्सदृशे लक्षणप्रशस्ते अजिह्मे–अमन्दे भद्रभावतया निर्वि-कारचपले इत्यर्थः, कान्ते नयने यासां तास्तथा, एतेन तदीयदृशामनञ्जितसुभगत्वमायतत्वं सहजचपलत्वं चाह, स्त्रीणामङ्गे हि नयनसौभाग्यमेव परमशृङ्गाराङ्गमिति पुनस्तद्विशेषणेन ता विशिनष्टि–पत्रले–पक्ष्मवती न तु रोगविशे-षाद्गतरोमके क्वचिद्धवले कर्णान्तवर्त्तिनी क्वचित्ताम्रलोचने यासां तास्तथा, 'आणामिअ'त्ति 'अल्लीण'विशेषणे प्राग्वत्, पीना मांसलतया नतु कूपाकारा मृष्टा–शुद्धा न तु श्यामच्छायापन्ना गण्डलेखा–कपोलपाली यासां तास्तथा, चतुर्षु अस्रेषु–कोणेषु दक्षिणोत्तरयोः प्रत्येकमूर्ध्वाधोभागरूपेषु प्रशस्तमहीनाधिकलक्षणत्वात् समम्–अविषमं ललाटं यासां तास्तथा, कौ-मुदी–कार्त्तिकीपौर्णिमा तस्या रजनिकरः–चन्द्रस्तद्वद्विमलं प्रतिपूर्णम्–अहीनं सौम्यं–अक्रूरं न तु बककान्तानामिव भीषणं वदनं यासां तास्तथा, छत्रोन्नतोत्तमाङ्गा इति प्रतीतं, अकपिला–श्यामाः सुस्निग्धाः–तैलाभावादभ्यङ्गनिरपेक्षतया निसर्ग-चिक्कणाः सुगन्धा दीर्घा न तु पुरुषकेशा इव निकुरम्बभूताः नापि धम्मिल्लादिपरिणाममापन्नाः संयमविज्ञानाभावात् शिरोजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यासां तास्तथा, छत्रं १ ध्वजः २ यूपः–स्तम्भविशेषः ३ स्तूपः–पीठं ४ दामिणित्ति–रूढिगम्यं ५ कमण्डलुः–तापसपानीयपात्रं ६ कलशः ७ वापी ८ स्वस्तिकः ९ पताका १० यवो ११ मत्स्यः १२ कूर्मः १३ रथवरः १४ मकरध्वजः–कामदेवस्तत्संसूचकं सूचनीये सूचकोपचाराल्लक्षणमिति, तच्च सर्वकालमविधवत्वादिसूचकं १५ अङ्कः–चन्द्रबिम्बान्तर्वर्त्ती श्यामावयवः, क्वचिदङ्कस्थाने शुक इति दृश्यते १६ स्थालं १७ अङ्कुशः १८ अष्टापदं–द्यूतफलकं १९ सुप्रतिष्ठकं–स्थापनकं २० मयूरः २१ श्रियोऽभिषेको–लक्ष्म्या अभिषेकः २२ तोरणं २३ मेदिनी २४ उदधिः २५ वरभवनं–प्रधानगृहं २६ गिरि २७ र्वरादर्शो–वरदर्पणः २८ सलीलगजो–लीलावान् गजः २९ ऋषभो–गौः ३० सिंहः ३१ चामरं ३२ एतान्युत्तमानि–प्रधानानि प्रशस्तानि–सामुद्रिकशास्त्रेषु प्रशंसास्पदीभूतानि द्वात्रिंशल्लक्षणानि धरन्ति यास्तास्तथा, हंसस्य सदृशी गतिर्यासां तास्तथा कोकिलाया आम्रमञ्जरीसंस्कृतत्वेन पञ्चमस्वरोद्गारमयी या मधुरा गीस्तद्वत् सुष्ठु–शोभनः स्वरो यासां तास्तथा, कान्ताः–कमनीयाः सर्वस्य तत्प्रत्यासन्नवर्त्तिनो लोकस्यानुमताः–सम्मता न कस्यापि मनागपि द्वेष्या इति भावः, वलिः–शैथिल्यसमुद्भवश्चर्मविकारः पलितं–पाण्डुरः कचः व्यपगतानि वलिपलितानि याभ्यस्तास्तथा, तथा विरुद्धमङ्गं व्यङ्गं–विकारवानवयवः दुर्वर्णो–दुष्टशरीरच्छविः व्याधिदौर्भाग्यशोकाः प्रतीताः तैर्मुक्ताः, पश्चाद्विशेषणद्वयकर्मधारयः, उच्चत्वेन च नराणां स्वभर्तॄणां स्तोकोनं यथा स्यात्तथोच्छ्रिताः किञ्चिन्यूनत्रिगव्यूतोच्छ्रया इत्यर्थः, न हि ऐदंयुगीनमनुष्यपत्न्य इव स्वभर्तुः समोच्चत्वा अधिकोच्चत्वा वा भवेयुः, किमुक्तं भवति ?–यथा हि सम्प्रति पुरुषस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कन्यूनोद्वत्वाया भार्यायां योगो लोके उपहासपात्रं स्यात् न तथा तेषां मनुष्याणामिति, तथा स्वभावत एव शृङ्गाररूपशारुः–प्रधानो वेषो यासां तास्तथा, प्रायो निर्विकारमनस्कत्वेनादृष्टपूर्वकत्वेन च तासां सीमन्तोन्नयनाद्यौपाधिकशृङ्गाराभावात्, सङ्गतं–उचितं गतं–गमनं हंसीगमनवत् हसितं–हसनं कपोलविकाशि प्रेमसन्दर्शि च भणितं–भणनं गम्भीरं दर्पकोद्दीपि च चेष्टनं–सकाममङ्गप्रत्यङ्गोपाङ्गदर्शनादि विलासो–नेत्रचेष्टा संलापः–पत्या सह सकामं स्वहृदयप्रत्यर्पणक्षमं परस्परं सम्भाषणं तत्र निपुणाः, तथा युक्ताः–सङ्गता ये उपचारा–लोकव्यवहारास्तेषु कुशलाः, ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः, एवंविधविशेषणाश्च स्वपतिं प्रति द्रष्टव्या नतु परपुरुषं प्रति, तथाविधकालस्वभावात् प्रतनुकामतया परपुरुषं प्रति तासामभिलाषासम्भवात्, एवं च युग्मिपुरुषाणामपि परस्त्रीः प्रति नाभिलाष इति प्रतिपत्तव्यं, नन्वेवं सति प्रथमभगवतः सुनन्दापाणिग्रहणं कथमुचितं? मृतेऽपि पुंसि तस्याः परसम्बन्धित्वाविरोधात्, उच्यते, मा ब्रूहि निषिद्धविरुद्धाचरणस्य भगवतः श्रवणाश्रव्यमेनमपवादं, कन्यावस्थाया एव तस्या भगवता पाणिग्रहणकरणात्, यतः–"पढमो अकालमच्चू तहिं तालफलेण दारओ पहओ। कण्णा य कुलगरेणं सिट्ठे गहिआ उसभपत्ती ॥ १ ॥" [प्रथमोऽकालमृत्युस्तत्र तालफलेन दारकः प्रहतः। शिष्टे च कन्या कुलकरेण गृहीता ऋषभपत्नी (भविष्यतीति) ॥ १ ॥] एवं तर्हि सहजातायाः सुमङ्गलायाः पाणिग्रहणं कथं?, सत्यं, तदानीन्तनलोकाचीर्णत्वेन तदानीं तस्या अविरुद्धत्वादिति, पूर्वोक्तमेवार्थं सम्पिण्डयन्नाह–'सुंदरे'त्यादि व्यक्तमेव, नवरं जघनं–पूर्वकटीभागः, लावण्यं–आकारस्य स्पृहणीयता विलासः–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रीणां चेष्टाविशेषः, आह च–"स्थानासनगमनानां हस्तभ्रूनेत्रकर्मणां चैव। उत्पद्यते विशेषो यः श्लिष्टः स तु विलासः स्यात् ॥ १ ॥" नन्दनवनं–मेरोर्द्वितीयवनं तस्य विवरं–अवकाशो वृक्षरहितभूभागस्तत्र चारिण्य इवाप्सरसो–देव्यः भरतवर्षे मानुषरूपा अप्सरसः आश्चर्यं–अद्भुतमिति प्रेक्षणीयाः प्रासादीया इत्यादि। सम्प्रति स्त्रीपुंससाधारण्येन तत्काल-भाविमनुष्यस्वरूपं विवक्षुरिदमाह–'ते णं मणुआ' इत्यादि, ते सुषमसुषमाभाविनो मनुष्याः ओघः–प्रवाही स्वरो येषां ते तथा, हंसस्येव मधुरः स्वरो येषां ते तथा, क्रौञ्चस्येवाक्रयासविनिर्गतोऽपि दीर्घदेशव्यापी स्वरो येषां ते तथा, नन्दी–द्वादशविधतूर्यसमुदयस्तस्या इव शब्दान्तरतिरोधायी स्वरो येषां ते तथा, नन्द्या इव घोषः–अनुनादो येषां ते तथा, सिंहस्येव बलिष्टः स्वरो येषां ते तथा, एवं सिंहघोषाः, उक्तविशेषणानां विशेषणद्वारा हेतुमाचष्टे–सुस्वराः सुस्वरनि-र्घोषाः, छायया–प्रभया द्योतितान्यङ्गानि–अवयवा यस्य तदेवंविधमङ्गं–शरीरं येषां ते तथा, मकारोऽलाक्षणिकः, वज्रऋषभनाराचं नाम सर्वोत्कृष्टमाद्यं संहननं येषां ते तथा, समचतुरस्रं संस्थानं–सर्वोत्कृष्ट आकृतिविशेषस्तेन संस्थिताः, छव्यां–त्वचि निरातङ्काः–नीरोगाः दद्रुकुष्ठकिलासादित्वदोषरहितवपुष इत्यर्थः, अथवा छविर्त्ति छविमन्तः, छविच्छ-विमतोरभेदोपचाराद् दीर्घत्वेन मतुब्लोपाद्वा, यथा मरीचिरित्यत्र मलयमिरीषावश्यकवृत्तौ, उदात्तवर्णसुकुमारत्वचा युक्ता इत्यर्थः, पक्षान्निरातङ्कपदेन कर्मधारयः, अनुलोमः–अनुकूलो वायुवेगः–शरीरान्तर्वर्त्ती वातजवो येषां ते तथा, कपोतस्य इव गुल्मरहितोदरमध्यप्रदेशाः, सति गुल्मे प्रतिकूलो वायुवेगो भवतीति भावः, कङ्कः–पक्षिविशेषस्तस्येव ग्रहणी–गुदाशयो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२१]

दीप अनुक्रम [३४]

नीरोगवर्चस्कतया येषां ते तथा, कपोतस्येव–पक्षिविशेषस्येव परिणामः–आहारपरिपाको येषां ते तथा, कपोतस्य हि जाठराग्निः पाषाणलवानपि जरयतीति लौकिकश्रुतिः एवं तेषामप्यत्याहारग्रहणेऽपि न जातुचिदजीर्णदोषादयः, शकुनेरिव–पक्षिण इव पुरीषोत्सर्गे निर्लेपतया पोसः–अपानदेशो येषां ते तथा, 'पुस उत्सर्गे' पुरीषमुत्सृजन्त्यनेनेति व्युत्पत्तेः, तथा पृष्ठं–शरीरपृष्ठभागः अन्तरे–पृष्ठोदरयोरन्तराले पार्श्वे इत्यर्थः ऊरू च–सक्थिनी इति द्वन्द्वः, एतानि परिणतानि–परिनिष्ठिततां गतानि येषां ते तथा, क्वान्तस्य परनिपातः सुखादिदर्शनात्, ततः पदद्वयस्य २ कर्मधारयः, यथोचितपरिणामेन तानि सञ्जातानीत्यर्थः, षड्धनुःसहस्रोच्छ्रिताः, अत्रापि मकारोऽलाक्षणिकः, उत्सेधाङ्गुलतस्त्रिगव्यूतप्रमाणकाया इत्यर्थः, यच्च युग्मिनीनां किञ्चिदूनत्रिगव्यूतप्रमाणोच्चत्वमुक्तं तदल्पतया न विवक्षितमिति भावः । अथ तेषां वपुषि पृष्ठकरण्डकसङ्ख्यामाह–'तेसि ण'मित्यादि, तेषां मनुष्याणां द्वे षट्पञ्चाशदधिके पृष्ठकरण्डुकशते पाठान्तरेण पृष्ठकरण्डकशते वा प्रज्ञप्ते, पृष्ठकरण्डुकानि च–पृष्ठवंशवर्त्युन्नताः अस्थिखण्डाः पंशुलिका इत्यर्थः, हे श्रमणेत्यादि प्राग्वत्, पुनस्तानेव विशिनष्टि–'पउमुप्पल'इत्यादि, ते णमिति पूर्ववत्, मनुजाः पद्मं–कमलमुत्पलं–नीलोत्पलं अथवा पद्मं–पद्मकाभिधानं गन्धद्रव्यं उत्पलं–कुष्ठं तयोर्गन्धेन–परिमलेन सदृशः–समो यो निःश्वासस्तेन सुरभिगन्धि वदनं येषां ते तथा, प्रकृत्या–स्वभावेनोपशान्ता नतु क्रूराः प्रकृत्या प्रतनवः–अतिमन्दीभूताः क्रोधमानमायालोभा येषां ते तथा, अत एव मृदु–मनोज्ञं परिणामसुखावहमिति भावः यन्मार्दवं तेन सम्पन्नाः न तु कपटमार्दवोपेताः, आलीना–गुरुज-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१]

दीप अनुक्रम [३४]

नमाश्रिता अनुशासनेऽपि न गुरुषु द्वेषमापद्यन्ते इत्याशयः अथवा आ–समन्तात् सर्वासु क्रियासु लीना–गुप्ता नोल्व-णचेष्टाकारिण इत्यर्थः, भद्रकाः–कल्याणभागिनः, भद्रगा वा–भद्रहस्तिगतयः, विनीता–बृहत्पुरुषविनयकरणशीला अथवा विनीता इव–विजितेन्द्रिया इव, अल्पेच्छा–मणिकनकादिप्रतिबन्धरहिताः अत एव न विद्यते सन्निधिः–पर्यु-षितखाद्यादेः संचयो–धारणं येषां ते तथा, विटपान्तरेषु–शाखान्तरेषु प्रासादाद्याकृतिषु परिवसनं–आकालमावासो येषां ते तथा, यथेप्सितान् कामान्–शब्दादीन् कामयन्ते–अर्थान् भुञ्जते इत्येवंशीला ये ते तथा इति, अत्र च जीवाभिग-मादिषु युग्मिवर्णनाधिकारे आहारार्थप्रश्नोत्तरसूत्रं दृश्यते, अत्र च कालदोषेण त्रुटितं सम्भाव्यते, अत्रैवोत्तरत्र द्वितीय-तृतीयारकवर्णकसूत्रे आहारार्थसूत्रस्य साक्षाद् दृश्यमानत्वादिति, तेनात्र स्थानाशून्यार्थं जीवाभिगमादिभ्यो लिख्यते—

तेसि णं भंते ? मणुआणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?, गोअमा ! अट्ठमभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ, पुढवीपुप्फफलाहारा णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !, तीसे णं भंते ! पुढवीए केरिसए आसाए पण्णत्ते ?, गो० ! से जहा णामए गुलेइ वा खंडेइ वा सक्कराइ वा मच्छंडिआइ वा पप्पडमोअए इ वा भिसेइ वा पुप्फुत्तराइ वा पउमुत्तराइ वा विजयाइ वा महाविजयाइ वा आकासिआइ वा आदंसिआइ वा आगासफलोवमाइ वा उग्गाइ वा अणोवमाइ वा इमेए अज्झोववणाए, भवे एआरूवे ?, णो इणमट्ठे समट्ठे, सा णं पुढवी इत्तो इट्ठतरिआ चेव जाव मणामतरिआ चेव आसाएणं पण्णत्ता । तेसि णं भंते ! पुप्फफलाणं केरिसए आसाए पण्णत्ते ?, गोअमा ! से जहा णामए रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स कल्लाणे भोअणजाए सयसहस्सनिप्फन्ने वण्णेणुववेए जाव फासेणं उववेए आसायणिज्जे विसाय-

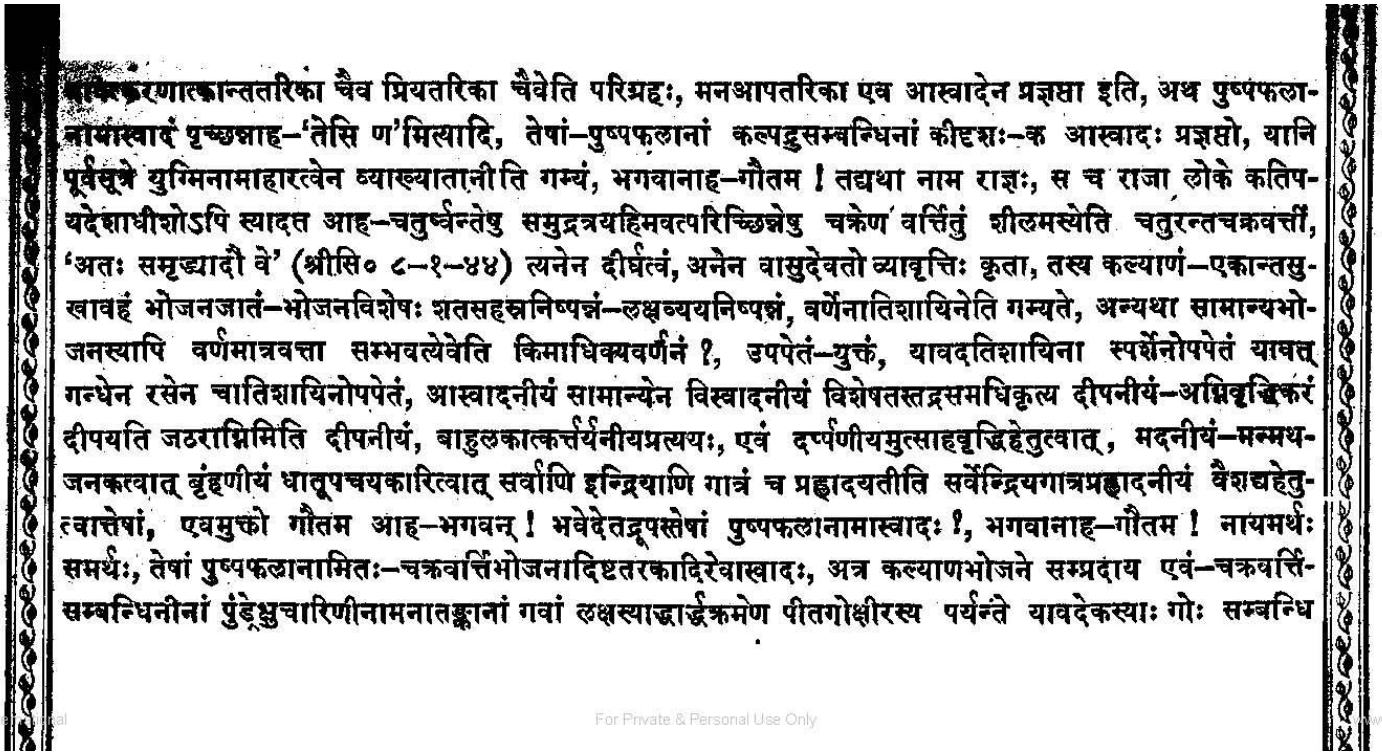
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम-आरकवर्ती मनुष्यस्य आहार-आदि वर्ण्यते

णिज्जे दिप्पणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे [विग्घणिज्जे] विहणिज्जे सव्विंदिअगायपल्हायणिज्जे, भवे एआरूवे ?, णो इणमट्ठे समट्ठे, तेसि णं पुप्फफलाणं एत्तो इट्ठतराए चेव जाव आसाए पण्णत्ते (सूत्रं २२)

तेषां भदन्त ! मनुजानां 'केवइकालस्स'त्ति सप्तम्यर्थे षष्ठी कियति काले गते भूय आहारार्थः समुत्पद्यते–आहार-लक्षणं प्रयोजनमुपतिष्ठते ?, भगवानाह–हे गौतम ! अष्टमभक्तस्य, अत्रापि सप्तम्यर्थे षष्ठी, अष्टमभक्तेऽतिक्रान्ते आहा-रार्थः समुत्पद्यते इति, यद्यपि सरसाहारित्वेनैतावत्कालं तेषां क्षुद्वेदनीयोदयाभावात् स्वत एवाभक्तार्थता न निर्जरार्थं तपः तथाप्यभक्तार्थत्वसाधर्म्यादष्टमभक्त इति, अष्टमभक्तं चोपवासत्रयस्य संज्ञा इति, अथैते यदाहारयन्ति तदाह–'पुढवीपुप्फे'त्यादि, पृथिवी–भूमिः फलानि च–कल्पतरूणामाहारो येषां ते तथा, एवंविधास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमणे-त्यादि पूर्ववत् । अथानयोराहारयोर्मध्ये पृथिवीस्वरूपं पृच्छन्नाह–'तीसेण'मित्यादि, तस्याः पृथिव्याः कीदृश आस्वादः प्रज्ञप्तो, यो युगलधर्मिणामनन्तरपूर्वसूत्रे आहारत्वेनोक्त इत्यध्याहार्यं, भगवानाह–गौतम ! तद्यथा नाम ए इत्यादि प्राग्वत्, गुडः–इक्षुरसकाथ इति, इतिवाशब्दौ प्राग्वत्, खण्डं–गुडविकारः शर्करा–काशादिप्रभवा मत्स्यंडिका–खण्डशर्कराः पुष्पोत्तरापद्मोत्तरे शर्कराभेदावेव, अन्ये तु पर्पटमोदकादयः खाद्यविशेषा लोकतोऽवसेयाः, एषां मधुरद्रव्यविशेषाणां स्वामिना निर्दिष्टेषु नामसु एतादृशरसा पृथिवी भवेत् कदाचिदिति विकल्पारूढमतिर्गौतम आह–भवेदेतद्रूपः पृथिव्या आस्वादः ?, स्वाम्याह–गौतम ! नायमर्थः समर्थः, सा पृथिवी इतो–गुडशर्करादेरिष्टतरिका एव, स्वार्थे कप्रत्ययः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



कारकरणात्कान्ततरिका चैव प्रियतरिका चैवेति परिग्रहः, मनआपतरिका एव आस्वादेन प्रज्ञप्ता इति, अथ पुष्पफलानामास्वादं पृच्छन्नाह–'तेसि ण'मित्यादि, तेषां–पुष्पफलानां कल्पद्रुसम्बन्धिनां कीदृशः–क आस्वादः प्रज्ञप्तो, यानि पूर्वसूत्रे युग्मिनामाहारत्वेन व्याख्यातानीति गम्यं, भगवानाह–गौतम ! तद्यथा नाम राज्ञः, स च राजा लोके कतिपयदेशाधीशोऽपि स्यादत आह–चतुर्ष्वन्तेषु समुद्रत्रयहिमवत्परिच्छिन्नेषु चक्रेण वर्त्तितुं शीलमस्येति चतुरन्तचक्रवर्त्ती, 'अतः समृद्ध्यादौ वे' (श्रीसि० ८–१–४४) त्यनेन दीर्घत्वं, अनेन वासुदेवतो व्यावृत्तिः कृता, तस्य कल्याणं–एकान्तसुखावहं भोजनजातं–भोजनविशेषः शतसहस्रनिष्पन्नं–लक्षव्ययनिष्पन्नं, वर्णेनातिशायिनेति गम्यते, अन्यथा सामान्यभोजनस्यापि वर्णमात्रवत्ता सम्भवत्येवेति किमाधिक्यवर्णनं ?, उपपेतं–युक्तं, यावदतिशायिना स्पर्शेनोपपेतं यावत् गन्धेन रसेन चातिशायिनोपपेतं, आस्वादनीयं सामान्येन विस्वादनीयं विशेषतस्तद्रसमधिकृत्य दीपनीयं–अग्निवृद्धिकरं दीपयति जठराग्निमिति दीपनीयं, बाहुलकात्कर्त्तर्यनीयप्रत्ययः, एवं दर्प्पणीयमुत्साहवृद्धिहेतुत्वात्, मदनीयं–मन्मथजनकत्वात् बृंहणीयं धातूपचयकारित्वात् सर्वाणि इन्द्रियाणि गात्रं च प्रह्लादयतीति सर्वेन्द्रियगात्रप्रह्लादनीयं वैशद्यहेतुत्वात्तेषां, एवमुक्तो गौतम आह–भगवन् ! भवेदेतद्रूपस्तेषां पुष्पफलानामास्वादः ?, भगवानाह–गौतम ! नायमर्थः समर्थः, तेषां पुष्पफलानामितः–चक्रवर्त्तिभोजनादिष्टतरकादिरेवास्वादः, अत्र कल्याणभोजने सम्प्रदाय एवं–चक्रवर्त्तिसम्बन्धिनीनां पुंड्रेक्षुचारिणीनामनातङ्कानां गवां लक्षस्याद्धार्द्धक्रमेण पीतगोक्षीरस्य पर्यन्ते यावदेकस्याः गोः सम्बन्धि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत् क्षीरं तद्राद्धकलमशालिपरमान्नरूपमनेकसंस्कारकद्रव्यसम्मिश्रं कल्याणभोजनमिति प्रसिद्धं, चक्रिणं स्त्रीरत्नं च विना अन्यस्य भोक्तुर्दुर्जरं महदुन्मादकं चेति ॥ अथैते उक्तस्वरूपमाहारमाहार्य क्व वसन्तीति पृच्छति—

ते णं भंते ! मणुया तमाहारमाहारेत्ता कहिं वसहिं उवेंति ?, गोअमा ! रुक्खगेहालया णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !, तेसि णं भंते ! रुक्खाणं केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?, गोअमा ! कूडागारसंठिआ पेच्छाघरसंठिआ छत्तझयथूभतोरणगोचरवेइआचोप्फालग-अट्टालगपासायहम्मिअगवक्खवालग्गपोहआवलभीघरसंठिआ अत्थण्णे इत्थ बहवे वरभवणविसिट्ठसंठाणसंठिआ दुमगणा सुहसीअ-लच्छाया पण्णत्ता समणाउसो ! (सूत्रं २३) अत्थि णं भंते तीसे समाए भरहे वासे गेहाइ वा गेहावणाइ वा ?, गोअमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, रुक्खगेहालया णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !, अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे गामाइ वा जाव संणिवेसाइ वा ?, गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, जहिच्छिअकामगामिणो णं ते मणुआ पण्णत्ता, अत्थि णं भंते ! असीइ वा मसीइ वा किसीइ वा वणिएत्ति वा पणिएत्ति वा वाणिज्जेइ वा ?, णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयअसिमसिकिसिवणिअपणिअवाणिज्जा णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !, अत्थि णं भंते ! हिरण्णेइ वा सुवण्णेइ वा कंसेइ वा दूसेइ वा मणिमोत्तिअसंखसिलप्पवालरत्तरयणसावइज्जेइ वा ?, हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुआणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छइ। अत्थि णं भंते! भरहे रायाइवा जुवराया इ वा ईसरतलवरमाडंबिअकोडुंबिअइब्भ-सेट्ठिसेणावइसत्थवाहाइ वा ?, गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयइड्ढिसक्कारा णं ते मणुआ, अत्थि णं भंते ! भरहे वासे दासेइ वा पेसेइ वा सिस्सेइ वा भयगेइ वा भाइल्लएइ वा कम्मयरएइ वा ?, णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयआभिओगा णं ते मणुआ पण्णत्ता समणा-उसो !, अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे मायाइ वा पियाइ वा भाय० भगिणि० भज्जा० पुत्त० धूआ० सुण्हाइ वा ?, हंता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम-आरकवर्ती मनुष्यस्य आवास-आदि वर्ण्यते

अत्थि, णो चेव णं तिव्वे पेम्मबंधणे समुप्पज्जइ, अत्थि णं भंते! भरहे वासे अरीइ वा वेरिएइ वा घायएइ वा वहएइ वा पडिणीयए वा पच्चामित्तेइ वा?, णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयवेराणुसया णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो!, अत्थि णं भंते! भरहे वासे मित्ताइ वा वयंसाइवा णायएइ वा संघाडिएइ वा सहाइ वा सुहीइ वा संगएइति वा?, हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुआणं तिव्वे रागबंधणे समुप्पज्जइ, अत्थि णं भंते! भरहे वासे आवाहाइ वा वीवाहाइ वा जण्णाइ वा सद्धाइ वा थालीपागाइ वा मितपिंडनिवेदणाइ वा?, णो इणट्ठे समट्ठे, वयगयआवाहवीवाहजण्णसुद्धथालीपाकमितपिंडनिवेदणा णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो!, अत्थि णं भंते! भरहे वासे इंदमहाति वा खंद० णाग० जक्ख० भूअ० अगड० तडाग० दह० णदि० रुक्ख० पव्वय० थूभ० चेइयमहाइ वा?, णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयमहिमा णं ते मणुआ पं०, अत्थि णं भंते! भरहे वासे णडपेच्छाइ वा णट्ट० जल्ल० मल्ल० मुट्ठिअ० वेलंबग० कहग० पवग० लासगपेच्छाइ वा?, णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयकोउहला णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो!, अत्थि णं भंते! भरहे वासे सगडाइ वा रहाइ वा जाणाइ वा जुग्ग० गिल्लि० थिल्लि० सीअ० संदमाणिआइ वा? णो इणट्ठे समट्ठे, पायचारविहारा णं ते मणुआ पं० समणाउसो!, अत्थि णं भंते! भरहे वासे गावीइ वा महिसीइ वा अयाइ वा एलगाइ वा?, हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुआणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, अत्थि णं भंते! भरहे वासे आसाइ वा हत्थि० उट्ट० गोण० गवय० अय० एलग० पसय० मिअ० वराह० रुरु० सरभ० चमर० कुरंगगोकण्णमाइआ?, हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, अत्थि णं भंते! भरहे वासे सीहाइ वा वग्घाइ वा विगदीविगअच्छतरच्छसिआलविडालसुणगाकोकंतियकोलसुणगाइ वा?, हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुआणं आबाहं वा वाबाहं वा छविच्छेअं वा उप्पायेंति, पगइभद्दया णं ते सावयगणा पं० समणाउसो!, अत्थि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३-२४]

दीप अनुक्रम [३६-३७]

णं भंते! भरहे वासे सालीति वा वीहिगोहूमजवजवजवाइ वा कलममसूरमुग्गमासतिलकुलत्थणिप्फावआलिसंदगअयसिकुसुंभकोवकंगुवरगरालगसणसरिसवमूलगबीआइ वा ?, हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुआणं परिभोगत्ताए हवमागच्छंति, अत्थि णं भंते ! भरहे वासे गड्ढाइ वा दरीओवायपवायविसमविज्जलाइ वा ?, णो इणट्ठे समट्ठे, भरहे वासे बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा०, अत्थि णं भंते! भरहे वासे खाणूइ वा कंटगतणयकयवराइ वा पत्तकयवराइ वा ?, णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयखाणुकंटगतणकयवरपत्तकयवरा णं सा समा पण्णत्ता, अत्थि णं भंते! भरहे वासे डंसाइ वा मसगाइ वा जूआइ वा लिक्खाइ वा ढिंकुणाइ वा पिसुआइ वा, ?, णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयडंसमसगजूअलिक्खढिंकुणपिसुआ उवद्दवविरहिआ णं सा समा पण्णत्ता, अत्थि णं भंते! भरहे अहीइ वा अयगराइ वा ?, हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुआणं आबाहं वा जाव पगइभद्दया णं ते वालगगणा पण्णत्ता, अत्थि णं भंते ! भरहे डिंबाइ वा डमराइ वा कलहबोलखारवइरमहाजुद्धाइ वा महासंगामाइ वा महासत्थपडणाइ वा महापुरिसपडणाइ वा?, गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयवेराणुबंधा णं ते मणुआ पण्णत्ता!, अत्थि णं भंते ! भरहे वासे दुब्भूआणि वा कुलरोगाइ वा गामरोगाइ वा मंडलरोगाइ वा पोट्ट० सीसवेअणाइ वा कण्णोट्ठअच्छिणहदंतवेअणाइ वा कासाइ वा सासाइ वा सोसाइ वा दाहाइ वा अरिसाइ वा अजीरगाइ वा दओदराइ वा पंडुरोगाइ वा भगंदराइ वा एगाहिआइ वा बेआहिआइ वा तेआहिआइ वा चउत्थाहिआइ वा इंदग्गहाइ वा धणुग्गहाइ वा खंदग्गहाइ वा कुमारग्गहाइ वा जक्खग्गहाइ वा भूअग्गहाइ वा मच्छसूलाइ वा हिअयसूलाइ वा पोट्ट० कुच्छि० जोणिसूलाइ वा गाममारीइ वा जाव सण्णिवेसमारीइ वा पाणिक्खया जणक्खया कुलक्खया वसणब्भूअमणारिआ ?, गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयरोगायंका णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो ! (सूत्रं २४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'ते ण' मित्यादि, ते भदन्त ! मनुजास्तमनन्तरोदितस्वरूपमाहारमाहार्य क्व वसतौ–कस्मिन्नुपाश्रये उपयन्ति–उपगच्छन्ति ?, भगवानाह–गौतम ! वृक्षरूपाणि गृहाणि आलया–आश्रया येषां ते तथा एवंविधास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमणेत्यादि पूर्ववत्, अथैते गेहाकारा वृक्षाः किंस्वरूपा इति पृच्छति–'तेसि णं भंते ! रुक्खाण'मित्यादि प्रश्नसूत्रपदयोजना सुलभा, आकारभावप्रत्यवतारः प्राग्वत्, भगवानाह–गौतम! ते वृक्षाः कूटं–शिखरं तदाकारसंस्थिताः, प्रेक्षा इति पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् प्रेक्षागृहं–नाट्यगृहं, 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इति संस्थितशब्दः सर्वत्र योज्यः, तेन प्रेक्षागृहसंस्थिता इति व्याख्येयं प्रेक्षागृहाकारेण संस्थानवन्त इत्यर्थः, एवं छत्रध्वजतोरणस्तूपगोपुरवेदिकाचोप्फालअट्टालकप्रासादहर्म्यगवाक्षवालाग्रपोतिकावलभीगृहसंस्थिताः, तत्र छत्राद्याः प्रतीताः, गोपुरं–पुरद्वारं वेदिका–उपवेशनयोग्या भूमिः चोप्फालं नाम मत्तवारणं अट्टालकः–प्राग्वत् प्रासादो–देवतानां राज्ञां वा गृहं उच्छ्रयबहुलो वा प्रासादः ते चोभयेऽपि पर्यन्तशिखराः हर्म्यं–शिखररहितं धनवतां भवनं गवाक्षः–स्पष्टः वालाग्रपोतिका नाम जलस्योपरि प्रासादः वलभी–छदिराधारस्तत्प्रधानं गृहं, अत्रायमाशयः–केचिद्वृक्षाः कूटसंस्थितास्तदन्ये प्रेक्षागृहसंस्थितास्तदपरे छत्रसंस्थिता, एवं सर्वत्र भाव्यं, अन्ये तु अत्र–सुषमसुषमाया भरतवर्षे बहवो वरभवनसामान्यतो विशिष्टगृहं तस्येव यद्विशिष्टं संस्थानं तेन संस्थिताः शुभा शीतला छाया येषां ते तथा एवंविधा द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमणेत्यादि पूर्ववत्, प्राग्गेहाकारकल्पद्रुमस्वरूपवर्णके उक्तेऽपि एते परमपुण्यप्रकृतिका युग्मिन एषु सौन्द-

Jain Education Intern For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

र्याश्रयेष्वाश्रयेषु वसन्तीति ज्ञापनार्थं पुनस्तद्वर्णकसूत्रारम्भः सार्थक इति, ननु तदा गृहाणि न सन्ति?, सन्त्यपि वा गृहाणि धान्यवन्न तेषामुपभोगायायान्तीत्याशङ्कमानः पृच्छति–'अत्थि ण'मित्यादि, अस्तीत्यस्य त्यादिप्रतिरूपकाव्यस्य वचनत्रयसदृशरूपत्वेन सन्तीति व्याख्येयं, सन्ति भदन्त ! तस्यां समायां भरतवर्षे गेहानि वा प्रतीतानि गेहेषु आयतनानि आपतनानि वा–उपभोगार्थमागमनानि, उत्तरसूत्रं तु प्राग्वत्, एतेन तदा मनुष्यादिप्रयोगजन्यगृहाभावस्तत एव तेषामुपभोगार्थं तत्रापतनाभावश्चोक्त इति, 'अत्थि णं भंते ! तीसे' इत्यादि, उक्तवक्ष्यमाणेषु एषु युग्मिसूत्रेषु प्रश्नोत्तरालापकयोर्वाक्ययोर्योजना प्राग्वत्, नवरं ग्रामा वृत्त्यावृताः कराणां गम्या वा यावत्करणान्नगरादिपरिग्रहः, तत्र नगराणि चतुर्गोपुरोद्भासीनि न विद्यते करो येषु तानि नकराणि वा–कररहितानि, नखादिनिपातनाद्रूपसिद्धिः, निगमाः–प्रभूतवणिग्वर्गावासाः, प्रांसुप्राकारनिबद्धानि क्वचिन्नद्यद्रिवेष्टितानि वा खेटानि, क्षुल्लकप्राकारवेष्टितानि अभितः पर्वतावृतानि वा कर्वटानि, अर्द्धतृतीयगव्यूतान्तर्ग्रामरहितानि ग्रामपञ्चशत्युपजीव्यानि वा मडम्बानि, पत्तनानि जलस्थलपथयुक्तानि रत्नयोनिभूतानि वा, सिन्धुवेलावलयितानि द्रोणमुखानि, आकरा–हिरण्याकरादयः, आश्रमाः–तापसाश्रयाः, सम्बाधाः–शैलशृङ्गस्थायिनो निवासाः यात्रासमागतप्रभूतजननिवेशा वा, राजधान्यो यत्र नगरे पत्तने अन्यत्र वा स्वयं राजा वसति, सन्निवेशा–यत्र सार्थकटकादेरावासा भवन्ति ?, अत्रोत्तरं–नायमर्थः समर्थः, अत्रार्थे विशेषणद्वारा हेतुमाह–यथेप्सितं–इच्छामनतिक्रम्य कामं–अत्यर्थं गामिनो–गमनशीलास्ते मनुजाः, अत्रात्यर्थकथनेन तेषां सर्वदापि स्वा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तन्न्यमुक्तं, ग्रामनगरादिव्यवस्थायां तु नियताश्रयत्वेन तेषामिच्छानिरोधः स्यात्, जीवाभिगमे तु 'जहेच्छिअकामगामिणो' इत्यस्य स्थाने 'जं नेच्छिअकामगामिणो' इति पाठः, तत्रायमर्थः–यद्–यस्मान्नेप्सितकामगामिनः न इच्छितं–इच्छाविषयीकृतं नेच्छितं, नायं नञ् किन्तु नशब्द इत्यनादेशाभावः, यथा 'नैके द्वेषस्य पर्याया' इत्यत्र, नेच्छितं–इच्छाया अविषयीकृतं कामं–स्वेच्छया गच्छन्तीत्येवंशीला नेच्छितकामगामिनस्ते मनुजा इति, यद्यपि गृहसूत्रेणैवार्थापत्त्या ग्रामाद्यभावः सूचितस्तथाप्यव्युत्पन्नविनेयजनव्युत्पत्त्यर्थमेतत्सूत्रोपन्यासः, 'अत्थि ण'मित्यादि, अत्रासिः–खड्गः यमुपजीव्य जनः सुखवृत्तिको भवति यद्वा साहचर्यलक्षणया असिशब्देन अत्र अस्युपलक्षिताः पुरुषा गृह्यन्ते, एवमग्रेतनविशेषणेष्वपि यथायोगं ज्ञेयं, मषी यदुपजीवनेन लेखककला, कृषिः–कर्षणं वणिक्–पण्याजीवः पणितं–क्रयाणकं वाणिज्यं–सत्यानृतमर्ष्पणग्रहणादिषु न्यूनाधिकाद्यर्ष्पणमित्यर्थः ?, नायमर्थः समर्थः, यतस्ते व्यपगतानि असिमषीकृषिवणिक्पणितवाणिज्यानि येभ्यस्ते तथा मनुजाः प्रज्ञप्ता इति। 'अत्थि ण'मित्यादि, हिरण्यं–रूप्यमघटितसुवर्णं वा सुवर्णं–घटितं कांस्यं–प्रतीतं दूष्यं–वस्त्रजातिः मणिः–चन्द्रकान्तादिः मौक्तिकं–व्यक्तं शङ्खो–दक्षिणावर्त्तादिः शिला–गन्धपेषणादिका प्रवालं–प्रतीतं रक्तरत्नानि–पद्मरागादीनि स्वापतेयं–रजतसुवर्णादिद्रव्यं, ननु यदि हिरण्यं रूप्यं तदा रूप्यखानौ तत्सम्भवः यदि चाघटितसुवर्णं तदा सुवर्णखानौ परं घटितं सुवर्णं तथा ताम्रत्रपुसंयोगजं कांस्यं तथा तन्तुसन्तानसम्भवं दूष्यं तत्र कथं सम्भवेयुः ?, शिल्पिप्रयोगजन्यत्वात् तेषां, न च तान्यत्रातीतोत्सर्पिणीसत्कनिधानगतानि सम्भवंतीति वाच्यं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादिसपर्यवसितप्रयोगबन्धस्यासङ्ख्येयकालस्थितेरसम्भवात्, एगोरुगोत्तरकुरुसूत्रयोरेतदालापकस्याकथनप्रसङ्गात्, उच्यते, संहरणप्रवृत्तक्रीडाप्रवृत्तदेवप्रयोगात् तानि सम्भवन्तीति सम्भाव्यते, इहोत्तरं–हन्तेति वाक्यारम्भे कोमलामन्त्रणे वा, अस्ति हिरण्यादिकमिति शेषः, नैव तेषां मनुजानां परिभोग्यतया हव्यमिति–कदाचिदागच्छति, 'अत्थि ण' मित्यादि, अस्ति राजा इति वा चक्रवर्त्यादि युवराजो (वा) राज्यार्ह इतियावत् ईश्वरो–भोगिकादिः अणिमाद्यष्टविधैश्वर्ययुक्तो वा तलवरः–सन्तुष्टनरपतिप्रदत्तसौवर्णपट्टालङ्कृतशिरस्कचौरादिशुद्ध्यधिकारी माडम्बिकः–पूर्वोक्तमडम्बाधिपः कौटुम्बिकः-कतिपयकुटुम्बप्रभुः इभ्यो–यद्द्रव्यैर्निचयान्तरितो हस्त्यपि न दृश्यते, इभो–हस्ती तत्प्रमाणं द्रव्यमर्हतीति निरुक्ता-दिभ्यः, श्रेष्ठी–श्रीदेवताध्यासितसौवर्णपट्टालङ्कृतशिराः पुरज्येष्ठो वणिग्विशेषः, सेनापतिः–यदायत्ता नृपेण चतुरङ्गसेना कृता भवति, सार्थवाहो–यो गणिमादि क्रयाणकं गृहीत्वा देशान्तरं गच्छन् सहचारिणामध्वसहायो भवति?, अत्रोत्तरम्–नायमर्थः समर्थः, व्यपगता ऋद्धिर्विभवैश्वर्यं सत्कारश्च–सेव्यतालक्षणो येभ्यस्ते तथा, 'अत्थि ण'मित्यादि, दास–आम-रणं क्रयक्रीतः गृहदासीपुत्रो वा प्रेष्यः–प्रेषणार्हो जनो दूतादिः शिष्य–उपाध्यायस्योपासकः शिक्षणीय इत्यर्थः, भृतको–नियतकालमवधिं कृत्वा वेतनेन कर्मकरणाय धृतः दुष्कालादौ निश्रितो वा, भागिको–द्वितीयाद्यंशग्राही, कर्म-करः–छगणपुञ्जाद्यपनेता, अत्राह–नायमर्थः समर्थः, यतस्ते मनुजा व्यपगतमाभियोग्यं–आभियोगिकं कर्म येभ्यस्ते तथा, अत्राभियोग्यशब्दात् कर्मणि यप्रत्यये "व्यञ्जनात् पञ्चामान्तस्थायाः स्वरूपे वा" (श्रीसिद्धहै०अ०) इत्यनेनैकस्य यकारस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोप इति। 'अत्थि ण' मित्यादि, माता या प्रसूते पिता यो बीजं निषिक्तवान् भ्राता यः सहजातो भगिनी सहजाता भार्या–भोग्या जन्यः पुत्रः जन्या स्त्री दुहिता स्नुषा–पुत्रवधूः, अत्र भगवानाह–हन्तेत्यादि, नैव चः पुनरर्थे तेषा मनुजानां तीव्रं–उत्कटं प्रेमरूपं बन्धनं समुत्पद्यते, तथाविधक्षेत्रस्वभावात् प्रतनुप्रेमबन्धास्ते युग्मिन इति, ननु चतुर्षु कुटुम्बमनुष्येषु स्नुषासम्बन्धो यथा आपेक्षिकस्तथा भ्रातृव्यभागिनेयादिसम्बन्धः कथं न सम्भवी ?, उच्यते, कुबेरदत्त-कुबेरदत्तास्वकभाववत् सोऽप्युपलक्षणाद् ग्राह्यः, परं स्फुटव्यवहारत्वेनेम एव सम्बन्धाः, 'अत्थि ण' मित्यादि, अरिः–सामान्यतः शत्रुः वैरिको–जातिनिबद्धवैरोपेतः घातको–योऽन्येन घातयति वधकः–स्वयं हन्ता व्यथको वा–चपेटादिना ताडकः प्रत्यनीकः–कार्योपघातकः प्रत्यमित्रो–यः पूर्वं मित्रं भूत्वा पश्चादमित्रो जातः अमित्रसहायो वा ?, इहाचार्यः–नायमिति, यतो व्यपगतो वैरजन्योऽनुशयः–पश्चात्तापो येभ्यस्ते तथा, वैरं कृत्वा हि तदुत्थफलविपाके पुमाननुशेते इति। 'अत्थि ण' मित्यादि, अत्र मित्रं–स्नेहास्पदं वयस्यः–समानवयाः गाढतरस्नेहास्पदं ज्ञातकः–स्वज्ञातीयः यद्वा ज्ञातकः-संवासादिना ज्ञातः सहजपरिचित इत्यर्थः सङ्घाटिकः–सहचारी सखा–समानखादनपानो गाढतमस्नेहास्पदं सुहृद्–मित्रमेव सकलकालमव्यभिचारि हितोपदेशदायि च साङ्गतिकः–सङ्गतिमात्रघटितः, हन्तेत्यादि पूर्ववत्, न चैव तेषां मनुजानां तीव्रं रागरूपं बन्धनं समुत्पद्यते। 'अत्थि ण' मित्यादि, अत्र चाह–आहूयन्ते स्वजनास्ताम्बूलदानाय यत्र स आवाहो–विवाहात् पूर्वं ताम्बूलदानोत्सवः विवाहः–परिणायनं यज्ञः–प्रतिदिवसं स्वस्वेष्टदेवतापूजा श्राद्धं–पितृक्रिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थालीपाकः–सम्प्रदायगम्यः मृतपिण्डनिवेदनानि–मृतेभ्यः स्मशाने तृतीयनवमादिषु दिनेषु पिण्डनिवेदनानि–पिण्डसमर्पणानि ?, अत्रोत्तरं–नायमर्थः समर्थः, व्यपगतावाहविवाहयज्ञश्राद्धस्थालीपाकमृतपिण्डनिवेदनास्ते मनुजाः। 'अत्थि ण'मित्यादि, इन्द्रः प्रतीतस्तस्य महः–प्रतिनियतदिवसभावी उत्सवः, एवमग्रेऽपि, स्कन्दः–कार्त्तिकेयः नागो–भवनपतिविशेषः यक्षभूतौ–व्यन्तरविशेषौ 'अगड'त्ति अवटः–कूपः तडागः–सरः द्रहनदीरूक्षपर्वताः प्रतीताः स्तूपः–पीठविशेषः चैत्यं च–इष्टदेवतायतनं, अत्राह–व्यपगतमहिमानस्ते मनुजाः प्रज्ञप्ताः। 'अत्थि ण'मित्यादि, नटा–नाटयितारः तेषां प्रेक्षा–प्रेक्षणकं कौतुकदर्शनोत्सुकजनमेलकः, एवमग्रेऽपि, नृत्यन्ति स्म नृत्ताः–कर्त्तरि क्तः प्रत्ययः नृत्तविधायिनः जल्ला–वरत्राखेलकाः मल्ला–भुजयुद्धकारिण मौष्टिका–मल्ला एव ये मुष्टिभिः प्रहरन्ति विडम्बका–विदूषकाः मुखविकारादिभिर्जनानां हास्योत्पादकाः कथकाः–सरसकथाकथनेन श्रोतृरसोत्पत्तिकारकाः प्लवका–ये झम्पादिभिर्गर्त्तादिकमुत्प्लवन्ते गर्त्तादिलङ्घनकारिणः इत्यर्थः अथवा तरन्ति नद्यादिकं ये इति लासका–ये रासकान् ददति तेषां प्रेक्षा, उपलक्षणादाख्यायकप्रेक्षादिग्रहः, अत्रोत्तरं–नायमर्थः समर्थः, यतो व्यपगतकुतूहलास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ताः। 'अत्थि ण'मित्यादि, अत्र शकटानि प्रतीतानि रथाः–क्रीडारथादयः यायन्ते–गम्यन्ते एभिरिति व्युत्पत्त्या यानानि–उक्तवक्ष्यमाणातिरिक्तानि गन्त्र्यादीनि युग्यं–पुरुषोत्क्षिप्तमाकाशयानं जम्पानमित्यर्थः 'गिल्लि'त्ति पुरुषद्वयोत्क्षिप्ता डोलिका 'थिल्लि'त्ति वेसरादिद्वयविनिर्मितो यानविशेषः शिबिका–प्रतीता स्यन्दमानिका–पुरुषायामप्रमाणः शिबिकाविशेषः, अत्र प्रतिवचः–

॥१२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नायमित्यादि, पादचारेण न तु शकटादिचारेण विहारो–विचरणं येषां ते तथा मनुजा इत्यादि। 'अत्थि ण'मित्यादि, अत्र गोमहिष्यजाः स्पष्टाः, एडका–उरभ्री, आह–'नो चेवे'त्यादि न च तेषां मनुष्याणां परिभोग्यतया कदाचिदागच्छन्ति, नैतासां दुग्धादि तेषामुपभोग्यमितियावत्। 'अत्थि ण'मित्यादि, अत्राश्वाः हस्तिनः उष्ट्राः प्रतीताः गोणा–गावः गवयो–वनगवः अजैडकौ स्पष्टौ प्रश्नया–द्विखुरा आटव्यपशुविशेषाः मृगवराहौ व्यक्तौ रुरवो–मृगविशेषाः शरभा–अष्टापदाः चमरा–अरण्यगवो यासां पुच्छकेशाश्चामरतया भवन्ति शबरा–येषामनेकशाखे शृङ्गे भवतः कुरङ्गगोकर्णौ मृगभेदौ शृङ्गवर्णादिविशेषाश्च सामर्थ्यगम्याः, अत्रोत्तरम्–हन्तेति कोमलामन्त्रणे, सन्ति, न चैव तेषां प्रथमसमाभाविनां मनुष्याणां यथासम्भवमारोहणादिकार्येषूपयुज्यन्ते। अथ नाखरप्रश्नसूत्रमाह–'अत्थि ण'मित्यादि, अत्र सिंहाः–केसरिणः व्याघ्राः–प्रतीताः वृका–ईहामृगाः द्वीपिनः–चित्रकाः रुक्षा–अच्छभल्लाः तरक्षवो–मृगादनाः शृगाला व्यक्ताः बिडाला–मार्जाराः शुनकाः–श्वानः कोकन्तिका–लोमटका ये रात्रौ को को इत्येवं रवन्ति कोलशुनका–महाशूकराः, अत्रोत्तरम्–सन्ति, परं नैव तेषां मनुजानां आबाधां वा–ईषद्बाधां व्याबाधां वा–विशेषेणाबाधां छविच्छेदं वा–चर्मकर्त्तनं उत्पादयन्ति, यतः प्रकृतिभद्रकास्ते श्वापदगणाः प्रज्ञप्ताः। 'अत्थि ण'मित्यादि,अत्र शालयः–कलमादिविशेषाः व्रीहयः–सामान्यतः गोधूमयवौ प्रतीतौ यवयवा–यवविशेषाः 'कल'त्ति कलायास्त्रिपुटाख्या वृत्तचणका वा मसूरा–मालवादिदेशप्रसिद्धा धान्यविशेषा मुद्गमाषतिलाः कुलत्थाः–चपलकतुल्याश्चिपिटा भवन्ति निष्पावा–वल्लाः 'आलिसंदग'त्ति चपलकाः अलसी–धान्यं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यस्य तैलं अलसीतैलमिति प्रतीतं 'कुसुंभ'त्ति लट्टाकाणाः यत्पुष्पैर्वस्त्रादिरागः समुत्पाद्यते कोद्रवाः–प्रतीताः कङ्गवः–पीततण्डुलाः 'वरग'त्ति वरट्टी धान्यविशेषः सपादलक्षादिषु प्रसिद्धः रालकः–कङ्गुविशेष एव, स चायं (विशेषः) बृहच्छिराः कङ्गुरल्पशिरा रालकः, शणं–त्वक्प्रधाननालो धान्यविशेषः सर्षपाः प्रतीताः मूलकं–शाकविशेषः तस्य बीजानि, प्राकृतत्वात् ककारलोपसन्धिभ्यां निष्पत्तिः, अत्रोत्तरम्–सन्ति, न च तेषां मनुजानां परिभोग्यतया कदाचिदायान्ति कल्पद्रुमपुष्पफलाद्याहारकत्वात्तेषामिति, 'अत्थि ण'मित्यादि, अत्र गर्त्ता–महती खड्डा दरी–मूषिकादिकृता लघ्वी खड्डा अवपातः–प्रपातस्थानं यत्र चलन् जनः सप्रकाशेऽपि पतति प्रपातो–भृगुर्यत्र जनः काञ्चित् कामनां कृत्वा प्रपतति विषमं–दुरारोहावरोहस्थानं विज्जलं–स्निग्धकर्दमाविलस्थानं यत्र जनोऽतर्कित एव पतति, नायमर्थः समर्थ इत्यादि, न सन्तीत्यर्थः, भरतवर्षे बहुसमरमणीयो भूमिभागो यतः प्रज्ञप्तः 'से जहा णामए' इत्यादि वर्णकः प्राग्वद् ज्ञेयः। 'अत्थि ण'मित्यादि, अत्र स्थाणुः–ऊर्ध्वकाष्ठं कण्टकः–स्पष्टः तृणान्येव कचवरः पत्राण्येव कचवरः, अत्राह–'नें' त्यादि, यतो व्यपगतस्थाणुयावत्पत्रकचवरा सा–सुषमसुषमा नाम्नी समा–अरकः प्रज्ञप्ता। 'अत्थि ण'मित्यादि, अत्र दंशमशकयूकालिक्षाः स्पष्टाः ढिंकुणा–मत्कुणाः यदाहुः श्रीहेमसूरयो देश्यां–"मक्कुणए ढिंकुण ढंकुणा तहा ढंकणी पिहाणीए" इति, पिशुकाः–चञ्चटाः, अत्राचार्यः–व्यपगतदंशमशकयूकालिक्षा तथा ढिंकुणापिशुकोपद्रवविरहिता, पश्चात् कर्मधारयः, सा समा प्रज्ञप्ता, अत्र सूत्रे व्यपगतेत्यादिविशेषणस्य कर्मधारयं विना व्याख्यानकरणे प्रस्तुतमूलादर्शे विरहिअत्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदं प्रमादापतितमिति ज्ञेयं, तदर्थस्य तत्त्वतो व्यपगतपदेनैवोक्तत्वात् । 'अत्थि ण'मित्यादि, अत्र अहयः–सामान्यतः सर्प्पाः अजगराः–महाकायसर्प्पाः शेषं पूर्ववत्, यतः प्रकृतिभद्रकास्ते व्यालगणाः–सरिसृपजातीयगणाः प्रज्ञप्ता इति । अत्र अहयुद्धसूत्रं जीवाभिगमादिषु साक्षाद् दृष्टमपि एतत्सूत्रादर्शेषु न दृष्टमिति न व्याख्यायामप्यलेखि । 'अत्थि ण'–मित्यादि, अत्र डिम्बडमरौ पूर्ववत्, कलहो–वचनरादिः बोलो–बहूनामार्त्तानामव्यक्ताक्षरध्वनिकः कलकलः क्षारः–परस्परं मत्सरः वैरं–परस्परमसहमानतया हिंस्यहिंसकताध्यवसायः महायुद्धानि–व्यवस्थाहीना महारणाः महासङ्ग्रामाः–चक्रादिव्यूहरचनोपेततया सव्यवस्था महारणाः महाशस्त्राणि–नागबाणादीनि तेषां निपतनानि–हिंसायुद्धा रिपुमोच-नानि, महाशस्त्रत्वं चैतेषामद्भुतविचित्रशक्तिकत्वात्, तथाहि–नागबाणा धनुष्यारोपिता बाणाकारा मुक्ताश्च सन्तो जाज्वल्यमानासह्योल्कादण्डरूपास्ततः परशरीरे सङ्क्रान्ता नागमूर्त्तीभूय पाशत्वमश्नुवते, तामसबाणास्तु सकलरणोर्वीव्या-पिमहान्धतमसरूपतया पवनबाणाश्च तथाविधपवनस्वरूपतया वह्निबाणाश्च तादृशवह्निप्रकारेण परिणताः प्रतिवैरिवाहि-नीषु विघ्नोत्पादका भवन्ति, एवमन्येष्वपि स्वस्वनामानुसारेण स्वस्वजन्यकार्यमुत्पादयन्ति, उक्तं च–"चित्रं श्रेणिक! ते बाणा, भवन्ति धनुराश्रिताः । उल्कारूपाश्च गच्छन्तः, शरीरे नागमूर्त्तयः ॥ १ ॥ क्षणं बाणाः क्षणं दण्डाः, क्षणं पाशत्वमागताः । आमरा ह्यस्त्रभेदास्ते, यथाचिन्तितमूर्त्तयः ॥ २ ॥" महापुरुषाः–छत्रपत्यादयस्तेषां पतनानि–कालधर्मन-यनानि, तत एव महारुधिराणि–छत्रपत्यादिसत्करुधिराणि तेषां निपतनानि–प्रवाहरूपतया वहनानि, अत्रोत्तरम्–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेत्यादि, यतस्ते व्यपगतो वैरस्यानुबन्धः–सन्तानभावेन प्रवृत्तिर्येभ्यस्ते तथा मनुजाः प्रज्ञप्ताः। 'अत्थि ण'मित्यादि, अत्र दुष्टा–जनधान्यादीनामुपद्रवहेतुत्वाद्भूताः–सत्त्वा उन्दरशलभप्रमुखा ईतय इत्यर्थः कुलरोगग्रामरोगमण्डलरोगा यथोत्तरं बहुस्थानव्यापिनः, 'पोट्ट'त्ति देश्यत्वाद् उदरं शीर्ष–मस्तकं तद्भेदना कर्णोष्ठाक्षिनखदन्तवेदनाः कण्ड्याः, कासश्वासौ व्यक्तौ, शोषः–क्षयरोगः दाहः–स्पष्टः अर्शो–गुदाङ्कुरः अजीर्ण–व्यक्तं दकोदरं–जलोदरं पाण्डुरोगभगन्दरौ प्रतीतौ एकाहिको–यो ज्वर एकादिनाऽन्तरित आयाति, एवं द्विदिनान्तरितो द्व्याहिकः त्रिभिर्दिनैरन्तरितस्त्र्याहिकः चतुर्थेन दिनेनान्तरितश्चतुर्थाहिकः इन्द्रग्रहादयस्तु उन्मत्तताहेतवो व्यन्तरादिदेवकृतोपद्रवाः धनुर्ग्रहः–सम्प्रदायगम्यः मस्तक-शूलादीनि प्रतीतानि ग्रामे उक्तस्वरूपे मारिः–युगपद्रोगविशेषादिना बहूनां कालधर्मप्राप्तिः, एवमग्रेऽपि, यावत्करणा-न्नगरमारिप्रभृतिपरिग्रहः, प्राणिक्षयो–गवादिक्षयः जनक्षयो–मनुष्यक्षयो कुलक्षयो–वंशक्षयः, एते च कथम्भूता इत्याह–व्यसनभूता–जनानामापद्भूताः अनार्याः–पापात्मकाः, अत्र विभक्तिलोपमकारागमौ प्राकृतत्वात्, अत्राह–नेत्यादि, व्यपगतो रोगः–चिरस्थायी कुष्ठादिरातङ्कः–आशुघाती शूलादिर्येभ्यस्ते तथा मनुजाः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण! हे आयुष्मन्!॥ अथैषां भवस्थितिं पृच्छति,

तीसे णं भंते! समाए भारहे वासे मणुआणं केवइअं कालं ठिई पण्णत्ता?, गोअमा! जहण्णेणं देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं उक्कोसेणं देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं, तीसे णं भंते! समाए भारहे वासे मणुआणं सरीरा केवइअं उच्चत्तेणं पण्णत्ता?, गोअमा! जहन्नेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम-आरकवर्ती मनुष्यस्य स्थिति-आदि वर्ण्यते

तिण्णि गाउआइं उक्कोसेणं तिण्णि गाउआइं, ते णं भंते ! मणुआ किंसंघयणी पण्णत्ता ?, गोअमा ! वइरोसभणारायसंघयणी पण्णत्ता, तेसि णं भंते ! मणुआणं सरीरा किंसंठिआ पण्णत्ता ?, गोअमा ! समचउरंससंठाणसंठिआ, तेसि णं मणुआणं बेछप्पण्णा पिट्ठकरंडयसया पण्णत्ता समणाउसो !, ते णं भंते ! मणुआ कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छन्ति कहिं उववज्जंति ?, गो० ! छम्मासावसेसाउआ जुअलगं पसवंति, एगूणपण्णं राइंदिआइं सारक्खंति संगोवेंति २ त्ता कासित्ता छीइत्ता जंभाइत्ता अक्किट्ठा अवहिआ अपरिआविआ कालमासे कालं किच्चा देवलोएसु उववज्जंति, देवलोअपरिग्गहा णं ते मणुआ पण्णत्ता, तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे कइविहा मणुस्सा अणुसज्जित्था ?, गो० ! छव्विहा पं०, तं०–पम्हगंधा १ मिअगंधा २ अममा ३ तेअतली ४ सहा ५ सणिचारी ६ (सूत्रं२५)

प्रायः कण्ठ्यं सूत्रमेतत्, नवरं देशोनानि त्रीणि पल्योपमानि स्थितिर्युग्मिनीं प्रतीत्य मन्तव्या, देशश्चात्र पल्योपमासङ्ख्येयभागरूपो ज्ञेयो, यदुक्तं जीवाभिगमे देवकुरूत्तरकुरुस्त्रियमधिकृत्य–"देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते ! केवइअं कालं ठिई पण्णत्ता ?, गो० ! देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगाइं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं"। अथावगाहनां पृच्छन्नाह–'तीसे ण'मित्यादि सुगमं, नवरं देशोनास्त्रयः क्रोशा अपि युग्मिनीं प्रतीत्य "उच्चत्तेणं णराण थोवोणमूसिआओ' इति वचनात्, यद्यपि 'छधणुसहस्समूसिआओ' इति पूर्वसूत्रेणैतेषामवगाहना लभ्यते तथापि जघन्योत्कृष्टविशेषविधानार्थं पुनरवगाहनासूत्रारम्भः। 'ते ण'मित्यादि, अत्र किं च तत्संहननं चेति कर्मधारयः, पश्चादस्त्यर्थे इन्प्रत्ययः, 'गौतमे'त्यादि, वज्रर्षभनाराचसंहननास्ते मनुजा इति, 'तेसि ण' मि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यादि सुगमं, नवरं किं संस्थितं–संस्थानं येषां ते तथा, यद्यपि पूर्ववर्णकसूत्रे विशेषणद्वारा एषां संहननादिकमाख्यातं तथापि सर्वेषामपि तत्कालभाविनामेकसंहननादिमात्रताख्यापनार्थमस्य सूत्रस्य प्रश्नोत्तरपद्धत्या निर्देशेन न पौनरुक्त्यमाशङ्कनीयं, अत एवाग्रवर्त्तिनि पृष्ठकरण्डकसूत्रे 'तेसि णं! भंते मणुआण'मित्यत्र 'केवइआ पिट्ठकरंडकसया पण्णत्ता?, गोअमा' इति प्रश्नसूत्रांशोऽध्याहार्य इति 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां पृष्ठकरण्डकशतानि–पूर्वोक्तस्वरूपाणि कियन्ति?, अत्र भगवानाह–द्वे षट्पञ्चाशदधिके पृष्ठकरण्डकशते प्रज्ञप्ते इत्यर्थः, 'ते ण'मित्यादि, ते मनुजाः कालस्य–मरणस्य मासो यस्मिन् कालविशेषे अवश्यं कालधर्म्मः तस्मिन् कालं कृत्वा, मासस्योपलक्षणत्वात् कालदिवसे इत्याद्यपि द्रष्टव्यं, क्व गच्छन्ति–क्वोत्पद्यन्ते इति प्रश्नद्वयेऽपि 'देवलोएसु उववज्जंती'त्येकमेवोत्तरं गमनपूर्वकत्वादुत्पादस्योत्पादाभिधाने गमनं सामर्थ्यादवगतमेवेत्याशयादिति, अथवा गतिर्देशान्तरप्राप्तिरपि भवतीति क्व गच्छन्तीत्येतदेव पर्यायेणाचष्टे–'उत्पद्यन्ते' उत्पत्तिधर्माणो भवन्ति, अत एवोत्तरसूत्रे 'उववज्जंती'त्येवोक्तं, स्वाम्याह–'गौतमे'ति षण्मासावशेषायुषः कृतपरभवायुर्बन्धा इति गम्यं, युगलकं प्रसुवत इति, एतेषामायुस्त्रिभागादौ परभवायुर्बन्धाभावमाह, तच्चैकोनपञ्चाशतं रात्रिंदिवान्यहोरात्राणि यावत्, संरक्षन्ति–उचितोपचारकरणतः पालयन्ति–संगोपयन्ति अनाभोगेन हस्तस्खलनकष्टेभ्यः, संरक्ष्य सङ्गोप्य च कासित्वा–कासं विधाय क्षुत्वा–क्षुतं विधाय जृम्भयित्वा–जृम्भां विधाय अक्लिष्टाः–स्वशरीरोत्थक्लेशवर्जिताः अव्यथिताः–परेणानापादितदुःखा अपरितापिताः–स्वतः परतो वाऽनुपजातकायमनःपरितापाः, एतेन तेषां सुखमरणमाह, कालमासे कालं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

कृत्वा देवलोकेषु–ईशानान्तसुरलोकेषूत्पद्यन्ते, स्वसमहीनायुष्कसुरेष्वेव तदुत्पत्तिसम्भवात्, अत्र कालमास इति कथनेन तत्कालभाविमनुजानामकालमरणाभावमाह, अपर्याप्तकान्तर्मुहूर्त्तकालानन्तरमनपवर्त्तनीयायुष्कत्वात्, अत्राह कश्चित्–ननु सर्वथा वर्त्तमानभवायुःकर्मपुद्गलपरिशाटकालस्यैव मरणकालत्वात् कथमकालमरणमुपपद्यते, यद्भावो वर्त्तमानसमायां निरूप्यते इति चेत्, सत्यं, द्विधा ह्यायुर्नरतिरश्चां–अपवर्त्तनीयमनपवर्त्तनीयं च, तत्राद्यं बहुकालवेद्यं सत्तथाऽध्यवसाययोगजनितश्लथबन्धनबद्धतयोदीर्णसर्वप्रदेशाग्रमपवर्त्तनाकरणवशादल्पीयःकालेन रज्जुदहनन्यायेन क्लिन्नवासोन्यायेन मुष्टिजलन्यायेन वा युगपद्वेद्यते, इतरत्तु गाढबन्धनबद्धतयाऽनपवर्त्तनायोग्यं क्रमेण वेद्यते, तेन बहुषु वर्त्तमानारकोचितमनपवर्त्तनीयमायुः क्रमेणानुभवत्सु सत्सु यदैकस्य कस्यचिदायुःपरिवर्त्तते तदा तस्य लोकैरकालमरणमिति व्यपदिश्यते, 'पढमो अकालमच्चू' इत्यादिवत्, तेनान्यदा अकालमरणस्यापि सम्भवात्तत्तदानीं तन्निषेध इति न दोष इति। अथ कथं ते देवलोकेषूत्पद्यन्ते इत्याह–यतो देवलोको–भवनपत्याद्याश्रयरूपस्तस्य तथाविधकालस्वभावात् तद्योग्यायुर्बन्धेन परिग्रहः–अङ्गीकारो येषां ते तथा देवलोकगामिन इत्यर्थः, एषां चैकोनपञ्चाशद्दिनावधि परिपालने केचिदेवमवस्थामाहुः–सद्योत्तानशया लिहन्ति दिवसान् स्वाङ्गुष्ठमार्यास्ततः, कौ रिङ्गन्ति पदैस्ततः कलगिरो यान्ति स्खलद्भिस्ततः। स्थेयोभिश्च ततः कलागणभृतस्तारुण्यभोगोद्गताः, सप्ताहेन ततो भवन्ति सुदृगादानेऽपि योग्यास्ततः ॥ १ ॥ अत्र व्याख्या–आर्याः सप्त दिवसान्–जन्मदिवसादिकान् यावत् उत्तानशयाः सन्तः स्वाङ्गुष्ठं लिहन्ति, ततो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयसप्तके पृथिव्यां रिङ्गन्ति, ततस्तृतीयसप्तके कलगिरो–व्यक्तवाचो भवन्ति, ततश्चतुर्थसप्तके स्खलद्भिः पदैर्यान्ति, ततः पञ्चमसप्तके स्थेयोभिः–स्थिरैः पदैर्यान्ति, ततः षष्ठसप्तके कलागणभृतो भवन्ति, ततः सप्तमसप्तके तारुण्यभोगोद्भटाः भवन्ति केचिच्च सुदृगादानेऽपि–सम्यक्त्वग्रहणेऽपि योग्या भवन्तीति क्रमः, इदं चावस्थाकालमानं सुषमासुषमायामादौ ज्ञेयं, ततः परं किञ्चिदधिकमपि सम्भाव्यते इति, अत्र प्रस्तावाद् कश्चिदाह–अथ तदाऽग्निसंस्कारादेरप्रादुर्भूतत्वेन मृतकशरीराणां का गतिरिति ?, उच्यते, भारण्डप्रभृतिपक्षिणस्तानि तथाजगत्स्वाभाव्यात् नीडकाष्ठमिवोत्पाट्य मध्येसमुद्रं क्षिपन्ति, यदुक्तं श्रीहेमाचार्यकृत ऋषभचरित्रे–"पुरा हि मृतमिथुनशरीराणि महाखगाः। नीडकाष्ठमिवोत्पाट्य, सद्यश्चिक्षिपुरंबुधौ ॥ १ ॥" किञ्चात्र श्लोके अम्बुधाविति युपलक्षणं तेन यथायोगं गङ्गाप्रभृतिनदीष्वपि ते तानि क्षिपन्तीति ज्ञेयं, ननु चोत्कृष्टतोऽपि धनुःपृथक्त्वमानशरीरैस्तैरुत्कृष्टप्रमाणानि तानि कथं सुवहानीत्यत्रापि समाधीयते–युग्मिशरीराणामम्बुधिक्षेपस्य महाखगकृतत्वेन बहुषु स्थानेषु प्रतिपादनादवसीयते यत् 'पक्खी धणुह पुहत्त–' मित्यत्र सूत्रे जात्यपेक्षया एकवचननिर्देशस्तेन क्वचिद् बहुवचनं व्याख्येयं, तथा च सति पक्षिशरीरमानस्य यथासम्भवं मरकापेक्षया बहुबहुतरबहुतमधनुःपृथक्त्वरूपस्यापि सम्भवात् तत्कालवर्त्तियुग्मिनरहस्त्यादिशरीरापेक्षया बहुधनुःपृथक्त्वपरिमाणशरीरैस्तैर्न किञ्चिदपि तानि दुर्वहानीति न काप्यनुपपत्तिरिति सम्भाव्यते, तत्त्वं बहुश्रुतगम्यं, एवं च सूत्रे एकवचननिर्देशेऽपि बहुवचनेन व्याख्यानं श्रीमलयगिरिपादैरपि श्रीबृहत्संग्रहणिवृत्तौ देवानामाहारोच्छ्वासान्तरकाल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२५]

दीप अनुक्रम [३८]

मानाधिकारे "दस वाससहस्साइं समथाई जाव सागरं ऊणं। दिवसमुहुत्तपुहुत्ता आहारुस्सास सेसाणं ॥ १ ॥" इत्यस्या गाथाया अर्थकथनावसरे कृतमस्तीति सर्वं सुस्थमिति । अथ तदा मनुजानामेकत्वमुत नानात्वमिति प्रश्नयन्नाह–'तीसे ण'मित्यादि, तस्यां समायां भगवन् ! भरते वर्षे कतिविधाः–जातिभेदेन कतिप्रकारा मनुष्या अनुषक्तवन्तः–कालात्कालान्तरमनुवृत्तवन्तः, सन्ततिभावेन भवन्ति स्मेत्यर्थः, भगवानाह–गौतम ! षड्विधाः, तद्यथा–पद्मगन्धाः १ मृगगन्धाः २ अममा ३ स्तेजस्तलिनः ४ सहाः ५ शनैश्चारिणः ६, इमे जातिवाचकाः शब्दाः संज्ञाशब्दत्वेन रूढाः, यथा पूर्वमेकाकाराऽपि मनुष्यजातिस्तृतीयारकप्रान्ते श्रीऋषभदेवेन उग्रभोगराजन्यक्षत्रियभेदैश्चतुर्द्धा कृता तथाऽत्राप्येवं षड्विधा सा स्वभावत एवास्तीति, यद्यपि श्रीअभयदेवसूरिपादैः पञ्चमाङ्गषष्ठशतकसप्तमोद्देशके पद्मसमगन्धयः मृगमदगन्धयः ममीकाररहितास्तेजश्च तलं च रूपं येषामस्तीति तेजस्तलिनः सहिष्णवः–समर्थाः शनैः–मन्दमुत्सुकत्वाभावाच्चरन्तीत्येवंशीला इत्यन्वर्थता व्याख्यातास्ति, तथापि तथाविधसम्प्रदायाभावात् साधारणव्यञ्जकाभावेन तेनैषां जातिप्रकाराणां दुर्बोधत्वाज्जीवाभिगमवृत्तौ सामान्यतो जातिवाचकतया व्याख्यानदर्शनाच्च न विशेषतो व्यक्तिः कृतेति । गतः प्रथमारकः ॥

तीसे णं समाए चउहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं अणंतेहिं गंधपज्जवेहिं अणंतेहिं रसपज्जवेहिं अणंतेहिं फासपज्जवेहिं अणंतेहिं संघयणपज्जवेहिं अणंतेहिं संठाणपज्जवेहिं अणंतेहिं उच्चत्तपज्जवेहिं अणंतेहिं आउपज्जवेहिं अणंतेहिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ द्वितिय्-आरकस्य स्वरुपम् वर्ण्यते

गुरुलहुपज्जवेहिं अणंतेहिं अगुरुलहुपज्जवेहिं अणंतेहिं उट्ठाणकम्मबलवीरिअपुरिसक्कारपरक्कमपज्जवेहिं अणंतगुणपरिहाणीए परिहायमाणे एत्थ णं सुसमा णामं समाकाले पडिवज्जिसु समणाउसो !, जंबूदीवे णं भंते! दीवे इमीसे ओसप्पिणीए सुसमाए समाए उत्तमकट्ठ-पत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था?, गोअमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा तं चेव जं सुसमसुसमाए पुव्ववण्णिअं, णवरं णाणत्तं चउधणुसहस्समूसिआ एगे अट्ठावीसे पिट्ठकरंडुकसए छट्ठ-भत्तस्स आहारट्ठे, चउसट्ठिं राइंदिआइं सारक्खंति, दो पलिओवमाइं आऊ सेसं तं चेव, तीसे णं समाए चउव्विहा मणुस्सा अणु-सज्जित्था, तंजहा–एका १ पडरजंघा २ कुसुमा ३ सुसमणा ४ (सूत्रं २६)

तस्यां सुषमसुषमानाम्न्यां समायां चतसृषु सागरोपमकोटाकोटीषु काले व्यतिक्रान्ते सति, सूत्रे च तृतीयानिर्देश आर्षत्वात्, अथवा चतसृभिः सागरोपमकोटाकोटीभिः काले मिते गणिते वा इति मितादिशब्दाध्याहारेण योजना कार्या, अत्र च पक्षे करणे तृतीया ज्ञेया, अत्रान्तरे सुषमा नाम्ना समा–कालः प्रतिपन्नवान्–लगति स्मेति वाक्यान्तरसूत्र-योजना, सुषमा चोत्सर्पिण्यामपि भवेदित्याह–'अणंतगुणपरिहाण्या परिहीयमाणा हानिमुपगच्छन् २' सूत्रे च द्विर्वचन-मनुसमयं हानिरिति हानेः पौनःपुन्यज्ञापनार्थं, अथ कालस्य नित्यद्रव्यत्वेन न हानिरुपपद्यते, अन्यथाऽहोरात्रं सर्वदा त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकमेव तत् न स्यादित्यत आह–'अनन्तैर्वर्णपर्यवै'रित्यादि, वर्णाः–श्वेतपीतरक्तनीलकृष्णभेदात् पञ्च, कपिशादयस्तु तत्संयोगजास्ततः श्वेतादेरन्यतरस्य वर्णस्य पर्यवा–बुद्धिकृता निर्विभागा भागाः एकगुणश्वेतत्वादयः

॥१२८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२६]

दीप अनुक्रम [३९]

संकलजीवराशेरनन्तगुणाधिकास्तैरऽनन्ता ये गुणा–अनन्तरोक्तस्वरूपा भागास्तेषां परिहाणिः–अपचयस्तया प्रकारभूतया इत्यर्थः, हीयमानः २ सुषमा कालविशेष इति योज्यं, एवमग्रेऽपि योजना कार्या, अथ यथैषामनन्तत्वमनुसमयमनन्तगुणहानिश्च तथा दर्श्यते–'तीसे णं समाए उत्तमकट्ठपत्ताए' इति प्रागुक्तबलात् प्रथमसमये कल्पद्रुमपुष्पफलादिगतो यः श्वेतो वर्णः स उत्कृष्टः, तस्य केवलिप्रज्ञया छिद्यमाना यदि निर्विभागा भागाः क्रियन्ते तर्हि अनन्ता भवन्ति, तेषां मध्यादनन्तभागात्मक एको राशिः प्रथमारकद्वितीयसमये क्षुद्यति, एवं तृतीयादिसमयेष्वपि वाच्यं यावत्प्रथमारकान्त्यसमयः, एषैव रीतिरवसर्पिणीचरमसमयं यावज्ज्ञेया, अत एव अनन्तगुणपरिहाण्येत्यत्र अनन्तगुणानां परिहाणिरिति षष्ठीतत्पुरुष एव विधेयो न तु अनन्तगुणा चासौ परिहाणिश्चेति कर्मधारयः, गुणशब्दश्च भागपर्यायवचनोऽनुयोगद्वारवृत्तिकृता एकगुणकालकपर्यवविचारे सुस्पष्टमाख्यातोऽस्ति, एवं सति श्वेतवर्णस्यासन्न एव सर्वथोच्छेदः, तथा च सति श्वेतवस्तुनोऽश्वेतत्वप्रसङ्गः, एतच्च जातिपुष्पादिषु प्रत्यक्षविरुद्धं ?, उच्यते, आगमेऽनन्तकस्यानन्तभेदत्वात् हीयमानभागानामनन्तकमल्पं ततो मौलराशेर्भागानन्तकं बृहत्तरमवगन्तव्यं, यदि नाम सिद्ध्यत्स्वपि भव्येषु लोकेषु न तेषामनन्तकालेनापि निर्लेपना आगमेऽभिहिता किं पुनः सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणानामुत्कृष्टवर्णगतभागानां ?, न च ते सङ्ख्याता एव सिध्यन्ति, इमे तु प्रतिसमयमनन्ता हीयन्ते इति महद्दृष्टान्तवैषम्यमिति वाच्यं, यतस्तत्र यथा सिध्यतां भव्यानां संख्याततता तथा सिद्धिकालोऽनन्त एवमत्रापि यथा प्रतिसमयमनन्तानामेषां हीयमानता तथा हानिकालोऽवसर्पिणीप्रमाण एव ततः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमुत्सर्पिणीप्रथमसमयादौ तेनैव क्रमेण वर्द्धन्ते इति सर्वं सम्यक्, एवं पीतादिषु वर्णेषु गन्धरसस्पर्शेषु च यथासम्भवमागमाविरोधेन भावनीयं, तथा अनन्तैः संहननपर्यवैरिति–संहननानि–अस्थिनिचयरचनाविशेषरूपाणि वज्रऋषभनाराचऋषभनाराचनाराचार्द्धनाराचकीलिकासेवार्त्तभेदात् षट्, प्रस्तुते चारके आद्यमेव ग्राह्यं ऋषभनाराचादीमामभावात्, अन्यत्र यथासम्भवं तानि ग्राह्याणि, तत्पर्यवा अपि तथैव हापनीयाः, संहननेनैव शरीरे दार्ढ्यमुपजायते, तच्च सर्वोत्कृष्टं सुषमसुषमाद्यसमये, ततः परमनन्तैरनन्तैः पर्यवैः समये २ हीयत इति, तथा संस्थानानि–आकृतिरूपाणि समचतुरस्रन्यग्रोधसादिकुब्जकवामनहुण्डभेदात् षोढा, तच्च तत्र प्रथमे समये सर्वोत्कृष्टं, ततः परं तथैव हीयत इति, तथोच्चत्वं–शरीरोत्सेधस्तच्च तत्र प्रथमे समये* त्रिगव्यूतप्रमाणमुत्कृष्टं, ततः परं तत्प्रमाणतारतम्यरूपाः पर्यवाः अनन्ताः समये २ हीयन्ते, ननु उच्चत्वं हि शरीरस्य स्वावगाढमूलक्षेत्रादुपरितनोपरितननभःप्रदेशावगाहित्वं, तत्पर्यवाश्च एकद्वित्रिप्रतरावगाहित्वादयोऽसङ्ख्यातप्रतरावगाहित्वान्ता असङ्ख्याता एव, अवगाहनाक्षेत्रस्यासङ्ख्यातप्रदेशात्मकत्वात्, तर्हि कथमेषामनन्तत्वं ?, कथं चैतेऽनन्तभागपरिहाण्या हीयन्ते इति चेद्, उच्यते, प्रथमारके यत् प्रथमसमयोत्पन्नानामुत्कृष्टं शरीरोच्चत्वं भवति ततो द्वितीयादिसमयोत्पन्नानां यावतामेकनभःप्रतरावगाहित्वलक्षणपर्यवाणां हानिस्तावत् पुद्गलानन्तकं हीयमानं द्रष्टव्यं, आधारहानावाधेयहानेरावश्यकत्वादिति, तेनोच्चत्वपर्यवाणामप्यनन्तत्वं सिद्धं, नभःप्रतरावगाहस्य पुद्गलोपचयसाध्यत्वात्, तथा आयुः–जीवितं तदपि तत्र प्रथमे समये त्रिपल्योपमप्रमाणमुत्कृष्टं तदनन्तरं तत्प-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

र्यवा अपि अनन्ताः प्रतिसमयं हीयन्ते, ननु पर्यवा एकसमयोना द्विसमयोना यावदसङ्खातसमयोनोत्कृष्टा स्थितिरिति स्थितिस्थानतारतम्यरूपा असङ्खाता एव, आयुःस्थितेरसङ्खातसमयात्मकत्वात्, तर्हि कथं सूत्रेऽनन्तैरायुःपर्यवैरित्युक्तं ?, उच्यते, प्रतिसमयं हीयमानस्थितिस्थानकारणीभूतानि अनन्तानि आयुःकर्मदलिकानि परिहीयन्ते, ततः कारणहानौ कार्यहानेरावश्यकत्वात्, तानि च भवस्थितिकारणत्वादायुःपर्यवा एव अतस्ते अनन्ता इति, तथा अनन्तैर्गुरुलघुपर्यवैरिति, गुरुलघुद्रव्याणि–बादरस्कन्धद्रव्याणि औदारिकवैक्रियाहारकतैजसरूपाणि तत्पर्यवाः, तत्र प्रकृते वैक्रियाहारकयोरनुपयोगस्तेन औदारिकशरीरमाश्रित्योत्कृष्टवर्णादयस्तत्राद्यसमये बोध्याः, ततः परं तथैव हीयन्ते तैजसमाश्रित्य कपोतपरिणामकजाठराग्निरुत्कृष्टस्तत्रादिसमये तदनन्तरं मन्दमन्दतरादिवीर्यकत्वरूप इति, तथा अनन्तैरगुरुलघुपर्यवैरिति, अगुरुलघुद्रव्याणि सूक्ष्मद्रव्याणि, प्रस्तुते च पौद्गलिकानि मन्तव्यानि, अन्यथाऽपौद्गलिकानां धर्मास्तिकायादीनामपि पर्यवहानिप्रसङ्गः, तानि च कार्मणमनोभाषादिद्रव्याणि तेषां पर्यवैरनन्तैः, तत्र कार्मणस्य सातवेदनीयशुभनिर्माणसुस्वरसौभाग्याऽऽदेयादिरूपस्य बहुस्थित्यनुभागप्रदेशकत्वेन मनोद्रव्यस्य बहुग्रहणासन्निदग्धग्रहणझटितिग्रहणबहुधारणादिमत्तया भाषाद्रव्यस्योदात्तत्वगम्भीरोपनीतरागत्वप्रतिनादविधायितादिरूपतया च तत्रादिसमये उत्कृष्टता, ततः परं क्रमेणानन्ताः पर्यवा हीयन्ते, अनन्तैरुत्थानादिपर्यवैः, तत्रोत्थानं–ऊर्ध्वं भवनं कर्म–उत्क्षेपणावक्षेपणादि गमनादि वा बलं–शारीरः प्राणः वीर्यं–जीवोत्साहः पुरुषाकारः–पौरुषाभिमानः पराक्रमश्च–स एव साधिताभि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतप्रयोजनः, अथवा पुरुषकारः–पुरुषक्रिया सा च प्रायः स्त्रीक्रियातः प्रकर्षवती भवतीति तत्स्वभावत्वादिति विशेषेण तद्ग्रहणं, पराक्रमस्तु–शत्रुवित्रासनं, तत एते प्राक्तनसमये उत्कृष्टास्ततः परं परिपाट्या तथैव हीयन्ते, तथा "संघयणं संठाणं उच्चत्तं आउअं च मणुआणं । अणुसमयं परिहायइ ओसप्पिणीकालदोसेणं ॥ १ ॥ कोहमयमायलोभा ओसन्नं वड्ढए अ मणुआणं । कूडतुलकूडमाणा तेणऽणुमाणेण सव्वंपि ॥ २ ॥ विसमा अज्ज! तुलाओ विसमाणि अ जणवएसु माणाणि । विसमा रायकुलाइं तेण उ विसमाइं वासाइं ॥ ३ ॥ विसमेसु अ वासेसुं हुंति असाराइं ओसहिवलाइं । ओसहिदुब्बलेण य आउं परिहायइ णराणं ॥ ४ ॥' इति तण्डुलवैचारिके अवसर्पिणीकालदोषेण हानिरुक्ता सा बाहुल्येन दुःषमामाश्रित्य शेषारकेषु तु यथासम्भवं ज्ञेयेति, ननु नित्यद्रव्यस्यापि कालस्य कथं हानिरिति परकृतासम्भवाशङ्कानिवारणार्थं वर्णादिपर्यवाणां हानिरुक्ता, ते च पुद्गलधर्मास्तर्हि अन्यधर्मैर्हीयमानैर्विवक्षितः कालः कथं हीयते इति महदसङ्गतं, तथा सति वृद्धाया वयोहानौ युवत्या अपि वयोहानिप्रसङ्ग इति चेत्, न, कालस्य कार्यवस्तुमात्रे कारणत्वाङ्गीकारात्कार्यगता धर्माः कारणे उपचर्यन्ते कारणत्वसम्बन्धादिति । अथ प्रस्तुतारकस्य स्वरूपप्रश्नायाह—'जंबुद्दीवे णं भंते!' इत्यादि प्रायः सूत्रं गतार्थमेव, नवरं केवलं नानात्वं–भेदः, स चायं–चतुर्धनुःसहस्रोच्छ्रिताः क्रोशद्वयोच्चास्ते मनुजा इति योगः, मकारोऽलाक्षणिकः, अष्टाविंशत्यधिकं पृष्ठकरण्डकशतं प्रथमारोक्तपृष्ठकरण्डुकानामर्धमितियावत् तेषां मनुजानामिति योगः, षष्ठभक्तेऽतिक्रान्ते आहारार्थः समुत्पद्यते इति योगः, सूत्रे सप्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

म्यर्थे षष्ठी सूत्रत्वात्, चतुःषष्टिं रात्रिन्दिवानि यावत् संरक्षन्ति, अपत्यानि ते मनुजा इति योगः, तत्र सप्तावस्थाक्रमः पूर्वोक्त एव, नवरं एकैकस्या अवस्थायाः कालमानं नव दिनानि अष्टौ घट्यश्चतुस्त्रिंशत् पलानि सप्तदश चाक्षराणि किञ्चिदधिकानीति, चतुःषष्टेः सप्तभिर्भागे एतावत एव लाभात्, यच्च पूर्वेभ्योऽधिकोऽपत्यसंरक्षणकालस्तत्कालस्य हीयमानत्वेनोत्थानादीनां हीयमानत्वाद् भूयसाऽनेहसा व्यक्तताभवनादिति, एवमग्रेऽपि ज्ञेयं, द्वे पल्योपमे आयुस्तेषां मनुजानामिति योगः, एवमन्यत्रापि यथासम्भवमध्याहारेण सूत्राक्षरयोजना कार्या, अन्यत् सर्वं सुषमसुषमोक्तमेवेति, अत्रापि यथोक्तमायुःशरीरोच्छ्रयादिकं सुषमायामादौ ज्ञेयं, ततः परं क्रमेण हीयमानमिति। अथात्र भगवान् स्वयमेवापृष्टानपि मनुष्यभेदानाह–'तीसे ण' मित्यादि, अत्रान्वययोजना प्राग्वत्, एकाः १ प्रचुरजङ्घाः २ कुसुमाः ३ सुशमनाः ४ एतेऽपि प्राग्वज्जातिशब्दा ज्ञेयाः, अन्वर्थता चैवं–एकाः-श्रेष्ठाः, संज्ञाशब्दत्वान्न सर्वादित्वं, प्रचुरजङ्घाः–पुष्टजङ्घाः नतु काकजङ्घा इति भावः, कुसुमसदृशत्वात् सौकुमार्यादिगुणयोगेन कुसुमाः, पुंस्यपि कुसुमशब्दः, सुष्ठु–अतिशयेन शमनं–शान्तभावो येषां ते तथा, प्रतनुकषायत्वात्, अत्र पूर्वोक्तषट्प्रकारमनुष्याणामभावादेतेऽन्ये जातिभेदाः । गतो द्वितीयारक इति ।

तीसे णं समाए तिहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव अणंतगुणपरिहाणीए परिहायमाणी २ एत्थ णं सुसमदुस्समाणामं समा पडिवज्जिसु समणाउसो!, सा णं समा तिहा विभज्जइ–पढमे तिभाए १ मज्झिमे तिभाए २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ तृतिय-आरकस्य स्वरुपम् वर्ण्यते

पच्छिमे तिभाए ३ जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे, इमीसे ओसप्पिणीए सुसमदुस्समाए समाए पढममज्झिमेसु तिभाएसु भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोआरे पुच्छा, गोअमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, सो चेव गमो णेअव्वो णाणत्तं दो धणुसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, तेसिं च मणुआणं चउसट्ठिपिट्ठकरंडुगा चउत्थभत्तस्स आहारत्थे समुप्पज्जइ ठिई पलिओवमं एगूणासीइं राइंदिआइं सारक्खंति संगोवेंति, जाव देवलोगपरिग्गहिआ णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !, तीसे णं भंते ! समाए पच्छिमे तिभाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था ?, गोअमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था से जहा णामए आलिंगपुक्खरे इ वा जाव मणीहिं उवसोभिए, तंजहा–कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव, तीसे णं भंते ! समाए पच्छिमे तिभागे भरहे वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोआरे होत्था ?, गोअमा ! तेसिं मणुआणं छव्विहे संघयणे छव्विहे संठाणे बहूणि धणुसयाणि उड्ढं उच्चत्तेणं जहण्णेणं संखिज्जाणि वासाणि उक्कोसेणं असंखिज्जाणि वासाणि आउअं पालंति पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी अप्पेगइया तिरिअगामी अप्पेगइया मणुस्सगामी अप्पेगइया देवगामी अप्पेगइया सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेंति (सूत्रं २७)

व्याख्या प्राग्वत्, नवरं परिहायमाणी इत्यत्र स्त्रीलिङ्गनिर्देशः समाविशेषणार्थस्तेन समा काले इति पदद्वयं पृथक् मन्तव्यं, अयमेवाशयः सूत्रकृता 'सा णं समे'त्युत्तरसूत्रे प्रादुश्चक्रे इति, अथास्या एव विभागप्रदर्शनार्थमाह—'सा ण'–मित्यादि, सा सुषमदुःषमा नाम्नी समा–तृतीयारकलक्षणा त्रिधा विभज्यते–विभागीक्रियते, तद्यथा–प्रथमस्तृतीयो भागः प्रथमस्त्रिभागः मयूरव्यंसकादित्वात् पूरणप्रत्ययलोपः, एवमग्रेऽपि, अयं भावः–द्वयोः सागरोपमकोटाकोट्योस्त्रि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिर्भागे यदागतं तदेकैकस्य भागस्य प्रमाणं, तच्चेदं–षट्षष्टिः कोटिलक्षाणां षट्षष्टिः कोटिसहस्राणां षट्कं कोटिशतानां षट्षष्टिः कोटीनां षट्षष्टिर्लक्षाणां षट्षष्टिः सहस्राणां षट्कं शतानां षट्षष्टिश्च सागरोपमाणां द्वौ च सागरोपमत्रिभागौ, स्थापना चेयं–६६६६६६६६६६६६६६३ इति, अथाद्यभागयोः स्वरूपप्रश्नायाह—'जंबुद्दीवे ण'मित्यादि, सर्वं गतार्थं, नानात्वमित्ययं विशेषः—द्वे धनुःसहस्रे ऊर्ध्वोच्चत्वेन क्रोशोच्चा इत्यर्थः, तेषां च मनुष्याणां चतुःषष्टिः पृष्ठकरण्डुकानि, अष्टाविंशत्यधिकशतस्यार्द्धीकरणे एतावत एव लाभात्, चतुर्थभक्तेऽतिक्रान्ते आहारार्थः समुत्पद्यते, एकदिनान्तरित आहार इत्यर्थः, स्थितिः पल्योपमं, एकोनाशीतिं रात्रिन्दिवानि संरक्षन्ति सङ्गोपयन्ति, अपत्ययुगलकमित्यर्थः, तत्रावस्थाक्रमस्तथैव, नवरमेकैकस्या अवस्थायाः कालमानं एकादशं दिनानि सप्तदश घट्यः अष्टौ पलानि चतुस्त्रिंशच्चाक्षराणि किञ्चिदधिकानीति, एकोनाशीतेः सप्तभिर्भागे एतावत एव लाभात्, अस्यां च भिन्नजातिमनुष्याणामनुषङ्गना नास्ति, तदा तेषामसंभवादिति संभाव्यते, तत्त्वं तु तत्त्वविद्ज्ञेयं, यत्तु–'उग्गा भोगा रायन्न खत्तिआ संगहो भवे चउहा' इत्युक्तं तदरकान्त्यभागभावित्वेन नेहाधिक्रियते, नन्वस्याः समायास्त्रिधा विभजनं किमर्थं?, उच्यते, यथा प्रथमारकादौ त्रिपल्योपमायुषस्त्रिगव्यूतोच्छ्रयास्त्रिदिनान्तरितभोजना एकोनपञ्चाशद्दिनानि कृतापत्यसंरक्षणास्ततः क्रमेण कालपरिहाण्या द्वितीयारकादौ द्विपल्योपमायुषो द्विगव्यूतोच्छ्रया द्विदिनान्तरितभोजनाश्चतुःषष्टिदिनानि कृतापत्यसंरक्षणास्ततोऽपि तथैव परिहाण्या तृतीयारकादौ एकपल्योपमायुषः एकगव्यूतो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च्छूया एकदिनान्तरितभोजना अशीतिदिनानि कृतापत्यसंरक्षणास्तदनन्तरमपि त्रिधाविभक्ततृतीयारकप्रथमत्रिभाग-द्वयं यावत्, तथैव नियतपरिहाण्या हीयमाना युग्मिमनुजा अभूवन्, अन्तिमत्रिभागे तु सा परिहाणिरनियता जातेति सूचनार्थं त्रिभागकरणं सार्थकमिति सम्भाव्यते, अन्यथा वा यथाऽऽगमसम्प्रदायं त्रिभागकरणे हेतुरवगन्तव्य इति । अथ तृतीयारकस्वरूपप्रश्नायाह—'तीसे ण' मित्यादि, यदेव दक्षिणार्द्धभरतस्वरूपप्रतिपादनाधिकारे व्याख्यातं तदत्र सूत्रे निरवशेषं ग्राह्यं—नवरमत्र कृष्यादिकर्माणि प्रवृत्तानीति कृत्रिमैस्तृणैः कृत्रिमैर्मणिभिरित्युक्तं, अथात्रैव मनुजानां स्वरूपं पृच्छन्नाह—'तीसे ण' मित्यादि, व्याख्या प्राग्वत् । अथ यथास्मिन् जगद्व्यवस्थाऽभूत् तदाह—

तीसे णं समाए पच्छिमे तिभाए पलिओवमट्ठभागावसेसे एत्थ णं इमे पण्णरस कुलगरा समुप्पज्जित्था, तंजहा—सुमई १ पडिस्सुई २ सीमंकरे ३ सीमंधरे ४ खेमंकरे ५ खेमंधरे ६ विमलवाहणे ७ चक्खुमं ८ जसमं ९ अभिचंदे १० चंदाभे ११ पसेणई १२ मरुदेवे १३ णाभी १४ उसभे १५ त्ति । (सूत्रं २८)

तस्याः समायाः पाश्चात्ये त्रिभागे—तृतीये त्रिभागे पल्योपमाष्टमभागावशेषे एतस्मिन् समये इमे—वक्ष्यमाणाः पञ्चदश कुलकरा—विशिष्टबुद्धयो लोकव्यवस्थाकारिणः कुलकरणशीलाः पुरुषविशेषाः समुद्पद्यन्ते—समुत्पद्यन्तः, अत्राह कश्चित्—आवश्यकनिर्युक्त्यादिषु सप्तानां कुलकराणामभिधानादिह पञ्चदशानां तेषामभिधानं कथं यदिवा भवतु

१ न तु स्थानांगादौ सप्तैव कुलकरा भणितास्तथाहि—'जंबुद्दीवे २ भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था, तंजहा—पढमित्थविमलवाहण १

॥१३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ कुलकर-वक्तव्यता आरभ्यते

नामैतत्, पुण्यपुरुषाणामधिकाधिकवंद्यपुरुषवर्णनस्य न्याय्यत्वात्, परं पल्योपमाष्टभागावशिष्टतावचनं कालस्य सुतरां बाधते अनुपपत्तेः, तथाहि–पल्योपमं किलासत्कल्पनया चत्वारिंशद्भागं परिकल्प्यते, तस्याष्टमो भागश्चत्वारिंशद्भागाः पञ्च, तत्राप्याद्यस्य विमलवाहनस्यायुः पल्योपमदशभागस्ततश्चत्वारश्चत्वारिंशद्भागास्तदायुषि गताः, शेष एकः पल्योपमस्य चत्वारिंशत्तमः सङ्ख्येयो भागोऽवतिष्ठते, स चक्षुष्मदादीनामसंख्येयपूर्वैर्नाभेः सङ्ख्येयपूर्वैः श्रीऋषभस्वामिन-

१ चक्खुम २ जसमं ३ चउत्थमभिचंदे ४ । तत्तो पसेणई ५ पुण मरुदेवे ६ चेव नाभी ७ अ ॥ १ ॥ त्ति, इह तु श्रीऋषभदेवसंयुक्ताः पंचदश भणिताः, तेष्वप्यभिचंद्रप्रसेनजितोरंतराले चन्द्राभो भणितः, एवं च सति कथमन्योन्यं संगतिरिति चेत्, सत्यं, कुलकरा हि द्विविधा भवंति, कुलकरकृत्येषु नियुक्ताः स्वतन्त्रप्रवृत्ताश्च, तत्र ये विमलवाहनादयो नियुक्तास्ते स्थानांगादौ भणिताः, इह कुलकरकृत्यं कुर्वन्तः कुलकरा भवन्त्येव इत्यभिप्रायेणोभयेऽप्युपात्ताः, यदुक्तं विशेषणवत्यां–"सत्त य सत्तमठाणाइएसु दस कुलगरा दसमठाणे । पण्णत्तीए भणिआ पण्णरस जंबुद्दीवस्स ॥ १ ॥ सत्तग्गहणेण जे विमलवाहणाई परेण से ण संगहिआ । अणिओत्ति द्विअ ते कुलगरत्तणं जेण कयवंतो ॥ २ ॥ पण्णरस कुलगरत्तणसामण्णाओत्ति तेऽवि संगहिआ । जत्थ दसण्हं सत्तगमणिउत्तं तत्थ तिगमाहु ॥ ३ ॥" इति, यद्यप्येवं संगतिः श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणैरभिहिता, परं परमार्थचिन्तायामेतदभिप्रायः सम्यग् नावसीयते, यतो दंडनीतावसंगतेस्तादवस्थ्यमेव, तथाहि–विमलवाहनचक्षुष्मतोः काले हेतिरूपा दंडनीतिः १ यशस्विअभिचंद्रयोः कालेऽल्पापराधिनां हेतिरूपा तदितरेषां तु मेतिरूपा दंडनीतिः २ प्रसेनजिन्मरुदेवनाभीनां कालेऽल्पापराधिनां हाकाररूपा मध्यापराधिनां मकाररूपा उत्कृष्टापराधिनां च धिक्काररूपा दंडनीतिः ३ श्रीस्थानांगसूत्रादौ भणिता, इह तु विमलवाहनकाले हकारमकाररूपं नीतिद्वयं वक्ष्यति, तथाऽभिचंद्रादनु चंद्राभः प्रोक्तः, स्थानांगादौ तु तन्नामापि नास्ति, तथा श्रीस्थानांगे सप्तमस्थानकेऽतीतानागतयोरुत्सर्पिण्योः सप्त कुलकरा भणिताः, दशमस्थानके च दश, तत्र नाम्नामप्यसंगतिरित्यादि बहु विचार्यमस्त्यतोऽसंगतिहेतुर्वाचनाभेद एव, स च शीर्षप्रहेलिकापर्यंतसंख्याव्याख्यावसरे प्रदर्शितः । (इति ही० वृत्तौ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥१३३॥

श्चतुरशीत्या पूर्वलक्षैः शेषैश्चैकोननवत्या पक्षैः परिपूर्यते, तेन पूर्वेषां सुमत्यादिकुलकराणा महत्तमायुषां कावकाशः?, उच्यते, आद्यस्य सुमतेस्तावत्पल्यदशमाश आयुः, ततो द्वादश वंश्यान् यावत् पूर्वदर्शितन्यायेनैकस्मिंश्चत्वारिंशत्त-मेऽवशिष्टभागेऽसङ्ख्येयानि पूर्वाणि तानि च यथोत्तरं हीनहीनानि नाभेस्तु सङ्ख्येयानि पूर्वाणीत्यादि, इत्थं चावि-रुद्धमिव प्रतिभाति, यत्तु हारिभद्र्यामावश्यकवृत्तौ "पलिओवमदसमंसो पढमस्साउं तओ असंखिज्जा । ते अणुपुव्वी हीणा पुव्वा नाभिस्स संखिज्जा ॥ १ ॥" इति गाथाव्याख्याने मतान्तरेण नाभेरसङ्ख्येयपूर्वायुष्कत्वमुक्तं, तत्तु कुलकरसमानायुष्कत्वेन कुलकरपत्नीनां मरुदेव्या अप्यसंख्यपूर्वायुष्कतापत्तौ मुक्त्यनुपपत्तिरिति तत्रैव दूषितमस्तीति न कोऽपि परस्परं विरोधः, यच्चावश्यकादिषु विमलवाहनस्य पल्यदशमांशायुष्कत्वं तद्वाचनाभेदादवगन्तव्यं, यच्च ग्रन्थान्तरे नामपाठभेदः सोऽपि तथैवेत्यत्र सर्वविदः प्रमाणमित्यलं विस्तरेण, अथ प्रस्तुतमुपक्रम्यते–'तद्यथे'ति तान् नामतो दर्शयति, सुमतिः १ प्रतिश्रुतिः २ सीमङ्करः ३ सीमन्धरः ४ क्षेमङ्करः ५ क्षेमन्धरः ६ विमलवाहनः ७ चक्षुष्मान् ८ यशस्वी ९ अभिचन्द्रः १० चन्द्राभः ११ प्रसेनजित् १२ मरुदेवः १३ नाभिः १४ ऋषभ १५ इति, यत्पुनः पद्मचरित्रे चतुर्दशानां कुलकरत्वमभिहितमत्र तु पञ्चदशस्य ऋषभस्यापि तद्भरतक्षेत्रप्रकरणे भरतभर्तुर्भरत-नाम्नोऽपि महाराजस्य प्ररूपणाप्रक्रमितव्याऽस्तीति ज्ञापनार्थमिति । अथैते कुलकरत्वं कथं कृतवन्त इत्याह—

तत्थ णं सुमई १ पडिस्सुइ २ सीमंकर ३ सीमंधर ४ खेमंकरा ५ णं एतेसिं पंचण्हं कुलगराणं हक्कारे णामं दण्डणीई होत्था, ते णं

२वक्षस्कारे कुलकराः सू. २८

॥१३३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुआ हक्कारेणं दंडेणं हया समाणा लज्जिआ विलज्जिआ वेड्डा भीआ तुसिणीआ विणओणया चिट्ठंति, तत्थ णं खेमंधर ६ विमलवाहण ७ चक्खुमं ८ जसमं ९ अभिचंदाणं १० एतेसि णं पंचण्हं कुलगराणं मक्कारे णामं दंडणीई होत्था, ते णं मणुआ मक्कारेणं दंडेणं हया समाणा जाव चिट्ठंति, तत्थ णं चंदाभ ११ पसेणइ १२ मरुदेव १३ णाभि १४ उसभाणं १५ एतेसि णं पंचण्हं कुलगराणं धिक्कारे णामं दंडणीइ होत्था, ते णं मणुआ धिक्कारेणं दंडेणं हया समाणा जाव चिट्ठंति (सूत्रं २९)

'तत्थ ण'मित्यादि, तेषु पञ्चदशसु कुलकरेषु मध्ये सुमतिप्रतिश्रुतिसीमंकरसीमन्धरक्षेमङ्कराणामेतेषां पञ्चानां कुलकराणां हा इत्यधिक्षेपार्थकः शब्दस्तस्य करणं हाकारो नाम दण्डः–अपराधिनामनुशासनं तत्र नीतिः–न्यायोऽभवत्, अत्रायं सम्प्रदायः–पुरा तृतीयारान्ते कालदोषेण व्रतभ्रष्टानामिव यतीनां कल्पद्रुमाणां मन्दायमानेषु स्वदेहावयवेष्विव तेषु मिथुनानां जायमाने ममत्वेऽन्यस्वीकृतं तमन्यस्मिन् गृह्णाति परस्परं जायमाने विवादे सदृशजनकृतपराभवमसहिष्णवः आत्माधिकं सुमतिं स्वामितया ते चक्रुः, स च तेषां तान् विभज्य स्थविरो गोत्रिणां द्रव्यमिव ददौ, यो यः स्थितिमतिचक्राम तच्छासनाय जातिस्मृत्या नीतिज्ञत्वेन हाकारदण्डनीतिं चकार, तां च प्रतिश्रुत्यादयश्चत्वारोऽनुचक्रुरिति, तया च ते कीदृशा अभवन्नित्याह–'ते ण'मित्यादि, ते मनुजा णमिति प्राग्वत्, हाकारेण दण्डेन हताः सन्तो लज्जिताः व्रीडिता व्यर्द्धाः–लज्जाप्रकर्षवन्त इत्यर्थः, एते त्रयोऽपि पर्यायशब्दा लज्जाप्रकृष्टतावचनायोक्ताः भीता-व्यक्तं तूष्णीका–मौनभाजो विनयावनता न तूष्णीका इव निस्त्रपा निर्भया जल्पाका अहंयवश्च तिष्ठन्ति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२९]

दीप अनुक्रम [४२]

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥१३४॥

ते अनेनैव दण्डेन हृतस्वमिवात्मानं मन्यमानाः पुनरपराधस्थाने न प्रवर्त्तन्त इत्याशयः, अत्र चादृष्टपूर्वशासनानां तेषां दण्डादिघातेभ्योऽप्यतिशायि मर्माविच्छासनमिदमिति हता इति वचनं, अथोत्तरकालवर्त्तिकुलकरकाले किं सैव दण्डनीतिरन्या वेत्याशङ्कायां समाधत्ते–'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र क्षेमन्धरविमलवाहनचक्षुष्मद्यशस्व्यभिचन्द्राणामेतेषां पञ्चानां कुलकराणां मा इत्यस्य निषेधार्थस्य करणं–अभिधानं माकारो नाम दण्डनीतिरभवत्, शेषं पूर्ववत्, आवश्यकादौ तु विमलवाहनचक्षुष्मतोः कुलकरयोर्या हाकाररूपा दण्डनीतिः यच्चाभिचन्द्रप्रसेनजितोरन्तराले चन्द्राभस्याकथनमित्याद्यन्तरं तद्वाचनान्तरेणेति, अयमर्थः–क्रमेणातिसंस्तवादिना जीर्णभीतिकत्वेन हाकारमतिक्रामत्सु अंकुशमिव गम्भीरवेदिषु गजेषु युग्मिषु क्षेमन्धरः कुलकुञ्जरो 'दुश्चिकित्से हि चिकित्सान्तरं कार्य'मिति द्वितीयां माकाररूपां दण्डनीतिं चकार, तां च विमलवाहनादयश्चत्वारोऽनुचक्रुः, अत्र सम्प्रदायविदः–महत्यपराधपदे माकाररूपां इतरत्र तु पूर्वैव, श्रीहेमसूरयस्तु ऋषभचरित्रे सप्तकुलकराधिकारे यशस्विवारके दण्डनीतिमाश्रित्य–"आगस्यल्पे नीतिमाद्यां, द्वितीयां मध्यमे पुनः। महीयसि द्वे अपि (ते), स प्रायुङ्क्त महामतिः ॥ १ ॥" इत्याहुः। अथ तृतीयकुलकरपञ्चकव्यवस्थामाह–'तत्थ ण'मित्यादि, इदं सूत्रं गतार्थं, नवरं धिगित्यधिक्षेपार्थ एव तस्य करणं–उच्चारणं धिक्कारः, सम्प्रदायस्त्वयं–पूर्वनीती अतिक्रमत्सु तेषु त्रपामर्यादे इव कामुकेषु चन्द्राभनामा धिक्कारदण्डनीतिं विदधे, तां च प्रसेनजिदादयश्चत्वारोऽनुकृतवन्तः, महत्यपराधे धिक्कारो मध्यमजघन्ययोस्तु माकारहाकारावितिं, अन्यास्तु परिभाषणाद्या भरतकाले, 'परि

२वक्षस्कारे कुलकरनीतिः सू.२९

॥१३४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९]

दीप अनुक्रम [४२]

भासना उ पढमा मंडलिबंधंमि होइ बीआ य। चारगछविछेआई भरहस्स चउविहा नीई ॥ १ ॥" [परिभाषणा तु प्रथमा मण्डलबन्धे भवति द्वितीया च। चारकं छविच्छेदादि भरतस्य चतुर्विधा नीतिः ॥ १ ॥] इति वचनात्, ऋषभकाले इत्यन्ये, अथ पञ्चदशे कुलकरे कुलकरत्वमात्रं चतुर्दशसाधारणमित्यसाधारणपुण्यप्रकृत्युदयजन्मत्रिजगज्जनपूजनीयतां प्रचिकटयिषुर्यथाऽस्मादेव लोके विशिष्टधर्माधर्मसंज्ञाव्यवहाराः प्रावर्त्तन्त इत्याह—

णाभिस्स णं कुलगरस्स मरुदेवाए भारिआए कुच्छिंसि एत्थ णं उसहे णामं अरहा कोसलिए पढमराया पढमजिणे पढमकेवली पढमतित्थकरे पढमधम्मवरचक्कवट्टी समुप्पज्जित्थे, तए णं उसभे अरहा कोसलिए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसइ वसइत्ता तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ, तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसमाणे लेहाइआओ गणिअप्पहाणाओ सउणरुअपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ चोसट्ठिं महिलागुणे सिप्पसयं च कम्माणं तिण्णिवि पयाहिआए उवदिसइत्ति, उवदिसित्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ, वसित्ता जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स णवमीपक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे चइत्ता हिरण्णं चइत्ता सुवण्णं चइत्ता कोसं कोट्ठागारं चइत्ता बलं चइत्ता वाहणं चइत्ता पुरं चइत्ता अंतेउरं चइत्ता विउलधणकणगरयणमणिमोत्तिअसंखसिलप्पवालरत्तरयणसंतसारसावइज्जं विच्छड्डयित्ता विगोवइत्ता दायं दाइआणं परिभाएत्ता सुदंसणाए सीआए सदेवमणुआसुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे संखिदचक्किअणंगलिअमुहमंगलिअपूसमाणवद्धमाणगआइक्खगलंखमंखघंटिअगणेहिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ कला-आदि एवं ऋषभस्य दीक्षा वर्ण्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३०]

दीप अनुक्रम [४३]

ताहं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं उरलाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरिआहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाइं कण्णमणणिव्वुइकराहिं अपुणरुत्ताहिं अट्ठसइआहिं वग्गूहिं अणवरयं अभिणंदंता य अभिथुणंता य एवं वयासी–जय जय नंदा! जय जय भद्दा! धम्मेणं अभीए परीसहोवसग्गाणं खंतिखमे भयभेरवाणं धम्मे ते अविग्घं भवउत्तिकट्टु अभिणंदंति अ अभिथुणंति अ। तए णं उसभे अरहा कोसलिए णयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे २ एवं जाव णिग्गच्छइ जहा उववाइए जाव आउलबोलबहुलं णभं करंते विणीआए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ आसिअसंमज्जिअसित्तसुइकपुप्फोवयारकलिअं सिद्धत्थवणविउलरायमग्गं करेमाणे हयगयरहपहकरेण पाइक्कचडकरेण य मंदं २ उद्धतरेणुयं करेमाणे २ जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छति २ असोगवरपायवस्स अहे सीअं ठावेइ २ त्ता सीआओ पच्चोरुहइ २ त्ता सयमेवाभरणालंकारं ओमुअइ २ त्ता सयमेव चउहिं अट्ठाहिं लोअं करेइ २ त्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं खत्तिआणं चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए (सूत्रं ३०)

'णाभिस्स ण'मित्यादि, नाभेः कुलकरस्य मरुदेव्या नाम्न्या भार्यायाः कुक्षौ एतस्मिन् समये 'उसह'त्ति ऋषभः संयमभारोद्वहनाद्वृषभ इव ऋषभः, वृषभो वेति संस्कारः तत्र वृषभ इव वृषभ इति वा, वृषेण भातीति वा वृषभः, एवं च सर्वेऽप्यर्हन्त ऋषभा वृषभा वा इत्युच्यन्ते तेन ऊर्वोर्वृषभलाञ्छनत्वेन मातुश्चतुर्दशस्वग्रेषु प्रथमं वृषभदर्शनेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च ऋषभो वृषभो वेति नाम्ना, कोशलायां–अयोध्यायां भवः कौशलिकः 'भाविनि भूतवदुपचार'इति न्यायादेतद्विशेषणं, अयोध्यास्थापनाया ऋषभदेवराज्यस्थापनासमये कृतत्वात्, तद्व्यक्तिस्तु भरतक्षेत्रनामान्वर्थकथनावसरे 'धणवईमतिनिम्माया' एतत्सूत्रव्याख्यायां दर्शयिष्यते, अर्हन्तश्च पार्श्वनाथादय इव केचिदनङ्गीकृतराजधर्मका अपि स्युरित्यसौ केन क्रमेणार्हन्नभूदित्याह—प्रथमो राजा, इहावसर्पिण्यां नाभिकुलकरादिष्टयुग्मिमनुजैः शक्रेण च प्रथममभिषिक्तत्वात्, प्रथमजिनः प्रथमो रागादीनां जेता, यद्वा प्रथमो मनःपर्यवज्ञानी राज्यत्यागादनन्तरं द्रव्यतो भावतश्च साधुपदवर्त्तित्वे, अत्रावसर्पिण्यामस्यैव भगवतः प्रथमतस्तद्भवनात्, जिनत्वं चावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानिनां स्थानाङ्गे सुप्रसिद्धं, अवधिजिनत्वे तु व्याख्यायमानेऽक्रमबद्धं सूत्रमिति, केवलिजिनत्वे चोत्तरग्रन्थेन सह पौनरुक्त्यमिति व्याख्यानासङ्गतिः श्रोतृणां प्रतिभासेत, प्रथमकेवली–आद्यसर्वज्ञः, केवलित्वे च तीर्थकृन्नामोदयतीत्याह–प्रथमतीर्थकरः–आद्यश्चतुर्वर्णसङ्घस्थापकः, उदिततीर्थकृन्नामा च कीदृशः स्यादिति–प्रथमो धर्मवरो–धर्मप्रधानश्चक्रवर्त्ती, यथा चक्रवर्त्ती सर्वत्राप्रतिहतवीर्येण चक्रेण वर्त्तते तथाऽयमपीति भावः, समुदपद्यत–समुत्पन्नवानित्यर्थः, अथ यथा भगवान् वयः प्रतिपन्नवान् तथाऽऽह–'तए ण'मित्यादि, ततो जन्मकल्याणकानन्तरमित्यर्थः, ऋषभोऽर्हन् कौशलिकः विंशतिं पूर्वशतसहस्राणि–पूर्वलक्षाणि भावप्रधानत्वान्निर्देशस्य कुमारत्वेन–अकृताभिषेकराजसुतत्वेन वासः–अवस्थानं तन्मध्ये वसति, 'कुमारवासमज्झावसइ' इति पाठे तु कुमारवासमध्यावसति आश्रयतीत्यर्थः, उषित्वा च त्रिषष्टिपूर्वलक्षाणि अत्रापि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०]

दीप अनुक्रम [४३]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥१३६॥

भावप्रधानो निर्देश इति महाराजत्वेन–साम्राज्येन वासः–अवस्थानं तन्मध्ये वसति, तत्र वसंश्च कथं प्रजा उपचक्रे इत्याह–'तेवट्ठिं' इत्यादि, त्रिषष्टिं पूर्वलक्षाणि यावत् महाराजवासमध्ये वसन् लिपिविधानादिका गणितं–अङ्कविद्या धर्मैकर्मव्यवस्थितौ बहूपकारित्वात् प्रधाना यासु ताः शकुनरुतं–पक्षिभाषितं पर्यवसाने–प्रान्ते यासां तास्तथा, द्वासप्ततिकलाः, कलनानि कला विज्ञानानीत्यर्थस्ताः कलनीयभेदात् द्वासप्ततिः अर्थात्, प्रायः पुरुषोपयोगिनीः, चतुःषष्टिं महिलागुणान्–स्त्रीगुणान्, कर्म्मणां–जीवनोपायानां मध्ये शिल्पशतं च विज्ञानशतं च कुम्भकारशिल्पादिकं त्रीण्यप्येतानि वस्तूनि प्रजाहिताय–लोकोपकारायोपदिशति, अपिशब्द एकोपदेशकपुरुषतासूचनार्थः, वर्त्तमाननिर्देशश्चात्र सर्वेषामाद्यतीर्थङ्कराणामयमेवोपदेशविधिरिति ज्ञापनार्थं, यद्यपि कृषिवाणिज्यादयो बहवो जीवनोपायास्तथापि ते पश्चात्काले प्रादुर्बभूवुः भगवता तु शिल्पशतमेवोपदिष्टं अत एवाचार्योपदेशजं शिल्पमनाचार्योपदेशजं तु कर्म्मेति शिल्पकर्म्मणोर्विशेषमामनन्तीति, श्रीहेमसूरिकृतादिदेवचरित्रे तु–'तृणहारकाष्ठहारकृषिवाणिज्यकान्यपि । कर्माण्यासूत्रयामास, लोकानां जीविताकृते ॥ १ ॥' इत्युक्तमस्ति तदाशयेन तु कर्म्मणामित्यत्र द्वितीयार्थे षष्ठी ज्ञेया, तथा च कर्माणि जघन्यमध्योत्कृष्टभेदतस्त्रीण्यप्युपदिशतीत्यपि व्याख्येयं, शिल्पशतं च पृथगेवोपदिशतीति ज्ञेयमिति, अथात्र सूत्रे सङ्क्षेपतः श्लोका विस्तरतस्तु श्रीराजप्रश्नीयादिसूत्रादर्शेषु दृश्यमाना द्वासप्ततिकलास्तत्पाठोपदर्शनपूर्वकं विधियन्ते, यथा–"लेहं १ गणिअं २ रूवं ३ नट्टं ४ गीअं ५ वाइअं ६ सरगयं ७ पोक्खरगयं ८ समतालं ९ जूअं १० जणवायं ११ पासयं १२

२वक्षस्कारे कलादि ऋषभदीक्षाच सू. ३०

॥१३६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठावयं १३ पोरकबं १४ दगमट्टिअं १५ अन्नविहिं १६ पाणविहिं १७ वत्थविहिं १८ विलेवणविहिं १९ सयणविहिं २० अज्जं २१ पहेलिअं २२ मागहिअं २३ गाहं २४ गीअं २५ सिलोगं २६ हिरण्णजुत्तिं २७ सुवण्णजुत्तिं २८ चुण्णजुत्तिं आभरणविहिं ३० तरुणीपरिकम्मं ३१ इत्थिलक्खणं ३२ पुरिसलक्खणं ३३ हयलक्खणं ३४ गयलक्खणं ३५ गोणलक्खणं ३६ कुक्कुडलक्खणं ३७ छत्तलक्खणं ३८ दंडलक्खणं ३९ असिलक्खणं ४० मणिलक्खणं ४१ कागणिलक्खणं ४२ वत्थुविज्जं ४३ खंधावारमाणं ४४ नगरमाणं ४५ चारं ४६ पडिचारं ४७ वूहं ४८ पडिवूहं ४९ चक्कवूहं ५० गरुडवूहं ५१ सगडवूहं ५२ जुद्धं ५३ नियुद्धं ५३ जुद्धातियुद्धं ५५ दिट्ठिजुद्धं ५६ मुट्ठियुद्धं ५७ बाहुयुद्धं ५८ लयायुद्धं ५५ इसत्थं ६० छरुप्पवायं ६१ धणुव्वेयं ६२ हिरण्णपागं ६३ सुवण्णपागं ६४ सुत्तखेडुं ६५ वत्थखेडुं ६६ नालिआखेडुं ६७ पत्तच्छेज्जं ६८ कडच्छेज्जं ६९ सज्जीवं ७० निज्जीवं ७१ सउणरुअ ७२ मिति, अत्र लेहमित्यादीनि द्वासप्ततिपदानि राजप्रश्नीयानुसारेण द्वितीयान्तानि प्रतिभासन्ते इत्यत्रापि व्याख्यायां तथैव दर्शयिष्यन्ते, समवायाङ्गानुसारेण वा विभक्तिव्यत्ययेन प्रथमान्ततया स्वयं योजनीयानीति, तत्र लेखनं लेखः–अक्षरविन्यासस्तद्विषया कला–विज्ञानं लेख एवोच्यते, तं भगवानुपदिशतीति प्रकृते योजनीयं, एवं सर्वत्र योजना कार्या, स च लेखो द्विधा–लिपिविषयभेदात्, तत्र लिपिरष्टादशस्थानोक्ता, अथवा लाटादिदेशभेदतस्तथाविधविचित्रोपाधिभेदतो वाऽनेकविधेति, तथापि पत्रवल्कलकाष्ठदन्तलोहताम्रजतादयोऽक्षराणामाधारास्तथा लेखनोत्किरणस्यूतव्यूतच्छिन्नभिन्नदग्धसङ्क्रान्तितोऽक्षराणि भव-

Jain Education Intern... For Private & Personal Use Only ...jainelibrary.org

न्तीति, विषयापेक्षयाऽप्यनेकधा स्वामिभृत्यपितृपुत्रगुरुशिष्यभार्यापतिशत्रुमित्रादीना लेखविषयाणामनेकत्वात्तथाविधप्रयोजनभेदाच्च, अक्षरदोषाश्चैते–'अतिकाश्यमतिस्थौल्यं, वैषम्यं पङ्क्तिवक्रता। अतुल्यानां च सादृश्यमविभागोऽवयवेषु च॥ १ ॥' इति १, तथा गणितं–सङ्ख्यानं सङ्कलिताद्यनेकभेदं पाटीप्रसिद्धं २ रूपं–लेप्यशिलासुवर्णमणिवस्त्रचित्रादिषु रूपनिर्माणं ३ नाट्यं-साभिनयनिरभिनयभेदभिन्नं ताण्डवं ४ गीतं–गन्धर्वकलां गानविज्ञानमित्यर्थः ५ वादितं–वाद्यं ततविततादिभेदभिन्नं ६ स्वरगतं गीतमूलभूतानां षड्जऋषभादिस्वराणां ज्ञानं ७ पुष्करगतं पुष्करं–मृदङ्गमङ्कथादिभेदभिन्नं तद्विषयकं विज्ञानं, वाद्यान्तर्गतत्वेऽप्यस्य यत्पृथक्कथनं तत्परमसङ्गीताङ्गत्वख्यापनार्थं ८ समतालं–गीतादिमानकालस्तालः स समोऽन्यूनाधिकमात्रिकत्वेन यस्माद् ज्ञायते तत् समतालं विज्ञानं, क्वचित्तालमानमिति पाठः ९ द्यूतं सामान्यतः प्रतीतं १० जनवादं द्यूतविशेषं ११ पाशकं–प्रतीतं १२ अष्टापदं–शारिफलकद्यूतं तद्विषयककलां १३ पुरःकाव्यमिति पुरतः पुरतः काव्यं शीघ्रकवित्वमित्यर्थः १४ 'दगमट्टिअ'मिति दकसंयुक्तमृत्तिका विवेचकद्रव्यप्रयोगपूर्विका तद्विवेचनकलाप्युपचारादकमृत्तिका तां १५ अन्नविधिं–सूपकारकलां १६ पानविधिं–दकमृत्तिकाकलया प्रसादितस्य सहजनिर्मलस्य तत्तत्संस्कारकरणं, अथवा जलपानविधिं जलपानविषये गुणदोषविज्ञानमित्यर्थः, यथा 'अमृतं भोजनस्यार्द्धं, भोजनान्ते जलं विष'मित्यादि, १७ वस्त्रविधिं–वस्त्रस्य परिधानीयादिरूपस्य नवकोणदैविकादिभागयथास्थाननिवेशादिविज्ञानं, वानादिविधिस्तु अनन्तविज्ञानान्तर्गत इति नेह गृह्यते १८ विलेपनविधिं–यक्षकर्दमादिपरिज्ञानं १९ शय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नविधिं-शयनं शय्या–पल्यङ्कादिस्तद्विधिः, स चैवं–"कर्मारुलं यवाष्टकमुदरासक्तं तुषैः परित्यक्तम्। अङ्गुलशतं नृपाणां महती शय्या जयाय कृता ॥१॥ नवतिः सैव षड्ना द्वादशहीना त्रिषङ्कहीना च। नृपपुत्रमन्त्रिबलपतिपुरोधसां स्युर्यथासङ्ख्यम् ॥२॥ अर्द्धमतोऽष्टांशोनं विष्कम्भो विशुद्धकर्मणा प्रोक्तः। आयामस्त्र्यंशसमः पादोच्छ्रायः सकुप्यशिराः॥३॥"इत्यादिकं विज्ञानं, अथवा शयनं-स्वप्नं तद्विषयको विधिस्तं, यथा 'पूर्वस्यां शिरः कुर्या'दित्यादिकं विधिं २० आर्यां–सप्तचतुःकलगणादिव्यवस्थानिबद्धां मात्राच्छन्दोरूपां २१ प्रहेलिकां–गूढाशयपद्यं २२ मागधिकां–छन्दोविशेषं, तल्लक्षणं चेदं–विसमेसु दुन्नि टगणा समेसु पो दो तओ दुसुवि जत्थ। लहुओ कगणो लहुओ कगणो तं मुणह मागहिअं ॥१॥ ति२२ [द्वित्रिचतुःपञ्चषड्मात्रिका गणाः कचटतपसंज्ञाः] गाथां–संस्कृतेतरभाषानिबद्धामार्यामेव २४ गीतिकां पूर्वार्द्धसदृशाऽपरार्द्धलक्षणामार्यामेव २५ श्लोकं–अनुष्टुप्विशेषं २६ हिरण्ययुक्तिं' हिरण्यस्य–रूप्यस्य युक्तिं–यथोचितस्थाने योजनं २७ एवं सुवर्णयुक्तिं २८ चूर्णयुक्तिं-कोष्ठादिसुरभिद्रव्येषु चूर्णीकृतेषु तत्तदुचितद्रव्यमेलनं २९ आभरणविधिं व्यक्तं ३० तरुणीपरिकर्म–युवतीनामङ्गसत्क्रियां वर्णादिवृद्धिरूपां ३१ स्त्रीलक्षणपुरुषलक्षणे सामुद्रिकप्रसिद्धे ३२–३३, हयलक्षणं–'दीर्घग्रीवाक्षिकूट'इत्यादिकमश्वलक्षणविज्ञानं ३४ गजलक्षणं 'पञ्चोन्नतिः सप्त मृगस्य दैर्घ्यमष्टौ च हस्ताः परिणाहमानम् । एकद्विवृद्धावथ मन्दभद्रौ, सङ्कीर्णनागोऽनियतप्रमाणः ॥ १ ॥" इत्यादिकं ज्ञानं ३५ 'गोणलक्खणं'ति गोजातीयलक्षणं 'सास्नाबिलरूक्षाक्ष्यो मूषिकनयनाश्च न शुभदा गावः' इत्यादिकं ३६ कुर्कुटलक्षणं–'कुर्कुटजतनुरुहाङ्गुलिस्ताम्रवक्त्रनखचूलिकः सितः'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

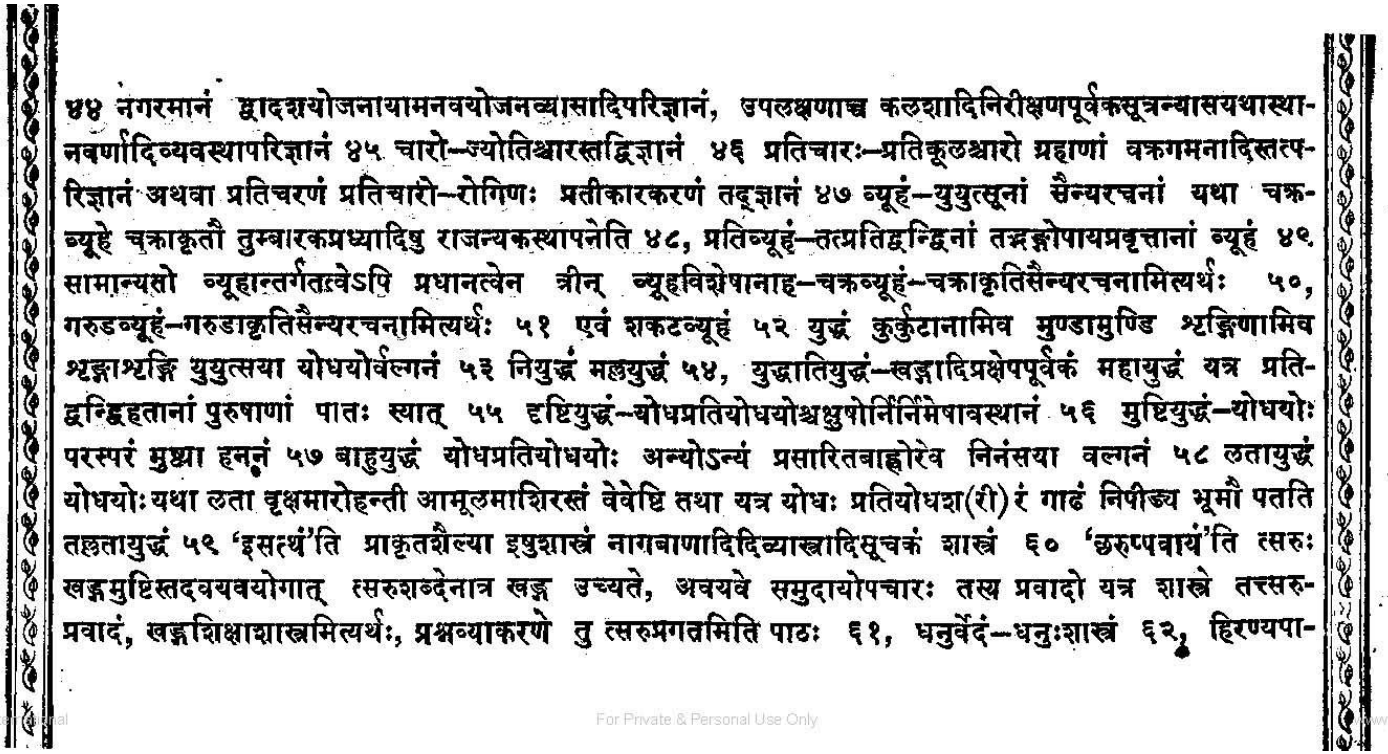
॥१३८॥

इत्यादिकं ३७ छत्रलक्षणं यथा चक्रिणां छत्ररत्नस्य ३८ दण्डलक्षणं–यष्ट्यातपत्राङ्कुशवेत्रचापवितानकुन्तध्वजचामरा-णाम् । व्यापीत १ तन्त्री २ मधु ३ कृष्ण ४ वर्णा, वर्णक्रमेणैव हिताय दण्डाः ॥ १ ॥ मन्त्रि १ भू २ धन ३ कुल ४ क्षयावहा रोग ५ मृत्यु ६ जननाश्च पर्वभिः । व्यादिभिर्द्विकविवर्द्धितैः क्रमाद्, द्वादशान्तविरतैः समैः फलम् ॥ २ ॥ यात्राप्रसिद्धिः १ द्विषतां विनाशो २, लाभाः ३ प्रभूता वसुधाऽऽगमश्च ४ । वृद्धिः ५ पशूनामभिवाञ्छितासि ६–ख्यादिष्वयुग्मेषु तदीश्वराणाम् ॥ ३ ॥" इत्यादि ३९ असिलक्षणं 'अङ्गुलशतार्द्धमुत्तम ऊनः स्यात्पञ्चविंशतिं खड्गः । अंगुलमानाद्-ज्ञेयो व्रणोऽशुभो विषमपर्वस्थः ॥ १ ॥ अत्र व्याख्या–अङ्गुलशतार्द्धमुत्तमः खड्गः पञ्चविंशत्यङ्गुलानि ऊनः, अनयोः प्रमाणयोर्मध्यस्थितः पञ्चाशदङ्गुलादूनः पञ्चविंशतेरधिको मध्यमः, अङ्गुलमानाद्–अङ्गुलप्रमाणाद् यो व्रणो विषमपर्वस्थः–विषमपर्वाङ्गुले स्थितः प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमादिष्वङ्गुलेषु स्थितः सः अशुभः, अर्धा-देव समाङ्गुलेषु द्वितीयचतुर्थषष्ठाष्टमादिषु यः स्थितः स शुभः, मिश्रेषु समविषमाङ्गुलेषु मध्यम इत्यादि ४०, मणिलक्षणं रत्नपरीक्षाग्रन्थोक्तकाकपदमक्षिकापदकेशराहित्यसशर्करतास्वस्ववर्णोचितफलदायित्वादिमणिगुणदोषविज्ञानं ४१ काक-णी–चक्रिणो रत्नविशेषस्तस्य लक्षणं–विषहरणमानोन्मानादियोगप्रवर्त्तकत्वादि ४१ वास्तुनो–गृहभूमेर्विद्या वास्तुशा-स्त्रप्रसिद्धं गुणदोषविज्ञानं ४२ स्कन्धावारस्य मानं–"एकेभैकरथाश्वयश्वाः, पत्तिः पञ्चपदातिका'। सेना सेनामुखं गुल्मो, वाहिनी पृतना चमूः ॥ १ ॥ अनीकिनी च पत्तेः स्यादिभाद्यैस्त्रिगुणैः क्रमात् । दशाकिन्योऽक्षौहिणी'त्यादि

२वक्षस्कारे कलादि ऋ-षभदीक्षाच सू. ३०

॥१३८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



४४ नगरमानं द्वादशयोजनायामनवयोजनव्यासादिपरिज्ञानं, उपलक्षणाच्च कलशादिनिरीक्षणपूर्वकसूत्रन्यासयथास्थानवर्णादिव्यवस्थापरिज्ञानं ४५ चारो–ज्योतिश्चारस्तद्विज्ञानं ४६ प्रतिचारः–प्रतिकूलश्चारो ग्रहाणां वक्रगमनादिस्तत्परिज्ञानं अथवा प्रतिचरणं प्रतिचारो–रोगिणः प्रतीकारकरणं तद्ज्ञानं ४७ व्यूहं–युयुत्सूनां सैन्यरचनां यथा चक्रव्यूहे चक्राकृतौ तुम्बारकप्रध्यादिषु राजन्यकस्थापनेति ४८, प्रतिव्यूहं–तत्प्रतिद्वन्द्विनां तद्भङ्गोपायप्रवृत्तानां व्यूहं ४९ सामान्यतो व्यूहान्तर्गतत्वेऽपि प्रधानत्वेन त्रीन् व्यूहविशेषानाह–चक्रव्यूहं–चक्राकृतिसैन्यरचनामित्यर्थः ५०, गरुडव्यूहं–गरुडाकृतिसैन्यरचनामित्यर्थः ५१ एवं शकटव्यूहं ५२ युद्धं कुर्कुटानामिव मुण्डामुण्डि शृङ्गिणामिव शृङ्गाशृङ्गि युयुत्सया योधयोर्वल्गनं ५३ नियुद्धं मल्लयुद्धं ५४, युद्धातियुद्धं–खड्गादिप्रक्षेपपूर्वकं महायुद्धं यत्र प्रतिद्वन्द्विहतानां पुरुषाणां पातः स्यात् ५५ दृष्टियुद्धं–योधप्रतियोधयोश्चक्षुषोर्निर्निमेषावस्थानं ५६ मुष्टियुद्धं–योधयोः परस्परं मुष्ट्या हननं ५७ बाहुयुद्धं योधप्रतियोधयोः अन्योऽन्यं प्रसारितबाह्वोरेव निनंसया वल्गनं ५८ लतायुद्धं योधयोः यथा लता वृक्षमारोहन्ती आमूलमाशिरस्तं वेवेष्टि तथा यत्र योधः प्रतियोधश(री)रं गाढं निपीड्य भूमौ पतति तल्लतायुद्धं ५९ 'इसत्थं'ति प्राकृतशैल्या इषुशास्त्रं नागबाणादिदिव्यास्त्रादिसूचकं शास्त्रं ६० 'छरुप्पवायं'ति त्सरुः खड्गमुष्टिस्तदवयवयोगात् त्सरुशब्देनात्र खड्ग उच्यते, अवयवे समुदायोपचारः तस्य प्रवादो यत्र शास्त्रे तत्त्सरुप्रवादं, खड्गशिक्षाशास्त्रमित्यर्थः, प्रश्नव्याकरणे तु त्सरुप्रगतमिति पाठः ६१, धनुर्वेदं–धनुःशास्त्रं ६२, हिरण्यपा-

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

कसुवर्णपाकौ–रजतसिद्धिकनकसिद्धी ६३, ६४, 'सुत्तखेडुं'ति सूत्रखेलं–सूत्रक्रीडा, अत्र खेलशब्दस्य खेडुं इत्यादेशः ६५, एवं वस्त्रखेडुमपि ६६, एतत्कलाद्वयं लोकतः प्रत्येतव्यं, 'नालिआखेडुं'ति नालिकाखेलं द्यूतविशेषं मा भूदिष्ट-दायविपरीतपाशकनिपातनमिति नालिकया यत्र पाशकः पात्यते, द्यूतग्रहणे सत्यपि अभिनिवेशनिबन्धनत्वेन नालिका-खेलं, अग्राधान्यज्ञापनार्थं भेदेन ग्रहः ६७, पत्रच्छेद्यं अष्टोत्तरशतपत्राणां मध्ये विवक्षितसङ्ख्याकपत्रच्छेदने हस्तलाघवं ६८, कटच्छेद्यं कटवत् क्रमच्छेद्यं वस्तु यत्र विज्ञाने तत्तथा, इदं च द्यूतपटोद्वेष्टनादौ भोजनक्रियादौ चोपयोगि ६९, 'सजीवं'ति सजीवकरणं मृतधात्वादीनां सहजस्वरूपापादनं ७०, 'निज्जीवं'ति निर्जीवकरणं हेमादिधातुमारणं, रसेन्द्रस्य मूर्च्छाप्रापणं वा ७१, शकुनरुतं, अत्र शकुनपदं रुतपदं चोपलक्षणं, तेन वसन्तराजाद्युक्तसर्वशकुनसंग्रहः गतिचेष्टादिग्बलादिपरिग्रहश्च ७२, इति द्वासप्ततिः पुरुषकलाः । चतुःषष्टिः स्त्रीकलाश्चेमाः–नृत्य १ औचित्य २ चित्र-३ वादित्र ४ मन्त्र ५ तन्त्र ६ ज्ञान ७ विज्ञान ८ दम्भ ९ जलस्तम्भ १० गीतमान ११ तालमान १२-मेघवृष्टि ११ फलाकृष्टि १४ आरामरोपण १५ आकारगोपन १६ धर्मविचार १७ शकुनसार १८ क्रियाकल्प-१९ संस्कृतजल्प २० प्रासादनीति २१ धर्मरीति २२ वर्णिकावृद्धि २३ स्वर्णसिद्धिः २४ सुरभितैलकरण २५-लीलासंचरण २६ हयगजपरीक्षण २७ पुरुषस्त्रीलक्षण २८ हेमरत्नभेद २९ अष्टादशलिपिपरिच्छेद ३० तत्काल-बुद्धि ३१ वास्तुसिद्धि ३२ कामविक्रिया ३३ वैद्यक्रिया ३४ कुम्भभ्रम ३५ सारिश्रम ३६ अञ्जनयोग ३७-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूर्णयोग ३८ हस्तलाघव ३९ वचनपाटव ४० भोज्यविधि ४१ वाणिज्यविधि ४१ मुखमण्डन ४२ शालिखण्डन-
४४ कथाकथन ४५ पुष्पग्रन्थन ४६ वक्रोक्ति ४७ काव्यशक्ति ४८ स्फारविधिवेष ४९ सर्वभाषाविशेष ५०-
अभिधानज्ञान ५१ भूषणपरिधान ५२ भृत्योपचार ५३ गृहाचार ५४ व्याकरण ५५ परनिराकरण ५६ रन्धन-
५७ केशबन्धन ५८ वीणानाद ५९ वितण्डावाद ६० अङ्कविचार ६१ लोकव्यवहार ६२ अन्त्याक्षरिका ६३-
प्रश्नप्रहेलिका ६४ इति, अत्रोपलक्षणादुक्तातिरिक्ताः स्त्रीपुरुषकला ग्रन्थान्तरे लोके च प्रसिद्धा ज्ञेयाः, अत्र च यत्पुरु-
षकलासु स्त्रीकलानां स्त्रीकलासु च पुरुषकलानां साङ्कर्यं तदुभयोपयोगित्वात्, ननु तर्हि 'चोसट्ठि महिलागुणे
इति ग्रन्थविरोधः, उच्यते, न ह्ययं ग्रन्थः स्त्रीमात्रगुणख्यापनपरः, किन्तु स्त्रीस्वरूपप्रतिपादकः, तेन क्वचित्पुरुषगुण-
त्वेऽपि न विरोधः, कलाद्वयस्योक्तसङ्ख्याकत्वं तु प्रायो बहूपयोगित्वात्, इत्यलं विस्तरेण । शिल्पशतं चेदम्–कुम्भकृ-
ल्लोहकृच्चित्रकृत्तन्तुवायनापितलक्षणानि पञ्च मूलशिल्पानि तानि च प्रत्येकं विंशतिभेदानीति, तथा चार्षम्–"पंचेव य
सिप्पाइं घड लोह चित्तणंतकासवए । इक्किक्कस्स य इत्तो वीसं २ भवे भेआ ॥ १ ॥' इति । नन्वत्रैतेषां पञ्चमू-
लशिल्पानां उत्पत्तौ किं निमित्तमिति ?, उच्यते, युग्मिनामामौषध्याहारे मन्दाग्नितयाऽपच्यमाने हुतभुजि प्रक्षिप्य-
माने तु समकालमेव दह्यमाने युगलिनरैर्विज्ञप्तेन हस्तिस्कन्धारूढेन भगवता प्रथमं घटशिल्पमुपदर्शितं, क्षत्रियाः शस्त्र-
पाणय एव दुष्टेभ्यः प्रजां रक्षेयुरिति लोहशिल्पं, चित्राङ्गेषु कल्पद्रुमेषु हीयमानेषु चित्रकृत्शिल्पं, वस्त्रकल्पद्रुमेषु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीयमानेषु तन्तुवायशिल्पं, बहुले युग्मिधर्मे पूर्वमवर्द्धिष्णु रोमनखं(अथ वर्धिष्णु)मा मनुजांस्तुदत्विति नापितशिल्पमिति, श्रीहेमाचार्यकृतऋषभचरित्रे तु गृहादिनिमित्तवर्द्धक्ययस्कारयुग्मरूपं द्वितीयं शिल्पमुक्तं, शेषं तथैवेति, ननु भोग्यस-त्कर्माण एवार्हन्तो भगवन्तः समुत्पन्नव्याधिप्रतीकारकल्पं ग्रयादिपरिग्रहं कुर्वते नेतरे ततः किमसौ निरवद्यैकरुचिर्भ-गवान् सावद्यानुबन्धिनि कलाद्युपदर्शने प्रववृते ?, उच्यते, समानुभावतो वृत्तिहीनेषु दीनेषु मनुजेषु दुःस्थतां विभाव्य सञ्जातकरुणैकरसत्वात्, समुत्पन्नविवक्षितरसो हि नान्यरससापेक्षो भवति, वीर इव द्विजस्य चीवरदाने, अथैवं तर्हि कथमधिकलिप्सोस्तस्य सति सकलेऽशुके शकलदानं ?, सत्यं, भगवतश्चानुज्ञानधरत्वेन तस्य तावन्मात्रस्यैव लाभस्याव-धारणेनाधिकयोगस्य क्षेमानिर्वाहकत्वदर्शनात्, कथमन्यथा भगवदंसस्थलन्यस्ततच्छकलग्रहणेऽपि तदुत्थरिक्थार्द्धवि-भाजकस्तुन्नवायः समजायत ?, किञ्च-कलाद्युपायेन प्राप्तसुखवृत्तिकस्य चौर्यादिव्यसनासक्तिरपि न स्यात्, ननु भवतु नामोक्तहेतोर्जगद्भर्तुः कलाद्युपदर्शकत्वं परं राजधर्मप्रवर्त्तकत्वं कथमुचितं ?, उच्यते, शिष्टानुग्रहाय दुष्टनि-ग्रहाय धर्मस्थितिसंग्रहाय च, ते च राज्यस्थितिश्रिया सम्यक् प्रवर्त्तमानाः क्रमेण परेषां महापुरुषमार्गोपदर्शकतया चौर्यादिव्यसननिवर्त्तनतो नारकातिथेयीनिवारकतया ऐहिकामुष्मिकसुखसाधकतया च प्रशस्ता एवेति, महापुरुष-

१ श्रीऋषभस्य सकललोकव्यवहारप्रवर्तनं प्रजानां हितार्थमेव, अत एव जिनपूजास्वरूपायाः समानायाः अपि क्रियायाः जिनभक्तिपरायणानां सम्यग्दृशां तादृशेषां ऐहिकफलकामिन्यार्यनामैहिकफलसंपत्तिसाध्येऽपि पारत्रिकफलवैमुख्यं प्रदर्शने प्रतीतम् । (इति ही० वृत्तौ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवृत्तिरपि सर्वत्र परार्थत्वव्याप्ता बहुगुणाल्पदोषकार्यकारणविचारणापूर्विकैवेति, युगादौ जगद्व्यवस्था प्रथमेनैव पार्थिवेन विधेयेति जीतमपीति, स्थानाङ्गपञ्चमाध्ययनेऽपि–"धम्मं णं चरमाणस्स पंच णिस्साठाणा पण्णत्ता, तंजहा–छक्काया १ गणो २ राया ३ गाहावई ४ सरीर ५' मित्याद्यालापकवृत्तौ राज्ञो निश्रामाश्रित्य राजा–नरपतिस्तस्य धर्मसहायकत्वं दुष्टेभ्यः साधुरक्षणादित्युक्तमस्तीति परमकरुणापरीतचेतसः परमधर्मप्रवर्त्तकस्य ज्ञानत्रययुतस्य भगवतो राजधर्मप्रवर्त्तकत्वे न काप्यनौचिती चेतसि चिन्तनीया, युक्तयुपपन्नत्वात्, तद्विस्तरस्तु जिनभवनपंचाशकसूत्रवृत्त्योर्यतनाद्वारे व्यक्त्या दर्शितोऽस्तीति तत एवावसेयो, ग्रन्थगौरवभयादत्र न लिख्यते इति, एतेन 'राज्यं हि नरकान्तं स्याद्, यदि राजा न धार्मिकः' इत्युक्तिरपि दृढबद्धमूला न कम्पत इति, किञ्च–अत्र तृतीयारकप्रान्ते राज्यस्थित्युत्पादे धर्मस्थित्युत्पादः पञ्चमारकप्रान्ते च 'सुअसूरिसंघधम्मो पुव्वण्हे छिज्जिही अगणि सायं । निवविमलवाहणे सुहुममंतिनयधम्म मज्झण्हे ॥१॥ [श्रुतसूरिसंघधर्माः पूर्वाण्हे छेत्स्यन्ति सायमग्निः । नृपो विमलवाहनः सूक्ष्मो मन्त्री नयधर्मश्च मध्यान्हे ॥१॥] इति वचनात् धर्म्मस्थितिविच्छेदे राज्यस्थितिविच्छेद इत्यपि राज्यस्थितेर्धर्म्मस्थितिहेतुत्वाभिव्यञ्जकत्वमेवेति सर्वं सुस्थमित्यलं विस्तरेणेति । तदनु भगवान् किं चक्रे इत्याह—'उवदिसित्ता पुत्तसय'मित्यादि, उपदिश्य कलादिकं पुत्रशतं–भरतबाहुबलिप्रमुखं कोसलातक्षशिलादिराज्यशते अभिषिञ्चति–स्थापयति, अत्र शङ्कादिप्रभञ्जनावसानानि भरताष्टनवतिभ्रातृनामानि अन्तर्वाच्यादिषु सुप्रसिद्धानीति च लिखितानि, देशनामानि तु बहून्यप्रतीतानीति। अथ भगवतो दीक्षा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्याणकमाह—'अभिसिंचित्ता'इत्यादि, अभिषिच्य त्र्यशीतिं पूर्वलक्षाणि महान् रागो–लौल्यं यत्र स चासौ वासश्च महारागवासो–गृहवासस्तन्मध्ये वसति गृहिपर्याये तिष्ठतीत्यर्थः, यद्यपि प्रागुक्तव्याधिप्रतीकारन्यायेनैव तीर्थकृतां गृहवासे प्रवर्त्तनं तथापि सामान्यतः स यथोक्त एवेति न दोषः, यद्वा महान् अरागः–अलौल्यं यत्र स चासौ वासश्चेति योजनीयं, यतो भगवदपेक्षया स एवंविध एवेति, एतेन 'तेवट्ठिं पुवसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ'त्ति पूर्वग्रन्थविरोधो नेति, उषित्वा 'जे से'त्ति यः सः 'गिम्हाणं'ति आर्षे ग्रीष्मशब्दः स्त्रीलिङ्गो बहुवचनान्तश्च ततो ग्रीष्मस्येत्यर्थः, प्रथमो मासः, यथा ग्रीष्माणां–अवयवे समुदायोपचारात् ग्रीष्मकालमासानां मध्ये प्रथमो मासः प्रथमः पक्षश्चैत्रबहुलः–चैत्रान्धकारपक्षस्तस्य नवम्यास्तिथेः पक्षो–ग्रहो यस्य, तिथिमेलपातादिषु तथा दर्शनात्, तिथिपाते तत्कृत्यस्याष्टम्यामेव क्रियमाणत्वात्, स नवमीपक्षः–अष्टमीदिवसस्तत्र, अनेन व्याख्यानेन 'चित्तबहुलट्ठमीए' इत्याद्यागमविरोधो न, वाचनान्तरेण वा नवमीपक्षो–नवमीदिवसः दिवसस्याष्टमीदिवसस्य मध्यंदिनादुत्तरकाले यद्यपि दिवसशब्दस्याहोरात्रवाचकत्वमन्यत्र प्रसिद्धं तथाऽप्यत्र प्रस्तावादिवसो गतो रजनिरजनि इत्यादिवत् सूर्यचारविशिष्टकालविशेषग्रहणं, अन्यथा

१ 'तेसीइंपुव्वे'त्यादि, त्र्यशीतिपूर्वशतसहस्राणि महाराजवासमध्ये महाराजतया यो वासस्तस्य मध्ये तदंतरित्यर्थः वसति, न चैवं 'उसभे णं अरहा कोसलिए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसइ २ त्ता तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ'त्ति अत्रैवानंतरोक्तसूत्रेण सह विरोधः शंकनीयः, यतो 'भाविनि भूतवदुपचार' इति न्यायात् राज्यार्हकुमारराजवत् कुमारावस्थाऽपि महाराजावस्थैवेति विवक्षया सर्वापि गृहस्थावस्था महाराजावस्थैव भणिता । (इति ही० वृत्तौ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिवसपाश्चात्यभागस्यानुपपत्तेः, त्यक्त्वा हिरण्यं–अघटितं सुवर्णं रजतं वा सुवर्णं–घटितं हेम हेम वा कोशं–भाण्डागारं कोष्ठागारं–धान्याश्रयगृहं, बलं–चतुरङ्गं वाहनं–वेसरादि पुरान्तःपुरे व्यक्ते विपुलं धनं–गवादि कनकं च–सुवर्णं (रमन्ते रऽयन्ते ग्राहका) येभ्यः सल्लक्षणेभ्यस्तानि रत्नानि मणयश्च प्राग्वत्, मौक्तिकानि–शुक्त्याकाशादिप्रभवानि, शङ्खाश्च–दक्षिणावर्त्ताः ततः पूर्वपदेन कर्मधारयः, शिला–राजपट्टादिरूपाः, प्रवालानि–विद्रुमाणि रक्तरत्नानि–पद्मरागाः, पृथग्ग्रहणमेषां प्राधान्यख्यापनार्थं, उक्तस्वरूपं यत्सत्सारं–सारातिसारं स्वापतेयं–द्रव्यं तत् त्यक्त्वा–ममत्वत्यागेन विच्छर्द्य–पुनर्ममत्वाकरणेन, कुतो ममत्वत्याग इत्याह–विगोप्य जुगुप्सनीयमेतत् अस्थिरत्वादिति कथनेन, (निश्रां त्याजयित्वा) कथं च निश्रात्याजनमित्याह—'दायिकानां' गोत्रिकाणां 'दायं' धनविभागं 'परिभाज्य' विभागशो दत्त्वा, तदा च निर्नाथपान्थादियाचकानामभावाद् गोत्रिकग्रहणं, तेऽपि च भगवत्प्रेरिता निर्ममास्सन्तः शेषामात्रं जगृहुः,

१ यद्गोत्रिकाणां दानं तच्छेषामात्रमेव, न पुनर्याचना, यत्तु यथेप्सितं याचमानानां दानं तद्याचकानामेव नान्येषां, ननु तीर्थकृतां पुरस्ताद्याचने किं बाधकमिति चेत्, उच्यते, भिक्षा तावत्त्रिधा–सर्वसंपत्करी १ आजीविका २ पौरुषघ्नी ३ चेति, तत्राद्या साधूनामेव, द्वितीया याञ्चां विना स्वनिर्वाहकाणां निर्द्धनानां पंग्वादीनां, तृतीया तद्व्यतिरिक्तानां, तेन याञ्चां विना निर्वाहकरणसमर्थानां गृहस्थानां महापुरुषेभ्योऽपि याचनमनुचितमेव, अत एव श्रीमहावीरदानाधिकारसूत्रे 'दानं दायारेहिं'ति पदमधिकं याचकग्रहणार्थं, तेन याचकानां यथेप्सिततयोचितदानं, इतरेषां तु कुलादिक्रमायातं वर्धापनिकाप्राहेणकशेषादिकल्पमवसातव्यं, न पुनः सकललोकसाधारणं, ग्राहकाणां नामग्रहणे इभ्यादीनामनुक्तत्वात्, तथा हि—'तए णं भगवं कल्लाकल्लिं जाव मागहओ पायरासोत्ति, बहूणं सणाहाण य अणाहाण य पंथिआण य पहिआण य कोरडिआण य कप्पडिआण य जाव एगा हिरण्णकोडि' इत्यादि श्रीआवश्यकचूर्णौ। (इति ही० वृत्तौ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३०]

दीप अनुक्रम [४३]

इदमेव हि जगद्गुरोर्जीतं यदिच्छावधि दानं दीयते, तेषां च इयत्तैव इच्छापूर्त्तिः, ननु यदीच्छावधिकं प्रभोर्दानं तर्हि ऐदंयुगीनो जन एकदिनदेयं संवत्सरदेयं वा एक एव जिघृक्षेत्, इच्छाया अपरिमितत्वात्, सत्यं, प्रभु-प्रभावेनैतादृशेच्छाया असम्भवात्, सुदर्शनानाम्न्यां शिबिकायामारूढमिति गम्यं, किंविशिष्टं भगवन्तं?–'सदेव-मनुजासुरया' स्वर्गभूपातालवासिजनसहितया 'पर्षदा' समुदायेन समनुगम्यमानं, ईदृशं च प्रभुं अग्रे–अग्रभागे शांखि-कादयोऽभिनन्दयन्तोऽभिष्टुवन्तश्च एवं–वक्ष्यमाणमवादिषुरित्यन्वयः, तत्र शांखिकाः–चन्दनगर्भशङ्खहस्ता माङ्गल्य-कारिणः शङ्खध्मा वा, चाक्रिकाः–चक्रभ्रामकाः, लाङ्गलिका–गलकावलम्बितसुवर्णादिमयहलधारिणो भट्टविशेषाः मुखम-ङ्गलिकाः–चाटुकारिणः पुष्पमाणवा–मागधाः वर्द्धमानकाः–स्कन्धारोपितनराः आख्यायकाः–शुभाशुभकथकाः लंखा–वंशाग्रखेलकाः मङ्खाः–चित्रफलकहस्ताः भिक्षाका–गौरीपुत्रा इति रूढा घाण्टिकाः–घण्टावादकास्तेषां गणाः, सूत्रे च आर्षत्वात् प्रथमार्थे तृतीया, यथाश्रुतव्याख्याने च शाङ्खिकादिगणैः परिवृतमिति पदं कुलमहत्तरा इति पदं चान्व-ययोजनार्थमध्याहार्यं स्यात्, साध्याहारव्याख्यातोऽनध्याहारव्याख्यायां लाघवमिति, पञ्चमाङ्गे जमालिचरित्रे विष्क्रमणमहवर्णने शाङ्खिकादीनां प्रथमान्ततया निर्देश एतस्यैवाशयस्य सूचकः, यदि च 'प्रायः सूत्राणि सोपस्काराणि भवन्ती'ति न्यायोऽनुस्रियते तदा साध्याहारव्याख्यानेऽप्यदोषः, ताभिः–विवक्षिताभिरित्यर्थः वाग्भिरभिनन्दयन्त-श्चाभिष्टुवन्तश्चेति योजना, विवक्षितत्वमेवाह—इष्यन्ते स्मेतीष्टास्ताभिः, प्रयोजनवशादिष्टमपि किञ्चित्स्वरूपतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कान्तं स्यादकान्तं चेत्यत आह—'कान्ताभिः' कमनीयशब्दाभिः 'प्रियाभिः' प्रियार्थाभिः मनसा ज्ञायन्ते सुन्दरतया यास्ता मनोज्ञा भावतः सुन्दरा इत्यर्थः ताभिः मनसा अभ्यन्ते—गम्यन्ते पुनः पुनः या सुन्दरत्वातिशयात्ता मनोऽमास्ताभिः उदाराभिः—शब्दतोऽर्थतश्च 'कल्याणाभिः' कल्याणातिसूचकाभिः 'शिवाभिः' निरुपद्रवाभिः शब्दार्थदूषणोज्झिताभिरित्यर्थः 'धन्याभिः' धनलम्भिकाभिः 'मङ्गल्याभिः' मङ्गले—अनर्थप्रतिघाते साध्वीभिः सश्रीकाभिः—अनुप्रासाद्यलङ्कारोपेतत्वात् सशोभाभिः 'हृदयगमनीयाभिः' अर्थप्राकट्यचातुरीसचिवत्वात् सुबोधाभिः, 'हृदयप्रह्लादनीयाभिः' हृदयगतकोपशोकादिग्रन्थिविद्रावणीभिः, उभयत्र कर्त्तर्यनट् प्रत्ययः, कर्णमनोनिर्वृतिकरीभिः अपुनरुक्ताभिरिति च स्पष्टं, अर्थशतानि यासु सन्ति ता अर्थशतिकास्ताभिः अथवा अर्थानां—इष्टकार्याणां शतानि याभ्यस्ता अर्थशतास्ता एवार्थशतिकाः, स्वार्थे इकप्रत्ययः, अनवरतं—विश्रामाभावात् 'अभिनन्दयन्तश्च' जय जीवेत्यादिभणनतः समृद्धिमन्तं भगवन्तमाचक्षाणाः अभिष्टुवन्तश्च भगवन्तमेवेति, किमवादिषुरित्याह—'जय जये'ति भक्तिसम्भ्रमे द्विर्वचनं, नन्दति—समृद्धो भवतीति नन्दः तस्यामन्त्रणमिदं, इह च दीर्घत्वं प्राकृतत्वात्, अथवा जय त्वं जगन्नन्द!—जगत्समृद्धिकर? जय जय भद्र? प्राग्वत्, नवरं भद्रः—कल्याणवान् कल्याणकारी वा, कथमाशासते स्म इत्याह—धर्म्मेण—करणभूतेन न त्वभिमानलज्जादिना अभीतो भवपरीसहोपसर्गेभ्यः, प्राकृतत्वात् पञ्चम्यर्थे षष्ठी, परीषहोपसर्गाणां जेता भवेत्यर्थः, तथा क्षान्त्या न त्वसामर्थ्यादिना क्षम—सोढा भव, 'भयं' आकस्मिकं 'भैरवं' सिंहादिसमुत्थं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तयोः, प्राकृतत्वात्पदव्यत्यये भैरवभयानां वा–भयङ्करभयानां क्षान्ता भव इत्यर्थः, नानावर्णानां नानाविधवाग्भङ्गीति न पूर्वविशेषणान्तःपातेन पौनरुक्त्यं, धर्मे–प्रस्तुते चारित्रधर्म्मे अविघ्नं–विघ्नाभावस्ते–तव भवतु इतिकृत्वा धातूनामनेकार्थत्वादुच्चार्य पुनः पुनरभिनन्दयन्ति चाभिष्टुवन्ति चेति, अथ येन प्रकारेण निर्गच्छति तमेवाह—'तए ण'मित्यादि, 'ततः' तदनन्तरं ऋषभोऽर्हन् कौशलिको नयनमालासहस्रैः श्रेणिस्थितभगवद्दिदृक्षामात्रया व्यापृतनागरनेत्रवृन्दैः प्रेक्ष्यमाणः २–पुनः पुनरवलोक्यमानः, आभीक्ष्ण्ये द्विर्वचनं सर्वं, एवं सर्वत्र तावद्वक्तव्यं यावन्निर्गच्छति–'यथौपपातिके' एवं यथा प्रथमोपाङ्गे चम्पातो भंभासारसुतस्य निर्गम उक्तस्तथाऽत्र वाच्यो, वाचनान्तरेण यावदाकुलबोलबहुलं नभः कुर्वन्निति पर्यन्ते इति, तत्र च यो विशेषस्तमाह—विनीता राजधान्या मध्यंमध्येन–मध्यभागेन इत्यर्थः निर्गच्छति, 'सुखं सुखेने' त्यादिवन्मध्यंमध्येनेति निपातः, औपपातिकगमश्चायं–'हियमालासहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे २ मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे २ वयणमालासहस्सेहिं अभिथुवमाणे २ कंतिरूवसोहग्गगुणेहिं पत्थिज्जमाणे २ अंगुलिमालासहस्सेहिं दाइज्जमाणे २ दाहिणहत्थेणं बहूणं णरणारीसहस्साणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे २ मंजुमंजुणा घोसेणं पडिबुज्झेमाणे २ भवणपंतिसहस्साइं समइच्छमाणे २ तंतीतालतुडिअगीअवाइअरवेणं महुरेण य मणहरेणं जयसद्दुग्घोसविसएणं मंजुमंजुणा घोसेणं पडिबुज्झेमाणे २ कंदरगिरिविवरकुहरगिरिवरपासाउद्धघणभवणदेवकुलसिंघाडगतिगचउक्कचच्चरआरामुज्जाणकाणणसहापवापएसदेसभागे पडिसुआसयसंकुलं करेंते हयहेसिअहत्थिगु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगुलाइअरहघणघणाइयसद्दमीसिएणं महया कलकलरवेणं जणस्स महुरेण पूरयंतो सुगंधवरकुसुमचुण्णउविद्धवासरेणुकविलं नभं करेंते, कालागुरुकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवनिवहेण जीवलोगमिव वासयंते समंतओ खुभिअचक्कवालं पउरजणबालवुद्धपमुइअतुरिअपहाविअविउल'न्ति, आउलपदमारभ्य निर्गच्छति पदपर्यन्तं तु सूत्रे साक्षादेवास्ति, अत्र व्याख्या–हृदयमालासहस्रैः–जनमनःसमूहैरभिनन्द्यमानः २–समृद्धिमुपनीयमानो २ जय जीव नन्देत्याद्याशीर्दानेन, मनोरथमालासहस्रैः–एतस्यैवाज्ञापरा भवाम इत्यादिजनविकल्पैर्विशेषेण स्पृश्यमानः २ इत्यर्थः वदनमालासहस्रैर्वचनमालासहस्रैर्वा अभिष्टूयमानं २ कान्त्यादिगुणैर्हेतुभिः प्रार्थ्यमानो २ भर्तृतया स्वामितया वा स्त्रीपुरुषजनैरभिलष्यमाणः २ अंगुलिमालासहस्रैर्दर्श्यमानः २ दक्षिणहस्तेन बहूनां नरनारीसहस्राणां अञ्जलिमालाः–संयुतकरमुद्राविशेषवृन्दानि प्रतीच्छन् २–गृह्णन् २, किमुक्तं भवति ?–त्रैलोक्यनाथेनापि प्रभुणा पौराणामस्माकमञ्जलिरूपा भक्तिर्मनस्यवतारितेति दक्षिणहस्तदर्शनं तथा महाप्रमोदाय भवतीति कुर्वन्, मञ्जुमञ्जुना–अतिकोमलेन घोषेण–स्वरेण प्रतिपृच्छन् २–प्रश्नयन् २ प्रणमतां स्वरूपादिवार्ताः, भवनानां–विनीतानगरीगृहाणां पङ्क्त्या–समश्रेणिस्थित्या सहस्राणि न तु पुष्पावकीर्णस्थित्या, समतिक्रामन् २, तन्त्रीतलतालाः प्रसिद्धाः, त्रुटितानि–शेषवाद्यानि तेषां वादितं–वादनं, प्राकृतत्वात्पदव्यत्ययः गीतं च तयो रवेण यद्वा तन्त्र्यादीनां त्रुटितान्तानां गीते–गीतमध्ये यद्वादितं–वादनं तेन यो रवः–शब्दस्तेन मधुरेण–मनोहरेण तथा जयशब्दस्य उद्घोषः–उद्घोषणं विशदः–स्पष्टतया प्रतिभासमानं यत्र तेन मञ्जुमञ्जुना घोषेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पौरजनरवेण च प्रतिबुद्ध्यमानः २–सावधानीभवन् २ कन्दराणि–दर्यः गिरीणां 'विवरकुहराणि' गुहाः पर्वतान्तराणि च गिरिवराः–प्रधानपर्वताः प्रासादाः–सप्तभूमिकादयः ऊर्ध्वघनभवनानि–उच्चाविरलगेहानि देवकुलानि–प्रतीतानि शृङ्गाटकं–त्रिकोणस्थानं त्रिकं–यत्र रथ्यात्रयं मिलति चतुष्कं–यत्र रथ्याचतुष्टयं चत्वरं–बहुमार्गा आरामाः–पुष्पजातिप्रधानवनखण्डाः उद्यानानि–पुष्पादिमद्वृक्षयुक्तानि काननानि–नगरासन्नानि सभा–आस्थायिकाः प्रपा–जलदानस्थानं एतेषां ये प्रदेशदेशरूपा भागास्तान्, तत्र प्रदेशा–लघुतरा भागा देशास्तु लघवः प्रतिश्रुतः–प्रतिशब्दास्तेषां शतसहस्राणि–लक्षास्तैः सङ्कुलान् कुर्वन्, अत्र बहुवचनार्थे एकवचनं प्राकृतत्वात्, हयानां हेषितेन–हेषारवरूपेण हस्तिनां गुलगुलायितरूपेण, रथानां घनघनायितेन–घणघणायितरूपेण शब्देन मिश्रितेन जनस्य महता कलकलरवेण आनन्दशब्दत्वान्मधुरेण–अक्रूरेण पूरयन् २, अत्र नभ इति उत्तरग्रन्थवर्त्तिना पदेन योगः, सुगन्धानां वरकुसुमानां चूर्णानां च उद्भेधः–उर्ध्वगतो वासरेणुः–वासकं रजस्तेन कपिलं नभः कुर्वन् कालागुरुः–कृष्णागुरुः कुंदुरुक्कः–चीडाभिधं द्रव्यं तुरुष्कं–सिल्हकं धूपश्च–दशाङ्गादिर्गन्धद्रव्यसंयोगजः एषां निवहेन जीवलोकं वासयन्निव, अत्रोत्प्रेक्षा तु जीवलोकवासनस्यावास्तवत्वेन, सर्वतः क्षुभितानि–साश्चर्यतया ससम्भ्रमाणि चक्रवालानि–जनमण्डलानि यत्र निर्गमे तद्यथा भवतीत्येवं निर्गच्छतीति, प्रचुरजनाश्च अथवा पौरजनाश्च बालवृद्धाश्च ये प्रमुदितास्त्वरितप्रधाविताश्च–शीघ्रं गच्छन्तस्तेषां व्याकुलाकुलानां–अतिव्याकुलानां यो बोलः–शब्दः स बहुलो यत्र तत्तथा, एवंभूतं नभः कुर्वन्, विशेषणानां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यस्तया निपातः प्राकृतत्वादिति, निर्गत्य च यत्रागच्छति तदाह—'आसि'इत्यादि, आसिक्तं—ईषत् सिक्तं गन्धोदकादिना प्रमार्जितं कचवरशोधनेन सिक्तं—तेनैव विशेषतोऽत एव शुचिकं—पवित्रं पुष्पैर्य उपचारः—पूजा तेन कलितं—युक्तं, इदं च विशेषणं प्रमार्जितासिक्तसिक्तशुचिकमित्येवं द्रष्टव्यं, प्रमार्जिताद्यनन्तरभावित्वाच्छुचिकत्वस्य, एवंविधं सिद्धार्थवनविपुलराजमार्गं कुर्वन्, तथा हयगजरथानां 'पहकरे'त्ति देशीशब्दोऽयं समूहवाची तेन हयादिसेनयेत्यर्थः, तथा पदातीनां चटकरेण वृन्देन च मन्दं २—यथा भवति तथा, क्रियाविशेषणं, यथा हयादिसेना पाश्चात्या समेति तथा २ बहुतरबहुतमकमित्यर्थः, उद्धतरेणुकं—ऊर्ध्वगतरजस्कं कुर्वन्, यत्रैव सिद्धार्थवनमुद्यानं यत्रैवाशोकवरपादपस्तत्रैवोपागच्छतीति। उपागत्य यत्करोति तदाह—उपागत्याशोकवरपादपस्याधः शिबिकां स्थापयति, स्थापयित्वा च शिबिकायाः प्रत्यवरोहति, अवतरतीत्यर्थः, प्रत्यवरुह्य च स्वयमेवाभरणालङ्कारान्, तत्राभरणानि—मुकुटानीति (दीनि) अलङ्कारान्—वस्त्रादीन्, सूत्रे एकवचनं प्राकृतत्वात्, आभरणानि च अलङ्काराश्चेति समाहारद्वन्द्वकरणाद्वा, अवमुञ्चति—त्यजति, कुलमहत्तरिकाया हंसलक्षणपटे अवमुच्यं च स्वयमेव चतसृभिः 'अट्ठाहिं'ति मुष्टिभिः करणभूताभिर्लुञ्चनीयकेशानां पञ्चमभागलुञ्चिकाभिरित्यर्थः, लोचं करोति, अपराङ्गालङ्कारादिमोचनपूर्वकमेव शिरोऽलङ्कारादिमोचनं विधिक्रमायेति पर्यन्ते मस्तकालङ्कारकेशमोचनं, तीर्थकृतां पञ्चमुष्टिलोचसम्भवेऽपि अस्य भगवतश्चतुर्मुष्टिकलोचगोचरः श्रीहेमाचार्यकृतऋषभचरित्राद्यभिप्रायोऽयं—'प्रथममेकया मुष्ट्या श्मश्रुकूर्चयोर्लोचे तिसृभिश्च शिरोलोचे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीजम्बू. २५

कृते एकां मुष्टिमवशिष्यमाणां पवनान्दोलितां कनकावदातयोः प्रभुस्कन्धयोरुपरि लुठन्तीं मरकतोपमानमाबिभ्रतीं परम-रमणीयां वीक्ष्य प्रमोदमानेन शक्रेण भगवन्! मय्यनुग्रहं विधाय ध्रियतामियमित्थमेवेति विज्ञप्ते भगवतापि सा तथैव रक्षितेति, 'न ह्येकान्तभक्तानां याच्ञामनुग्रहीतारः खण्डयन्ती'ति, अत एवेदानीमपि श्रीऋषभमूर्त्तौ स्कन्धोपरि वल्लरिका क्रियन्ते इति, लुञ्चिताश्च केशाः शक्रेण हंसलक्षणपटे क्षीरोदधौ क्षिप्ता इति, षष्ठेन–भक्तेन उपवासद्वयरूपेण अपानकेन–चतुर्विधाहारेण 'आषाढाभि'रित्यत्र 'ते लुग्वे' (श्रीसिद्ध०अ.३ पा.२ सू.१०८) त्यनेन उत्तरपदलोपे उत्तराषाढाभिर्वचनवै-षम्यमार्षत्वात्, नक्षत्रेण योगमुपागतेनार्थाच्चन्द्रेणेति गम्यं, उग्राणां–अनेनैव प्रभुणा आरक्षकत्वेन नियुक्तानां भोगानां–गुरुत्वेन व्यवहृतानां राजन्यानां–वयस्यतया व्यवस्थापितानां क्षत्रियाणां–शेषप्रकृतितया विकल्पितानां चतुर्भिः पुरुषस-हस्रैः सार्द्धं, एते च बन्धुभिः सुहृद्भिर्भरतेन च निषिद्धा अपि कृतज्ञत्वेन स्वाम्युपकारं स्मरन्तः स्वामिविरहभीरवो वान्तान्न इव राज्यसुखे विमुखा यत्स्वामिनाऽनुष्ठेयं तदस्माभिरपीति कृतनिश्चयाः स्वामिनमनुगच्छन्ति स्म, एकं देवदूष्यं शक्रेण वामस्कन्धे जीतमित्यर्पितं उपादाय, न तु रजोहरणादिकं लिङ्गं कल्पातीतत्वाज्जिनेन्द्राणां, मुण्डो द्रव्यतः शिरःकूर्चलो-चनेन भावतः कोपाद्यपासनेन भूत्वा अगाराद्–गृहवासान्निष्क्रम्येति गम्यं, अनगारितां–अगारी–गृही असंयतस्तत्प्र-तिषेधादनगारी–संयतस्तद्भावस्तत्ता तां साधुतामित्यर्थः प्रव्रजितः–प्रगतः प्राप्त इतियावत्, अथवा विभक्तिपरि-णामादनगारितया–निर्ग्रन्थतया प्रव्रजितः–प्रव्रज्यां प्रतिपन्नः। अथ प्रभोश्चीवरधारित्वकालमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ ऋषभप्रभोः दिक्षायाः पश्चात् वस्त्रधारित्व-कालं एवं श्रामण्यादि वर्ण्यते

उसभे णं अरहा कोसलिए संवच्छरं साहिअं चीवरधारी होत्था, तेण परं अचेलए । जप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए तप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए णिच्चं वोसट्ठकाए चिअत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति तं०—दिव्वा वा जाव पडिलोमा वा अणुलोमा वा, तत्थ पडिलोमा वेत्तेण वा जाव कसेण वा काए आउट्टेज्जा अणुलोमा वं देज्ज वा जाव पज्जुवासेज्ज वा ते (उप्पन्न) सव्वे सम्मं सहइ जाव अहिआसेइ, तए णं से भगवं समणे जाए ईरिआसमिए जाव पारिट्ठावणिआसमिए मणसमिए वयसमिए कायसमिए मणगुत्ते जाव गुत्तबंभयारी अकोहे जाव अलोहे संते पसंते उवसंते परिणिव्वुडे छिण्णसोए निरुवलेवे संखमिव निरंजणे जच्चकणगं व जायरूवे आदरिसपडिभागे इव पागडभावे कुम्मो इव गुत्तिंदिए पुक्खरपत्तमिव निरुवलेवे गगणमिव निरालंबणे अणिले इव णिरालए चंदो इव सोमदंसणे सूरो इव तेअंसी विहग इव अपडिबद्धगामी सागरो इव गंभीरे मंदरो इव अकंपे पुढवीविव सव्वफासविसहे जीवो विव अप्पडिहयगइत्ति । णत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे, से पडिबंधे चउव्विहे भवति, तंजहा—दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ, दव्वओ इह खलु माया मे पिया मे भाया मे भगिणी मे जाव संगंथसंथुआ मे हिरण्णं मे सुवण्णं मे जाव उवगरणं मे, अहवा समासओ सचित्ते वा अचित्ते वा मीसए वा दव्वजाए सेवं तस्स ण भवइ, खित्तओ गामे वा णगरे वा अरण्णे वा खेत्ते वा खले वा गेहे वा अंगणे वा एवं तस्स ण भवइ, कालओ थोवे वा लवे वा मुहुत्ते वा अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा उऊए वा अयणे वा संवच्छरे वा अन्नयरे वा दीहकालपडिबंधे एवं तस्स ण भवइ, भावओ कोहे वा जाव लोहे वा भए वा हासे वा एवं तस्स ण भवइ, से णं भगवं वासावासवज्जं हेमंतगिम्हासु गामे एगराइए णगरे पंचराइए ववगयहाससोगअरइभयपरित्तासे णिम्ममे णिरहंकारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लहुभूए अगंथे वासीतच्छणे अदुट्ठे चंदणाणुलेवणे अरत्ते लेट्ठुंमि कंचणंमि अ समे इह लोए अपडिबद्धे जीवियमरणे निरवकंखे संसारपारगामी कम्मसंगणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए विहरइ। तस्स णं भगवंतस्स एतेणं विहारेणं विहरमाणस्स एगे वाससहस्से विइक्कंते समाणे पुरिमतालस्स नगरस्स बहिआ सगडमुहंसि उज्जाणंसि णिग्गोहवरपायवस्स अहे झाणंतरिआए वट्टमाणस्स फग्गुणबहुलस्स इक्कारसीए पुव्वण्हकालसमयंसि अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं उत्तरासाढाणक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अणुत्तरेणं नाणेणं जाव चरित्तेणं अणुत्तरेणं तवेणं बलेणं वीरिएणं आलएणं विहारेणं भावणाए खंतीए गुत्तीए मुत्तीए तुट्ठीए अज्जवेणं मद्दवेणं लाघवेणं सुचरिअसोवचिअफलनिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे जिणे जाए केवली सवन्नू सव्वदरिसी सणेरइअतिरिअनरामरस्स लोगस्स पज्जवे जाणइ पासइ, तंजहा—आगइं गइं ठिइं उववायं भुत्तं कडं पडिसेविअं आवीकम्मं रहोकम्मं तं तं कालं मणवयकाये जोगे एवमादी जीवाणवि सव्वभावे अजीवाणवि सव्वभावे मोक्खमग्गस्स विसुद्धतराए भावे जाणमाणे पासमाणे एस खलु मोक्खमग्गे मम अण्णेसिं च जीवाणं हियसुहणिस्सेसकरे सव्वदुक्खविमोक्खणे परमसुहसमाणणे भविस्सइ। तते णं से भगवं समणाणं निग्गंथाण य निग्गंथीण य पंच महव्वयाइं सभावणगाइं छच्च जीवणिकाए धम्मं देसमाणे विहरति, तंजहा—पुढविकाइए भावणागमेणं पंच महव्वयाइं सुभावणगाइं भाणिअव्वाइंति। उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स चउरासी गणा गणहरा होत्था, उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स उसभसेणपामोक्खाओ चुलसीइं समणसाहस्सीओ उक्कोसिआ समणसंपया होत्था, उसभस्स णं बंभीसुंदरीपामोक्खाओ तिण्णि अज्जिआसयसाहस्सीओ उक्कोसिआ अज्जिआसंपया होत्था, उसभस्स णं० सेज्जंसपामोक्खाओ तिण्णि समणोवासगसयसाहस्सीओ पंच य साहस्सीओ उक्को-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिआ समणोवासगसंपया होत्था, उसभस्स णं० सुभद्दापामोक्खाओ पंच समणोवासिआसयसाहस्सीओ चउपण्णं च सहस्सा उक्कोसिआ समणोवासिआसंपया होत्था, उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसन्निवाईणं जिणो विव अवितहं वागरमाणाणं चत्तारि चउद्दसपुव्वीसहस्सा अद्धट्ठमा य सया उक्कोसिआ चउद्दसपुव्वीसंपया होत्था, उसभस्स णं० णव ओहिणाणिसहस्सा उक्कोसिआ०, उसभस्स णं० वीसं जिणसहस्सा वीसं वेउव्विअसहस्सा छच्च सया उक्कोसिआ० बारस विउलमईसहस्सा छच्च सया पण्णासा बारस वाईसहस्सा छच्च सया पण्णासा, उसभस्स णं० गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं बावीसं अणुत्तरोववाईआणं सहस्सा णव य सया, उसभस्स णं० वीसं समणसहस्सा सिद्धा, चत्तालीसं अज्जिआसहस्सा सिद्धा सट्ठि अंतेवासीसहस्सा सिद्धा, अरहओ णं उसभस्स बहवे अंतेवासी अणगारा भगवंतो अप्पेगइआ मासपरिआया जहा उववाइए सव्वओ अणगारवण्णओ जाव उद्धंजाणू अहोसिरा झाणकोट्ठोवगया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति, अरहओ णं उसभस्स दुविहा अंतकरभूमी होत्था, तंजहा—जुगंतकरभूमी अ परिआयंतकरभूमी य, जुगंतकरभूमी जाव असंखेज्जाइं पुरिसजुगाइं, परिआयंतकरभूमी अंतोमुहुत्तपरिआए अंतमकासी (सूत्रं ३१)

'उसभे ण'मित्यादि, ऋषभोऽर्हन् कौशलिकः साधिकं समासमित्यर्थः, संवत्सरं—वर्षं यावद् वस्त्रधारी अभवत्ततः परमचेलकः, अत्र ये[२] केचन लिपिप्रमादादादर्शेष्विदमधिकमित्याहुस्तैरावश्यकचूर्णिगतश्रीऋषभदेवदेवदूष्याधिकारेऽय-

१ सक्को अ लक्खमुल्लं सुरदूसं ठवइ सव्वजिणखन्धे। वीरस्स वरिसमहिअं सयावि सेसाण तस्स ठिति॥१॥इति ग्रन्थान्तरवचनादधिकं संभाव्यते (इति हीर०वृत्तौ)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेवालापको द्रष्टव्यः, श्रामण्यानन्तरं कथं प्रभुः प्रववृते इत्याह–'जप्पभिइं च ण'मित्यादि, यतःप्रभृति ऋषभोऽर्हन् कौशलिकः प्रव्रजितस्ततःप्रभृति नित्यं व्युत्सृष्टकायः परिकर्मवर्जनात् त्यक्तदेहः परीषहादिसहनात् ये केचिदुपसर्गा उत्पद्यन्ते, तद्यथा–दिव्या–देवकृता वाशब्दः समुच्चये यावत्करणात् 'माणुसा वा तिरिक्खजोणिआ वा' इति पदग्रहः, प्रतिलोमाः–प्रतिकूलतया वेद्यमाना अनुलोमाः–अनुकूलतया वेद्यमानाः, वाशब्दः पूर्ववत्, तत्र प्रतिलोमा वेत्रेण–जलवंशेन यावच्छब्दात् 'तयाए वा छियाए वा लयाए वा' इति, तत्र त्वचया–सनादिकया छिवया–श्लक्ष्णया लोहकुश्या लतया–क्रम्बया कषेण–चर्मदण्डेन, वाशब्दः प्राग्वत्, कश्चिद्दुष्टात्मा कार्ये 'विवक्षातः कारकाणी'त्याधारविवक्षायां सप्तमी आकुट्टयेत् ताडयेदित्यर्थः, अनुलोमास्तु 'वंदेज्ज वा' यावत्करणात् 'पूएज्जा वा सक्कारेज्जा वा सम्माणेज्जा वा कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं' इति, वन्देत वा स्तुतिकरणेन पूजयेद्वा पुष्पादिभिः सत्कुर्याद्वा वस्त्रादिभिः सन्मानयेद्वा अभ्युत्थानादिभिः कल्याणं भद्रकारित्वात् मङ्गलं अनर्थप्रतिघातित्वात् देवतां–इष्टदेवतामिव चैत्यं–इष्टदेवताप्रतिमामिव पर्युपासीत वा–सेवेतेति, तान् प्रतिलोमानुलोमभेदभिन्नान् उपसर्गान् सम्यक् सहते भयाभावेन, यावत्करणात् 'खमइ तितिक्खइ'त्ति क्षमते क्रोधाभावेन तितिक्षते दैन्यानवलम्बनेन अध्यासयति अविचलकायतयेति । अथ भगवतः श्रमणावस्थां वर्णयन्नाह—'तए णं से' इत्यादि, ततः स भगवान् श्रमणो–मुनिर्जातः, किंलक्षण इत्याह—ईर्यायां–गमनागमनादौ समितः–सम्यक् प्रवृत्तः उपयुक्त इत्यर्थः, यावत्पदात् 'भासासमिए एस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णासमिए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाण'त्ति, अत्रेतनपदं तु साक्षादेवास्ति, भाषायां-निरवद्यभाषणे समितः एषणायां–पिण्डविशुद्धौ आधाकर्मादिदोषरहितभिक्षाग्रहणे समितः भाण्डमात्रस्य–उपकरण-मात्रस्योपादाने–ग्रहणे निक्षेपणायां च–मोचने समितः प्रत्युपेक्षणादिकसुन्दरचेष्टया सहित इत्यर्थः, सूत्रे व्यस्ततया पदनि-र्देश आर्षत्वात्, अथवा आदानेन सह भाण्डमात्रस्य निक्षेपणेति समासयोजना, उच्चारः–पुरीषं प्रश्रवणं–मूत्रं खेलः–कफः सिंघानो–नासिकामलः जल्लः–शरीरमलः एषां परि–सर्वैः प्रकारैः स्थापनं–अपुनर्ग्रहणतया न्यासः परित्याग इत्यर्थः तत्र भवा पारिष्ठापनिकी, तत्र सुन्दरचेष्टा क्रिया इत्यर्थः, तस्यां समितः–उपयुक्तः,"प्रत्यये ङीर्नवा"(श्रीसिद्ध.अ.८पा.३सू.३१) इति प्राकृतसूत्रेण स्त्रीलक्षणो ङीप्रत्ययो विकल्पनीयः, यथा 'ईरियावहिआए विराहणाए' इत्यत्र, एतच्चान्त्यसमितिद्वयं भगवतो भाण्डसिद्धानाद्यसम्भवेऽपि नामाखण्डनार्थमुक्तमिति बादरेक्षिकया प्रतिभाति, सूक्ष्मेक्षिकया तु यथा वस्त्रैषणाया असम्भवेऽपि सर्वथा एषणासमितेर्भगवतोऽसम्भवो न, आहारादौ तस्या उपयोगात्, तथाऽन्यभाण्डासम्भवेऽपि देवदूष्य-सम्बन्धिनी चतुर्थसमितिर्भवत्येव, दृश्यते च श्रीवीरस्य द्विजदाने देवदूष्यादाननिक्षेपौ, एवं श्लेष्माद्यभावेऽपि नीहार-प्रवृत्तौ पञ्चमीसमितिरपीत्यलं प्रसङ्गेन, तथा मनःसमितः–कुशलमनोयोगप्रवर्तकः वचःसमितः–कुशलवाग्योगप्रवर्तकः, भाषासमित इत्युक्तेऽपि यद्वचःसमित इत्युक्तं तद् द्वितीयसमितावत्यादरनिरूपणार्थं करणत्रयशुद्धिसूत्रे सङ्ख्यापूरणार्थं

१ सूत्रपाठस्य बृहत्स्थानाङ्गेऽपि पारिष्ठापनिकाकारस्यैवाखण्डतैव युक्तेति न दोषः (इति हीर० वृत्तौ)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च, कायसमितः–प्रशस्तकायव्यापारवान्, मनोगुप्तः–अकुशलमनोयोगरोधकः यावत्पदात् 'वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए'त्ति वाग्गुप्तः–अकुशलवाग्योगनिरोधकः कायगुप्तः–अकुशलकाययोगनिरोधकः, एवं च सत्प्रवृत्तिरूपाः समितयोऽसत्प्रवृत्तिनिरोधरूपास्तु गुप्तय इति, अत एव गुप्तः सर्वथा संवृतत्वात्, तत्रैव विशेषणद्वारा हेतुमाह—गुप्तेन्द्रियः शब्दादिष्विन्द्रियार्थेष्वरक्तद्विष्टतया प्रवर्त्तनात्, तथा गुप्तिभिर्वसत्यादिभिर्यत्नपूर्वकं रक्षितं गुप्तं ब्रह्म–मैथुनविरतिरूपं चरतीत्येवंशीलः,तथा अक्रोधः यावत्करणात् 'अमाणे अमाए' इति पदद्वयं ग्राह्यं, व्यक्तं च, अलोभः, अत्र सर्वत्र स्वल्पार्थे नञ् ग्राह्यः, तेन स्वल्पक्रोधादिभिरित्यर्थः, अन्यथा सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकावधि लोभोदयस्योपशान्तमोहावधि च चतुर्णामपि क्रोधादीनां सत्तायाः सम्भवे तदभावासम्भवात्, कुत एवंविध इत्याह–श्रान्तो–भवभ्रमणतः प्रस्वान्तः–प्रकृष्टचित्तः उपसर्गाद्यापातेऽपि धीरचित्तत्वात् उपशान्त इति व्यक्तं अत एव परिनिर्वृतः सकलसन्तापवर्जितत्वात्, छिन्नश्रोताः–छिन्नसंसारप्रवाहः छिन्नशोको वा निरुपलेपो–द्रव्यभावमलरहितः, अथ सोपमानैश्चतुर्दशविशेषणैर्भगवन्तं विशिनष्टि–'शङ्खमिवे'त्यत्र प्राकृतशैल्या क्लीबभावस्तेन शङ्ख इव निर्गतमञ्जनमिवाञ्जनं–कर्म जीवमालिन्यहेतुत्वात् यस्मात् स तथा, जात्यकनकमिव–षोडशवर्णककाञ्चनमिव जातं रूपं–स्वरूपं रागादिकुद्रव्यविरहाद्यस्य स तथा, आदर्शे–दर्पणे प्रतिभागः–प्रतिबिम्बः स इव प्रकटभावः, अयमर्थः–आदर्शे प्रतिबिम्बितस्य वस्तुनो यथा यथावदुपलभ्यमानस्वभावा नयनमुखादिधर्मा उपलभ्यन्ते तथा स्वामिन्यपि यथास्थितो मनःपरिणाम उपलभ्यते,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न तु शठवदर्शितावहित्थ इति, कूर्मवद् गुप्तेन्द्रियः, कच्छपो हि कन्धरापादलक्षणावयवपञ्चकेन गुप्तो भवति एवमयमपीन्द्रियपञ्चकेन, पूर्वोक्तं गुप्तेन्द्रियत्वं दृष्टान्तद्वारा सुबोधमिति न पौनरुक्त्यं, पुष्करपत्रमिव निरुपलेपः, पङ्कजलकल्पस्वजनविषयस्नेहरहित इत्यर्थः,गगनमिव निरालम्बनः–कुलग्रामनगरादिनिश्रारहितः अनिल इव–वायुरिव निरालयोवसतिप्रतिबन्धवन्ध्यः, यथोचितं सततविहारित्वात्, अयमत्राशयः–यथा वायुः सर्वत्र संचरिष्णुत्वेनानियतवासी तथा प्रभुरपीति, चन्द्र इव सौम्यदर्शनः–अरौद्रमूर्त्तिः, सूर इव तेजस्वी परतीर्थिकतेजोऽपहारित्वात्, विहगः–पक्षी स इवाप्रतिबद्धतया गच्छतीत्येवंशीलः स तथा, किमुक्तं भवति?–स्थलचरजलचरौ स्थलजलनिश्रितगमनौ न तथा विहगः स्वावयवभूतपक्षसापेक्षगामित्वात्, तेन विहगवदयं प्रभुरनेकेष्वनार्यदेशेषु कर्मक्षयसाहायककारिषु परानपेक्षः स्वशक्त्या विहरतीति, सागर इव गम्भीरः–परैरलब्धमध्यो निरुपमज्ञानवत्त्वेऽपि रहःकृतपरदुश्चरितानामपरिस्रावित्वात् हर्षशोकादिकारणसद्भावेऽपि तद्विकारादर्शनाद्वा, मन्दर इव अकम्पः, स्वप्रतिज्ञातेषु तपःसंयमेषु दृढाशयत्वेन प्रवर्त्तनात्, पृथ्वीव सर्वान् स्पर्शाननुकूलेतरान् विषहते यः स तथा, जीव इवाप्रतिहतगतिः–अस्खलितगतिः, यथा हि जीवस्य कटकुड्यादिभिर्न गतिः प्रतिहन्यते तथा केनापि परपाखण्डिना आर्यानार्यदेशेषु सञ्चरतः प्रभोरपि, अथ मा भवन्तु दुर्द्धर्षस्य प्रभोः परे गतिविघातकाः परं स्वप्रतिबन्धेनापि गतिर्विहन्यते इत्याह— 'णत्थि ण' मित्यादि, नास्ति तस्य भगवतः कुत्रचित् प्रतिबन्धः–अयं ममास्याहमित्याशयबन्धरूपः, अयमेव हि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसारशब्दव्यपदेश्यः, यदूचे–"अयं ममेति संसारो, नाहं न मम निर्वृतिः। चतुर्भिरक्षरैर्बन्धः, पञ्चभिः परमं पदम्॥१॥" स च द्रव्यतः–द्रव्यं प्रतीत्य "ङ्यबूलोपात् पञ्चमी", एवं क्षेत्रत इत्याद्यपि, तत्र द्रव्यत इति व्याख्येयपदपरामर्शार्थं तेन न पौनरुक्त्यं, इह लोके खलुर्वाक्यालङ्कारे माता मम पिता ममेत्यादि, यावत्करणात् 'भज्जा मे पुत्ता मे धूआ मे णत्ता मे सुण्हा मे सहिसयण'त्ति भार्यापुत्रौ प्रसिद्धौ धूआ–पुत्री नप्ता–पुत्रपुत्रः स्नुषा–पुत्रभार्या सखा–मित्रं स्वजनः–पितृव्यादिः सम्बन्धः–स्वजनस्यापि स्वजनः पितृव्यपुत्रशालादिः संस्तुतो–भूयोदर्शनेन परिचितः, एषां च जीवपर्यायत्वाद् द्रव्यत्वं, कथञ्चित् पर्यायपर्यायिणोरभेदोपचारात्, हिरण्यं मे सुवर्णं मे, यावच्छब्दात् 'कंसं मे दूसं मे धणं मे' इत्यादि प्रकरणं उपकरणं–उक्तव्यतिरिक्तं, अयं च यावत्पदसंग्रहोऽदृष्टमूलकत्वेन मयैव सिद्धान्तशैल्या प्राकृतीकृत्य स्थानाशून्यतार्थं लिखितोऽस्ति तेन सैद्धान्तिकैरेतन्मूलपाठगवेषणायामुद्यमः कार्यः, प्रकारान्तरेण द्रव्य-प्रतिबन्धमाह—अथवेति–प्रकारान्तरे, उक्तरीत्या प्रतिव्यक्ति कथनस्याशक्यत्वेन सङ्क्षेपत उच्यते इति शेषः, सच्चित्ते-द्विपदादौ अचित्ते–हिरण्यादौ मिश्रे–हिरण्यालङ्कृतद्विपदादौ, द्रव्यजाते–द्रव्यप्रकारे वा समुच्चये स–प्रतिबन्धस्तस्य–प्रभोरेवमिति–ममेदमित्याशयबन्धेन न भवति 'खित्तओ' इत्यादि प्रायो व्यक्तमिदं, नवरं क्षेत्रं–धान्यजन्मभूमिः खलं–धान्यमेलनपचनादिस्थंडिलं एवं–उक्तरीत्या आशयबन्धस्तस्य प्रभोर्न भवति, 'कालओ'इत्यादि, कालतः स्तोके–सप्तप्राणमाने लवे–सप्तस्तोकमाने मुहूर्ते–सप्तसप्ततिलवमाने अहोरात्रे–त्रिंशन्मुहूर्त्तमाने पक्षे–पञ्चदशाहोरात्रमाने मासे–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३१]

दीप अनुक्रम [४४]

पक्षद्वयमाने ऋतौ–मासद्वयमाने अयने–ऋतुत्रयमाने संवत्सरे–अयनद्वयमाने अन्यतरस्मिन् वा दीर्घकाले–वर्षशतादौ प्रतिबन्धः एवं–उक्तप्रकारेण तस्य न भवति, अयमृतुरनुकूलो ममायं च प्रतिकूलो ममेति मतिर्न तस्य, यथा श्रीमतां शीतर्तुरनुकूलतया प्रतिबन्धं विधत्ते निर्द्धनानां तु उष्णर्तुः, 'भावओ'इत्यादि, कण्ठ्यमेतत्, नवरं कदाग्रहवशात् क्रोधादीन् न त्यजामीति धीर्न तस्येत्यर्थः, एतच्च सूत्रमुपलक्षणभूतं तेनानुक्तानां सर्वेषामपि पापस्थानानां ग्रहः, अथ कथं भगवान् विहरति स्मेत्याह—'से ण'मित्यादि, स भगवान् वर्षासु–प्रावट्काले वासः–अवस्थानं तद्ज्ञे, तेन विनेत्यर्थः, हेमन्ताः–शीतकालमासाः गीष्मा–उष्णकालमासास्तेषु ग्रामे–अल्पीयसि सन्निवेशे एका रात्रिर्वासमानतया यस्य स एकरात्रिकः एकदिनवासीत्यर्थः, नगरे–गरीयसि सन्निवेशे पञ्च रात्रयो वासमानतया यस्य स तथा, पञ्चदिनवासीति

१ न चैवं 'गामे एगराइए' इत्यादि प्रवचनबलेन साधूनामपि मुख्यवृत्तिरियमेव भविष्यतीति शंकनीयं, यतः–साधूनधिकृत्यैवंविधसूत्रपाठोऽभिग्रहविशेषवतः एवावसातव्यः, औपपातिकवृत्तौ तथैव व्याख्यानात्, अत एव सामान्यतः साधूनां विहारे विचित्रताऽप्यागमे प्रतीता, तथाहि–'एगाहं पंचाहं मासं च जहासमाहीए'त्ति श्रीनिशीथभाष्ये, अस्य व्याख्या–'पडिमापडिवण्णाणं एगाहं पंचहो अहालंदे । जिणसुद्धाणं मासो निक्कारणओ अ थेराणं ॥ १ ॥' पडिमापडिवण्णाणं एगाहो अहालंदिआण पंचाहो जिणत्ति–जिणकप्पियाणं सुद्धत्ति–सुद्धपारिहारिआणं, सुद्धग्गहणं पच्छित्तावन्नपारिहारिअनिसेहणत्थं, थेराणं च, एतेसिं मासकप्पविहारे, निक्कारणाए–कारणाभावे, वाघाए पुण थेरकप्पिआ ऊणं अहरित्तं वा मासं अच्छंति, 'ऊणाइरित्तमासा एवं थेराण अट्ठ णायव्वा । इअरे अट्ठ विहरिउं नियमा चत्तारि अच्छंति ॥ १ ॥' एवं ऊणा अहरित्ता थेराण अट्ठ मासा णायव्वा, इअरे णाम पडिमापडिवण्णा १ अहालंदिआ २ जिसुद्धपारिहारिआ ३ जिणकप्पिआ ४ य जहाविहारेण अट्ठ विहरिऊण चासारत्तिआ चत्तारो मासा सव्वे एगट्ठिते अच्छंति (इति द्वी० वृत्तौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावः, यथा दिनशब्दोऽहोरात्रवाची तथा रात्रिशब्दोऽप्यहोरात्रवाचीति, ननु तर्हि दिनशब्द एव कथं नोपात्तः?, उच्यते, निशाविहारस्यासंयमहेतुत्वेन चतुर्ज्ञानिनोऽपि तीर्थकरा अवगृहीतायां वसतावेव वासतेय्यां [रात्रौ] वसन्तीति वृद्धाम्नायः, 'व्यपगतहास्यशोकरतिभयपरित्रासः' तत्रारतिः–मनसोऽनौत्सुक्यमुद्वेगफलकं रतिः–तदभावः परित्रासः–आकस्मिकं भयं शेषं व्यक्तं, निर्गतो ममेतिशब्दो यस्मात् स तथा, किमुक्तं भवति?–प्रभोर्ममेत्यभिलापेनाभिलाप्यं नास्तीति, षष्ठ्येकवचनान्तस्यासच्छब्दस्यानुकरणशब्दत्वान्ममेत्यस्य साधुता, निरहंकारः–अहमितिकरणमहङ्कारः स निर्गतो यस्मात्स तथा, लघुभूत ऊर्ध्वगतिकत्वात्, अत एवाग्रन्थो–बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहरहितः, वास्यासूत्रधारशस्त्रविशेषेण यत्तत्तक्षणं–त्वच उत्खननं तत्राद्विष्टः–अद्वेषवान्, चन्दनानुलेपनेऽरक्तः–अरागवान्, लेष्टौदृषदि काञ्चने च समः, उपेक्षणीयत्वेनोभयत्र साम्यभाक्, इहलोके-वर्त्तमानभवे मनुष्यलोके परलोके–देवभवादौ तत्राप्रतिबद्धः तत्रत्यसुखनिष्पिपासित्वात् जीवितमरणयोर्निरवकांक्षः–इन्द्रनरेन्द्रादिपूजाप्राप्तौ जीविते दुर्विषहपरीषहाप्तौ च मरणे निःस्पृहः, संसारपारगामीति व्यक्तं, कर्मणां सङ्गः–अनादिकालीनो जीवप्रदेशैः सह सम्बन्धस्तस्य निर्घातनं–विश्लेषणं तदर्थमभ्युत्थित–उद्यतो विहरति । अथ ज्ञानकल्याणकवर्णनायाह–'तस्स ण'मित्यादि, 'तस्य' भगवतः 'एतेन' अनन्तरोक्तेन विहारेण विहरत एकस्मिन् वर्षसहस्रे व्यतिक्रान्ते सति पुरिमतालस्य नगरस्य बहिः शकटमुखे उद्याने न्यग्रोधवरपादपस्याधो 'ध्यानान्तरिके'ति अन्तरस्य–विच्छेदस्य करणमन्तरिका स्त्रीलिङ्गशब्दः अथवा अन्तरमेवा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्तर्यं, भेषजादित्वात् स्वार्थे यण् प्रत्ययस्ततः स्त्रीत्वविवक्षायां ङीप्रत्यये आन्तरी आन्तर्यैवान्तरिका ध्यानस्यान्तरिकाध्यानान्तरिका–आरब्धध्यानस्य समाप्तिरपूर्वस्यानारम्भणमित्यर्थः अतस्तस्यां वर्त्तमानस्य, कोऽर्थः?–पृथक्त्ववितर्कं सविचारं १ एकत्ववितर्कमविचारं २ सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति ३ व्युच्छिन्नक्रियमनिवर्त्ति ४ इति चतुश्चरणात्मकस्य शुक्लध्यानस्य चरणद्वये ध्याते चरमचरणद्वयमप्रतिपन्नस्येति, योगनिरोधरूपध्यानस्य चतुर्दशगुणस्थानवर्त्तिनि केवलिन्येव सम्भवात्, फाल्गुनबहुलस्यैकादश्यां पूर्वाह्णकालरूपो यः समयः–अवसरस्तस्मिन् अष्टमेन भक्तेन–आगमभाषयोपवासत्रयलक्षणेनापानकेन–जलवर्जितेनोत्तराषाढानक्षत्रे चन्द्रेण सहेति गम्यं योगमुपागते सति, उभयत्र णं वाक्यालङ्कारे, अथवा आर्षत्वात् सप्तम्यर्थे तृतीया, अनुत्तरेणेति–क्षपकश्रेणिप्रतिपन्नत्वेन केवलासन्नत्वेन परमविशुद्धिपदप्राप्तत्वेन न विद्यते उत्तरं–प्रधानमग्रवर्ति वा छाद्मस्थिकज्ञानं यस्मात्तत्तथा, तेन ज्ञानेन–तत्त्वावबोधरूपेण, एवं यावच्छब्दात् दर्शनेन क्षायिकभावापन्नेन सम्यक्त्वेन चारित्रेण–विरतिपरिणामरूपेण क्षायिकभावापन्नेनैव 'तपसे'ति व्यक्तं 'बलेन' संहननोत्थप्राणेन 'वीर्येण' मानसोत्साहेन 'आलयेन' निर्दोषवसत्या 'विहारेण' गोचरचर्यादिहिण्डनलक्षणेन 'भावनया' महाव्रतसम्बन्धिन्या मनोगुप्त्यादिरूपया पदार्थानामनित्यत्वादिचिन्तनरूपया वा 'क्षान्त्या' क्रोधनिग्रहेण 'गुप्त्या' प्राग्व्याख्यातस्वरूपया 'मुक्त्या' निर्लोभतया 'तुष्ट्या' इच्छानिवृत्त्या 'आर्जवेन' मायानिग्रहेण 'मार्दवेन' माननिग्रहेण 'लाघवेन' क्रियासु दक्षभावेन, भावे क्तप्रत्ययविधानात्, सोपचितं–सोपचयं पुष्टमित्यावत् एतादृशेन प्रस्तावान्निर्वा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३१]

दीप अनुक्रम [४४]

णमार्गसम्बन्धिनैव सुचरितेन–सदाचरणेन फलं–प्रक्रमान्मुक्तिलक्षणं यस्मात् एवंविधो यो निर्वाणमार्गः–असाधारणरत्नत्रयरूपस्तेनात्मानं भावयतः केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पन्नमित्यन्वयः, तत्रानन्तमविनाशित्वात् अनुत्तरं सर्वोत्तमत्वात् निर्व्याघातं कटकुड्यादिभिरप्रतिहतत्वात् निरावरणं क्षायिकत्वात् कृत्स्नं सकलार्थग्राहकत्वात् प्रतिपूर्णं सकलस्वांशकलितत्वात् पूर्णचन्द्रवत् केवलं–असहायं 'णट्ठंमि उ छाउमत्थिए णाणे' [नष्टे छाद्मस्थिके ज्ञान एव] इति वचनात्, परं–प्रधानं ज्ञानं च दर्शनं चेति समाहारद्वन्द्वे एकवद्भावः ततः पूर्वपदाभ्यां कर्मधारयः, तत्र सामान्यविशेषोभयात्मके ज्ञेयवस्तुनि ज्ञानं विशेषावबोधरूपं दर्शनं सामान्यावबोधरूपमिति, अत्रायमाशयः–दूरादेव तालतमालादिकं तरुनिकरं विशिष्टव्यक्तिरूपतयाऽनवधारितमवलोकयतः पुरुषस्य सामान्येन वृक्षमात्रप्रतीतिजनकं यदपरिस्फुटं किमपि रूपं चकास्ति तद्दर्शनं 'निर्विशेषं विशेषाणां ग्रहो दर्शन'मिति वचनात्, यत्पुनस्तस्यैव प्रत्यासीदतस्तालतमालादिव्यक्तिरूपतयाऽवधारितं तमेव तरुसमूहमुत्पश्यतो विशिष्टव्यक्तिप्रतीतिजनकं परिस्फुटं रूपमाभाति तज्ज्ञानं, ननु भवतु नाम इत्थमनुभवसिद्धे ज्ञाने छद्मस्थानां विशेषग्राहकता दर्शने च सामान्यग्राहकता, परं केवलिनो ज्ञानक्षणे सामान्यांशाग्रहणाद्दर्शनेन च विशेषांशग्रहणाभावाद् द्वयोरपि सर्वार्थविषयत्वं विरुध्यते, उच्यते, ज्ञानक्षणे हि केवलिनां ज्ञाने यावद्विशेषान् गृह्णति सति सामान्यं प्रतिभातमेव, अशेषविशेषराशिरूपत्वात् सामान्यस्य, दर्शनक्षणे च दर्शने सामान्यं गृह्णति सति यावद्विशेषाः प्रतिभाता एव, विशेषानालिङ्गितस्य सामान्यस्याभावात्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत एव 'निर्विशेषं विशेषाणां ग्रहो दर्शन'मित्युक्तमनन्तरोक्तग्रन्थे, कोऽर्थः ?–ज्ञाने प्रधानभावेन विशेषा गौणभावेन सामान्यं दर्शने प्रधानभावेन सामान्यं गौणभावेन विशेषा इति विशेषः । समुत्पन्नं–सम्यक्-क्षायिकत्वेनावरणदेशस्याप्यभावात् उत्पन्नं, प्रादुर्भूतमित्यर्थः, उत्पन्नकेवलस्य यद्भगवतः स्वरूपं तत्प्रकटयति–'जिणे जाए'इत्यादि, जिनो–रागादिजेता, केवलं–श्रुतज्ञानाद्यसहायकं ज्ञानमस्यास्तीति केवली, अत एव सर्वज्ञो–विशेषांशपुरस्कारेण सर्वज्ञाता सर्वदर्शी–सामान्यांशपुरस्कारेण सर्वज्ञाता, नन्वर्हतां केवलज्ञानकेवलदर्शनावरणयोः क्षीणमोहान्त्यसमय एव क्षीणत्वेन युगपदुत्पत्तिकत्वेनोपयोगस्वभावात् क्रमप्रवृत्तौ च सिद्धायां 'सव्वन्नू सव्वदरिसी' इति सूत्रं यथा ज्ञानप्राधम्यसूचकमुपन्यस्तं तथा सव्वदरिसी सव्वन्नू इत्येवं दर्शनप्राथम्यसूचकं किं न ?, तुल्यन्यायत्वात्, नैवं, 'सव्वाओ लद्धीओ सागारोवउत्तस्स उववज्जंति, णो अणागारोवउत्तस्स' [सर्वा लब्धयः साकारोपयुक्तस्योत्पद्यन्ते नानाकारोपयुक्तस्य] इत्यागमादुत्पत्तिक्रमेण सर्वदा जिनानां प्रथमे समये ज्ञानं ततो द्वितीये दर्शनं भवतीति ज्ञापनार्थत्वादित्थमुपन्यास्येति, छद्मस्थानां तु प्रथमे समये दर्शनं द्वितीये ज्ञानमिति प्रसङ्गाद् बोध्यं । उक्तविशेषणद्वयमेव विशिनष्टि–सनैरयि-

१ अवसरवाचकतया ज्ञेयोऽत्रायं समयशब्दः, छद्मस्थानां समयेनोपयोगाभावात्, अत एव 'चयमाणे न याणई' त्यागमः, अत एव च 'जाणइ पासई'-त्यवधिव्याख्यायां नन्द्यामपि अवसरपरतयैव समयशब्दव्याख्याऽविरुद्धा, स्पष्टं च स्थानाङ्गे दशमस्थानादौ व्याख्याप्रज्ञप्तौ च समयस्याविषयत्वं छद्मस्थस्य द्रुमपत्रीये 'समयं गोयम ! मा पमायए' इत्यत्र च ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कतिर्यग्नरामरस्य पञ्चास्तिकायात्मकक्षेत्रखण्डस्य उपलक्षणाद् लोकस्य अलोकस्यापि–नभःप्रदेशमात्रात्मकक्षेत्रविशेषस्य पर्यायान्–क्रमभाविस्वरूपविशेषान् जानाति केवलज्ञानेन पश्यति केवलदर्शनेन, पर्यायानित्युक्ते द्वयमपि ग्राह्यं, नहि पर्याया द्रव्यवियुता भवेयुर्द्रव्यं वा पर्यायवियुतं, तेनाधेयमाधारमाक्षिपतीति, अन्यथा आधेयत्वस्यैवानुपपत्तेः, यथाऽऽकाशस्य, न हि आकाशं क्वाप्यवतिष्ठते तस्याधारमात्ररूपस्यैव सिद्धान्ते भणनात्, अथवा सामान्यत उक्तं पर्यायाणां ज्ञानं व्यक्त्या निरूपयन्नाह–तद्यथा–'आगतिं' यतः स्थानादागच्छन्ति विवक्षितं स्थानं जीवाः 'गतिं' यत्र मृत्वोत्पद्यन्ते 'स्थितिं' कायस्थितिभवस्थितिरूपां 'च्यवनं' देवलोकादेवानां मनुष्यतिर्यक्ष्ववतरणं 'उपपातं' देवनारकजन्मस्थानं भुक्तं–अशनादि कृतं–चौर्यादि प्रतिसेवितं–मैथुनादि आविःकर्म्म–प्रकटकार्यं रहःकर्म–प्रच्छन्नकृतं, 'तं तं कालं'ति प्राकृतत्वात् सप्तम्यर्थे द्वितीया तस्मिन् २ काले, वीप्सायां द्विर्वचनं, मनोवचःकायान् योगान्–करणत्रयव्यापारान् एवमादीन्, जीवानामपि सर्वभावान्, जीवधर्मानित्यर्थः, अजीवानामपि सर्वभावान्–रूपादिधर्मान् मोक्षमार्गस्य–रत्नत्रयरूपस्य विशुद्धतरकान्–प्रकर्षकोटिप्राप्तान् कर्मक्षयहेतून् भावान्–ज्ञानाचारादीन् जानन् पश्यन् विचरतीति गम्यं, कथं च जानन् पश्यन् विचरतीत्याह––एषः–अनन्तरं वक्ष्यमाणो धर्मः खलु अवधारणे मोक्षमार्गः, सिद्धिसाधकत्वेन मम–देशकस्यान्येषां च–श्रोतॄणां हितं–कल्याणं पथ्यभोजनवदित्यर्थः सुखं–अनुकूलवेद्यं पिपासोः शीतलजलपानवत् निःश्रेयसं–मोक्षस्तत्करः–उक्तानां हितादीनां कारक इति, सर्वदुःखविमोक्षण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१]

दीप अनुक्रम [४४]

[मोक्षण् क्षेपे मोक्षयति मोचयतीति] इति व्यक्तं, परमसुखं–आत्यन्तिकसुखं समाप्नयतीति व्युत्पत्तिवशात् परमसुख-समानजः 'समापेः समाणः' (श्रीसिद्ध० अ० पा०) इति प्राकृतसूत्रेण समानादेशे अनटि प्रत्यये रूपसिद्धिः, निःश्रेयसेत्यत्र यकारलोपः प्राकृतत्वात्, भविष्यतीति, अथ उत्पन्नकेवलज्ञानो भगवान् यथा धर्मं प्रादुश्चकार तथा आह—'तते ण'-मित्यादि, ततः स भगवान् श्रमणानां निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां च पञ्च महाव्रतानि–सर्वप्राणातिपातविरमणादीनि सभा-वनाकानि–ईर्यासमित्यादिस्वभावनोपेतानि षट् च जीवनिकायान्–पृथिव्यादित्रसान्तान् इत्येवंरूपं धर्मं उपदिशन् विहरतीति सम्बन्धः, यच्च धर्मे प्रक्रान्तव्ये षड्जीवनिकायकथनमुपक्रान्तं तज्जीवपरिज्ञानमन्तरेण व्रतपालनासम्भव इति ज्ञापनार्थं, नन्वयं नियमः प्रथमव्रते सम्भवेत् मृषावादविरमणादीनां तु भाषाविभागादिज्ञानाधीनत्वात् न सम्भ-वेदिति, उच्यते, शेषव्रतानामपि प्राणातिपातविरमणव्रतस्य रक्षकत्वेन नियुक्तत्वात्, महावनस्य वृत्तिवृक्षवत्, तथाहि–मृषाभाषामभाषमाणो ह्यभ्याख्यानादिविरतो न कुलवध्वादीन् अदत्तमनाददानो धनस्वामिनं सचित्तजलफलादिकं च मैथुनविरतो नवलक्षपञ्चेन्द्रियादीन् परिग्रहविरतः शुक्तिकस्तूरीमृगादींश्च नातिपातयेदिति, अथैतदेव किञ्चिद्व्यक्त्या विवृणोति, तद्यथा–पृथिवीकायिकान् जीवान् उपदिशन् विहरतीति सम्बन्धः, लाघवार्थकत्वेन सूत्रप्रवृत्तेर्देशग्रहणात् पूर्णोऽप्यालापको वाच्यः, स चायं–'आउक्काइए तेउक्काइए वाउक्काइए वणस्सइकाइए तसकाइए'त्ति व्यक्तं, तथा पञ्च महाव्रतानि सभावनाकानि 'भावनागमेन' श्रीआचाराङ्गद्वितीयश्रुतस्कन्धगतभावनाख्याध्ययनगतपाठेन भणित-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

व्यानि, अत्र च सूत्रे यदुद्देशे प्रथमं 'पंच महव्वयाइं' इत्याद्युक्तं निर्देशे तु व्यत्ययेन 'तं०–पुढविकाइए'इत्यादि, तत्कथमिति नाशङ्कनीयं, यतः पश्चादुद्दिष्टानामपि षड्जीवनिकायानां प्रस्तुतोपाङ्गे स्वल्पवक्तव्यतया प्रथमं प्ररूपणाया युक्त्युपपन्नत्वात्, सूचीकटाहन्यायोऽत्रानुसरणीयो, 'विचित्रा सूत्राणां कृतिराचार्यस्य' इति न्यायेन वा स्वत एवेति ज्ञेयं, ननु गृहिधर्मसंविग्नपाक्षिकधर्मावपि भगवता देशनीयौ मोक्षाङ्गत्वात्, यदुक्तम्—'सावज्जजोगपरिवज्जणाउ सव्वुत्तमो जईधम्मो । बीओ सावगधम्मो तइओ संविग्गपक्खपहो ॥ १ ॥ [सावद्ययोगपरिवर्जनात् सर्वोत्तम एव यतिधर्मः । द्वितीयः श्रावकधर्मस्तृतीयः संविग्नपक्षपथः ॥ १ ॥] इति, तत्कथमत्र तौ नोक्तौ ?, उच्यते, सर्वसावद्यवर्जकत्वेन देशनायां यतिधर्मस्य प्रथमं देशनीयत्वादत्यासन्नमोक्षपथत्वात् श्रमणसङ्घस्य प्रथमं व्यवस्थापनीयत्वाच्च प्राधान्यख्यापनार्थं प्रथममुपन्यासः, ततो 'व्याख्यातो विशेषार्थप्रतिपत्ति'रितिन्यायादेतत्पुच्छभूतौ तावपि धर्मौ भगवता प्ररूपिताविति ज्ञेयं, भगवत्प्ररूपणामन्तरेणान्येषां तत्तद्ग्रन्थेषु तयोः प्ररूपणानुपपत्तेरित्यलं प्रसङ्गेनेति । अथावन्ध्यशक्तिकवचनगुणप्रतिबुद्धस्य प्रभुपरिकरभूतस्य संघस्य सङ्ख्यामाह—'उसभस्स ण'मित्यादि, सुगमं, नवरं 'जस्स जावइआ गणहरा तस्स तावइआ गणा' [जावइआ जस्स गणा तावइआ गणहरा तस्स । यस्य यावन्तो गणास्तावन्तो गणधरास्तस्य] इति वचनाद् गणाः सूत्रे साक्षादनिर्दिष्टा अपि तावन्त एव बोध्याः, क्वचिज्जीर्णप्रस्तुतसूत्रादर्शे 'चउरासीतिं गणा गणहरा होत्था' इत्यपि पाठो दृश्यते, तत्र तु चतुरशीतिपदस्योभयत्र योजनेन व्याख्या सुबोधैवेति, गणश्चै-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

कवाचनाचारयतिसमुदायस्तं धरन्तीति गणधराः, वाचनादिभिर्ज्ञानादिसम्पदां सम्पादकत्वेन गणाधारभूता इति भावः, 'होत्था' इति अभवन्, 'उसभस्स ण' मित्यादि, ऋषभसेनप्रमुखानि चतुरशीतिः श्रमणसहस्राणि एषा उत्कर्षः–उत्कृष्टभागस्तत्र भवा उत्कर्षिकी 'प्रत्यये ङीर्वा'(श्रीसिद्ध०अ० ९ पा० सू०) इत्यनेन ङीविकल्पे रूपसिद्धिः, ऋषभस्य श्रमणसम्पदभवत्, अत्र वाक्यान्तरत्वेन श्रमणशब्दस्य न पौनरुक्त्यं, एवं सर्वत्र योज्यं, 'उसहस्स ण'मित्यादि, प्रायः कण्ठ्यानि, नवरं चतुर्दशपूर्विसूत्रे 'अजिनानां' छद्मस्थानां 'सव्वक्खरसन्निवाईणं'ति सर्वेषामक्षराणां–अकारादीनां सन्निपाता–व्यादिसंयोगा अनन्तत्वादनन्ता अपि ज्ञेयतया विद्यन्ते येषां ते तथा, जिनतुल्यत्वे हेतुमाह—'जिणो विव अवितह'मित्यादि, जिन इवावितथं–यथार्थं व्यागृणतां–व्याकुर्वाणानां, केवलिश्रुतकेवलिनोः प्रज्ञापनायां तुल्यत्वात्, चत्वारि सहस्राणि अर्द्धाष्टमानि च शतानि एषा औत्कर्षिकी चतुर्दशपूर्विसम्पदभवत्, 'विउव्विअ'त्ति वैक्रियलब्धिमन्तः, शेषं स्पष्टं, विपुलमतयो–मनःपर्यवज्ञानविशेषवन्तः द्वादश विपुलमतिःसहस्राणि अधिकारात्तेषामेव षट् शतानि पञ्चाशच्चेत्येवं सर्वत्र योज्यं, वादिनो–वादिलब्धिमन्तः परप्रवादुकनिग्रहसमर्थाः, 'उसभस्स ण'मित्यादि, गतौ–देवगतिरूपायां कल्याणं येषां प्रायः सातोदयत्वात्तेषां, तथा स्थितौ–देवायूरूपायां कल्याणं येषां ते तथा, अप्रवीचारसुखस्वामि-

१ ये श्रमणसहस्रा आसन् ते श्रमणपर्षदुत्कृष्टाऽभवदिति स्वरूपा वाक्यान्तरता । २ परे ते (श्रुतकेवलिनो)ऽसंख्यभवनिर्णायकाः यदागमः–'संखाईएवि भवे०' (इति श्रीहीर० वृत्तौ) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३१]

दीप अनुक्रम [४४]

कत्वात्, आगमिष्यद्भद्रं येषां ते आगामिभवे सेत्स्यमानत्वात् ते तथा तेषा, 'अनुत्तरोपपातिकानां' पञ्चानुत्तरलवसप्तमदेवविशेषाणां द्वाविंशतिः सहस्राणि नव च शतानि, 'उसभस्स ण'मित्यादि, सुगमं, नवरं श्रमणार्यिकासङ्ख्याद्वयमीलने अन्तेवासिसङ्ख्या सम्पद्यते, अथ भगवतः श्रमणवर्णकसूत्रमाह—'अरहंता ण'मित्यादि, अर्हतः ऋषभस्य बहवोऽन्तेवासिनः—शिष्यास्ते च गृहिणोऽपि स्युरित्यनगाराः भगवन्तः पूज्या अपिः समुच्चये एकका—एके अन्ये केचिदपीत्यर्थः मासं यावत् पर्यायः—चारित्रपालनं येषां ते तथा, यथौपपातिके सर्वोऽनगारवर्णकस्तथाऽत्रापि वाच्यः, कियद्यावदित्याह—ऊर्ध्वं जानुनी येषां ते ऊर्ध्वजानवः शुद्धपृथिव्यासनवर्जनादौपग्रहिकनिषद्याया अभावाच्चोत्कटुकासना इत्यर्थः, अधःशिरसो—अधोमुखाः नोर्द्धं तिर्यग्वा विक्षिप्तदृष्टयः ध्यानरूपो यः कोष्ठः—कुसूलस्तमुपागताः—तत्र प्रविष्टाः, यथाहि—कोष्ठके धान्यं प्रक्षिप्तं न विप्रसृतं भवति एवं तेऽनगारा विषयेष्वविप्रसृतेन्द्रियाः स्युरिति, संयमेन—संवररूपेण तपसा—अनशनादिना, चः समुच्चयार्थो गम्यः, संयमतपोग्रहणं चानयोः प्रधानमोक्षाङ्गत्वख्यापनार्थं, प्रधानत्वं च संयमस्य नवकर्मानुपादानहेतुत्वेन तपसश्च पुराणकर्मनिर्जरणहेतुत्वेन, भवति चाभिनवकर्मानुपादानात् पुराणकर्मक्षपणाच्च सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्ष इति, आत्मानं भावयन्तो—वासयन्तो विहरन्ति, तिष्ठन्तीत्यर्थः,

१ गतिशब्देन मनुष्यगतेर्जीवापगमः स्थितिशब्देन देवभवो जीवितं चाप्याचख्युः श्रीहीरसूरयः । २ विजयादिविमानोत्पत्तिमतां (श्रीहीर०वृत्तौ) नहि सर्वेऽपि अनुत्तरोपपातिका उक्तलक्षणा एव, यद्यपि कवचित्तमा अनुत्तरोपपातिका एव तथापि क्वचे तथाविधा इति नियमः, अप्रमत्तसंयतस्यैव तत्रोत्पत्तौ नियमनात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र यावत्पदसंग्राह्यः 'अप्पेगइया दोमासपरिआया' इत्यादिकः औपपातिकग्रन्थो विस्तरभयान्न लिखित इत्यवसेयं, अथ ऋषभस्वामिनः केवलोत्पत्त्यनन्तरं भव्यानां कियता कालेन सिद्धिगमनं प्रवृत्तं कियन्तं कालं यावदनुवृत्तं चेत्याह–'अरहओ ण'मित्यादि, ऋषभस्य द्विविधा अन्तं भवस्य कुर्वन्तीति अन्तकरा–मुक्तिगामिनस्तेषां भूमिः–कालः कालस्य चाधारत्वेन कारणत्वाद् भूमित्वेन व्यपदेशः, तद्यथा–युगानि–पञ्चवर्षमानानि कालविशेषाः लोकप्रसिद्धानि वा कृतयुगादीनि तानि च क्रमवर्त्तीनीति तत्साधर्म्याच्चे क्रमवर्त्तिनो गुरुशिष्यप्रशिष्यादिरूपाः पुरुषास्तेऽपि साध्यधर्मसाधनलक्षणयाऽभेदप्रतिपत्त्या युगानि–पट्टपद्धतिपुरुषा इत्यर्थः तैः प्रमिता अन्तकरभूमिर्युगान्तकरभूमिरिति, पर्यायः–तीर्थकृतः केवलित्वकालस्तदपेक्षयाऽन्तकरभूमिः, कोऽर्थः ?–ऋषभस्य इयति केवलपर्यायकालेऽतिक्रान्ते मुक्तिगमनं प्रवृत्तमिति, तत्र युगान्तकरभूमिर्यावदसङ्ख्यातानि पुरुषाः–पट्टाधिरूढास्ते युगानि–पूर्वोक्तयुक्त्या पुरुषाः पुरुषयुगानि, समर्थपदत्वात् समासः, नैरन्तर्ये द्वितीया, ऋषभात् प्रभृति श्रीअजितदेवतीर्थं यावत् श्रीऋषभपट्टपरम्परारूढा असङ्ख्याताः सिद्धाः न तावन्तं कालं मुक्तिगमनविरह इत्यर्थः, यस्तु आदित्ययशःप्रभृतीनां ऋषभदेववंशजानां नृपाणां चतुर्दशलक्षप्रमितानां क्रमेण प्रथमतः सिद्धिगमनं तत एकस्य सर्वार्थसिद्धप्रस्तटगमनमित्याद्यनेकरीत्या अजितजिनपितरं मर्यादीकृत्य

१ ये त्वन्तरान्तरा मुक्तियायिनस्ते युगशब्दे नापेक्षिताः छद्मस्थगुरुशिष्यादिव्यवहितत्वेन (श्रीहीर० वृत्तौ)। २ लक्षणा हि द्विविधा साध्यवसाना सारोपा च अत्र त्वाद्या ज्ञाप्या ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दीसूत्रवृत्तिचूर्णिसिद्धदंडिकादिषु सर्वार्थसिद्धप्रस्तटगमनव्यवहितः सिद्धिगम उक्तः स कोशलापट्टपतीन् प्रतीत्यावसातव्योऽयं पुण्डरीकगणधरादीन् प्रतीत्येति विशेषः, तथा पर्यायान्तकरभूमिरेषा अन्तर्मुहूर्त्तं यावत्केवलज्ञानस्य पर्यायो यस्य स तथा, एवंविधे ऋषभे सति अन्तं–भवान्तमकार्षीद्–अकरोत् नार्वाक् कश्चिदपीति, यतो भगवदम्बा मरुदेवा प्रथमः सिद्धः, सा तु भगवत्केवलोत्पत्त्यनन्तरमन्तमुहूर्त्तेनैव सिद्धेति । अथ जन्मकल्याणकादिनक्षत्राण्याह—

उसभे णं अरहा पंचउत्तरासाढे अभीइछट्ठे होत्था, तंजहा–उत्तरासाढाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते उत्तरासाढाहिं जाए उत्तरासाढाहिं रायाभिसेअं पत्ते उत्तरासाढाहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए उत्तरासाढाहिं अणंते जाव समुप्पण्णे, अभीइणा परिणिव्वुए (सूत्रं ३२)

'उसभे ण'मित्यादि, ऋषभोऽर्हन् पञ्चसु–च्यवनजन्मराज्याभिषेकदीक्षाज्ञानलक्षणेषु वस्तुषु उत्तराषाढानक्षत्रं चन्द्रेण भुज्यमानं यस्य स तथा अभिजिन्नक्षत्रं षष्ठे–निर्वाणलक्षणे वस्तुनि यस्य यद्वा अभिजिन्नक्षत्रे षष्ठं निर्वाणलक्षणं वस्तु यस्य स तथा, उक्तमेवार्थं भावयति, तद्यथा–उत्तराषाढाभिर्युते चन्द्रे इति शेषः, सूत्रे बहुवचनं प्राकृतशैल्या, एवमग्रेऽपि, च्युतः–सर्वार्थसिद्धनाम्नो महाविमानान्निर्गत इत्यर्थः, च्युत्वा गर्भं व्युत्क्रान्तः मरुदेवायाः कुक्षाववतीर्णवानित्यर्थः १, जातो–गर्भवासान्निष्क्रान्तः २, राज्याभिषेकं प्राप्तः ३, मुण्डो भूत्वा–अगारं मुक्त्वा अनगारितां–साधुतां प्रव्रजितः प्राप्त इत्यर्थः, पञ्चमी चात्र क्वयब्लोपजन्या ४, अनन्तं यावत् केवलज्ञानं समुत्पन्नं ५, यावत्पद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभप्रभोः जन्मकल्यानकादि नक्षत्राणि

प्रत सूत्रांक [३२]

दीप अनुक्रम [४५]

संग्रहः पूर्ववत्, अभीचिना युते चन्द्रे परिनिर्वृतः—सिद्धिं गतः ६, ननु अस्मादेव विभागसूत्रबलादादिदेवस्य षट्कल्याणकी समापद्यमाना दुर्निवारेति चेत्, न, तदेव हि कल्याणकं यत्रासनप्रकम्पप्रयुक्तावधयः सकलसुरासुरेन्द्रा जीतमिति विधित्सवो युगपत् ससम्भ्रमा उपतिष्ठन्ते, न ह्ययं षष्ठकल्याणकत्वेन भवता निरूप्यमानो राज्याभिषेकस्तादृशस्तेन वीरस्य गर्भापहार इव नायं कल्याणकं, अनन्तरोक्तलक्षणायोगात्, न च तर्हि निरर्थकमस्य कल्याणकाधिकारे पठनमिति वाच्यं, प्रथमतीर्थेशराज्याभिषेकस्य जीतमिति शक्रेण क्रियमाणस्य देवकार्यत्वलक्षणसाधर्म्येण समाननक्षत्रजाततया च प्रसङ्गेन तत्पठनस्यापि सार्थकत्वात्, तेन समाननक्षत्रजातत्वे सत्यपि कल्याणकत्वाभावेनानियतवक्तव्यतया क्वचिद्राज्याभिषेकस्याकथनेऽपि न दोषः, अत एव दशाश्रुतस्कन्धाष्टमाध्ययने पर्युषणाकल्पे श्रीभद्रबाहुस्वामिपादाः 'तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोसलिए चउउत्तरासाढे अभीइपंचमे होत्था," इति पञ्चकल्याणकनक्षत्रप्रतिपादकमेव सूत्रं बबन्धिरे, न तु राज्याभिषेकनक्षत्राभिधायकमपीति, न च प्रस्तुतव्याख्यानस्यानागमिकत्वं भावनीयं, आचाराङ्गभावनाध्ययने श्रीवीरकल्याणकसूत्रस्यैवमेव व्याख्यातत्वात् । अथ भगवतः शरीरसम्पदं शरीरप्रमाणं च वर्णयन्नाह—

उसभे णं अरहा कोसलिए वज्जरिसहनारायसंघयणे समचउरंससंठाणसंठिए पंच धणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं होत्था । उसभे णं अरहा वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारज्जवासमज्झे वसित्ता तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ ऋषभप्रभोः शरीरसंपद, शरीरप्रमाणं एवं निर्वाणगमनं वर्ण्यते

अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, उसभे णं अरहा एगं वाससहस्सं छउमत्थपरियायं पाउणित्ता एगं पुव्वसयसहस्सं वाससहस्सूणं केवलिपरियायं पाउणित्ता एगं पुव्वसयसहस्सं बहुपडिपुण्णं सामण्णपरियायं पाउणित्ता चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउअं पालइत्ता जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहबहुले, तस्स णं माहबहुलस्स तेरसीपक्खेणं दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अट्ठावयसेलसिहरंसि चोद्दसमेणं भत्तेणं अपाणएणं संपलिअंकणिसण्णे पुव्वण्हकालसमयंसि अभीइणा णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं सुसमदूसमाए समाए एगूणणवउइईहिं पक्खेहिं सेसेहिं कालगए वीइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। जं समयं च णं उसभे अरहा कोसलिए कालगए वीइक्कंते समुज्जाए छिण्णजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं समयं च णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणे चलिए, तए णं से सक्के देविंदे देवराया आसणं चलिअं पासइ पासित्ता ओहिं पउंजइ २ त्ता भयवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ २ त्ता एवं वयासी–परिणिव्वुए खलु जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे उसहे अरहा कोसलिए, तं जीअमेअं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं तित्थगराणं परिनिव्वाणमहिमं करेत्तए, तं गच्छामि णं अहंपि भगवतो तित्थगरस्स परिनिव्वाणमहिमं करेमित्तिकट्टु वंदइ णमंसइ २ त्ता चउरासीईए सामाणिअसाहस्सीहिं तायत्तीसाए तायत्तीसएहिं चउहिं लोगपालेहिं जाव चउहिं चइरासीईहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहि अ बहूहिं सोहम्मकप्पवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडे ताए उक्किट्ठाए जाव तिरिअमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जेणेव अट्ठावयपव्वए जेणेव भगवओ तित्थगरस्स सरीरए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता विमणे णिराणंदे अंसुपुण्णणयणे तित्थयरसरीरयं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे जाव पज्जुवासइ । तेणं कालेणं तेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समणं ईसाणे देविंदे देवराया उत्तरड्ढलोगाहिवई अट्ठावीसविमाणसयसहस्साहिवई सूलपाणी वसहवाहणे सुरिंदे अयरंबरवत्थधरे जाव विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, तए णं तस्स ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलइ, तए णं से ईसाणे जाव देवराया आसणं चलिअं पासइ २ त्ता ओहिं पउंजइ २ त्ता भगवं तित्थगरं ओहिणा आभोएइ २ त्ता जहा सक्के निअगपरिवारेणं भाणेअव्वो जाव पज्जुवासइ, एवं सव्वे देविंदा जाव अच्चुए णिअगपरिवारेणं आणेअव्वा, एवं जाव भवणवासीणं इंदा वाणमंतराणं सोलस जोइसिआणं दोण्णि निअगपरिवारा णेअव्वा । तए णं सक्के देविंदे देवराया बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिए देवे एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! णंदणवणाओ सरसाइं गोसीसवरचंदणकट्ठाइं साहरह २ त्ता तओ चिइगाओ रएह–एगं भगवओ तित्थगरस्स एगं गणधराणं एगं अवसेसाणं अणगाराणं । तए णं ते भवणवइजाववेमाणिआ देवा णंदणवणाओ सरसाइं गोसीसवरचंदणकट्ठाइं साहरंति २ त्ता तओ चिइगाओ रएंति, एगं भगवओ तित्थगरस्स एगं गणहराणं एगं अवसेसाणं अणगाराणं, तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! खीरोदगसमुद्दाओ खीरोदगं साहरह, तए णं ते आभिओगा देवा खीरोदगसमुद्दाओ खीरोदगं साहरंति, तए णं से सक्के देविंदे देवराया तित्थगरसरीरगं खीरोदगेणं ण्हाणेति २ त्ता सरसेणं गोसीसवरचंदणेणं अणुलिंपइ २ त्ता हंसलक्खणं पडसाडयं णिअंसेइ २ त्ता सव्वालंकारविभूसिअं करेंति, तए णं ते भवणवइ जाव वेमाणिआ गणहरसरीरगाइं अणगारसरीरगाइंपि खीरोदगेणं ण्हावंति २ त्ता सरसेणं गोसीसवरचंदणेणं अणुलिंपंति २ त्ता अहताइं दिव्वाइं देवदूसजुअलाइं णिअंसंति २ त्ता सव्वालंकारविभूसिआइं करेंति, तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे एवं वयासी–खिप्पामेव भो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवाणुप्पिआ ! ईहामिगउसभतुरयजाववणलयभत्तिचित्ताओ तओ सिबियाओ विउव्वह, एगं भगवओ तित्थगरस्स एगं गणहराणं एगं अवसेसाणं अणगाराणं, तए णं ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिआ तओ सिबिआओ विउव्वंति, एगं भगवओ तित्थगरस्स एगं गणहराणं एगं अवसेसाणं अणगाराणं, तए णं से सक्के देविंदे देवराया विमणे णिराणंदे अंसुपुण्णणयणे भगवओ तित्थगरस्स विणट्ठजम्मजरामरणस्स सरीरगं सीअं आरुहेति २ चिइगाए ठवेइ, तए णं ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिआ देवा गणहराणं अणगाराण य विणट्ठजम्मजरामरणाणं सरीरगाइं सीअं आरुहेंति २ त्ता चिइगाए ठवेंति, तए णं से सक्के देविंदे देवराया अग्गिकुमारे देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थगरचिइगाए जाव अणगारचिइगाए अगणिकायं विउव्वह २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह, तए णं ते अग्गिकुमारा देवा विमणा णिराणंदा अंसुपुण्णणयणा तित्थगरचिइगाए जाव अणगारचिइगाए अ अगणिकायं विउव्वंति, तए णं से सक्के देविंदे देवराया वाउकुमारे देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थगरचिइगाए जाव अणगारचिइगाए अ वाउक्कायं विउव्वह २ त्ता अगणिकायं उज्जालेह तित्थगरसरीरगं गणहरसरीरगाइं अणगारसरीरगाइं च झामेह, तए णं ते वाउकुमारा देवा विमणा णिराणंदा अंसुपुण्णणयणा तित्थगरचिइगाए जाव विउव्वंति अगणिकायं उज्जालेंति तित्थगरसरीरगं जाव अणगारसरीरगाणि अ झामेंति, तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थगरचिइगाए जाव अणगारचिइगाए अगुरुतुरुक्कघयमधुं च कुंभग्गसो अ भारग्गसो अ साहरह, तए णं ते भवणवइ जाव तित्थगर जाव भारग्गसो अ साहरंति, तए णं से सक्के देविंदे देवराया मेहकुमारे देवे सद्दावेइ ३ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! तित्थगरचिइगं जाव अणगारचिइगं च खीरोदगेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिद्धावेइ, तए णं ते मेहकुमारा देवा तित्थगरचिइगं जाव णिद्धावेंति, तए णं से सक्के देविंदे देवराया भगवओ तित्थगरस्स उवरिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ ईसाणे देविंदे देवराया उवरिल्लं वामं सकहं गेण्हइ, चमरे असुरिंदे असुरराया हिट्ठिलं दाहिणं सकहं गेण्हइ बली वइरोअणिंदे वइरोअणराया हिट्ठिलं वामं सकहं गेण्हइ, अवसेसा भवणवइ जाव वेमाणिआ देवा जहारिहं अवसेसाइं अंगमंगाइं, केई जिणभत्तीए केई जीअमेअंतिकट्टु केई धम्मोत्तिकट्टु गेण्हंति, तए णं से सक्के देविंदे देवराया बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे जहारिहं एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! सबरयणामए महइमहालए तओ चेइअथूभे करेह, एगं भगवओ तित्थगरस्स चिइगाए एगं गणहरचिइगाए एगं अवसेसाणं अणगाराणं चिइगाए, तए णं ते बहवे जाव करेंति, तए णं ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिआ देवा तित्थगरस्स परिणिव्वाणमहिमं करेंति २ त्ता जेणेव नंदीसरवरे दीवे तेणेव उवागच्छन्ति तए णं से सक्के देविंदे देवराया पुरच्छिमिल्ले अंजणगपव्वए अट्ठाहिअं महामहिमं करेति,तए णं सक्कस्स देविंदस्स० चत्तारि लोगपाला चउसु दहिमुहगपव्वएसु अट्ठाहियं महामहिमं करेंति, ईसाणे देविंदे देवराया उत्तरिल्ले अंजणगे अट्ठाहिअं तस्स लोगपाला चउसु दहिमुहगेसु अट्ठाहिअं चमरो अ दाहिणिल्ले अंजणगे तस्स लोगपाला दहिमुहगपव्वएसु बली पच्चत्थिमिल्ले अंजणगे तस्स लोगपाला दहिमुहगेसु, तए णं ते बहवे भवणवइवाणमंतर जाव अट्ठाहिआओ महामहिमाओ करेंति करित्ता तेणेव साइं २ विमाणाइं जेणेव साइं २ भवणाइं जेणेव साओ २ सभाओ सुहम्माओ जेणेव सगा २ माणवगा चेइअखंभा तेणेव उवागच्छंति २ त्ता वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिणसकहाओ पक्खिवंति २ अग्गेहिं वरेहिं मल्लेहि अ गंधेहि अ अर्चेति २ विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति (सूत्रं ३३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

'उसभे ण'मित्यादि कण्ठ्यं, अथ ऋषभस्य कौमारे राज्ये गृहित्वे च यावान् कालः प्रागुक्तस्तं संग्रहरूपतयाऽभिधातुमाह—'उसभे ण'मित्यादि, व्यक्तं । अथ छाद्मस्थ्यादिपर्यायाभिधानपुरस्सरं निर्वाणकल्याणकमाह—'उसभे ण'—मित्यादि, ऋषभोऽर्हन् एकं वर्षसहस्रं छद्मस्थपर्यायं प्राप्य पूरयित्वेत्यर्थः एकं पूर्वलक्षं वर्षसहस्रोनं केवलिपर्यायं प्राप्य एकं पूर्वलक्षं बहुप्रतिपूर्णं देशेनापि न न्यूनमितियावत् श्रामण्यपर्यायं प्राप्य चतुरशीतिं पूर्वलक्षाणि सर्वायुः पालयित्वा—उपभुज्य हेमन्तानां—शीतकालमासानां मध्ये यस्तृतीयो मासः पञ्चमः पक्षो माघबहुलो—माघमासकृष्णपक्षः तस्य माघबहुलस्य त्रयोदशीपक्षे—त्रयोदशीदिने विभक्तिव्यत्ययः प्राकृतत्वात् दशभिरनगारसहस्रैः सार्द्धं संपरिवृतः अष्टापदशैलशिखरे चतुर्दशेन भक्तेन—उपवासषट्केनापानकेन—पानीयाहाररहितेन संपर्यङ्कनिषण्णः—सम्यक् पर्यङ्केन—पद्मासनेन निषण्णः—उपविष्टः, न तूर्ध्वंदमादिरितिभावः, पूर्वाह्णकालसमये अभिजिन्नक्षत्रेण योगमुपागतेनार्थाच्चन्द्रेण सुषमदुष्षमायां एकोननवत्यां पक्षेषु शेषेषु, अत्रापि विभक्तिव्यत्ययः पूर्ववत् प्राकृतत्वात्, सप्तम्यर्थे तृतीया, कालं गतो—मरणधर्म्मं प्राप्तः व्यतिक्रान्तः संसारात् यावच्छब्दात् 'समुज्जाए छिन्नजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिब्बुडे' इति संग्रहः, तत्र सम्यग्—अपुनरावृत्त्या ऊर्ध्वं—लोकाग्रलक्षणं स्थानं यातः—प्राप्तो न पुनः सुगतादिवदवतारी, यतस्तद्वचः—"ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य, कर्त्तारः परमं पदम् । गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि, भवं तीर्थनिकारतः ॥ १ ॥" इति, छिन्नं जात्यादीनां बन्धनं—बन्धनहेतुभूतं कर्म्म येन स तथा सिद्धो—निष्ठितार्थः बुद्धो—ज्ञाततत्त्वः मुक्तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवोपग्राहिकर्मांशेभ्यः अन्तकृत्सर्वदुःखानां परिनिर्वृतः–समन्ताच्छीतीभूतः कर्मकृतसकलसन्तापविरहात् सर्वाणि शारीरादीनि दुःखानि प्रहीणानि यस्य स तथा। अथ भगवति निर्वृते यदेवकृत्यं तदाह—'जं समयं च ण'मित्यादि, यस्मिन् समये सप्तम्यर्थे द्वितीया एवं तच्छब्दवाक्येऽपि, अवधिना ज्ञानेनाभोगयति–उपयुनक्ति, शेषं सुगमं, उपयुज्य एवमवादीत्, किमित्याह—'परिणिव्वुए' इत्यादि, परिनिर्वृतः खल्विति वाक्यालङ्कारे जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे ऋषभोऽर्हन् कौशलिकस्तत्–तस्माद्धेतोः जीतं–कल्पः आचारः एतद्–वक्ष्यमाणं वर्त्तते अतीतप्रत्युत्पन्नानागतानां–अतीतवर्त्तमानानागतानां 'शक्राणां' आसनविशेषाधिष्ठातृणां देवानां मध्ये 'इन्द्राणां' परमैश्वर्ययुक्तानां देवानां देवेषु(वा) राज्ञां–कान्त्यादिगुणैरधिकं राजमानानां तीर्थकराणां परिनिर्वाणमहिमां कर्तुं तद्गच्छामि णमिति प्राग्वत् अहमपि भगवतस्तीर्थकरस्य परिनिर्वाणमहिमां करोमीतिकृत्वा भगवन्तं निर्वृतं वन्दते–स्तुतिं करोति नमस्यति प्रणमति, यच्च जीव-

---

१ एवमुक्तविशेषणकदम्बकेन शक्रस्य भगवति तीव्ररागवत्त्वं धर्मनीतिज्ञत्वं च सूचितं, ननु ज्ञानादिशून्यस्यापि तीर्थकृच्छरीरस्य यद्वंदनादिपर्युपासनपर्यंतं भणितं तच्छक्रस्य जीतमेव न पुनर्द्धर्मनीतिरितिचेत्, मैवं, स्थापनाजिनस्यापि वंदनादेर्धर्मनीतावनंतभावापत्तेः, इष्टापत्तिरेवेति चेत्, मैवं, स्थापनाजिनाराधनस्याच्छिन्नपरम्परागतत्वादागमसम्मतत्वात् युक्तिक्षमत्वाच्च, तत्रागमस्तावत् 'कुलगणसंघचेइअट्ठे निज्जरट्ठी वेंआवचं अणिस्सिअं दसविहं बहुविहं वा करेइ' इत्यादि बहुप्रतीत एव, युक्तिस्तु–प्रवचने यदाराध्यं तन्नामादिचतुर्द्धापि यथासंभवं विधिनाऽऽराध्यं, तत्र ज्ञानादिमत्त्वमेकस्यैव भावजिनस्य,शेषाणि नामादीनि तच्छून्यान्येव, तस्मादाराध्यत्वे ज्ञानादिमत्त्वं न नियामकं, किंतु ज्ञानादिप्रसूतिहेतुत्वमेव, तथा च सति तीर्थकृद्दर्शनात्तीर्थंकरपरिज्ञानं तथा जिनप्रतिमादर्शनादपि, एतच्च प्रतिमाप्रतिपक्ष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहितमपि तीर्थकरशरीरमिन्द्रवन्द्यं तदिन्द्रस्य सम्यग्दृष्टित्वेन नामस्थापनाद्रव्यभावार्हता वन्दनीयत्वेन श्रद्धानादिति तत्त्वं, वंदित्वा नमस्थित्वा च किं चक्रे इत्याह—'चउरासीई'इत्यादि, चतुरशीत्या सामानिकानां प्रभुत्वमन्तरेण वपुर्विभवद्युतिस्थित्यादिभिः शक्रतुल्यानां सहस्रैः त्रयस्त्रिंशता त्रायस्त्रिंशकैः–गुरुस्थानीयैर्देवैः चतुर्भिर्लोकपालैः–सोमयमवरुणकुबेरसंज्ञैः यावत्पदात् 'अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणीएहिं'ति, अत्र व्याख्या–अग्रमहिष्योऽष्टौ पद्मा १ शिवा २ शची ३ अञ्जू ४ अमला ५ अप्सरा ६ नवमिका ७ रोहिणी ९, एताभिः षोडशसहस्र २ देवीपरिवारयुताभिः तिसृभिः पर्षद्भिः–बाह्यमध्याभ्यन्तररूपाभिः सप्तभिरनीकैर्हय १ गज २ रथ ३ सुभट ४–वृषभ ५ गन्धर्व ६ नाट्य ७ रूपैः सप्तभिः अनीकाधिपतिभिः चतसृभिश्चतुरशीतिभिश्चतुर्दिशं प्रत्येकं चतुरशीतिसहस्राङ्गरक्षकसद्भावात् षट्त्रिंशत्सहस्राधिकलक्षत्रयप्रमितैरङ्गरक्षकदेवसहस्रैः अन्यैश्च बहुभिः सौधर्मकल्पवासिभिर्दे-

---

स्यापि सम्मतं, यतो जंबूद्वीपालेख्यकपट्टकं दृष्ट्वा जंबूद्वीपस्यैव संस्थानादेः परिज्ञानं न पुनर्वृक्षादेः, एवं जिनप्रतिमादावपि भाव्यं, अत एव समवसरणेऽर्हद्रूपत्रयमर्हत्परिज्ञानहेतव एव सुरैर्विधीयत इति जैनप्रवचने प्रतीतमेव, तथा च सिद्धं श्रीऋषभदेवशरीरकदर्शनमपि यावत्श्रीऋषभदेवव्यतिकरस्मृतिपरिज्ञानहेतुः, तद्विषयं च ज्ञानं महानिर्जराहेतुरित्यागमे प्रतीतं । किं च–तीर्थकृच्छरीरस्यार्चादिकं तीर्थकरविषयकपरमरागेणैव संभवति, अत एव भगवतां तीर्थकृतां दंष्ट्रा अपि प्रतिमामिव शक्रादयः पूजयन्तीत्यत्रैवाग्रे वक्ष्यते, ननु तथाविधं शरीरं नामादिषु नान्तर्भवतीति कथमाराध्यमिति चेत्, मैवं, नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरतद्व्यतिरिक्तद्रव्यतीर्थकरत्वेन द्रव्येऽन्तर्भावात्, अतः शक्रस्याप्याराध्यमिति शक्रेण पर्युपास्यमानमासीदिति । इति ही० वृत्तौ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैर्देवीभिश्च सार्द्धं संपरिवृतः तया–देवजनप्रसिद्धया उत्कृष्टया–प्रशस्तविहायोगतिषूत्कृष्टतमत्वात्, यावत्पदाद् 'तुरिआए चवलाए चंडाए जयणाए उद्धुआए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे २'त्ति, अत्र व्याख्या–त्वरितया मानसौत्सुक्यात् चपलया कायतः चण्डया क्रोधाविष्टयेव श्रमासंवेदनात् जवनया परमोत्कृष्टवेगवत्वात्, अत्र च समयप्रसिद्धाश्चण्डादिगतयो न ग्राह्याः, तासां प्रतिक्रमं संख्यातयोजनप्रमाणक्षेत्रातिक्रमणात्, तेनैतानि पदानि देवगतिविशेषणतया योज्यानि, देवास्तु तथाभवस्वभावादचिन्त्यसामर्थ्यतोऽत्यन्तशीघ्रा एव चलन्तीति, अन्यथा जिनजन्मादिषु महिमानिमित्तं तत्रैव दिवसे झटित्येवात्यन्तदूरे कल्पादिभ्यः सुराः कथमागच्छेयुरिति?, उद्धूतया उद्धूतस्य दिगन्तव्यापिनो रजस इव या गतिः सा तया, अत एव निरन्तरं शीघ्रत्वयोगाच्छीघ्रया दिव्यया–देवोचितया देवगत्या व्यतिव्रजन् २, सम्भ्रमे द्विर्वचनं, तिर्यगसङ्ख्येयानां द्वीपसमुद्राणां मध्यंमध्येन–मध्यभागेन यत्रैवाष्टापदः पर्वतः यत्रैव भगवतस्तीर्थकरस्य शरीरकं तत्रैवोपागच्छति, अत्र सर्वत्रातीतनिर्देशे कर्त्तव्ये वर्त्तमाननिर्देशस्त्रिकालभाविष्वपि तीर्थकरेष्वेतच्चायप्रदर्शनार्थ इति,न हि निर्हेतुका ग्रन्थकाराणां प्रवृत्तिरिति,उपागत्य च तत्र यत्करोति तदाह–'उवागच्छित्ता'इत्यादि, उपागत्य विमनाः–शोकाकुलमनाः अश्रुपूर्णनयनस्तीर्थकरशरीरकं त्रिकृत्वः आदक्षिणप्रदक्षिणं करोतीति प्राग्वत,नात्यासन्ने नातिदूरे शुश्रूषन्निव तस्मिन्नप्यवसरे भक्त्याविष्टतया भगवद्वचनश्रवणेच्छाया अनिवृत्तेः, यावत्पदात् 'णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ'त्ति परिग्रहः, अत्र व्याख्या––नमस्यन् पञ्चाङ्गप्रणामादिना अभि–भगवन्तं लक्षीकृत्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३३]

दीप अनुक्रम [४६]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥१६०॥

मुखं यस्य स तथा विनयेन–आन्तरबहुमानेन प्राञ्जलिकृत इति आगत् पर्युपास्ते–सेवते इति, अथ द्वितीयेन्द्रवक्तव्य-तामाह—'तेणं कालेण'मित्यादि, सर्वं स्पष्टं, नवरं अरजांसि–निर्मलानि यान्यम्बरवस्त्राणि–स्वच्छतया आकाशकल्पानि वसनानि तानि धरतीति यावत्करणात् 'आलइअमालमउडे णवहेमचारुचित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगल्ले महिड्ढीए महज्जुईए महाबले महायसे महाणुभावे महासुक्खे भासुरबोंदीपलंबवणमालधरे ईसाणकप्पे ईसाणवडेंसए विमाणे सुहम्माए सभाए ईसाणंसि सिंहासणंसि से णं अट्ठावीसाए विमाणावाससयसाहस्सीणं असीईए सामाणिअसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणीआणं सत्तण्हं अणीआहिवईणं चउण्हं असीईणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च ईसाणकप्पवासीणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयणट्टगीअवाइअतंतीतलतालतुडिअघणमुइंगपडुपडहवाइअरवेणं' इति संग्रहः, सर्वं स्पष्टं, नवरं आलगितौ–यथास्थानं स्थापितौ मालामुकुटौ येन स तथा, नवाभ्यामिव हेममयाभ्यां चारुभ्यां चित्रकृद्भ्यां चञ्चलाभ्यां–इतस्ततश्चलद्भ्यां कुण्डलाभ्यां विलिख्यमानौ गल्लौ यस्य स तथेति, 'तए ण'मित्यादि, यथा शक्रः सौधर्मेन्द्रो निजकपरिवारेण सह तथा भणितव्य ईशानेन्द्रः, यावत्पर्युपास्ते इत्यन्तं वाच्य इत्यर्थः, 'एवं सवे' इत्यादि, एवं–शक्रन्यायेन सर्वे देवेन्द्रा वैमानिकाः अत एव यावदच्युत इत्युत्तरसूत्रं संबदति, निजकपरिवारेण–आत्मीयसत्कसामानिकादिपरिवारेण सहवेदितव्या–अगच्छरीरान्तिकं

२वक्षस्कारे संहननादि निर्वाणगमनंच सू. ३३

॥१६०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रापणीया ग्रन्थवाचकेनेत्यर्थः, ग्रन्थापेक्षया वेदं सूत्रं योजनीयं, एवं वैमानिकप्रकारेण यावद् भवनवासिनां–दक्षिणोत्तरभवनपतीनामिन्द्रा विंशतिरित्यर्थः, अत्र यावच्छब्दो न गर्भगतसंग्रहसूचकः सङ्ग्राह्यपदाभावात्, किन्तु सजातीयभवनपतिसूचकः, वानमन्तराणां–व्यन्तराणां षोडशेन्द्राः–कालादयः, ननु स्थानाङ्गादिषु द्वात्रिंशद्व्यन्तरेन्द्रा अभिहिताः, इह तु कथं षोडश?, उच्यते, मूलभेदभूतास्तु षोडश महार्द्धिकाः कालादय उपात्ताः तदवान्तरभेदभूतास्तु षोडश अणपन्नीद्रादयोऽल्पर्द्धिकत्वात् नेह विवक्षिताः, अस्ति हि एषाऽपि सूत्रकृन्प्रवृत्तिर्विचित्रा यदन्यत्र प्रसिद्धा अपि भावाः कुतश्चिदाशयविशेषात् स्वसूत्रे सूत्रकारो न निबध्नाति, यथा प्रतिवासुदेवा अन्यत्रावश्यकनिर्युक्त्यादिषु उत्तमपुरुषत्वेन प्रसिद्धा अपि चतुर्थाङ्गे चतुष्पञ्चाशत्तमसमवाये नोक्ताः "भरहेरवएसु णं वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणीए चउवण्णं चउवण्णं (महापुरिसा) उप्पज्जिंसु वा ३ तं०–चउवीसं तित्थयरा बारस चक्कवट्टी नव बलदेवा नव वासुदेवा" इति, परमुपलक्षणात् तेऽपि ग्राह्याः। ज्योतिष्काणां द्वौ चन्द्रौ सूर्यौ, जात्याश्रयणात्, व्यक्त्या तु तेऽसङ्ख्याताः, निजकपरिवाराः–सहवर्त्तिस्वपरिकराः नेतव्याः । ततः शक्रः किं करोतीत्याह–'तए ण'मित्यादि, ततः शक्रो देवेन्द्रो देवराजः तान् बहून् भवनपत्यादीन् देवान् एवमवादीत्–क्षिप्रमेव–निर्विलम्बमेव भो देवानां प्रिया !–देवान्–स्वामिनोऽनुकूलाचरणेन अनुप्रीणन्ति इति देवानुप्रियाः नन्दनवनात् सरसानि स्निग्धानि नतु रूक्षाणि गोशीर्षं गोशीर्षचन्द्रा वरचन्दनं तस्य काष्ठानि संहरत–आपयत संहृत्य च मिलितचितीः कारयत–एकां भगवतस्तीर्थ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करस्य एकां गणधराणां एकामवशेषाणामनगाराणामिति । 'तए ण'मित्यादि, स्पष्टं, अत्रायं आवश्यकवृत्त्याद्युक्तश्चितारचनदिग्विभागः–नन्दनवनानीतचन्दनदारुभिर्भगवतः प्राच्यां वृत्तां चितां गणधराणामपाच्यां त्र्यस्रां शेषसाधूनां प्रतीच्यां चतुरस्रां सुराश्चक्रुरिति, नन्वावश्यकादाविक्ष्वाकूणां द्वितीया चितोक्ता इह तु गणधराणां कथमिति ?, उच्यते, अत्र प्रधानतया गणधराणामुपादानेऽप्युपलक्षणाद् गणधरप्रभृतीनामिक्ष्वाकूणां द्वितीया चिता ज्ञेयेति न काऽप्याशङ्का, ततश्चितारचनानन्तरं शक्रः किं करोतीत्याह—'तए ण'मित्यादि, स्पष्टं, ततः क्षीरोदकसंहरणानन्तरं स शक्रः किं करोतीति दर्शयति–'तए ण'मित्यादि, ततः शक्रस्तीर्थकरशरीरकं क्षीरोदकेन स्नपयति स्नपयित्वा गोशीर्षवरचन्दनेनानुलिम्पति अनुलिप्य हंसलक्षणो हंसविशदत्वात् शाटको–वस्त्रमात्रं स च पृथुलः पट्ट इत्यभिधीयते तं हंसनामकं पटशाटकं निवासयति, परिधापयतीत्यर्थः, परिधाप्य च सर्वालङ्कारविभूषितं करोति, 'तए ण'मित्यादि, ततस्ते भवनपत्यादयो देवा गणधराणामनगाराणां च शरीराणि तथैव चक्रुः, अहतानि–अखण्डितानि दिव्यानिवर्याणि देवदूष्ययुगलानि निवासयन्ति, शेषं व्यक्तं, 'तए ण'मित्यादि, ततः शक्रो भवनपत्यादीनेवमवादीत्–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया ! ईहामृगादिभक्तिचित्रास्तिस्रः शिबिका विकुर्वत, विकुर्व इति सौत्रो धातुस्तस्माद्रूपसिद्धिः, शेषं स्पष्टं, 'तए ण'मित्यादि, ततः शक्रो भगवच्छरीरं शिबिकायामारोहयति महर्द्धया च चितिकास्थाने नीत्वा चितिकायां स्थापयति शेषं स्पष्टं, 'तए ण'मित्यादि, ततः स शक्रोऽग्निकुमारान् देवान् शब्दयति—आमन्त्रयति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दापयित्वा एवमवादीत्–भो अग्निकुमारा ! देवास्तीर्थंकरचितिकायां गणधरचितिकायामनगारचितिकायां चाग्निकायं विकुर्वत विकुर्वित्वा एतामाज्ञप्तिकां–आज्ञां प्रत्यर्पयत, शेषं व्यक्तं, 'तए णं अग्गिकुमारा देवा' इत्यादि, व्याख्यातप्रायमेव, 'तए णं से सक्के' इत्यादि, एतत्सूत्रद्वयमपि व्यक्तं, उज्ज्वालयत–दीपयत तीर्थंकरशरीरकं यावदनगारशरीरकाणि च ध्मापयत–स्ववर्णत्याजनेन वर्णान्तरमापादयत, अग्निसंस्कृतानि कुरुतेति, 'तए ण' मित्यादि, ततः स शक्रो भवनपत्यादिदेवानेवमवादीत्–भो देवानुप्रियास्तीर्थंकरचितिकायां यावदनगारचितिकायां च अगुरुं तुरुक्कं–सिल्हकं घृतं मधु च एतानि द्रव्याणि कुम्भाग्रशः–अनेककुम्भपरिमाणानि भाराग्रशः–अनेकविंशतितुलापरिमाणानि अथवा पुरुषोत्क्षेपणीयो भारः सोऽग्रं–परिमाणं येषां ते भाराग्राः ते बहुशो भाराग्रशः संहरतेति प्राग्वत्, अथ मांसादिषु ध्मापितेषु अस्थिष्ववशिष्टेषु शक्रः किं चक्रे इत्याह—'तए ण'मित्यादि, स्पष्टं, नवरं क्षीरोदकेन–क्षीरसमुद्रानीतजलेन निर्वापयत, विध्यापयतेत्यर्थः, अथास्थिवक्तव्यतामाह—'तए ण'मित्यादि, ततश्चितिकानिर्वापणादनु भगवतस्तीर्थंकरस्योपरितनं दक्षिणं संक्थि दाढामित्यर्थः शक्रो गृह्णाति ऊर्ध्वलोकवासित्वात् दक्षिणलोकार्द्धाधिपत्वाच्च, ईशा-

१ अयं भावः–जिनदंष्ट्रादिकं जिन इवाराध्यं, जिनसंबंधिवस्तुत्वात्, जिनप्रतिमावत् जिनस्थापिततीर्थवद्वा, तथा च येषां जिनभक्तिस्तेषामेव तत्संबंधिदंष्ट्रादौ भक्तिः, अन्यथा तथा भक्तेरसंभवात्, न ह्यमित्रस्याकृतिं दृष्ट्वा नामादि च श्रुत्वा मोदमानस्तद्भक्तिं वा कुर्वाणः कोऽपि केनापि दृष्टः श्रुतो वा,तेन दंष्ट्रादिभक्तिर्जिनभक्तिरेव, ननु जिनप्रतिमायास्तावज्जिनाकृतिमत्त्वेन जिनस्मृतिहेतुत्वात् तीर्थस्य च तीर्थंकरस्थापितत्वात् सर्वगुणानामाश्रयत्वात् तीर्थकृतोऽपि नमस्करणी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेन्द्रः उपरितनं वामं, ऊर्ध्वलोकवासित्वात् उत्तरलोकार्द्धाधिपतित्वाच्च, चमरश्चासुरेन्द्रोऽसुरराजोऽधस्तनं दक्षिणं सक्थि गृह्णाति, अधोलोकवासित्वात् दक्षिणश्रेणिपतित्वाच्च, बलिः दाक्षिणात्यासुरेभ्यः सकाशाद् वि इति विशिष्टं रोचनं–दीपनं दीप्तिरितियावत् येषामस्ति ते वैरोचनाः, स्वार्थेऽण्, ओदीच्यासुराः, दाक्षिणात्येभ्यः औत्तराहाणामधिकपुण्यप्रकृतिकत्वात्, तेषामिन्द्रः, एवं वैरोचनराजोऽपि अधस्तनं वामं सक्थि गृह्णाति, अधोलोकवासित्वात् उत्तरश्रेण्यधिपत्वाच्च, अवशेषा भवनपतयो यावत्करणात् व्यन्तरा ज्योतिष्काश्च ग्राह्याः, वैमानिका देवा यथार्हं-यथामहर्द्धिकं अवशेषाणि अङ्गानि–भुजाद्यस्थीनि उपाङ्गानि–अङ्गसमीपवर्त्तीनि अङ्गुल्याद्यस्थीनि गृह्णन्तीति योगः, अयं भावः–सनत्कुमाराद्यष्टाविंशतिरिन्द्रा अवशिष्टानष्टाविंशतिदन्तान् अन्येऽवशिष्टा इन्द्रा अङ्गोपाङ्गास्थीनीति, ननु देवानां तद्ग्रहणे क आशय इत्याह––केचिज्जिनभक्त्या जिने निर्वृते जिनसक्थि जिनवदाराध्यमिति, केचिज्जीत-

---

यत्नाच्च युक्तमेवाराधनं, वस्तुगत्या जिनाराधनत्वादेव, परं दंष्ट्राद्याराधनं कथं जिनभक्तिरिति चेत्, उच्यते, यथैकमेव हरिवंशकुलं इदं श्रीनेमिनाथकुलमित्यादिरूपेण श्रीनेमिनाथोपलक्षितं महाफलं भवति, न तथेदं श्रीकृष्णवासुदेवकुलमित्यादिना कृष्णवासुदेवोपलक्षितमपि, एवं दंष्ट्रापि श्रीऋषभदेवसंबंधिनीत्यादितीर्थंकरनामोपलक्षिता श्रवणपथमवतीर्णापि महाफलहेतुः किमंग पुनः तत्पूजनादिकमपि ?, किं च–प्रतिमास्तावत्तीर्थंकरस्याकृतिमात्रमेव न पुनः शरीरं तदवयवो वा, दंष्ट्रा तु साक्षाच्छरीरावयव एव, इयं दंष्ट्रा श्रीऋषभदेवसंबंधिनीत्येवंरूपेण स्वयं चिंत्यमाना श्रूयमाणा वा महानिर्जराहेतुरितिकृत्वा स्वयमेव सम्यग् विचारयतो नास्माकमप्योऽपि, तेन केषांचित् सम्यग्दृशां तद्गतस्याखिलस्य पूजनं च जिनभक्त्यैवेति सिद्धम् ॥ इति श्री० वृत्तौ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३३]

दीप अनुक्रम [४६]

मिति पुरातनैरिदमाचीर्णमित्यस्माभिरपीदे कर्त्तव्यमिति, केचिद्धर्मः–पुण्यमितिकृत्वा, अत्र ग्रन्थान्तरप्रसिद्धोऽयमपि हेतुः–'पूअंति अ पइदिअहं अह कोइ पराभवं जइ करेज्जा। तो पक्खालिअ ताओ सलिलेण करेंति नियरक्खं ॥ १ ॥' [पूजयन्ति च प्रतिदिवसं अथ कोऽपि पराभवं यदि कुर्यात्। तर्हि प्रक्षाल्य तानि सलिलेन कुर्वन्ति निजरक्षाम् ॥१॥] सौधर्मेन्द्रेशानेन्द्रयोः परस्परं सवैरयोस्तच्छटादानेन वैरोपशमोऽपि इत्यादिको ज्ञेयः, तथा 'व्याख्यातो विशेषार्थ-प्रतिपत्तिः' अतो विद्याधरनराश्चिताभस्म शेषामिव गृह्णन्ति, सर्वोपद्रवविद्रावणमितिकृत्वा, आस्तां त्रिजगदाराध्यानां तीर्थकृतां, योगभृच्चक्रवर्त्तिनामपि देवाः सक्थिग्रहणं कुर्वन्तीति ॥ अथ तत्र विद्याधरादिभिरहंपूर्विकया भस्मनि गृहीते अखातायामेव गर्त्तायां जातायां मा भूत्तत्र पामरजनकृताशातनाप्रसङ्गः सातत्येन तीर्थप्रवृत्तिश्च भूयादिति स्तूपवि-धिमाह—'तए ण'मित्यादि, सर्वं स्पष्टं, नवरं सर्वात्मना रत्नमयान्–अन्तर्बहिरपि रत्नखचितान् महातिमहतः— अतिविस्तीर्णान्, आलप्रत्ययः स्वार्थिकः प्राकृतप्रभवः, त्रीन् चैत्यस्तूपान् चैत्याः–चित्ताह्लादकाः स्तूपाश्चैत्यस्तूपा-स्तान् कुरुत चितात्रयक्षितिष्वित्यर्थः, आज्ञाकरणसूत्रे ततस्ते बहवो भवनपत्यादयो देवास्तथैव कुर्वन्ति, ननु यथाऽऽज्ञाकरणसूत्रे यावत्करणेन सूत्रकृतो लाघवसूचा तथा पूर्वसूत्रेऽपि कथं न लाघवचिन्ता कृता ?, उच्यते, विचि-त्रत्वात् सूत्रप्रवृत्तेरिति, 'तए ण'मित्यादि, ततस्ते बहवो भवनपत्यादयो देवास्तेषु स्तूपेषु यथोचितं तीर्थकरस्य परि-निर्वाणमहिमां कुर्वन्ति, कृत्वा च यत्रैवाकाशखण्डे नन्दीश्वरवरो द्वीपस्तत्रैवोपागच्छन्ति, ततः स शक्रः पौरस्त्ये अञ्ज-

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३]

दीप अनुक्रम [४६]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥१६३॥

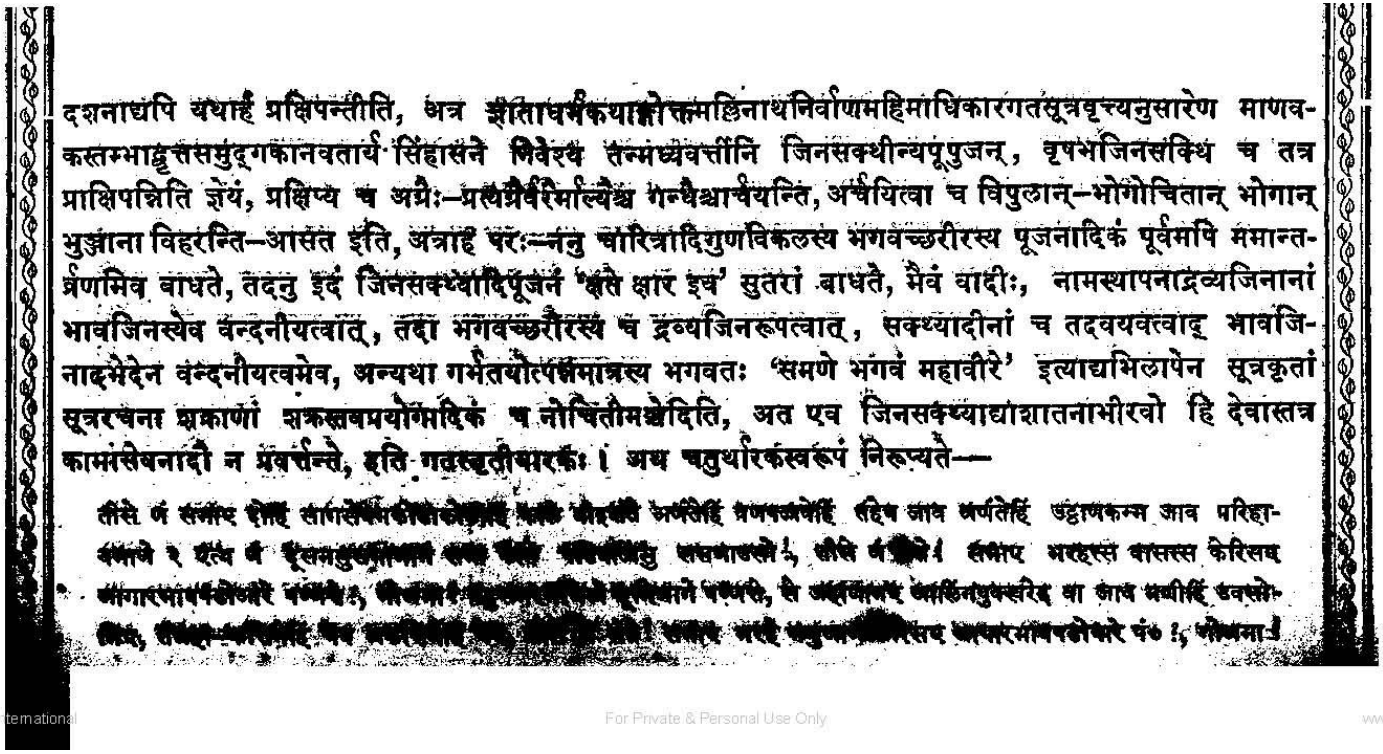
नकपर्वते अष्टाहिकां–अष्टानामह्नां–दिवसानां समाहारोऽष्टाहं तदस्ति यस्यां महिमायां सा अष्टाहिका तां महामहिमां करोति, ततः शक्रस्य चत्वारो लोकपालाः सोमयमवरुणवैश्रमणनामानस्तत्पार्श्ववर्त्तिषु चतुर्षु दधिमुखपर्वतेषु अष्टाहिकां महामहिमां कुर्वन्ति, मन्वत्र नन्दीश्वरवरादिशब्दानां कोऽन्वर्थ इति ?, उच्यते, नन्द्या–पर्वतपुष्करिणीप्रमुखपदार्थसार्थसमुद्भूतात्यद्भुतसमृद्ध्या ईश्वरः–स्फातिमान्नन्दीश्वरः स एव मनुष्यद्वीपापेक्षया बहुतरसिद्धायतनादिसद्भावेन वरो नन्दीश्वरवरः,तथा अञ्जनरत्नमयत्वादञ्जनास्ततः स्वार्थे कप्रत्ययः यद्वा कृष्णवर्णत्वेनाञ्जनतुल्या इत्यञ्जनकाः,उपमाने कप्रत्ययः,तथा दधिवदुज्ज्वलवर्णं मुखं–शिखरं रजतमयत्वाद् येषां ते तथा,बहुव्रीहौ कप्रत्ययः,अथेशानेन्द्रस्य नन्दीश्वरावतारवक्तव्यतामाह—'ईसाण'त्ति ईशानो देवेन्द्र औत्तराहे अञ्जनके अष्टाहिकां तस्य लोकपाला औत्तराहाञ्जनकपरिवारकेषु चतुर्षु दधिमुखकेषु अष्टाहिकां, चमरश्च दाक्षिणात्येऽञ्जनके तस्य लोकपाला दधिमुखकपर्वतेषु बलीन्द्रः पाश्चात्येऽञ्जनके तस्य लोकपाला दधिमुखकेषु, ततस्ते बहवो भवनपत्यादयो देवा अष्टाहिकाः महामहिमा–महोत्सवभूताः कुर्वन्तीति, बहुवचनं चात्राष्टाहिकानां सौधर्मेन्द्रादिभिः पृथक् २ क्रियमाणत्वात्, 'करित्ता'इत्यादि अथाष्टाहिका महामहिमाः कृत्वा यत्रैव लोकदेशे स्वानि २–स्वसम्बन्धीनि २ विमानानि यत्रैव स्वानि २ भवनानि–निवासप्रासादाः यत्रैव स्वाः २ सभाः–सुधर्माः यत्रैव स्वकाः २–स्वसम्बन्धिनो २ माणवकनामानश्चैत्यस्तम्भाश्चैत्यशब्दार्थः प्राग्वत् तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य च वज्रमयेषु गोलकेषु समुद्गकेषु–वृत्तभाजनविशेषेषु जिनसक्थीनि प्रक्षिपन्तीति, सक्थिपदमुपलक्षणपरं तेन

२वक्षस्कारे संहननादि निर्वाणगमनंच सू. ३३

॥१६३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः



दशनाद्यपि यथार्हं प्रक्षिपन्तीति, अत्र शीताधर्मकथाङ्गोक्तमल्लिनाथनिर्वाणमहिमाधिकारगतसूत्रवृत्त्यनुसारेण माणवकस्तम्भाद्वृत्तसमुद्गकानवतार्य सिंहासने निवेश्य तन्मध्यवर्त्तीनि जिनसक्थीन्यपूपुजन्, वृषभजिनसक्थि च तत्र प्राक्षिपन्निति ज्ञेयं, प्रक्षिप्य च अग्रैः–प्रधानैर्वरमाल्यैश्च गन्धैश्चार्चयन्ति, अर्चयित्वा च विपुलान्–भोगोचितान् भोगान् भुञ्जाना विहरन्ति–आसत इति, अत्राह परः–ननु चारित्रादिगुणविकलस्य भगवच्छरीरस्य पूजनादिकं पूर्वमपि ममान्तर्व्रणमिव बाधते, तदनु इदं जिनसक्थ्यादिपूजनं 'क्षते क्षार इव' सुतरां बाधते, मैवं वादीः, नामस्थापनाद्रव्यजिनानां भावजिनस्येव वन्दनीयत्वात्, तदा भगवच्छरीरस्य च द्रव्यजिनरूपत्वात्, सक्थ्यादीनां च तदवयवत्वाद् भावजिनादभेदेन वन्दनीयत्वमेव, अन्यथा गर्भतयोत्पन्नमात्रस्य भगवतः 'समणे भगवं महावीरे' इत्याद्यभिलापेन सूत्रकृतां सूत्ररचना शक्राणां शक्रस्तवप्रयोगादिकं च नोचितमापद्येति, अत एव जिनसक्थ्याद्याशातनाभीरवो हि देवास्तत्र कामसेवनादौ न प्रवर्त्तन्ते, इति गतस्तृतीयारकः। अथ चतुर्थारकस्वरूपं निरूप्यते—

तीसे णं समाए दोहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव अणंतेहिं उट्ठाणकम्म जाव परिहायमाणे २ एत्थ णं दूसमसुसमाणामं समा काले पडिवज्जिउकामे यावि होत्था, तीसे णं भंते! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोयारे पन्नत्ते?, गोयमा! तीसे णं समाए भरहे वासे बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पन्नत्ते, से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव तणेहिं उवसोभिए, तंजहा–[illegible] मणीहिं उवसोभिए, तंजहा–[illegible] तणसद्दकरे यावि होत्था, तीसे णं भंते समाए भरहे वासे केरिसए आगारभावपडोयारे पन्नत्ते?, गोयमा!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ चतुर्थ-पञ्च-षष्ठं आरकस्य स्वरुपम् कथ्यते

तेसिं मणुआणं छविहे संघयणे छविहे संठाणे बहूइं धणूइं उद्धं उच्चत्तेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडीआउअं पालेंति २ त्ता अप्पेगइआ णिरयगामी जाव देवगामी अप्पेगइया सिज्झंति बुज्झंति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेंति, तीसे णं समाए तओ वंसा समुप्पज्जित्था, तंजहा—अरहंतवंसे चक्कवट्टिवंसे दसारवंसे, तीसे णं समाए तेवीसं तित्थयरा इक्कारस चक्कवट्टी णव बलदेवा णव वासुदेवा समुप्पज्जित्था । (सूत्रं ३४) तीसे णं समाए एक्काए सागरोवमकोडाकोडीए बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिआए काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं तहेव जाव परिहाणीए परिहायमाणे २ एत्थ णं दूसमाणामं समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो !, तीसे णं भंते! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोआरे भविस्सइ ?, गोअमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे भविस्सइ से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा मुइंगपुक्खरेइ वा जाव णाणामणिपंचवण्णेहिं कत्तिमेहिं चेव अकत्तिमेहिं चेव, तीसे णं भंते! समाए भरहस्स वासस्स मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?, गो० ! तेसिं मणुआणं छविहे संघयणे छविहे संठाणे बहुइओ रयणीओ उद्धं उच्चत्तेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं साइरेगं वाससयं आउअं पालेंति २ त्ता अप्पेगइआ णिरयगामी जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेंति, तीसे णं समाए पच्छिमे तिभागे गणधम्मे पासंडधम्मे रायधम्मे जायतेए धम्मचरणे अ वोच्छिज्जिस्सइ । (सूत्रं३५) तीसे णं समाए एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले विइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं गंध०रस०फासपज्जवेहिं जाव परिहायमाणे २ एत्थ णं दूसमदूसमाणामं समाकाले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो !, तीसे णं भंते ! समाए उत्तमकट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोआरे भविस्सइ ?, गोअमा ! काले भविस्सई हाहाभूए भंभाभूए कोलाहलभूए समाणुभावेण य खरफरुसधूलिमइला दुव्विसहा वाउला भयंकरा य वाया संवट्टगा य वाइंति, इह अभिक्खणं २ धूमाहिंति अ दिसा समंता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजस्सला रेणुकलुसतमपडलणिरालोआ समयलुक्खयाए णं अहिअं चंदा सीअं मोच्छिहिंति अहिअं सूरिआ तविस्संति, अदुत्तरं च णं गोअमा ! अभिक्खणं अरसमेहा विरसमेहा खारमेहा खत्तमेहा अग्गिमेहा विज्जुमेहा विसमेहा अजवणिज्जोदगा वाहिरोग-वेदणोदीरणपरिणामसलिला अमणुण्णपाणिअगा चंडानिलपहततिक्खधाराणिवातपउरं वासं वासिहिंति, जेणं भरहे वासे गामा-गरणगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासमगयं जणवयं चउप्पयगवेलए खहयरे पक्खिसंघे गामारण्णप्पयारणिरए तसे अ पाणे बहुप्प-यारे रुक्खगुच्छगुम्मलयवल्लिपवालंकुरमादीए तणवणस्सइकाइए ओसहीओ अ विद्धंसेहिंति पव्वयगिरिडोंगरुत्थलभट्टिमादीए अ वेअड्ढगिरिवज्जे विरावेहिंति, सलिलविलविसमगत्तणिण्णुण्णयाणि अ गंगासिंधुवज्जाइं समीकरेहिंति, तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स भूमीए केरिसए आगारभावपडोआरे भविस्सइ ?, गोयमा ! भूमी भविस्सइ इंगालभूआ मुम्मुरभूआ छारिअभूआ तत्तक-वेल्लुअभूआ तत्तसमजोइभूआ धूलिबहुला रेणुबहुला पंकबहुला पणयबहुला चलणिबहुला बहूणं धरणिगोअराणं सत्ताणं दुन्निक्कमा यावि भविस्सई । तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोआरे भविस्सइ ?, गोयमा ! मणुआ भविस्संति दुरूवा दुवण्णा दुगंधा दुरसा दुफासा अणिट्ठा अकंता अप्पिआ असुभा अमणुन्ना अमणामा हीणस्सरा दीणस्सरा अणिट्ठस्सरा अकंत-स्सरा अपिअस्सरा अमणामस्सरा अमणुण्णस्सरा अणादेज्जवयणपच्चायाता णिल्लज्जा कूडकवडकलहबंधवेरनिरया मज्जायातिक्कमप्पहाणा अकज्जणिच्चुज्जुया गुरुणिओगविणयरहिआ य विकलरूवा परूढणहकेसमंसुरोमा काला खरफरुससमावण्णा फुट्टसिरा कविलपलि-अकेसा बहुण्हारुणिसंपिणद्धदुद्दंसणिज्जरूवा संकुडिअवलीतरंगपरिवेढिअंगमंगा जरापरिणयव्व थेरगणरा पविरलपरिसडिअदंतसेढी उब्भ-डघडमुहा विसमणयणवंकणासा वंकवली विगयभेसणमुहा दद्दुविकिटिभसिब्भफुडिअफरुसच्छवी चित्तलंगमंगा कच्छूखसरामिभूआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खरतिक्खणक्खकंडूइअविकयवणू दोगतिविसमसंचियबंधणा उक्कडुअट्ठिअविभत्तदुब्बलकुसंघयणकुप्पमाणकुसंठिआ कुरूवा कुट्ठाणासणकुसेज्जकुभोइणो असुईणो अणेगवाहिपीलिअंगमंगा खलंतविब्भलगई णिरुच्छाहा सत्तपरिवज्जिता विगयचेट्ठा नट्ठतेओ अभिक्खणं सीउण्हखरफरुसवायविज्झडिअमलिणपंसुरओगुंडिअंगमंगा बहुकोहमाणमायालोभा बहुमोहा असुमदुक्खभागी ओसण्णं धम्मसण्णसम्मत्तपरिभट्ठा उक्कोसेणं रयणिप्पमाणमेत्ता सोलसवरिसइत्थिआ पंसुरओगुंडिअंगमंगा बहुपुत्तणत्तुपरियालपणयबहुला गंगासिंधूओ महाणईओ वेअड्ढं च पव्वयं नीसाए बावत्तरिं णिगोअबीअं बीअमेत्ता बिलवासिणो मणुआ भविस्संति, ते णं भंते ! मणुआ किमाहारिस्संति ?, गोअमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं गंगासिंधूओ महाणईओ रहपहमित्तवित्थराओ अक्खसोअप्पमाणमेत्तं जलं वोज्झिहिंति, सेविअ णं जले बहुमच्छकच्छभाइण्णे, णो चेव णं आउबहुले भविस्सइ, तए णं ते मणुआ सूरुग्गमणमुहुत्तंसि अ सूरत्थमणमुहुत्तंसि अ बिलेहिंतो णिद्धाइस्संति बिले० त्ता मच्छकच्छभे थलाइं गाहेहिंति मच्छकच्छभे थलाइं गाहेत्ता सीआतवतत्तेहिं मच्छकच्छभेहिं इक्कवीसं वाससहस्साइं वित्तिं कप्पेमाणा विहरिस्संति। ते णं भंते ! मणुआ णिस्सीला णिव्वया णिग्गुणा णिम्मेरा णिप्पच्चक्खाणपोसहोववासा ओसण्णं मंसाहारा मच्छाहारा खुद्दाहारा कुणिमाहारा कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिंति कहिं उववज्जिहिंति ?, गो० ! ओसण्णं णरगतिरिक्खजोणिएसुं उववज्जिहिंति। तीसे णं भंते ! समाए सीहा वग्घा विगा दीविआ अच्छा तरस्सा परस्सरा सरभसियालबिरालसुणगा कोलसुणगा ससगा चित्तगा चिल्लगा ओसण्णं मंसाहारा मच्छाहारा खोहाहारा कुणिमाहारा कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिंति कहिं उववज्जिहिंति ?, गो० ! ओसण्णं णरगतिरिक्खजोणिएसुं० उववज्जिहिंति, ते णं भंते ! ढंका कंका पीलगा मग्गुगा सिही ओसण्णं मंसाहारा जाव कहिं गच्छिहिंति कहिं उववज्जिहिंति ?, गोअमा ! ओसण्णं णरगतिरिक्खजोणिएसुं जाव उववज्जिहिंति (सूत्रं ३६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'तीसे ण' मित्यादि, तस्यां अनन्तरवर्णितायां समायां द्वाभ्यां सागरकोटाकोटीभ्यां–द्वे सागरोपमकोटाकोटी इत्येवं प्रकारेण काले व्यतिक्रान्ते अनन्तैर्वर्णपर्यवैस्तथैव द्वितीयारकप्रतिपत्तिक्रमवदूज्ञेयं यावदनन्तैरुत्थानबलवीर्यपुरुषकारपराक्रमैरनन्तगुणपरिहाण्या हीयमानो हीयमानोऽत्रान्तरे दुष्षमसुषमा नाम्ना समा–कालः प्रत्यपद्यत हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, अथ पूर्वारकवद्भरतस्वरूपं प्रष्टुमाह—'तीसे ण'मित्यादि, अथ तत्र मनुष्यस्वरूपप्रश्नमाह—'तीसे ण'मित्यादि, इदं च सूत्रद्वयमपि प्रायः पूर्वसूत्रसदृशगमकत्वात् सुगमं, नवरं जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमायुस्तत्कालीनमनुष्या उत्कृष्टं पूर्वकोटिमायुः पालयन्ति, पालयित्वा च पञ्चस्वपि गतिष्वतिथीभवन्ति, अथ पूर्वसमासौ विशेषमाह—'तीसे ण' मित्यादि, तस्यां समायां त्रयो वंशा इव वंशाः–प्रवाहाः आवलिका इत्येकार्थाः न तु सन्तानरूपाः परम्पराः, परस्परं पितृपुत्रपौत्रप्रपौत्रादिव्यवहाराभावात्, समुदपद्यन्त, तद्यथा–अर्हद्वंशः चक्रवर्तिवंशः दशार्हाणां–बलदेववासुदेवानां वंशः, यदत्र दशारशब्देन द्वयोः कथनं तदुत्तरसूत्रबलदेव, अन्यथा दशार्हशब्देन वासुदेवा एव प्रतिपाद्या भवन्ति, 'अहयं च दसाराण'मिति वचनात्, यत्तु प्रतिवासुदेववंशो नोक्तस्तत्र प्रायोऽङ्गानुयायीन्युपाङ्गानीति स्थानाङ्गे वंशत्रयस्यैव प्ररूपणात्, येन हेतुना तत्रैवं निर्देशस्तत्रायं वृद्धाम्नायः–प्रतिवासुदेवानां वासुदेववध्यत्वेन पुरुषोत्तमत्वाविवक्षणात्, एनमेवार्थं व्यनक्ति–तस्यां समायां त्रयोविंशतिस्तीर्थकराः एकादश चक्रवर्त्तिनः ऋषभभरतयोस्तृतीयारके भवनात् नव बलदेवा नव वासुदेवाः ज्येष्ठबन्धुत्वात् प्रथमं बलदेवग्रहणं उपलक्षणात् प्रतिवासुदेववंशोऽपि ग्राह्यः, समुद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्यन्त, गतश्चतुर्थोऽरकः, अथ पञ्चमः—'तीसे ण'मित्यादि, तस्या समायां एकया सागरोपमकोटाकोट्या द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रैरूनितया—ऊनीभूतया, अनयैव प्रत्येकमेकविंशतिसहस्रवर्षप्रमाणयोः पञ्चमषष्ठारकयोः पूरणात्, काले व्यतिक्रान्तेऽनन्तैर्वर्णादिपर्यवैस्तथैव यावत् परिहाण्या परिहीयमाणा २, अत्र समये दुष्षमानाम्ना समा—कालः प्रतिपत्स्यते, वक्तुरपेक्षया भविष्यत्कालप्रयोगः, अथात्र भरतस्य स्वरूपं पृच्छन्नाह—'तीसे णं भंते ! समाए भरह'इत्यादि, सर्वं प्राग्व्याख्यातार्थं, नवरं भविष्यतीति प्रयोगः पृच्छकापेक्षया, अत्र भूमेर्बहुसमरमणीयत्वादिकं चतुर्थारकतो हीयमानं २ नितरां हीनं ज्ञातव्यं, ननु 'खाणुबहुले कण्टकबहुले विसमबहुले' इत्यादिनाऽधस्तनसूत्रेण लोकप्रसिद्धेन च विरुध्यते, मैवं अविचारितचतुरं चिन्तयेः, यतोऽत्र बहुलशब्देन स्थाण्वादिबाहुल्यं चिन्तितं, न च षष्ठारक इवैकान्तिकत्वं, तेन च क्वचिद् गङ्गातटादौ आरामादौ वैताढ्यगिरिनिकुञ्जादौ वा बहुसमरमणीयत्वादिकमुपलभ्यत एवेति न विरोधः, अथ तत्र मनुजस्वरूपं प्रष्टुकाम आह—'तीसे ण'मित्यादि, पूर्वं व्याख्यातार्थमेतत्, नवरं बह्वो रत्नयो—हस्ताः सप्तहस्तोच्छ्रयत्वात् तेषां, यद्यपि नामकोशे बद्धमुष्टिको हस्तो रत्निरुक्तस्तथापि समयपरिभाषया पूर्ण इति, ते मनुजा जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं उत्कर्षेण सातिरेकं त्रिंशदधिकं वर्षशतमायुः पालयन्ति, अप्येकका नैरयिकगतिगामिनः यावत् सर्वदुःखानामन्तं कुर्वन्ति, अत्र चान्तक्रिया चतुर्थारकजातपुरुषजातमपेक्ष्य तस्यैव पञ्चमसमायां सिद्ध्यमानत्वाज्जम्बूस्वामिन इव, न च संहरणं प्रतीत्येदं भावनीयम्, तथा च सति प्रथमषष्ठारकादावपि एतत्सूत्रपाठ उपलभ्येत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवेति, आह—अत्र पालयन्ति अन्तं कुर्वन्ति इत्यादौ भविष्यत्कालप्रयोगे कथं वर्त्तमाननिर्देशः?, उच्यते, सर्वास्वप्यवसर्प्पिणीषु पञ्चमसमासु इदमेव स्वरूपमिति नित्यप्रवृत्तवर्त्तमानकाले वर्त्तमानप्रयोगः, यथा द्वे सागरोपमे शक्रो राज्यं कुरुते इत्यादौ, तर्हि दुःषमासमा॰ कालः प्रतिपत्स्यते इत्यादिप्रयोगः कथमिति चेत्, उच्यते, प्रज्ञापकपुरुषापेक्षयैतत्प्रयोगस्यापि साधुत्वात्, पुनरपि तस्यां किं किं वृत्तमित्याह—'तीसे ण'मित्यादि, तस्या दुष्षमानाम्न्याः समायाः पश्चिमे त्रिभागे वर्षसहस्रसप्तकप्रमाणेऽतिक्रामति सति न तु अवशिष्टे तथा सति एकविंशतिसहस्रवर्षप्रमाणश्रीवीरतीर्थस्याव्युच्छित्तिकालस्यापूर्त्तेः गणः—समुदायो निजज्ञातिरितियावत् तस्य धर्मः—स्वस्वप्रवर्त्तितो व्यवहारो विवाहादिकः पाखण्डाः—शाक्यादयस्तेषां धर्मः प्रतीत एव राजधर्मो—निग्रहानुग्रहादिः जाततेजाः—अग्निः, स हि नातिस्निग्धे सुषमसुषमादौ नातिरूक्षे दुष्षमदुष्षमादौ चोत्पद्यत इति, चकारादग्निहेतुको व्यवहारो रन्धनादिरपि, चरणधर्मः—चारित्रधर्म्मः, चशब्दाद् गच्छव्यवहारश्च, अत्र धर्मपदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, व्युच्छेत्स्यति—विच्छेदं प्राप्स्यसि, सम्यक्त्वधर्मस्तु केषाञ्चित्सम्भवत्यपि, बिलवासिनां हि अतिक्लिष्टत्वेन चारित्राभावः, अत एवाह प्रज्ञप्त्यां—'ओसण्णं धम्मसन्नपब्भट्ठा' इति, ओसन्नमिति प्रायोग्रहणात् क्वचित्सम्यक्त्वं प्राप्यतेऽपीति भावः, गतः पञ्चम आरः ॥ अथ षष्ठारक उपक्रम्यते—'तीसे ण'मित्यादि, तस्यां समायां एकविंशत्या वर्षसहस्रैः प्रमिते काले व्यतिक्रान्ते अनन्तैर्वर्णपर्यवैरेवं गन्धस्पर्शपर्यवैर्यावत् परिहीयमाणः २, दुष्षमादुष्षमा नाम्ना समा कालः प्रतिपत्स्यते हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, अथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र भरतस्वरूपप्रश्नावाह–'तीसे ण'मित्यादि, तस्यां समायामुत्तमकाष्ठांप्राप्तायां उत्तमावस्थागतायामित्यर्थः परमकष्टप्राप्तायां वा, भरतस्य कीदृशः–कः आकारभावस्य–आकृतिलक्षणपर्यायस्य प्रत्यवतारः–अवतरणं आकारभावप्रत्यवतारः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह––गौतमेत्यामन्त्र्य वक्ष्यमाणविशिष्टः कालो भविष्यति, कीदृश इत्याह–'हाहाभूताः' हाहा इत्येतस्य शब्दस्य दुःखार्त्तलोकेन करणं हाहोच्यते तद्भूतः–प्राप्तो यः कालः स हाहाभूतः, भाम्भा इत्यस्य दुःखार्त्तगवादिभिः करणं भम्भोच्यते तद्भूतो यः स भम्भाभूतः, द्वावप्यनुकरणशब्दाविमौ, भम्भा वा भेरी सा चान्तः शून्या ततो भम्भेव यः कालो जनक्षयात्तच्छून्यः स भम्भाभूत इत्युच्यते, कोलाहल इहार्त्तशकुनसमूहध्वनिः तं भूतः–प्राप्तः, कोलाहलभूतः समानुभावेन–कालविशेषसामर्थ्येन च, चकारोऽत्र वाच्यान्तरदर्शनार्थः, णमित्यलङ्कारे, खरपरुषाः–अत्यन्तकठोरा धूल्या च मलिना ये वातास्ते तथा दुर्विषहाः–दुस्सहाः व्याकुला असमञ्जसा इत्यर्थः भयङ्कराः, चः विशेषणसमुच्चयसूचकः, वास्यन्तीत्यनेन सम्बन्धः,संवर्त्तकाश्च–तृणकाष्ठादीनामपहारका वातविशेषाश्च तेऽपि वास्यन्तीति, इहास्मिन् काले अभीक्ष्णं–पुनः पुनर्धूमायिष्यन्ते च–धूममुद्गमिष्यन्ति दिशः, किम्भूतास्ता इत्याह––समन्तात्–सर्वतो रजस्वला–रजोयुक्ताः, अत एव रेणुना–रजसा कलुषा–मलिनास्तथा तमःपटलेन–अन्धकारवृन्देन निरालोका–निरस्तप्रकाशा निरस्तदृष्टिप्रसरा वा, ततः पदद्वयकर्मधारयः, समयरूक्षतया च कालरूक्षतया चेत्यर्थः, अधिकं अहितं वा अपथ्यं चन्द्राः शीतं हिमं मोक्ष्यन्ति–स्रक्ष्यन्ति तथैव सूर्यास्तप्स्यन्ति, तापं मोक्ष्यन्तीत्यर्थः, कालरौक्ष्येण शरीर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रौक्ष्यं तस्माद्याधिकशीतोष्णपरीषह इति, अथ पुनस्तत्स्वरूपं भगवान् स्वयमेवाह–'अदुत्तर'मित्यादि, अथापरं च हे गौतम! अभीक्ष्णं–पुनः पुनः अरसा–मनोज्ञरसवर्जितजला ये मेघास्ते तथा विरसा–विरुद्धरसा ये मेघास्ते तथा, एतदेवाभिव्यज्यते–क्षारमेघाः–सर्जादिक्षारसमानजलोपेतमेघाः खात्रमेघाः–करीषसमानरसजलोपेतमेघाः'खट्टमेहे'ति क्वचिद् दृश्यते तत्राम्लजला मेघाः अग्निमेघा अग्निवद्दाहकारिजला इत्यर्थः विद्युत्प्रधाना एव जलवर्जिता इत्यर्थः विद्युन्निपातवन्तो वा विद्युन्निपातकार्यकारिजलनिपातवन्तो वा मेघाः विषमेघाः–जनमरणहेतुजलाः अत्र असणिमेहा इत्यपि पदं क्वचिद् दृश्यते तत्रायमर्थः–कर्कादिनिपातवन्तः पर्वतादिदारणसमर्थजलत्वेन वा वज्रमेघाः अयापनीयं–न यापनाप्रयोजकमुदकं येषां ते तथा, असमाधानकारिजला इत्यर्थः, क्वचिद्–'अविवेणिजोदगा' इति तत्रापतद्व्यजला इत्यर्थः एतदेव व्यनक्ति–'व्याधितमपेदमोदीरणापरिणामसलिलाः' व्याधयः–स्थिराः कुष्ठादयो रोगाः–सद्योघातिनः शूलादयस्तदुत्थाया वेदनाया उदीरणा–उद्रेकस्तस्मै उदयप्रापणं सैव परिणामः–परिपाको यस्य सलिलस्य तत्तथा, तदेवंविधं सलिलं येषां ते तथा, अत एवामीषामतिशयेन चण्डानिलेन प्रहतानां–आच्छोटितानां तीक्ष्णानां–वेगवतीनां धाराणां निपातः स प्रचुरो यत्र वर्षे स तथा, [illegible] करिष्यन्तीत्यर्थः, ग्रन्थान्तरे तु एते क्षारमेघादयो वर्षशतोनैकविंशतिवर्षसहस्रप्रमाणदुष्षमाकालस्य [illegible], अथ तेन वर्षेणेत्यादि, अथ तेन वर्षेणाक्षारमेघादयः किं करिष्यन्तीत्याह—'जेणं भरहे'त्यादि, येन वर्षेण [illegible] करिष्यन्तीति सम्बन्धः, भरतवर्षे ग्रामाद्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्रमान्ताः प्राग्व्याख्यातास्तत्र गतं जनपदं–मनुष्यलोकं तथा चतुष्पदा–महिष्यादयो गोशब्देन गोजातीया एलका–उरभ्रास्तान् तथा खचरान्–वैताढ्यवासिनो विद्याधरान् तथा पक्षिसंघान् तथा ग्रामारण्ययोर्यः प्रचारस्तत्र निरतान्–आसक्तान् त्रसांश्च प्राणान्–द्वीन्द्रियादीन् बहुप्रकारान् तथा वृक्षान्–आम्रादीन् गुच्छान्–वृन्ताकीप्रभृतीन् गुल्मान्–नवमालिकादीन् लता–अशोकलताद्याः वल्लीः–वालुङ्क्यादिकाः प्रवालान्–पल्लवान् अङ्कुरान्–शाल्यादिबीजसूचीः इत्यादीन् तृणवनस्पतिकायिकान्–बादरवनस्पतिकायिकान्, सूक्ष्मवनस्पतिकायिकानां तैरुपघातासम्भवात्, तथा औषधीश्च–शाल्यादिकाः चोऽभ्युच्चये, 'पवए' इत्यादि यद्यपि पर्वतादयोऽन्यत्रैकार्थतया रूढास्तथाऽपीह विशेषो दृश्यः, तथाहि–पर्वतननाद्–उत्सवविस्तारणात् पर्वताः–क्रीडापर्वताः उज्जयन्तवैभारादयः गृणन्ति–शब्दायन्ते जनं निवासभूतत्वेनेति गिरयः गोपालगिरिचित्रकूटप्रभृतयः डुङ्गानि–शिलावृन्दानि चोरवृन्दानि वा सन्त्येषु इत्यस्त्यर्थे प्रत्ययः डुङ्गराः–शिलोच्चयमात्ररूपाः उन्नतानि–स्थलानि धूल्युच्छ्रयरूपाणि 'भट्टि'त्ति भ्राष्ट्राः पांस्वादिवर्जिता भूमयः तत एतेषां द्वन्द्वस्ते आदिर्येषां ते तथा तान्, आदिशब्दात् प्रासादशिखरादिपरिग्रहः, मकारोऽलाक्षणिकः, चशब्दो मेघानां क्रियान्तरद्योतकः, विद्रावयिष्यन्तीति क्रियायोगः, अत्रार्थेऽपवादसूत्रमाह–वैताढ्यगिरिवर्जान् पर्वतादीनित्यर्थः, शाश्वतत्वेन तस्याविध्वंसात्, उपलक्षणाद् ऋषभकूटं शाश्वतप्रायश्रीशत्रुञ्जयगिरिप्रभृतींश्च वर्जयित्वा, तथा सलिलबिलानि–भूनिर्झराः विषमगर्त्ताश्च–दुष्पूरश्वभ्राणि, क्वचिद्दुर्गपदमपि दृश्यते, तत्र दुर्गाणि च–खातवलयप्राकारादि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुर्गमाणि निम्नानि च तान्युन्नतानि च निम्नोन्नतानि–उच्चावचानीत्यर्थः, पश्चाद् द्वन्द्वः, तानि च कर्मभूतानि शाश्वतनदीत्वाद् गङ्गासिन्धुवर्जानि समीकरिष्यन्ति। अथ तत्र भरतभूमिस्वरूपप्रश्नमाह—'तीसे ण'मित्यादि, तस्यां भदन्त! समायां भरतस्य भूमेः कीदृशक आकारभावप्रत्यवतारः भविष्यति?, भगवानाह–गौतम! भूमी भविष्यति, अङ्गारभूता–ज्वालारहितवह्निपिण्डरूपा मुर्मुरभूता–विरलाग्निकणरूपा क्षारिकभूता–भस्मरूपा तप्तकवेल्लुकभूता–वह्निप्रतप्तकवेल्लुकरूपा 'तप्तसमज्योतिर्भूता' तप्तेन भावे क्तप्रत्ययविधानात् तापेन समा–तुल्या ज्योतिषा–वह्निना भूता–जाता या सा तथा, पदव्यत्यय एवं समासश्च प्राकृतत्वात्, धूलिबहुलेत्यादौ धूलिः–पांशुः रेणुः–वालुका पङ्कः–कर्दमः पनकः–प्रतलः कर्दमः चलनप्रमाणकर्दमश्चलनीत्युच्यते, अत एव बहूनां धरणिगोचराणां सत्त्वानां दुःखेन नितरां क्रमः–क्रमणं यस्यां सा दुर्निष्क्रमा, दुरतिक्रमणीयेत्यर्थः, चः समुच्चये, अपिशब्देन दुर्निषदादिपरिग्रहः, अत्र बहूनामित्यादितः प्रारभ्य भिन्नवाक्यत्वेनोत्तरसूत्रवर्त्तिना भविष्यतिपदेन न पौनरुक्त्यं। अथ तत्र मनुष्यस्वरूपं पृच्छति—'तीसे ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, निर्वचनसूत्रे गौतम! मनुजा भविष्यन्ति, कीदृशा इत्याह–दूरूपा–दुःस्वभावाः दुर्वर्णाः–कुत्सितवर्णाः, एवं दुर्गन्धाः दूरसाः–रोहिण्यादिवत् कुत्सितरसोपेताः दुःस्पर्शाः–कर्कशादिकुत्सितस्पर्शाः अनिष्टा–अनिच्छाविषयाः, अनिष्टमपि किञ्चित्कमनीयं स्यादित्यत आह–अकान्ताः–अकमनीयाः, अकान्तमपि किञ्चित्कारणवशात् प्रीतये स्यादतोऽप्रिया–अप्रीतिहेतवः, अप्रियत्वं च तेषां कुत इत्याह–अशुभा–अशोभनभावरूपत्वात्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशुभत्वं च विशेषत आह--न मनसा-अन्तःसंवेदनेन शुभतया ज्ञायन्ते इत्यमनोज्ञाः, अमनोज्ञतयाऽनुभूतमपि स्मृतिदशायां दशाविशेषेण किञ्चिन्मनोज्ञं स्यादत आह-'अमनोऽमाः' न मनसा अम्यन्ते-गम्यन्ते पुनः स्मृत्या इत्य-मनोमाः एकार्थिका वा एते शब्दा अनिष्टताप्रकर्षवाचका इति, मूर्त्या अनिष्टादिविशेषणोपेता अपि केचिद् दुम्बा इव सुस्वराः स्युरित्याह-हीनो-ग्लानस्येव स्वरो येषां ते तथा, दीनो दुःखितस्येव स्वरो येषां ते तथा, अनिष्टादिशब्दा उक्तार्था एवात्र स्वरेण योजनीयाः, 'अनादेयवचनप्रत्याजाताः' अनादेयं-अशुभगत्वाद् अग्राह्यं वचनं-वचः प्रत्याजातं च-जन्म येषां ते तथा, निर्लज्जाः व्यक्तं, कूटं-भ्रान्तिजनकद्रव्यं कपटं-परवञ्चनाय वेषान्तरकरणं कलहः-प्रतीतः वधो-हस्तादिभिस्ताडनं बन्धो-रज्जुभिः संयमनं वैरं-प्रतीतं तेषु निरताः, मर्यादातिक्रमे प्रधाना-मुख्याः, अकार्ये नित्योद्यताः, गुरूणां-मात्रादिकानां नियोगः-आज्ञा तत्र यो विनयः-ओमित्यादिरूपस्तेन रहिताः, चः पूर्ववत्, विकलं-असम्पूर्णं काणचतुरङ्गुलिकादिस्वभावत्वाद्रूपं येषां ते तथा, प्ररूढा-गर्तासूकराणामिवाजन्मसंस्काराभावात् वृद्धिं गता नखाः केशाः श्मश्रूणि रोमाणि च येषां ते तथा, कालाः-कृतान्तसदृशाः क्रूरप्रकृतित्वात् कृष्णा वा खरपरुषाः-स्पर्शतोऽ-तीव कठोराः श्यामवर्णा-नीलीकुण्डे निक्षिप्तोत्क्षिप्ता इव, ततः कर्मधारयः, क्वचिद् ध्यामवर्णा इत्यपि पदं दृश्यते, तत्रानुज्ज्वलवर्णा इत्यर्थः, स्फुटितशिरसः-स्फुटितानीव स्फुटितानि राजिमत्त्वात् शिरांसि-मस्तकानि येषां ते तथा, कपिलाः केचन पलिताश्च-शुक्लाः केचन केशा येषां ते तथा, बहुस्नायुभिः-प्रचुरस्नसाभिः संपिनद्धं-बद्धमत एव दुःस्थेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनीयं रूपं येषां ते तथा, सङ्कुटितं–सङ्कुचितं वल्यो–निर्मांसत्वविकारास्ता एव तदनुरूपाकारत्वात् तरङ्गा–वीचयस्तैः परिवेष्टितानि अङ्गानि–अवयवा यत्र तदेवंविधमङ्गं–शरीरं येषां ते तथा, के इवेत्याह–जरापरिणता इव, स्थविरनरा इवेत्यर्थः, स्थविराश्चान्यथापि व्यपदिश्यन्ते इति जरापरिणतग्रहणं, प्रविरला सान्तरालत्वेन परिशटिता च दन्तानां केषाञ्चित्पतितत्वेन दन्तश्रेणिर्येषां ते तथा, उद्भटं–विकरालं घटकमुखमिव मुखं तुच्छदशनच्छदत्वाद्येषां ते तथा, क्वचित्तु उब्भडघाडामुहा इति पाठः, तत्र उद्भटे–स्पष्टे घाडामुखे–कृकाटिकावदने येषां ते तथा, विषमे नयने येषां ते तथा, वक्रा नासा येषां ते तथा, ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः, वक्रं पाठान्तरेण व्यङ्गं सलाञ्छनं वलिभिर्विकृतं च–बीभत्सं भीषणं–भयजनकं मुखं येषां ते तथा, दद्रुकिटिभसिध्मानि–क्षुद्रकुष्ठविशेषास्तत्प्रधाना स्फुटिता परुषा च छविः–शरीरत्वग्येषां ते तथा, अत एव चित्रलाङ्गाः–कर्बुरावयवशरीराः कच्छूः–पामा तथा कसरैश्च खसरैरभिभूता–व्याप्ता ये ते तथा, अत एव खरतीक्ष्णनखानां–कठिनतीव्रनखानां कण्डूयितेन–खर्जूकरणेन विकृता–कृतव्रणा तनुः–शरीरं येषां ते तथा, टोलाकृतयः–अप्रशस्ताकाराः, क्वचित् टोलागइत्ति पाठस्तत्र टोलगतयः–उष्ट्रादिसमप्रचाराः, तथा विषमाणि दीर्घह्रस्वभावेन सन्धिरूपाणि बन्धनानि येषां ते विषमसन्धिबन्धनाः, तथा उत्कटुकानि–यथास्थानमनिविष्टानि अस्थिकानि–कीकसानि विभक्तानीव च–दृश्यमानान्तराणीव येषां ते तथा, अत्र विशेषणपदव्यत्ययः प्राग्वत्, अथवा उत्कुटुकस्थितास्तथास्वभावत्वात् विभक्ताश्च–भोजनविशेषरहिता ये ते तथा, 'दुर्बला' बलहीनाः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'कुसंहनना' सेवार्त्तसंहननाः 'कुप्रमाणाः' प्रमाणहीनाः 'कुसंस्थिताः' दुःसंस्थानास्तत एषां टोलाकृत्यादिपदाना कर्मधारयः, अत एव 'कुरूपाः' कुमूर्त्तयः तथा कुस्थानासनाः–कुत्सिताश्रयोपवेशनाः कुशय्याः–कुत्सितशयनाः कुभोजिनो–दुर्भोजनास्ततः एभिः पदैः कर्मधारयः, अशुचयः–स्नानब्रह्मचर्यादिवर्जिताः अश्रुतयो वा–शास्त्रवर्जिताः अनेकव्याधिपरिपीडिताङ्गाः स्खलन्ती विह्वला च वा–अर्दवितर्दा गतिर्येषां ते तथा, निरुत्साहाः सत्त्वपरिवर्जिताः विकृतचेष्टा नष्टतेजसः स्पष्टानि, अभीक्ष्णं शीतोष्णखरपरुषवातैर्विज्झडिअं–मिश्रितं व्याप्तमित्यर्थः, मलिनं पांसुरूपेण रजसा न तु पौष्परजसाऽवगुण्ठितानि–उद्धूलितान्यङ्गानि–अवयवा यस्य एतादृशमङ्गं येषां ते तथा, बहुक्रोधमानमायालोभाः बहुमोहाः न विद्यते शुभं–अनुकूलवेद्यं कर्म येषां ते तथा, अत एव दुःखभागिनः, ततः कर्मधारयः, अथवा दुःखानुबन्धिदुःखभागिनः, 'ओसण्णं'ति बाहुल्येन धर्मसंज्ञा–धर्मश्रद्धा सम्यक्त्वं च ताभ्यां परिभ्रष्टाः, बाहुल्यग्रहणेन यथा सम्यग्दृष्टित्वमेषां कदाचित् सम्भवति तथाऽधस्तनग्रन्थे व्याख्यातं, उत्कर्षेण रत्नेः–हस्तस्य यच्चतुर्विंशत्यङ्गुललक्षणं प्रमाणं तेन मात्रा–परिमाणं येषां ते तथा, इह कदाचित्षोडश वर्षाणि कदाचिच्च विंशतिर्वर्षाणि परममायुर्येषां ते तथा, श्रीवीरचरित्रे तु 'षोडश स्त्रीणां वर्षाणि विंशतिः पुंसां परमायु'रिति, बहूनां पुत्राणां नप्तॄणां–पौत्राणां यः परिवारस्तस्य प्रणयः–स्नेहः स बहुलो येषां ते तथा, अनेनाल्पायुष्केऽपि बहुपत्यता तेषामुक्ता, अल्पेनापि कालेन यौवनसद्भावादिति, ननु तदानीं गृहाद्यभावेन क्व ते वसन्तीत्याह–गङ्गासिन्धू महानद्यौ वैताढ्यं च पर्वतं निश्रां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृत्वा 'बावत्तरिं'ति द्विसप्ततिः स्थानविशेषाश्रिता निगोदाः–कुटुम्बानि, द्विसप्ततिसङ्ख्या चैवं–वैताढ्यादर्वाग् गङ्गाया-स्तटद्वये नवनवबिलसम्भवादष्टादश, एवं सिन्धवा अपि अष्टादश, एषु च दक्षिणार्द्धभरतमनुजा वसन्ति, वैताढ्यात् परतो गङ्गातटद्वयेऽष्टादश, एवं तत्रापि सिन्धुतटद्वये अष्टादश, एषु चोत्तरार्द्धभरतवासिनो मनुजा वसन्ति, बीजमिव बीजं भविष्यतां जनसमूहानां हेतुत्वात् बीजस्येव मात्रा–परिमाणं येषां ते तथा, स्वल्पाः स्वरूपत इत्यर्थः, बिलवा-सिनो मनुजा भविष्यन्तीति पुनः सूत्रं निगमनवाक्यत्वेन न पुनरुक्तमवसातव्यं, अथ तेषामाहारस्वरूपं पृच्छन्नाह–'ते णं भंते! मणुआ' इत्यादि, ते भगवन्! मनुजाः किमाहरिष्यन्ति?–किं भोक्ष्यन्ते, भगवानाह–गौतम! तस्मिन्, काले–एकान्तदुष्षमालक्षणे तस्मिन् समये–षष्ठारकप्रान्त्यरूपे गङ्गासिन्धू महानद्यौ रथपथः–शकटचक्रद्वयप्रमितो मार्गस्तेन मात्रा-परिमाणं यस्य स तादृशो विस्तरः–प्रवाहव्यासो ययोस्ते तथा, अक्षं–चक्रनाभिक्षेप्यकाष्ठं तत्र स्रोतो–धुरः प्रवेशस्तम्भं तदेव प्रमाणं तेन मात्रा–अवगाहना यस्य तत्तथाविधं जलं वक्ष्यतः, इयत्प्रमाणे न गम्भीरं जलं धरि-ष्यत इत्यर्थः, ननु क्षुल्लहिमवतोऽरकव्यवस्थाराहित्येन तद्गतपद्मद्रहनिर्गतयोरनयोः प्रवाहस्य नैयत्येनोक्तरूपौ (प्रवाहौ) कथं सङ्गच्छेते?, उच्यते, गङ्गाप्रपातकुण्डनिर्गमादनन्तरं क्रमेण कालानुभावजनितभरतभूमिगततापवशादपरजलशोषे समुद्रप्रवेशे तयोरुक्तमात्रावशेषजलवाहित्वमिति न काप्यनुपपत्तिरिति, तदपि च जलं बहुमत्स्यकच्छपाकीर्णं न चैव अब्बहुलं–बह्वप्कायं सजातीयापरापूकायपिण्डबहुलमित्यर्थः, ततस्ते मनुजाः सूरोद्गमनमुहूर्त्ते सूरास्तमयनमुहूर्त्ते च,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यकारलोपोऽत्र प्राकृतत्वात्, चकारौ परस्परं समुच्चयार्थौ, बिलेभ्यो निर्द्धाविष्यन्ति–शीघ्रया गत्या निर्गमिष्यन्ति, मुहूर्त्तात्परतोऽतितापातिशीतयोरसहनीयत्वात्, बिलेभ्यो निर्द्धाव्य मत्स्यकच्छपान् स्थलानि–तटभूमीः णिगन्तत्वाद् द्विकर्मकत्वं ग्राहयिष्यन्ति–प्रापयिष्यन्ति, ग्राहयित्वा च शीतातपतप्तैः रात्रौ शीतेन दिवा आतपेन तप्तैः–रसशोषं प्रापितैराहारयोग्यतां प्रापितैरित्यर्थः, अतिसरसानां तज्जठराग्निनाऽपरिपाच्यमानत्वाद् मत्स्यकच्छपैरेकविंशतिं वर्षसहस्राणि यावद्वृत्तिं–आजीविकां कल्पयन्तो–विदधाना विहरिष्यन्ति । अथ तेषां गतिस्वरूपं पृच्छन्नाह—'ते ण'मित्यादि, ते मनुजा भगवन्! निश्शीला–गताचाराः निर्व्रता–महाव्रताणुव्रतविकलाः निर्गुणा–उत्तरगुणविकलाः निर्मर्यादाः–अविद्यमानकुलादिमर्यादाः निष्प्रत्याख्यानपौषधोपवासा–असत्पौरुष्यादिनियमा अविद्यमानाष्टम्यादिपर्वोपवासाश्चेत्यर्थः, 'ओसण्णं' प्रायो मांसाहाराः, कथमित्याह–मत्स्याहारा यतः, तथा 'क्षौद्राहाराः' मधुभोजिनः क्षीणं वा–तुच्छावशिष्टं-तुच्छधान्यादिकं आहारो येषां ते तथा, इदं विशेषणं सूपपन्नमेव, पूर्वविशेषणे प्रायोग्रहणात्, केषुचिदादर्शेषु अत्र गडुाहारा इति दृश्यते, स लिपिप्रमाद एव सम्भाव्यते, पञ्चमाङ्गे सप्तमशते षष्ठोद्देशे दुष्षमदुष्षमावर्णनेऽदृश्यमानत्वात्, अथवा यथासम्प्रदायमेतत्पदं व्याख्येयं, कुणपः–शवस्तद्रसोऽपि वसादिः कुणपस्तदाहाराः, 'कालमासे' इत्यादिकं प्राग्वत्, निर्वचनसूत्रमपि प्राग्वत्, नवरं 'ओसण्ण'मिति ग्रहणात् कश्चित् क्षुद्राहारवान् देवलोकगाम्यपि अक्लिष्टाध्यवसायात्, अथ ये तदानीं क्षीणावशेषाश्चतुष्पदास्तेषां का गतिरिति पृच्छति–'तीसे ण'मित्यादि, तस्यां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवन्! समायां चतुष्पदाः–सिंहादयः प्राग्व्याख्यातार्थाः श्वापदाः प्रायो मांसाहारादिविशेषणविशिष्टाः क्व गमिष्यन्ति क्व उत्पत्स्यन्ते?, भगवानाह—गौतम! प्रायः नरकतिर्यग्योनिकेषु उत्पत्स्यन्ते, प्रायोग्रहणात् कश्चिदमांसादी देवयोनावपि, नवरं चिल्ललगा–नाखरविशेषा इति, अथ तदानीं तत्पक्षिगतिं प्रश्नयति–'ते ण'मित्यादि, कण्ठ्यं, नवरं ते णमिति क्षीणावशिष्टा ये पक्षिण इति यच्छब्दबलाद् ग्राह्यं, ढङ्काः–काकविशेषाः कङ्काः–दीर्घपादाः पिलका–रूढिगम्याः मद्गुका–जलवायसाः शिखिनो–मयूरा इति, गतः षष्ठारकः, तेन चावसर्प्पण्यपि गता ॥ साम्प्रतं प्रागुद्दिष्टामुत्सर्प्पिणीं निरूपयितुकामस्तत्प्रतिपादनकालप्रतिपादनपूर्वकं तत्प्रथमारकस्वरूपमाह—

तीसे णं समाए इक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले वीइक्कंते आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सावणबहुलपडिवए बालवकरणंसि अभीइणक्खत्ते चोद्दसपदमसमये अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव अणंतगुणपरिवद्धीए परिवुड्ढेमाणे २ एत्थ णं दूसमदूसमाणामं समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो!। तीसे णं भंते! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोआरे भविस्सइ?, गोअमा! काले भविस्सइ हाहाभूए भंभाभूए एवं सो चेव दूसमदूसमावेढओ णेअव्वो, तीसे णं समाए एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले विइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव अणंतगुणपरिवुड्ढीए परिवड्ढेमाणे २ एत्थ णं दूसमाणामं समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो! (सूत्रं–३७)

'तीसे ण'मित्यादि, तस्यां समायामवसर्प्पिणीदुष्षमदुष्षमानाम्न्यां एकविंशत्या वर्षसहस्रैः प्रमिते काले व्यतिक्रान्ते आगमिष्यन्त्यामुत्सर्प्पिण्यां श्रावणमासस्य बहुलप्रतिपदि–कृष्णप्रतिपदि पूर्वावसर्प्पिण्याः आषाढपूर्णिमापर्यन्तसमये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्सर्पिणीकालस्य प्रथम-आरकस्य स्वरुपम

पर्यवसानत्वात् बालवनाग्निकरणे कृष्णप्रतिपत्तिथ्यादिमार्धेऽस्यैव सद्भावात्, अभीचिनक्षत्रे चन्द्रेण योगमुपागते, चतुर्दशानां कालविशेषाणां प्रथमसमये–प्रारम्भक्षणेऽनन्तैर्वर्णपर्यवैर्यावदनन्तगुणपरिवृद्ध्या परिवर्द्धमानः परिवर्द्धमानः अत्रान्तरे दुष्षमदुष्षमानाम्ना समा कालः प्रतिपत्स्यते हे श्रमण ! हे आयुष्मन्! इति, वर्णादीनां वृद्धिश्च येनैव क्रमेण पूर्वमवसर्पिण्यरकेषु हानिरुक्ता तथैवात्र वाच्या, चतुर्दशकालविशेषा पुनः निःश्वासादुश्वासाद्वा गण्यन्ते, समयस्य निर्विभागकालत्वेनाद्यन्तव्यवहाराभावादावलिकायाश्चाव्यवहारार्थत्वेनोपेक्षा, तत्र निःश्वासः उच्छ्वासो वा १ प्राणः २, स्तोकः ३, लवः ४, मुहूर्त्तं ५, अहोरात्रं ६, पक्षः ७, मासः ८, ऋतुः ९, अयनं १०, संवत्सरः ११, युगं १२, करणं १३, नक्षत्रं १४, इति, एतेषां चतुर्दशानां मध्ये पञ्चानां सूत्रे साक्षादुक्ताना अपरेषां चोपलक्षणसङ्गृहीतानां प्रथमसमये, कोऽर्थः ?–य एव हि एतेषां चतुर्दशानां कालविशेषाणां प्रथमः समयः स एवोत्सर्पिणीप्रथमारकप्रथमसमयः, अवसर्पिणीसत्कानामेषां द्वितीयाषाढापौर्णमासीचरमसमय एव पर्यवसानात्, इदमुक्तं भवति ?–अवसर्पिण्यादौ महाकाले प्रथमतः प्रवर्त्तमाने सर्वेऽपि तदवान्तरभूताः कालविशेषाः प्रथमत एव युगपत्प्रवर्त्तन्ते तदनु स्वस्वप्रमाणसमाप्तौ समाप्नुवन्ति, तथैव पुनः प्रवर्त्तन्ते पुनः परिसमाप्नुवन्ति यावन्महाकालपरिसमाप्तिरिति, यद्यपि ग्रन्थान्तरे ऋतोराषाढादित्वेन कथनादुत्सर्पिण्याश्च श्रावणादित्वेन अस्य प्रथमसमयो न सङ्गच्छते ऋत्वर्द्धस्य गतत्वात् तथापि प्रावृट्-श्रावणादिर्वर्षारात्रोऽश्वयुजादिः शरन्मार्गशीर्षादिर्हेमन्तो माघादिर्वसन्तश्चैत्रादिर्ग्रीष्मो ज्येष्ठादिरित्यादिभगवतीवृत्तिव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चनात् श्रावणादित्वपक्षाश्रयणेन समाधेयमिति न दोषः, किञ्चेदं सूत्रं गम्भीरं ग्रन्थान्तरे च व्यक्त्यानुपलभ्यमानभावार्थकं तेनान्यथाप्यागमाविरोधेन मध्यस्थैः बहुश्रुतैः परिभावनीयमिति । अथात्रकालस्वरूपं पृच्छति–'तीसे ण'मित्यादि, सर्वं सुगमं, नवरं दुष्षमदुष्षमायाः अवसर्पिणीषष्ठारकस्य वेष्टको–वर्णको नेतव्यः–प्रापणीयस्तत्समानत्वादस्याः । गतः उत्सर्पिण्यां प्रथम आरः, अथ द्वितीयारकस्वरूपं वर्णयति—'तीसे ण'मित्यादि, सर्वं सुगमं, नवरं उत्सर्पिणीद्वितीयारक इत्यर्थः, अथावसर्पिणीदुष्षमातोऽस्या विशेषमाह—

तेणं कालेणं तेणं समएणं पुक्खलसंवट्टए णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ भरहप्पमाणमित्ते आयामेणं तदाणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं, तए णं से पुक्खलसंवट्टए महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ खिप्पामेव पतणतणाइत्ता खिप्पामेव पविज्जुआइस्सइ खिप्पामेव पविज्जुआइत्ता खिप्पामेव जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासिस्सइ, जेणं भरहस्स वासस्स भूमिभागं इंगालभूअं मुम्मुरभूअं छारिअभूअं तत्तकवेल्लुगभूअं तत्तसमजोइभूअं णिव्वाविस्सतित्ति, तंसि च णं पुक्खलसंवट्टगंसि महामेहंसि सत्तरत्तं णिवतितंसि समाणंसि एत्थ णं खीरमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ भरहप्पमाणमेत्ते आयामेणं तदणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं, तए णं से खीरमेहे णामं महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ जाव खिप्पामेव जुगमुसलमुट्ठि जाव सत्तरत्तं वासं वासिस्सइ, जेणं भरहवासस्स भूमीए वण्णं गंधं रसं फासं च जणइस्सइ, तंसि च णं खीरमेहंसि सत्तरत्तं णिवतितंसि समाणंसि इत्थ णं घयमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ, भरहप्पमाणमेत्ते आयामेणं, तदणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३८]

दीप अनुक्रम [५१]

तए णं से घयमेहे महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ जाव वासं वासिस्सइ, जेणं भरहस्स वासस्स भूमीए सिणेहभावं जणइस्सइ, तंसि च णं घयमेहंसि सत्तरत्तं णिवतितंसि समाणंसि एत्थ णं अमयमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ भरहप्पमाणमित्तं आयामेणं जाव वासं वासिस्सइ, जे णं भरहे वासे रुक्खगुच्छगुम्मलयवल्लितणपव्वगहरितगओसहिपवालंकुरमाईए तणवणस्सइकाइए जणइस्सइ, तंसि च णं अमयमेहंसि सत्तरत्तं णिवतितंसि समाणंसि एत्थ णं रसमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ भरहप्पमाणमित्ते आयामेणं जाव वासं वासिस्सइ, जेणं तेसिं बहूणं रुक्खगुच्छगुम्मलयवल्लितणपव्वगहरितओसहिपवालंकुरमादीणं तित्त कडुअकसायअंबिलमहुरे पंचविहे रसविसेसे जणइस्सइ, तए णं भरहे वासे भविस्सइ पुरूढरुक्खगुच्छगुम्मलयवल्लितणपव्वयगहरिअओसहिए, उवचियतयपत्तपवालंकुरपुप्फफलसमुइए सुहोवभोगे आवि भविस्सइ (सूत्रं ३८)

'ते ण'मित्यादि, तस्मिन् काले–उत्सर्पिण्या द्वितीयारकलक्षणे तस्मिन् समये–तस्यैव प्रथमसमये, पुष्कलं–सर्वं अशुभानुभावरूपं भरतभूरौक्ष्यदाहादिकं प्रशस्तस्वोदकेन संवर्त्तयति–नाशयतीति पुष्कलसंवर्त्तकः स च पर्जन्यप्रभृतिमेघत्रयापेक्षया महान् मेघो–दशवर्षसहस्रावधि एकेन वर्षणेन भूमेर्भावुकत्वात् महामेघः प्रादुर्भविष्यति–प्रकटीभविष्यति, भरतक्षेत्रप्रमाणेन साधिकैकसप्ततिचतुःशताधिकचतुर्दशयोजनसहस्ररूपेण १४४७१ मात्रा–प्रमाणं यस्य स तथा, केन?–आयामेन–दीर्घभावेन, अयं भावः–पूर्वसमुद्रादारभ्य पश्चिमसमुद्रं यावत् तस्य वार्दलकं व्याप्तं भविष्यतीत्यर्थः, तदनुरूपश्च–तस्य भरतक्षेत्रस्यानुरूपः–सदृशः, सूत्रे च लिङ्गव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, क्रियाविशेषणं वा, केने-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्याह–विष्कम्भबाहल्येन, अत्र समाहारद्वन्द्ववशादेकवद्भावः, कोऽर्थः?–यावान् व्यासो भरतक्षेत्रस्य इषुस्थाने पञ्च-शतयोजनानि षड्विंशतिर्योजनानि षट् च कला योजनैकविंशतिभागरूपाः तदतिरिक्तस्थाने तु अनियततया तथाऽस्यापि विष्कम्भः, बाहल्यं तु यावता जलभारेण यावदवगाढभरतक्षेत्रतलभूमिभार्द्रीकृत्य तापः उपशाम्यते तावज्जलदलनि-ष्पन्नमेव ग्राह्यमिति, अथ स प्रादुर्भूतः सन् यत्करिष्यति तदाह–'तए णं'त्यादि, ततश्च स–पुष्कलसंवर्त्तकमेघः क्षिप्रमेव–उन्नमनकाल एव 'पतणतणाइस्सई'ति अनुकरणवचनमेतत् प्रकर्षेण स्तनितं करिष्यति, गर्जिष्यतीत्यर्थः, तथा च कृत्वा क्षिप्रमेव युगं–रथावयवविशेषः मुसलं–प्रतीतं मुष्टिः–पिण्डिताङ्गुलिकः पाणिः एषां यत्प्रमाणमायाम-बाहल्यादिभिस्तेन मात्रा यासां ताभिः, इयता प्रमाणेन दीर्घाभिः–स्थूलाभिरित्यर्थः धाराभिः ओघेन–सामान्येन सर्वत्र निर्विशेषेण मेघो यत्र तं तथाविधं सप्तरात्रं–सप्ताहोरात्रान् वर्षं वर्षिष्यति करिष्यतीत्यर्थः, 'जे ण'मिति पूर्ववत् भरतस्य वर्षस्य–क्षेत्रस्य भूमिभागं अङ्गारभूतं मुर्मुरभूतं क्षारिकभूतं तप्तकवेल्लुकभूतं तप्तसमज्योतिर्भूतं निर्वापयिष्यति स पुष्करसंवर्त्तको महामेघः, अथ द्वितीयमेघवक्तव्यतामाह—'तंसि च ण'मित्यादि, तस्मिंश्च चशब्दो वाक्यान्तरप्रा-रम्भार्थः,पुष्कलसंवर्त्तके महामेघे सप्तरात्रं यावन्निपतिते सति–निर्भरं वृष्टे सति अत्रान्तरे क्षीरमेघो नामतो महामेघः प्रादुर्भविष्यति, शेषं 'भरते'त्यादि प्राग्वत्, अथ स प्रादुर्भवन् किं करिष्यतीत्याह–'तए ण'मित्यादि, अत्र वासि-स्सइत्ति पर्यन्तं प्राग्वत्, यो मेघो भरतस्य भूम्या वर्णं गन्धं रसं स्पर्शं च जनयिष्यति, अत्र वर्णादयः शुभा एव ग्राह्याः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

येभ्यो लोकोऽनुकूलं वेदयते, अशुभवर्णादयः प्राक्कालानुभावजनिता वर्त्तन्त एवेति, ननु यदि शुभवर्णादीन् जनयति तदा तरुपत्रादिषु नीलो वर्णो जम्बुफलादिषु कृष्णः मरिचादिषु कटुको रसः कारवेल्लादिषु तिक्तः चणकादिषु रूक्षः स्पर्शः सुवर्णादिषु गुरुः ऋकचादिषु खरः इत्यादयोऽशुभवर्णादयः कथं सम्भवेयुरिति ?, उच्यते, अशुभपरिणामा अप्येतेऽनुकूलवेद्यतया शुभा एव, यथा मरिचादिगतः कटुकरसादिः प्रतिकूलवेद्यतया शुभोऽप्यशुभ एव, यथा कुष्ठादिगतः श्वेतवर्णादिरिति, अथ तृतीयमेघवक्तव्यतामाह–'तंसि'इत्यादि, तस्मिन् क्षीरमेघे सप्तरात्रं निपतिते सति अत्रान्तरे घृतवत् स्निग्धो मेघो घृतमेघो नाम्ना महामेघः प्रादुर्भविष्यतीत्यादि सर्वं प्राग्वत्, अथ स प्रादुर्भूतः किं करिष्यतीत्याह–'तए ण'मित्यादि, सर्वं प्राग्वत्, नवरं यो घृतमेघो भरतभूमेः स्नेहभावं–स्निग्धतां जनयिष्यतीति, अथ चतुर्थमेघवक्तव्यतामाह–'तंसि'इत्यादि, तस्मिंश्च घृतमेघे सप्तरात्रं निपतिते सति अत्र–प्रस्तावेऽमृतमेघो यथार्थनामा महामेघः प्रादुर्भविष्यति यावद्वर्षिष्यति इति पर्यन्तं पूर्ववत्, यो मेघो भरते वर्षे वृक्षा गुच्छा गुल्मा लता वल्ल्यः तृणानि प्रतीतानि पर्वगा–इक्ष्वादयः हरितानि–दूर्वादीनि औषध्यः–शाल्यादयः प्रवालाः–पल्लवाः अङ्कुराः–शाल्यादिबीजसूचयः इत्यादीन् तृणवनस्पतिकायिकान्–बादरवनस्पतिकायिकान् जनयिष्यतीति। अथ पञ्चममेघस्वरूपवक्तव्यतामाह–'तंसि च ण'मित्यादि,व्यक्तं, परं रसजनको मेघो रसमेघः, यो रसमेघस्तेषाममृतमेघोत्पन्नानां बहूनां वृक्षाद्यङ्कुरान्तानां वनस्पतीनां तिक्तो निम्बादिगतः कटुको मरिचादिगतः कषायो बिभीतकामलकादिगतः अम्बोऽम्लिकाद्याश्रितः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मधुरः शर्कराद्याश्रितः, एतान् पञ्चविधान् रसविशेषान् जनयिष्यति, लवणरसस्य मधुरादिसंसर्गजत्वाद् तदभेदेन विवक्षणात्, सम्भाव्यते च तत्र माधुर्यादिसंसर्गः सर्वरसानां लवणप्रक्षेप एव स्वादुत्वोत्पत्तेः तेन न पृथग्निर्देशः, एषां च पञ्चानां मेघानां क्रमेणेदं प्रयोजनं सूत्र उक्तमपि स्पष्टीकरणाय पुनर्लिख्यते—आद्यस्य भरतभूमेर्दाहोपशमः द्वितीयस्य तस्या एव शुभवर्णगन्धादिजनकत्वं तृतीयस्य तस्या एव स्निग्धताजनकत्वं न चात्र क्षीरमेघेनैव शुभवर्णगन्धरसस्पर्शसम्पत्तौ भूमिस्निग्धतासम्पत्तिरिति वाच्यं, स्निग्धताधिक्यसम्पादकत्वात् तस्य, नहि यादृशी घृते स्निग्धता तादृशी क्षीरे दृश्यत इत्यनुभव एवात्र साक्षी, चतुर्थस्य तस्यां वनस्पतिजनकत्वं, पञ्चमस्य वनस्पतिषु स्वस्वयोग्यरसविशेषजनकत्वं, यद्यप्यमृतमेघतो वनस्पतिसम्भवे वर्णादिसम्पत्तौ तत्सहचारित्वात् रसस्यापि सम्पत्तिस्तस्मादेव युक्तिमती तथापि स्वस्वयोग्यरसविशेषान् सम्पादयितुं रसमेघ एव प्रभुरिति, तदा च यादृशं भरतं भावि तथा चाह—'तए णं भरहे वासे'इत्यादि, ततः उक्तस्वरूपपञ्चमेघवर्षणानन्तरं णमिति पूर्ववत् भारतं वर्षं भविष्यति, कीदृशमित्याह–प्ररूढा–उद्गता वृक्षा गुच्छा गुल्मा लता वल्ल्यस्तृणानि पर्वजा हरितानि औषधयश्च यत्र तत्तथा, अत्र समासे कप्रत्ययः, एतेन वनस्पतिसत्ताऽभिहिता, उपचितानि–पुष्टिमुपगतानि त्वक्पत्रप्रवालपल्लवांकुरपुष्पफलानि समुदितानि–सम्यक् प्रकारेण उदयं प्राप्तानि यत्र तत्तथा क्तान्तस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, एतेन वनस्पतिषु पुष्पफलानां रीतिर्दर्शिता, अत एव सुखोपभोग्यं–सुखेनासेवनीयं भविष्यति, अत्र वाक्यान्तरयोजनार्थमुपात्तस्य भविष्यतिपदस्य

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न पौनरुक्त्यं भावनीयमिति । अथ तत्कालीना मनुजास्तादृशं भरतं दृष्ट्वा यत् करिष्यंति तदाह—

तए णं ते मणुआ भरहं वासं परूढरुक्खगुच्छगुम्मलयवल्लितणपव्वयहरिअओसहीयं उवचिअतयपत्तपवालपल्लवंकुरपुप्फफलसमुइअं सुहोवभोगं जायं २ चावि पासिहिंति पासित्ता बिलेहिंतो णिद्धाइस्संति णिद्धाइत्ता हट्ठतुट्ठा अण्णमण्णं सद्दाविस्संति २ त्ता एवं वदिस्संति—जाते णं देवाणुप्पिआ! भरहे वासे परूढरुक्खगुच्छगुम्मलयवल्लितणपव्वयहरिअजाव सुहोवभोगे, तं जे णं देवाणुप्पिआ! अम्हं केइ अज्जप्पभिइ असुभं कुणिमं आहारं आहारिस्सइ से णं अणेगाहिं छायाहिं वज्जणिज्जेत्तिकट्टु संठिइं ठवेस्संति २ त्ता भरहे वासे सुहंसुहेणं अभिरममाणा २ विहरिस्संति (सूत्रं ३९) तीसे णं भंते! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोआरे भविस्सइ?, गो०! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे भविस्सइ जाव कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव, तीसे णं भंते! समाए मणुआणं केरिसए आयारभावपडोआरे भविस्सइ?, गोअमा! तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे छव्विहे संठाणे बहूइओ रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं साइरेगं वाससयं आउअं पालेहिंति २ त्ता अप्पेगइआ णिरयगामी जाव अप्पेगइआ देवगामी, ण सिज्झंति। तीसे णं समाए एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव परिवड्ढेमाणे २ एत्थ णं दुसमसूसमाणामं समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो!, तीसे णं भंते! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोआरे भविस्सइ?, गोअमा! बहुसमरमणिज्जे जाव अकित्तिमेहिं चेव, तेसि णं भंते! मणुआणं केरिसए आयारभावपडोआरे भविस्सइ?, गो०! तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे छव्विहे संठाणे बहूइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडीआउअं पालिहिंति २ त्ता अप्पेगइआ णिरयगामी जाव अंतं करेहिंति, तीसे णं समाए तओ वंसा समुप्पज्जिस्संति, तं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ उत्सर्पिणीकाले भरतक्षेत्रस्य स्वरुपं वर्ण्यते

तित्थगरवंसे चक्कवट्टिवंसे दसारवंसे, तीसे णं समाए तेवीसं तित्थगरा एक्कारस चक्कवट्टी णव बलदेवा णव वासुदेवा समुप्पज्जिस्संति, तीसे णं समाए सागरोवमकोडाकोडीए बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिआए काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव अणंतगुणपरिवुड्ढीए परिवुड्ढेमाणे २ एत्थ णं सुसमदूसमाणामं समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो !, सा णं समा तिहा विभजिस्सइ, पढमे तिभागे मज्झिमे तिभागे पच्छिमे तिभागे, तीसे णं भंते ! समाए पढमे तिभाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोआरे भविस्सइ ?, गोअमा ! बहुसमरमणिज्जे जाव भविस्सइ, मणुआणं जा चेव ओसप्पिणीए पच्छिमे तिभागे वत्तव्वया सा भाणिअव्वा, कुलगरवज्जा उसभसामिवज्जा, अण्णे पठंति–तीसे णं समाए पढमे तिभाए इमे पण्णरस कुलगरा समुप्पज्जिस्संति तंजहा–सुमई जाव उसभे, सेसं तं चेव, दंडणीईओ पडिलोमाओ णेअव्वाओ, तीसे णं समाए पढमे तिभाए रायधम्मे जाव धम्मचरणे अ वोच्छिज्जिस्सइ, तीसे णं समाए मज्झिमपच्छिमेसु तिभागेसु जाव पढममज्झिमेसु वत्तव्वया ओसप्पिणीए सा भाणिअव्वा, सुसमा तहेव सुसमासुसमावि तहेव जाव छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जिस्संति जाव सण्णिचारी (सूत्रं ४०)

'तए ण'मित्यादि, ततस्ते मनुजा भरतवर्षं यावत्सुखोपभोग्यं चापि द्रक्ष्यन्ति, दृष्ट्वा बिलेभ्यो निर्द्धाविष्यन्ति–निर्गमिष्यन्ति, निर्द्धाव्य हृष्टा–आनन्दितास्तुष्टाः–सन्तोषमुपगताः पश्चात् कर्मधारयः अन्योऽन्यं शब्दयिष्यन्ति, शब्दयित्वा च एवं वदिष्यन्तीति, अथ ते किं वदिष्यन्तीत्याह—'जाते ण'मित्यादि, जातं भो देवानुप्रिया ! भरतं वर्षं प्ररूढवृक्षं यावत् सुखोपभोग्यं तस्माद् ये देवानुप्रिया ! अस्माकं–अस्मज्जातीयानां कश्चिदद्यप्रभृति अशुभं कुणिमं–मांसमाहारमाहारयिष्यति स पुरुषोऽनेकाभिश्छायाभिः, इत्थंभावे तृतीया, सह भोजनादिपङ्क्तिनिषण्णानां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३९-४०]

दीप अनुक्रम [५२-५३]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥१७६॥

याश्छायाः शरीरसम्बन्धिन्यस्ताभिर्वर्जनीयः, अयमर्थः—आस्तां तेषामस्पृश्यानां शरीरस्पर्शः तच्छरीरच्छायास्पर्शोऽपि वर्जनीयः, क्वचिद्वर्ज इति सूत्रपाठे तु वर्ज्यो वर्जनीय इत्यर्थः, इतिकृत्वा संस्थितिं—मर्यादां स्थापयिष्यन्ति, स्थापयित्वा च भरते वर्षे सुखंसुखेनाभिरममाणाः २—सुखेन क्रीडन्तो २ विहरिष्यन्ति—प्रवर्त्तिष्यन्त इति । अथ भरतभूमिस्वरूपं पृच्छति—'तीसे ण'मित्यादि सर्वं पूर्ववत्, ननु कृत्रिममण्यादिकरणं तदानीं तन्मनुजानामसम्भवि शिल्पोपदेशकाचार्याभावाद्, उच्यते, द्वितीयारे पुरादिनिवेशराजनीतिव्यवस्थादिकृज्जातिस्मारकादिपुरुषविशेषद्वारा वा क्षेत्राधिष्ठायकदेवप्रयोगेण वा कालानुभावजनितनैपुण्येन वा तस्य सुसम्भवत्वात्, कथमन्यथाऽत्रैव ग्रन्थे प्रस्तुतारकमाश्रित्य पुष्करसंवर्त्तकादिपञ्चमहामेघवृष्ट्यनन्तरं वृक्षादिभिरौषध्यादिभिश्च भासुरायां सञ्जातायां भरतभूम्यां तत्कालीनमनुजा बिलेभ्यो निर्गत्य मांसादिभक्षणनियममर्यादां विधास्यन्ति तल्लोपकं च पंक्तेर्बहिः करिष्यन्तीत्यर्थाभिधायकं प्रागुक्तं सूत्रं सङ्गच्छत इति । अथ मनुजस्वरूपमाह—'तीसे ण'मित्यादि, सर्वं अवसर्पिणीदुष्षमारकमनुजस्वरूपवद् भावनीयं, नवरं न सिद्ध्यन्ति—सकलकर्मक्षयलक्षणां सिद्धिं न प्राप्नुवन्ति, चरणधर्मप्रवृत्त्यभावात्, अत्र भविष्यन्निर्देशे प्राप्ते वर्त्तमाननिर्देशः पूर्वयुक्तितः समाधेयः । इत्युत्सर्पिण्यां द्वितीयारकः । 'तीसे णं समाए एक्कवीसाए वास' इत्यादि, तस्यां समायां दुष्षमानाम्न्यां एकविंशत्या वर्षसहस्रैः काले व्यतिक्रान्ते अनन्तैर्वर्णपर्यवैर्यावत्परिवर्द्धमानः २ अत्रावसरे दुष्षमसुषमानाम्ना समा काल उत्सर्पिणीतृतीयारकः प्रतिपत्स्यते हे श्रमणेत्यादि प्राग्वत्, 'तीसे

२वक्षस्कारे मांसवर्जनव्यवस्था सू. ३९ शेषोत्सर्पिणीवर्णनं सू. ४०

॥१७६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण'मित्यादि, सर्वं प्राग्वत्, अवसर्प्पिणीचतुर्थारकसदृशत्वमुत्सर्प्पिणीतृतीयारकस्येति तत्सादृश्यं प्रकटयन्नाह—'तीसे ण'मित्यादि, प्रायः प्राग्व्याख्यातार्थं तीर्थङ्कराख्ययोर्विंशतिः पद्मनाभादयः चतुर्विंशतितमस्य भद्रकृन्नाम्नश्चतुर्थारके उत्पत्स्यमानत्वात्, एकादश चक्रवर्त्तिनो भरतादयो वीरचरित्रे तु दीर्घदन्तादयः द्वादशस्यारिष्टनाम्नश्चतुर्थारके एव भावित्वात्, नव बलदेवा जयन्तादयः, नव वासुदेवा नन्द्यादयः, यत्तु तिलकादयः प्रतिविष्णवो नेहोक्तास्तत्र पूर्वोक्त एव हेतुरवसातव्यः, समुत्पत्स्यन्ते। गतस्तृतीयारक उत्सर्पिण्यामथ चतुर्थः–'तीसे ण'मित्यादि, तस्यां समायां सागरोपमकोटाकोट्या द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्रैरूनितया काले व्यतिक्रान्ते अनन्तैर्वर्णपर्यवैर्यावद्वर्द्धमानोऽत्र प्रस्तावे सुषमदुष्षमानाम्ना समा कालः उत्सर्प्पिणीचतुर्थारकलक्षणः प्रतिपत्स्यते, 'सा ण'मित्यादि 'सा' समा त्रिधा विभक्ष्यति–विभागं प्राप्स्यति, प्रथमस्त्रिभागः मध्यमस्त्रिभागः पश्चिमस्त्रिभागश्चेति, तत्राद्यत्रिभागस्वरूपमाह—'तीसे ण'मित्यादि, तस्यां समायां भदन्त! प्रथमे त्रिभागे भरतस्य वर्षस्य कीदृशक आकारभावप्रत्यवतारो भविष्यति?, गौतम! बहुसमरमणीयो यावद्भविष्यति, यावत्करणात् पूर्णोऽपि भूमिवर्णकगमो ग्राह्यः, मनुजप्रश्नमपि मनसिकृत्य भगवान् स्वयमेवाह—'मणुआण'मित्यादि, मनुजानां तत्कालीनानां या अवसर्प्पिण्यास्तृतीयारकस्य पश्चिमत्रिभागे वक्तव्यता सा अत्रापि भणितव्या, अत्रैवापवादसूत्रमाह—कीदृशी च सा वक्तव्यतेत्याह–कुलकरान् वर्जयतीति कुलकरवर्जा, 'वृजैण् वर्जने' इत्यस्याचि प्रत्यये रूपसिद्धिः, एवं ऋषभस्वामिवर्जा:, अवसर्प्पिण्यां कुलकरसम्पाद्यानां दण्डनीत्यादी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामिव ऋषभस्वामिसम्पाद्यानां चान्नपाकादिप्रक्रियाशिल्पकलोपदर्शनादीनामिवोत्सर्प्पिण्यामपि द्वितीयारकभाविकुलकरप्रवर्त्तितानां तेषां तदानीमनुवर्त्तिष्यमाणत्वेन तत्प्रतिपादकपुरुषकथनप्रयोजनाभावात् यथा अवसर्प्पिणीतृतीयारकतृतीयभागे कुलकराणां स्वरूपं ऋषभस्वामिस्वरूपं च प्राक् प्ररूपितं तथा नात्र वक्तव्यमिति भावः, अथवा ऋषभस्वामिवर्जेत्यत्र ऋषभस्वामिअभिलापवर्जेति तात्पर्यं, तेन ऋषभस्वाम्यभिलापं वर्जयित्वा भद्रकृत्तीर्थकृतोऽभिलापः कार्य इत्यागतं, उत्सर्प्पिणीचरमतीर्थकरस्य प्रायोऽवसर्प्पिणीप्रथमतीर्थकृत्समानशीलत्वात्, अन्यथोत्सर्प्पिणीचतुर्विंशतितमतीर्थकृतः क्व सम्भवः स्यादिति संशयादयोऽपि स्यात्, कलाद्युपदर्शनस्य तु अर्थादेव निषेधप्राप्ते तद्विषयकोऽभिलाप एवं नास्तीति, अत्र कुलकरविषयकं वाचनाभेदमाह–'अण्णे पठंति'त्ति, अन्ये आचार्याः पठन्ति–तस्याः समायाः प्रथमे त्रिभागे इमे–वक्ष्यमाणाः पञ्चदश कुलकराः समुत्पत्स्यन्ते, तद्यथा–सुमतिर्यावत् ऋषभः,क्वचित्संमुई इति पाठस्तत्र सम्मतिः, उकारस्तु 'स्वराणां स्वरा' (श्रीसिद्ध० ८–४–सू०.२३८) इत्यनेन सूत्रेण प्राकृतशैलीप्रभवः, यद्वा संमुच्चिरिति, यावच्छब्दात्पूर्वोक्ताः प्रतिश्रुतिप्रमुखा एव ग्राह्याः, वाचनान्तरानुसारेण यत्कुलकरसम्भवो निरूपितस्तव्यतिरिक्तं शेषं पञ्च २ पुरुषपर्वसम्पाद्यमाननवदंडनीत्यादिकं तदेव पूर्वोक्तमेवावसेयं, अत्रैव दण्डनीतिक्रमविशेषस्वरूपमाह–दण्डनीतयः कुलकरसम्पाद्या हाकारादयः प्रतिलोमाः–पश्चानुपूर्व्या जाता नेतव्याः–प्रापणीयाः बुद्धिपथमिति शेषः, प्रथमपञ्चकस्य धिक्कारादयः उत्कृष्टमध्यमजघन्यापराधिनां यथार्हं तिस्रः द्वितीयपञ्चकस्य कालानुभावेनोत्कृष्टापराध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३९-४०]

दीप अनुक्रम [५२-५३]

विधुराणां मध्यमजघन्यापराधयोर्माकारहाकाररूपे द्वे तृतीयपञ्चकस्य पूर्वापराधद्वयविधुराणां जघन्येऽपराधे हाकारलक्षणा प्रथमेति, अत्र दण्डनीतय इत्युपलक्षणं तेन शरीरायुष्कप्रमाणादिकमपि यथासम्भवं प्रतिलोमतया ज्ञेयमिति, वाचनान्तरसूत्रस्यायं भावः–अत्र व्यवच्छिन्ने राजधर्मे कालानुभावेन प्रतनु २ कषायाः शास्तारो नोग्रस्तेजस्कं दण्डं करिष्यन्ति नापि शासनीयास्तदुचितमपराधं करिष्यन्ति ततोऽरिष्टनामकचक्रवर्तिसन्तानीयाः पञ्चदश कुलकराः भविष्यन्ति शेषाश्च तत्कृतमर्यादापालकाः क्रमेण च सर्वेऽप्यहमिन्द्रनरत्वं प्रपत्स्यन्ते, अत्र च ऋषभनामा कुलकरो न तु ऋषभस्वामिनामा तीर्थकृत्, तत्स्थानीयस्य भद्रकृतस्तीर्थकृतः प्रस्तुतारकस्यैकोननवतौ पक्षेष्वतिक्रान्तेषु उत्पत्स्यमानत्वेनागमेऽभिहितत्वादिति, किञ्च स्थानाङ्गसप्तमे स्थानके सप्त कुलकरा उक्तास्तत्र सुमतिनामापि नोक्तं, दशमे तु सीमङ्करादयो दशोक्तास्तत्र सुमतिनामोक्तं, परं प्रान्ते न, समवायाङ्गे तु सप्त तथैव, दश तु विमलवाहनादयः सुमतिपर्यन्ता उक्ताः, स्थानाङ्गनवमस्थानके च सुमतिपुत्रत्वेन पद्मनाभोत्पत्तिरुक्ता तथा प्रस्तुतग्रन्थे द्वितीयारके कुलकरा मूलत एव नोक्ताश्चतुर्थारके तु मतान्तरेण सुमत्यादयः पञ्चदशोक्तास्तेन कुलकरानाश्रित्य भिन्न २ नामताव्यस्तनामतान्यूनाधिकनामतारूपसूत्रपाठदर्शनेन व्यामोहो न कार्यो, वाचनाभेदजनितत्वात् तस्य, भवति हि वाचनाभेदे पाठभेदस्तत्त्वं तु केवलिगम्यमिति । अथात्रैव त्रिभागे किं किं व्युच्छेदं यास्यतीति दर्शयन्नाह—'तीसे ण'–मित्यादि, तस्यां समायां प्रथमे त्रिभागे राजधर्म्मो यावद्धर्म्मचरणं च व्युच्छेत्स्यति, यावत्करणात् गणधर्म्मः पाख-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

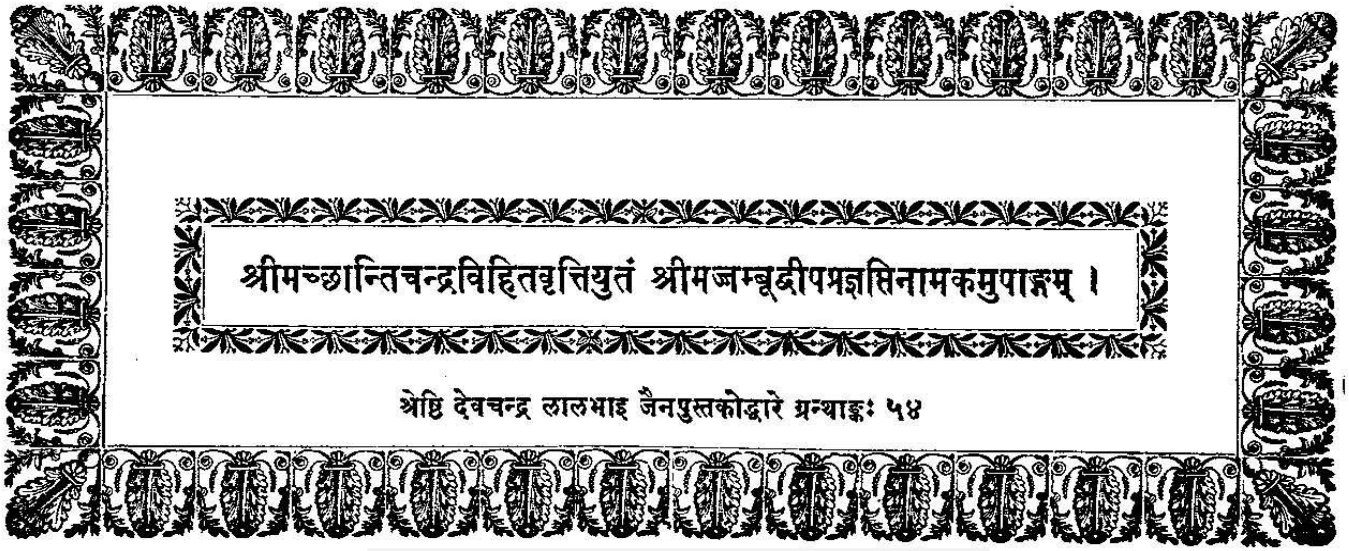
ण्डधर्म्मोऽग्निधर्मश्चेति, अथ शेषद्विभागवक्तव्यतामाह—'तीसे ण'मित्यादि, तस्याः समाया मध्यमपश्चिमयोस्त्रिभागयोर्या, प्रथममध्यमयोरित्यत्र यथासम्भवमर्थयोजनाया औचित्येन मध्यमप्रथमयोरित्यवसेयं, अन्यथा शुद्धप्रतिलोम्याभावादर्थानुपपत्तिः स्यादिति, अवसर्प्पिण्यां वक्तव्यता सा भणितव्या, गतश्चतुर्थारक इति, अथ पञ्चमषष्ठावतिदेशेनाह—'सुसमा' इत्यादि, सुषमा—पञ्चमसमालक्षणः कालस्तथैव—अवसर्प्पिणीद्वितीयारकवदिति, सुषमसुषमा—षष्ठारकः सोऽपि तथैव—अवसर्प्पिणीप्रथमारकसदृश इत्यर्थः, कियत्पर्यन्तमत्र ज्ञेयमित्याह—यावत्षड्विधा मनुष्या अनुसक्ष्यन्ति—संतत्या अनुवर्त्तिष्यन्ति यावच्छनैश्चारिणः यावत्पदात् पद्मगन्धादयः पूर्वोक्ता एव ग्राह्याः । गतौ पञ्चमषष्ठौ, तद्गमने चोत्सर्प्पिणी गता, तस्यां च गतायामवसर्प्पिण्युत्सर्प्पिणीरूपं कालचक्रमपि गतम् ।

इति सातिशयधर्म्मदेशनारससमुल्लासविस्मयमानऐदंयुगीननराधिपतिचक्रवर्त्तिसमानश्रीअकब्बरसुरत्राणप्रदत्तषाण्मासिकसर्वजन्तुजाताभयदानशत्रुञ्जयादिकरमोचनस्फुरन्मानप्रदानप्रभृतिबहुमानयुगप्रधानोपमानसाम्प्रतविजयमानश्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीहीरविजयसूरीश्वरपदपद्मोपासनाप्रवणमहोपाध्यायश्रीसकलचन्द्रगणिशिष्योपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रगणिविरचितायां जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तौ प्रमेयरत्नमञ्जूषानाम्न्यां भरतक्षेत्रस्वरूपवर्णनप्रस्तावनागतावसर्प्पिण्युत्सर्पिणीद्वयरूपकालचक्रवर्णनो नाम द्वितीयो वक्षस्कारः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र द्वितिय-वक्षस्कार: परिसमाप्त:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:



इयं मूल संपादने मुद्रितं अन्तिम-पृष्ठं वर्तते

Jain Education International www.jainelibrary.org

भाग 23	जंबूद्वीप-उवंगसूत्र [७/१] मूलं एवं मलयगिरिसूरिजी रचिता टीका परिसमाप्ता: मूल संशोधकः सम्पादकश्च पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब किंचित् वैशिष्ट्य समर्पितेन सह पुन: संकलनकर्ता मुनि दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९-३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविदया, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प[बारसा]सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

आगम [18/1]

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

“जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति (उपांगसूत्र-७/१)” [मूलं एवं शांतिचंद्र विहिता वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

“जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति” मूलं एवं वृत्ति:” नामेण परिसमाप्त:

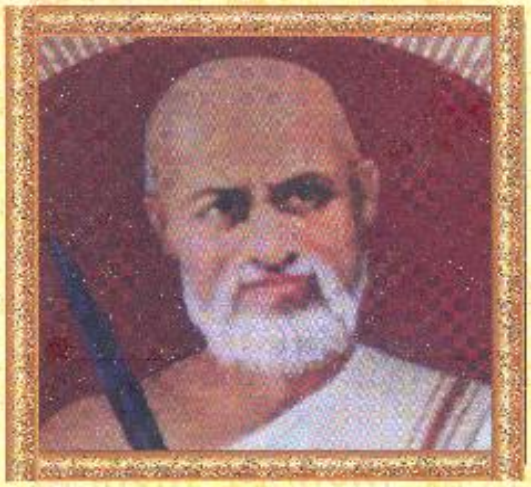
“सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि” श्रेणि, भाग-23


आगम
वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

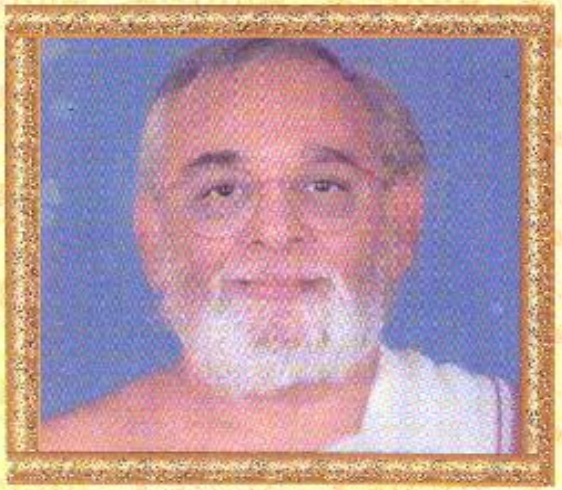
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

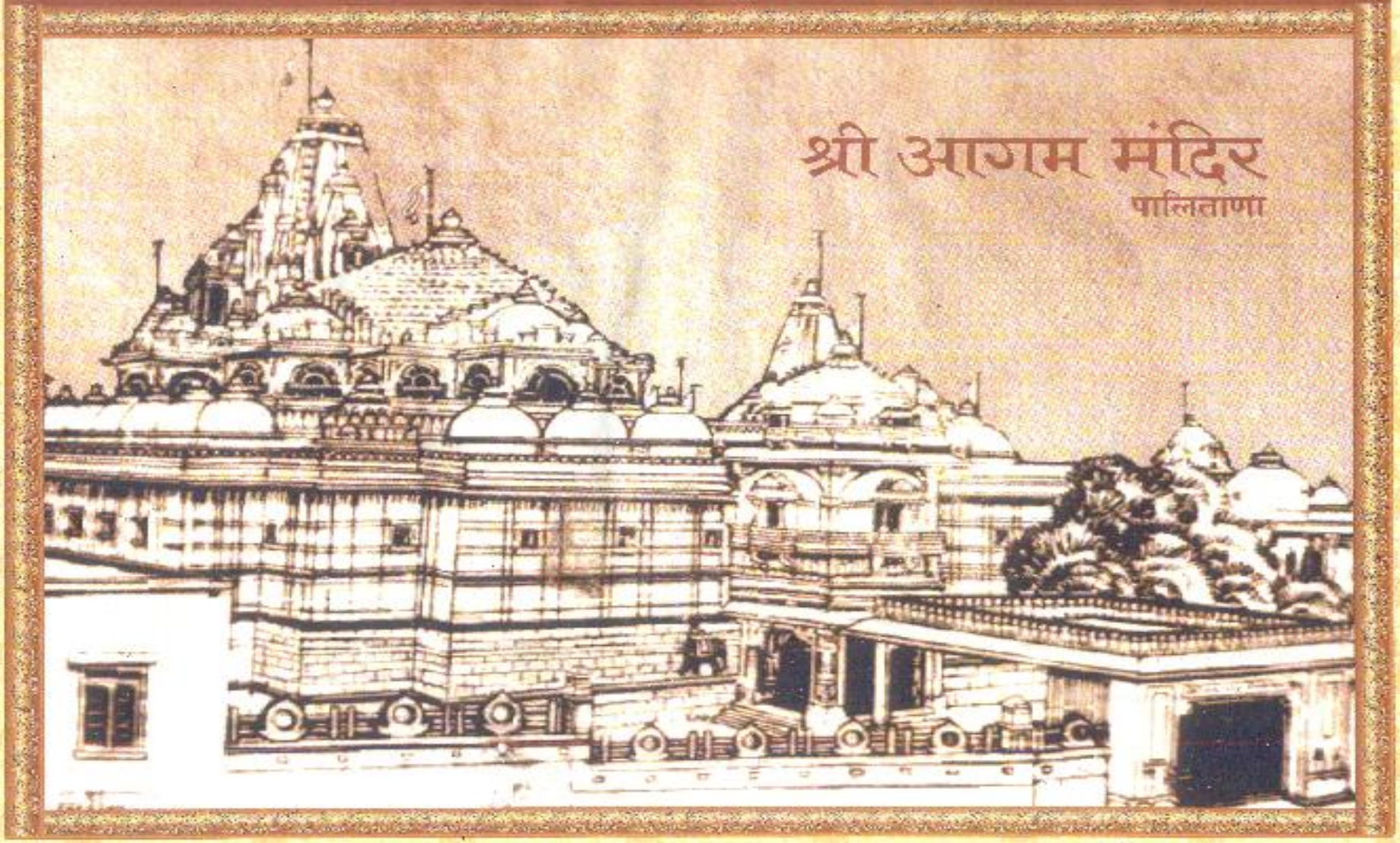
अभिनव-संकलनकर्ता

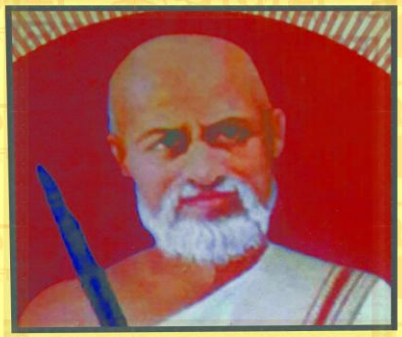


आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता





मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम १८

"जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं वृत्तिः [१]

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

